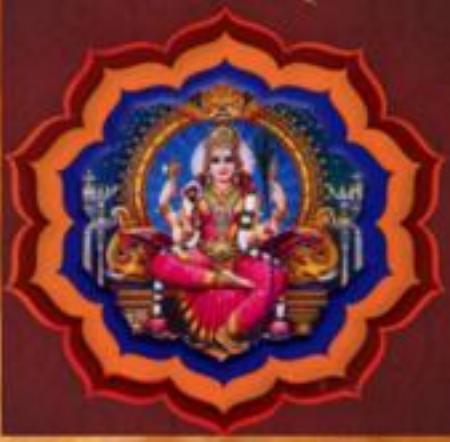


रराजास्त्रवती भीमा यक्षगन्धर्वशालिनी ।  
 तयोश्चम्बोस्तदानीं तु बभूव स समागमः ॥ २०  
 द्यावापृथिव्योः संयोगो यथा स्याद् युगपर्ये ।  
 तद् युद्धमभवद् घोरं देवदानवसंकुलम् ॥ २१  
 क्षमापराक्रमपरं दर्पस्य विनयस्य च ।  
 निश्चक्मुर्बलाभ्यां तु भीमास्तत्र सुरासुराः ॥ २२  
 पूर्वापराभ्यां संरब्धाः सागराभ्यामिवाम्बुदाः ।  
 ताभ्यां बलाभ्यां संहष्टाश्वेरस्ते देवदानवाः ॥ २३  
 वनाभ्यां पार्वतीयाभ्यां पुष्पिताभ्यां यथा गजाः ।  
 समाजघृस्ततो भेरीः शङ्खान् दध्मुनेकशः ॥ २४  
 स शब्दो द्यां भुवं खं च दिशश्च समपूरयत् ।  
 ज्याधाततलनिर्घोषो धनुषां कूजितानि च ॥ २५  
 दुन्दुभीनां च निनदो दैत्यमन्तर्दधुः स्वनम् ।  
 तेऽन्योन्यमभिसम्पेतुः पातयन्तः परस्परम् ॥ २६  
 बभञ्ज्ञुर्बाहुभिर्बाहून् द्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः ।  
 देवास्तु चाशनिं घोरं परिधांश्चोत्तमायसान् ॥ २७  
 निस्त्रिंशान् ससृजुः संख्ये गदा गुर्वीश्च दानवाः ।  
 गदानिपातैर्भग्नाङ्गा बाणैश्च शकलीकृताः ॥ २८  
 परिपेतुर्भृशं केचित् पुनः केचित् तु जघ्निरे ।  
 ततो रथैः सतुरगैर्विमानैश्चाशुगामिभिः ॥ २९  
 समीयुस्ते सुसंरब्धा रोषादन्योन्यमाहवे ।  
 संवर्तमानाः समरे संदृष्टौष्ठपुटाननाः ॥ ३०  
 रथा रथैर्निरुद्धयन्ते पादाताश्च पदातिभिः ।  
 तेषां रथानां तुमुलः स शब्दः शब्दवाहिनाम् ॥ ३१  
 नभोनभश्च हि यथा नभस्यैर्जलदस्वनैः ।  
 बभञ्जुस्तु रथान् केचित् केचित् सम्पर्दिता रथैः ॥ ३२  
 सम्बाधमन्ये सम्प्राप्य न शेकुश्चलितुं रथाः ।  
 अन्योन्यमन्ये समरे दोर्भ्यामुत्क्षप्य दंशिताः ॥ ३३  
 संहादमानाभरणा जघ्नुस्तत्रापि चर्मिणः ।

धारण किये हुए शोभा पा रही थी । उस समय उन दोनों सेनाओंका ऐसा समागम हुआ जैसे प्रलयकालमें पृथ्वी और आकाशमण्डलका संयोग होता है । देवताओं और दानवोंसे व्यास तथा दर्प और विनयकी क्षमा और पराक्रमसे युक्त वह युद्ध अत्यन्त भयंकर हो गया । वहाँ दोनों सेनाओंमेंसे कुछ ऐसे भयंकर देवता और राक्षस निकल रहे थे, जो पूर्वी एवं पश्चिमी सागरोंसे निकलते हुए संक्षुब्ध बादलों-जैसे प्रतीत हो रहे थे । उन दोनों सेनाओंसे निकले हुए वे देवता और दानव इस प्रकार हर्षपूर्वक विचरण कर रहे थे, मानो खिले हुए पुष्पोंसे युक्त पर्वतीय वनोंसे गजराज निकल रहे हों ॥ १६—२३ ३ ॥

तदनन्तर नगाङ्गोंपर चोटें पड़ने लगीं और अनेकों शङ्ख बज उठे । वह शब्द अन्तरिक्ष, पृथ्वी, आकाश और दिशाओंमें व्यास हो गया । धनुषोंकी प्रत्यञ्चा चढ़ानेके शब्द तथा सैनिकोंके कोलाहल होने लगे । देवताओंकी दुन्दुभियोंका निनाद दैत्योंके वाद्यशब्दको पराभूत कर दिया । फिर तो वे एक-दूसरेपर टूट पड़े और परस्पर एक-दूसरेको मारकर गिराने लगे । कुछ द्वन्द्व-युद्ध करनेवाले वीर अपनी भुजाओंसे शत्रुकी भुजाओंको मरोड़ दिये । रणभूमिमें देवगण भयंकर अशनि और उत्तम लोहेके बने हुए परिधोंसे प्रहर कर रहे थे तो दानवगण भारी गदाओं और खड्गोंका प्रयोग कर रहे थे । गदाके आधातसे बहुतोंके अङ्ग चूर हो गये । कुछ लोग तो बाणोंकी चोटसे टुकड़े-टुकड़े हो गये । कुछ अत्यन्त घायल होकर धराशायी हो गये । कुछ पुनः उठकर प्रहर करने लगे । तदनन्तर वे क्रोधसे विक्षुब्ध हो रणभूमिमें घोड़े जुते रथों और शीघ्रगामी विमानोंद्वारा एक-दूसरेसे भिड़ गये । युद्ध करते समय वे क्रोधवश अपने हॉठोंको दाँतों-तले दबाये हुए थे । इस प्रकार रथ रथोंके साथ तथा पैदल पैदलोंके साथ उलझ गये । शब्द करनेवाले उन रथोंका ऐसा भयंकर शब्द होने लगा मानो भाद्रपदमासमें बादल गरज रहे हों । कुछ लोग रथोंको तोड़ रहे थे और कुछ लोग रथोंके धक्केसे राँदे जा चुके थे । दूसरे रथ मार्गके अवरुद्ध हो जानेके कारण आगे बढ़नेमें असमर्थ हो गये । कुछ कवचधारी वीर समरभूमिमें एक-दूसरेको दोनों हाथोंसे उठाकर भूतलपर पटक देते थे । उस समय उनके आभूषण खनखना रहे थे । वहाँ कुछ ढाल धारण करनेवाले दूसरे अस्त्रोंद्वारा भी विपक्षियोंपर प्रहर कर रहे थे ॥ २४—३३ ३ ॥



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

Made with  
By  
**Avinash/Shashi**

Icreator of  
hinduism  
server]



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

Made with  
By  
**Avinash/Shashi**

Icreator of  
hinduism  
server]

अस्त्रैरन्ये विनिर्भिन्ना वेमू रक्तं हता युधि ॥ ३४  
 क्षरज्जलानां सदृशा जलदानां समागमे ।  
 तैरस्त्रशस्त्रग्रथितं क्षिसोत्क्षिसगदाविलम् ॥ ३५  
 देवदानवसंक्षुब्धं संकुलं युद्धमाबभौ ।  
 तद्वानवमहामेघं देवायुधविराजितम् ॥ ३६  
 अन्योन्यबाणवर्षेण युद्धदुर्दिनमाबभौ ।  
 एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः कालनेमी स दानवः ॥ ३७  
 व्यवर्धत समुद्रौघैः पूर्यमाण इवाम्बुदः ।  
 तस्य विद्युच्चलापीडैः प्रदीपाशनिवर्षणः ॥ ३८  
 गात्रैर्नार्गगिरिप्रख्या विनिपेतुर्बलाहकाः ।  
 क्रोधान्निःश्वसतस्तस्य भ्रूभेदस्वेदवर्षणः ॥ ३९  
 साग्निस्फुलिङ्गप्रतता मुखान्निष्पेतुर्चिष्ठः ।  
 तिर्यगूर्ध्वं च गगने ववृथुस्तस्य बाहवः ॥ ४०  
 पर्वतादिव निष्कान्ताः पञ्चास्या इव पन्नगाः ।  
 सोऽन्नजालैर्बहुविधैर्धनुर्भिः परिधैरपि ॥ ४१  
 दिव्यमाकाशमावत्रे पर्वतैरुच्छ्रतैरिव ।  
 सोऽनिलोद्भूतवसनस्तस्थौ संग्रामलालसः ॥ ४२  
 संध्यातपग्रस्तशिलः साक्षान्मेरुरिवाचलः ।  
 ऊरुवेगप्रमथितैः शैलशृङ्गाग्रपादपैः ॥ ४३  
 अपातयद् देवगणान् वज्रेणेव महागिरीन् ।  
 बहुभिः शस्त्रनिस्त्रिंशैश्चन्नभिन्नशिरोरुहाः ॥ ४४  
 न शेकुश्चलितुं देवाः कालनेमिहता युधि ।  
 मुष्टिभिर्निहताः केचित् केचित् तु विदलीकृताः ॥ ४५  
 यक्षगन्धर्वपतयः पेतुः सह महोरगैः ।  
 तेन वित्रासिता देवाः समरे कालनेमिना ॥ ४६

इसी प्रकार अन्य वीर युद्धस्थलमें अस्त्रोद्भारा घायल होकर रक्त वमन करते हुए जलकी वृष्टि करनेवाले बादलोंकी तरह प्रतीत हो रहे थे । उस समय वह युद्ध अस्त्रों एवं शस्त्रोंसे परिपूर्ण, फेंकनेके लिये उठायी हुई गदाओंसे युक्त और देवताओं एवं दानवोंसे व्यास और संक्षुब्ध होकर शोभा पा रहा था । दानवरूपी महामेघसे युक्त और देवताओंके हथियारोंसे विभूषित वह युद्ध परस्परकी बाणवर्षासे मेघाच्छन्न दुर्दिन-सा लग रहा था । इसी बीच क्रोधसे भरा हुआ कालनेमि नामक दानव रणभूमिमें आगे बढ़ा । वह समुद्रकी लहरोंसे पूर्ण होते हुए बादलकी तरह शोभा पा रहा था । प्रज्वलित वज्रोंकी वर्षा करनेवाले उस दानवके बिजलीके समान चञ्चल मस्तकोंसे युक्त शरीरावयवोंसे टकराकर हाथी और पर्वत-सदृश विशाल बादल तितर-बितर होकर बिखर रहे थे । क्रोधवश निःश्वास लेते हुए उसकी टेढ़ी भौंहोंसे पसीनेकी बूँदें टपक रही थीं और मुखसे अग्निकी चिनगारियोंसे व्यास लपटें निकल रही थीं । उसकी भुजाएँ आकाशमें तिरछी होकर ऊपरकी ओर बढ़ रही थीं, जो पर्वतसे निकले हुए पाँच मुखवाले नागकी तरह लग रही थीं । उसने ऊँचे-ऊँचे पर्वतों-सरीखे अनेक प्रकारके अस्त्रसमूहों, धनुषों और परिधोंसे दिव्य आकाशको आच्छादित कर दिया । वायुद्भारा उड़ाये जाते हुए वस्त्रोंवाला वह दानव संग्रामकी लालसासे डटकर खड़ा हुआ । उस समय वह संध्याकालीन धूपसे ग्रस्त हुई शिलासे युक्त साक्षात् मेरुपर्वतकी तरह दीख रहा था । उसने अपनी जंघाओंके बेगसे उखाड़े गये पर्वतशिखरके अग्रवर्ती वृक्षोंके प्रहारसे देवगणोंको उसी प्रकार धराशायी कर दिया, जैसे वज्रके आधातसे विशाल पर्वत ढाह दिये गये थे ॥ ३४—४३ १२ ॥

इस प्रकार रणभूमिमें कालनेमिद्भारा आहत हुए देवगण चलने-फिरनेमें भी असमर्थ हो गये । बहुत-से शस्त्रों तथा खड़गोंकी चोटसे कुछ लोगोंके सिरके बालतक छिन्न-भिन्न हो गये थे । कुछ मुक्कोंकी मारसे मार डाले गये और कुछके टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये । यक्षों और गन्धर्वोंके नायक बड़े-बड़े नागोंके साथ पृथ्वीकी गोदमें पड़ गये । समरभूमिमें उस कालनेमिद्भारा भयभीत किये गये देवगण

न शेकुर्यलवन्तोऽपि यत्रं कर्तुं विचेतसः ।  
 तेन शक्रः सहस्राक्षः स्पन्दितः शरबन्धनैः ॥ ४७  
 ऐरावतगतः संख्ये चलितुं न शशाक ह ।  
 निर्जलाभ्योदसदृशो निर्जलार्णवसप्रभः ॥ ४८  
 निर्व्यापारः कृतस्तेन विपाशो वरुणो मृधे ।  
 रणे वैश्रवणस्तेन परिधैः कामरूपिणा ॥ ४९  
 विज्ञदोऽपि कृतः संख्ये निर्जितः कालनेमिना ।  
 यमः सर्वहरस्तेन मृत्युप्रहरणे रणे ॥ ५०  
 याम्यामवस्थां संत्यज्य भीतः स्वां दिशमाविशत् ।  
 स लोकपालानुत्सार्य कृत्वा तेषां च कर्म तत् ॥ ५१  
 दिक्षु सर्वासु देहं स्वं चतुर्धा विदधे तदा ।  
 स नक्षत्रपथं गत्वा दिव्यं स्वर्भानुदर्शनम् ॥ ५२  
 जहार लक्ष्मीं सोमस्य तं चास्य विषयं महत् ।  
 चालयामास दीपांशुं स्वर्गद्वारात् सभास्करम् ॥ ५३  
 सायनं चास्य विषयं जहार दिनकर्म च ।  
 सोऽग्निं देवमुखं दृष्ट्वा चकारात्ममुखाश्रयम् ॥ ५४  
 वायुं च तरसा जित्वा चकारात्मवशानुगम् ।  
 स समुद्रान् समानीय सर्वाश्च सरितो बलात् ॥ ५५  
 चकारात्ममुखे वीर्याद् देहभूताश्च सिन्धवः ।  
 अपः स्ववशागः कृत्वा दिविजा याश्च भूमिजाः ॥ ५६  
 स स्वयम्भूरिवाभाति महाभूतपतिर्यथा ।  
 सर्वलोकमयो दैत्यः सर्वभूतभयावहः ॥ ५७  
 स लोकपालैकवपुश्नन्नादित्यग्रहात्मवान् ।  
 स्थापयामास जगतीं सुगुप्तां धरणीधरैः ॥ ५८  
 पावकानिलसम्पातो राज युधि दानवः ।  
 पारमेष्ठ्ये स्थितः स्थाने लोकानां प्रभवोपमे ।  
 तं तुष्टुवुद्देत्यगणा देवा इव पितामहम् ॥ ५९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामययुद्धं नाम सप्तसप्तव्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें तारकामय-युद्ध नामक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७७ ॥

प्रयत्न करनेके लिये उद्यत होनेपर भी कोई उपाय न कर सके; क्योंकि उनका मन भ्रमित हो उठा था । उसने सहस्र नेत्रधारी इन्द्रको भी बाणोंके बन्धनसे इस प्रकार जकड़ दिया था कि वे युद्धस्थलमें ऐरावतपर बैठे हुए भी चलनेमें समर्थ न हो सके । उसने समर-भूमिमें वरुणको जलहीन बादल और निर्जल महासागरकी भाँति कान्तिहीन, व्यापारहित और पाशसे शून्य कर दिया । स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाले उस दानवने रणभूमिमें परिधोंकी मारसे वैश्रवण कुबेरको भी जीत लिया । मृत्यु-सदृश प्रहार होनेवाले उस युद्धमें कालनेमिने सबके प्राणहर्ता यमको पराजित कर दिया । वे डरकर युद्धका परित्याग कर अपनी दक्षिण दिशाकी ओर चले गये । इस प्रकार उसने चारों लोकपालोंको पराजित कर दिया और अपने शरीरको चार भागोंमें विभक्त कर वह सभी दिशाओंमें उनका कार्य स्वयं सँभालने लगा । फिर जहाँ ग्रहणके समय राहुका दर्शन होता है, उस दिव्य नक्षत्रमार्गमें जाकर चन्द्रमाकी लक्ष्मी तथा उनके विशाल साम्राज्यका अपहरण कर लिया ॥ ४४—५२ ॥

उसने प्रदीप किरणोंवाले सूर्यको स्वर्गद्वारसे खदेड़ दिया और उनके सायन नामक साम्राज्य और दिनकी सृष्टि करनेकी शक्तिको छीन लिया । उसने देवताओंके मुखस्वरूप अग्निको सम्मुख देखकर उन्हें अपने मुखमें निगल लिया तथा वायुको वेगपूर्वक जीतकर उन्हें अपना वशवर्ती बना लिया । उसने अपने पराक्रमसे बलपूर्वक समुद्रोंको वशमें करके सभी नदियोंको अपने मुखमें डाल लिया और सागरोंको शरीरका अङ्ग बना लिया । इस प्रकार स्वर्ग अथवा भूतलपर जितने जल थे, उन सबको उसने अपने अधीन कर लिया । उस समय समस्त प्राणियोंको भयभीत करनेवाला वह दैत्य सम्पूर्ण लोकोंसे युक्त होकर महाभूतपति ब्रह्माकी तरह सुशोभित हो रहा था । सम्पूर्ण लोकपालोंके एकमात्र मूर्तस्वरूप तथा चन्द्र, सूर्य आदि ग्रहोंसे युक्त उस दानवने पर्वतोंद्वारा सुरक्षित पृथ्वीको स्थापित किया । इस प्रकार अग्नि और वायुके समान वेगशाली दानवराज कालनेमि युद्धस्थलमें लोकोंकी उत्पत्तिके स्थानभूत ब्रह्माके पदपर स्थित होकर शोभा पा रहा था । उस समय दैत्यगण उसकी उसी प्रकार स्तुति कर रहे थे, जैसे देवगण ब्रह्माकी किया करते हैं ॥ ५३—५९ ॥

## एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय

कालनेमि और भगवान् विष्णुका रोषपूर्वक वार्तालाप और भीषण युद्ध, विष्णुके चक्रके द्वारा कालनेमिका वध और देवताओंको पुनः निज पदकी प्राप्ति

मत्स्य उवाच

पञ्च तं नाभ्यर्वर्तन्त विपरीतेन कर्मणा ।  
वेदो धर्मः क्षमा सत्यं श्रीश्च नारायणाश्रया ॥ १  
स तेषामनुपस्थानात् सक्रोधो दानवेश्वरः ।  
वैष्णवं पदमन्विच्छन् ययौ नारायणान्तिकम् ॥ २  
स ददर्श सुपर्णस्थं शङ्खचक्रगदाधरम् ।  
दानवानां विनाशाय भ्रामयन्तं गदां शुभाम् ॥ ३  
सजलाम्भोदसदृशं विद्युत्सदृशवाससम् ।  
स्वारूढं स्वर्णपक्षाद्यं शिखिनं काश्यपं खगम् ॥ ४  
दृष्ट्वा दैत्यविनाशाय रणे स्वस्थमवस्थितम् ।  
दानवो विष्णुमक्षोभ्यं बभाषे क्षुब्धमानसः ॥ ५  
अयं स रिपुरस्माकं पूर्वेषां प्राणनाशनः ।  
अर्णवावासिनश्चैव मधोर्वै कैटभस्य च ॥ ६  
अयं स विग्रहोऽस्माकमशाम्यः किल कथ्यते ।  
अनेन संयुगेष्वद्य दानवा बहवो हताः ॥ ७  
अयं स निर्घृणो लोके स्त्रीबालनिरपत्रपः ।  
येन दानवनारीणां सीमन्तोद्धरणं कृतम् ॥ ८  
अयं स विष्णुर्देवानां वैकुण्ठश्च दिवौकसाम् ।  
अनन्तो भोगिनामप्सु स्वपन्नाद्यः स्वयम्भुवः ॥ ९  
अयं स नाथो देवानामस्माकं व्यथितात्मनाम् ।  
अस्य क्रोधं समासाद्य हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ १०  
अस्य छायामुपाश्रित्य देवा मखमुखे श्रिताः ।  
आज्यं महर्षिभिर्दत्तमशनुवन्ति त्रिधा हुतम् ॥ ११  
  
अयं स निधने हेतुः सर्वेषाममरद्विषाम् ।  
यस्य चक्रे प्रविष्टानि कुलान्यस्माकमाहवे ॥ १२

मत्स्यभगवान् बोले—रविनन्दन ! कालनेमिद्वारा विपरीत कर्म किये जानेके कारण वेद, धर्म, क्षमा, सत्य और नारायणके आश्रयमें रहनेवाली लक्ष्मी— ये पाँचों उसके अधीन नहीं हुए। उनके उपस्थित न होनेसे क्रोधसे भरा हुआ दानवेश्वर कालनेमि वैष्णवपदकी प्राप्तिकी अभिलाषासे नारायणके निकट गया। वहाँ जाकर उसने शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान्को गरुडकी पीठपर बैठे तथा दैत्योंका विनाश करनेके लिये कल्याणमयी गदा धुमाते देखा। उनके शरीरकी कान्ति सजल मेघके समान थी। उनका पीताम्बर बिजलीके समान चमक रहा था। वे स्वर्णमय पंखसे युक्त शिखाधारी कश्यपनन्दन गरुडपर समासीन थे। इस प्रकार रणभूमिमें दैत्योंका विनाश करनेके लिये स्वस्थचित्तसे स्थित अक्षोभ्य भगवान् विष्णुको देखकर दानवराज कालनेमिका मन क्षुब्ध हो उठा, तब वह कहने लगा—‘यही हमलोगोंके पूर्वजोंका प्राणनाशक शत्रु है तथा यही महासागरमें निवास करनेवाले मधु और कैटभका भी प्राणहर्ता है। हमलोगोंका यह विग्रह शान्त होनेका नहीं, ऐसा निश्चितरूपसे कहा जाता है। बहुतेरे युद्धोंमें इसके द्वारा बहुत-से दानव मारे जा चुके हैं। यह बड़ा निष्ठुर है। इसे जगत्में स्त्री-बच्चोंपर भी हाथ उठाते समय लज्जा नहीं आती। इसने बहुत-सी दानव-पत्नियोंके सोहागका उन्मूलन कर दिया है। यही देवताओंमें विष्णु, स्वर्गवासियोंमें वैकुण्ठ, नागोंमें अनन्त और जलमें शयन करनेवाला आदि स्वयम्भू है। यही देवताओंका स्वामी और व्यथित हृदयवाले हमलोगोंका शत्रु है। इसीके क्रोधमें पड़कर हिरण्यकशिपु मारे गये हैं॥ १—१०॥

‘इसी प्रकार इसीका आश्रय ग्रहण कर यज्ञके प्रारम्भमें स्थित देवगण महर्षियोंद्वारा तीन प्रकारकी आहुति-रूपमें दिये गये आज्यका उपभोग करते हैं। यही सभी देवद्रोही असुरोंकी मृत्युका कारण है। युद्धभूमिमें हमारे सभी कुल इसीके चक्रमें प्रविष्ट हो गये हैं।

अयं स किल युद्धेषु सुरार्थे त्यक्तजीवितः ।  
सवितुस्तेजसा तुल्यं चक्रं क्षिपति शत्रुषु ॥ १३  
अयं स कालो दैत्यानां कालभूतः समास्थितः ।  
अतिक्रान्तस्य कालस्य फलं प्राप्यति केशवः ॥ १४  
दिष्ठेदानीं समक्षं मे विष्णुरेष समागतः ।  
अद्य मद्वाहुनिष्ठिष्ठो मामेव प्रणयिष्यति ॥ १५  
यास्याम्यपचितिं दिष्ठ्या पूर्वेषामद्य संयुगे ।  
इमं नारायणं हत्वा दानवानां भयावहम् ॥ १६  
क्षिप्रमेव हनिष्यामि रणेऽमरगणांस्ततः ।  
जात्यन्तरगतो होष बाधते दानवान् मृथे ॥ १७  
एषोऽनन्तः पुरा भूत्वा पद्मनाभ इति श्रुतः ।  
जघानैकार्णवे घोरे तावुभौ मधुकैटभौ ॥ १८  
द्विधाभूतं वपुः कृत्वा सिंहस्यार्थं नरस्य च ।  
पितरं मे जघानैको हिरण्यकशिपुं पुरा ॥ १९  
शुभं गर्भमधत्तैनमदितिर्देवतारणिः ।  
त्रील्लोकानुजहारैकः क्रममाणस्त्रिभिः क्रमैः ॥ २०  
भूयस्त्वदानीं संग्रामे सम्प्रासे तारकामये ।  
मया सह समागम्य सदेवो विनशिष्यति ॥ २१  
एवमुक्त्वा बहुविधं क्षिपन्नारायणं रणे ।  
वाग्भरप्रतिरूपाभिर्युद्धमेवाभ्यरोचयत् ॥ २२  
क्षिप्यमाणोऽसुरेन्द्रेण न चुकोप गदाधरः ।  
क्षमाबलेन महता सस्मितं चेदमब्रवीत् ॥ २३  
अल्पं दर्पबलं दैत्य स्थिरमक्रोधजं बलम् ।  
हतस्त्वं दर्पजैर्दोषैर्हित्वा यद् भाषसे क्षमाम् ॥ २४  
अधीरस्त्वं मम मतो धिगेतत् तव वाग्बलम् ।  
न यत्र पुरुषाः सन्ति तत्र गर्जन्ति योषितः ॥ २५  
अहं त्वां दैत्य पश्यामि पूर्वेषां मार्गगामिनम् ।  
प्रजापतिकृतं सेतुं भित्त्वा कः स्वस्तिमान् व्रजेत् ॥ २६

यह युद्धोंमें देवताओंके हितके लिये प्राणोंकी बाजी लगा देता है और शत्रुओंपर सूर्यके समान तेजस्वी चक्रका प्रयोग करता है। यह दैत्योंके कालरूपसे यहाँ स्थित है, किंतु अब यह केशव अपने बीते हुए कालका फल भोगेगा। सौभाग्यवश यह विष्णु इस समय मेरे ही समक्ष आ गया है। यह आज मेरी भुजाओंसे पिसकर मुझसे ही प्रेम करेगा। सौभाग्यकी बात है कि आज मैं रणभूमिमें दानवोंको भयभीत करनेवाले इस नारायणका वध कर पूर्वजोंके प्रायश्चित्तको पूर्ण कर दूँगा। तत्पश्चात् रणमें शीघ्र ही देवताओंका संहार कर डालूँगा। यह अन्य जातियोंमें भी उत्पन्न होकर समरमें दानवोंको कष्ट पहुँचाता है। यही पूर्वकालमें अनन्त होकर पुनः पद्मनाभ नामसे विख्यात हुआ। इसने ही भयंकर एकार्णवके जलमें मधु-कैटभ नामक दोनों दैत्योंका वध किया था। इसने अपने शरीरको आधा सिंह और आधा मनुष्य—इस प्रकार दो भागोंमें विभक्त करके पूर्वकालमें मेरे पिता हिरण्यकशिपुको मौतके घाट उतारा था। देवताओंकी जननी अदितिने इसीको अपने मङ्गलमय गर्भमें धारण किया था। अकेले इसीने तीन पगोंसे नापते हुए त्रिलोकीका उद्धार किया था। इस समय यह पुनः तारकामय संग्रामके प्राप्त होनेपर उपस्थित हुआ है। यह मेरे साथ उलझकर सभी देवताओंसहित नष्ट हो जायगा।’ ऐसा कहकर उसने रणके मैदानमें प्रतिकूल वचनोद्वारा अनेकों प्रकारसे नारायणपर आक्षेप करते हुए युद्धके लिये ही अभिलाषा व्यक्त की ॥ ११—२२ ॥

भगवान् गदाधरमें क्षमाका महान् बल है, जिसके कारण असुरेन्द्रद्वारा इस प्रकार आक्षेप किये जानेपर भी वे कुपित नहीं हुए, अपितु मुसकराते हुए इस प्रकार बोले—‘दैत्य! दर्पका बल अल्पकालस्थायी होता है, किंतु क्षमाजनित बल स्थिर होता है। तुम क्षमाका परित्याग करके जो इस प्रकारकी ऊटपटाँग बातें बक रहे हो, इससे प्रतीत होता है कि तुम अपने दर्पजन्य दोषोंसे नष्ट हो चुके हो। मेरी समझसे तो तुम बड़े अधीर दीख रहे हो। तुम्हारे इस वाग्बलको धिक्कार है; क्योंकि ऐसी गर्जना तो जहाँ पुरुष नहीं होते, वहाँ स्त्रियाँ भी करती हैं। दैत्य! मैं तुम्हें भी पूर्वजोंके मार्गका अनुगामी ही देख रहा हूँ। भला, ब्रह्मद्वारा स्थापित की गयी मर्यादाओंको तोड़कर

अद्य त्वां नाशयिष्यामि देवव्यापारधातकम्।  
स्वेषु स्वेषु च स्थानेषु स्थापयिष्यामि देवताः ॥ २७

एवं ब्रुवति वाक्यं तु मृधे श्रीवत्सधारिणि।  
जहास दानवः क्रोधाद्धस्तांश्क्रेसहायुधान् ॥ २८  
स बाहुशतमुद्यम्य सर्वास्त्रिग्रहणं रणे।  
क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षो विष्णुं वक्षस्यताडयत् ॥ २९  
दानवाश्चापि समरे मयतारपुरोगमाः।  
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा विष्णुमभ्यद्रवन् रणे ॥ ३०  
स ताङ्गमानोऽतिबलैर्दैत्यैः सर्वोद्यतायुधैः।  
न चचाल ततो युद्धेऽकम्पमान इवाचलः ॥ ३१  
संसक्तश्च सुपर्णेन कालनेमी महासुरः।  
सवप्राणेन महतीं गदामुद्यम्य बाहुभिः ॥ ३२  
घोरां ज्वलन्तीं मुमुचे संरब्धो गरुडोपरि।  
कर्मणा तेन दैत्यस्य विष्णुर्विस्मयमाविशत् ॥ ३३  
यदा तेन सुपर्णस्य पातिता मूर्धिन सा गदा।  
सुपर्णं व्यथितं दृष्ट्वा कृत्तं च वपुरात्मनः ॥ ३४  
क्रोधसंरक्तनयनो वैकुण्ठश्वकमाददे।  
व्यवर्धत स वेगेन सुपर्णेन समं विभुः ॥ ३५  
भुजाश्रास्य व्यवर्धन्त व्याप्तुवन्तो दिशो दश।  
प्रदिशश्वैव खं गां वै पूर्यामास केशवः ॥ ३६  
ववृथे च पुनर्लोकान् क्रान्तुकाम इवौजसा।  
तर्जनायासुरेन्द्राणां वर्धमानं नभस्तले ॥ ३७  
ऋषयश्वैव गन्धर्वास्तुष्टुवुर्धुसूदनम्।  
सर्वान् किरीटेन लिहन् साभ्रमम्बरमम्बरैः ॥ ३८  
पदभ्यामाक्रम्य वसुधां दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः।  
स सूर्यकरतुल्याभं सहस्रामरक्षयम् ॥ ३९

कौन कुशलपूर्वक जीवित रह सकता है। अतः देवताओंके कार्योंमें बाधा पहुँचानेवाले तुम्हें मैं आज ही नष्ट कर डालूँगा और देवताओंको पुनः अपने-अपने स्थानोंपर स्थापित कर दूँगा।' ॥ २३—२७ ॥

रणभूमिमें श्रीवत्सधारी भगवान्‌के इस प्रकार कहनेपर दानवराज कालनेमि ठहाका मारकर हँस पड़ा और फिर उसने क्रोधवश हाथोंमें हथियार धारण कर लिया। क्रोधके कारण उसके नेत्र दुगुने लाल हो गये थे। उसने रणभूमिमें सभी प्रकारके अस्त्रोंको धारण करनेवाली अपनी सैंकड़ों भुजाओंको उठाकर भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलपर प्रहार किया। इसी प्रकार मय, तारक आदि अन्यान्य दानव भी खड़ आदि आयुध लेकर युद्धस्थलमें भगवान् विष्णुपर टूट पड़े। यद्यपि सभी प्रकारके अस्त्रोंसे युक्त अत्यन्त बली दैत्य उनपर प्रहार कर रहे थे, तथापि वे विचलित नहीं हुए, अपितु युद्धभूमिमें पर्वतकी तरह अटल बने रहे। तब महान् असुर कालनेमि गरुडके साथ उलझ गया। उसने अपनी विशाल गदाको हाथोंमें धारण कर ली और क्रोधमें भरकर पूरी शक्तिके साथ उस चमकती हुई भयंकर गदाको गरुडके ऊपर छोड़ दिया। इस प्रकार उसके द्वारा फेंकी गयी वह गदा जब गरुडके मस्तकपर जा गिरी, तब दैत्यके उस कर्मसे भगवान् विष्णु आश्वर्यचकित हो उठे। फिर गरुडको पीड़ित तथा अपने शरीरको क्षत-विक्षत देखकर उनके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। तब उन्होंने चक्र हाथमें उठाया। फिर तो वे सर्वव्यापी विष्णु गरुडके साथ वेगपूर्वक आगे बढ़े। उनकी भुजाएँ दसों दिशाओंमें व्यास होकर बढ़ने लगीं। इस प्रकार भगवान् केशवने प्रदिशाओं, आकाशमण्डल और भूतलको आच्छादित कर लिया ॥ २८—३६ ॥

पुनः वे अपने तेजसे लोकोंका अतिक्रमण करते हुए-से बढ़ने लगे। जिस समय वे आकाशमण्डलमें असुरेन्द्रोंको भयभीत करनेके लिये बढ़ रहे थे, उस समय ऋषिगण और गन्धर्व भगवान् मधुसूदनकी सुति कर रहे थे। वे अपने किरीटसे ऊपरी सभी लोकोंको तथा वस्त्रोंसे मेघसहित आकाशको छूते हुए पैरोंसे पृथ्वीको आक्रान्त करके और भुजाओंसे दिशाओंको आच्छादित करके स्थित थे। उनके चक्रकी कान्ति सूर्यकी किरणोंकी-सी उद्दीप थी। उसमें हजारों अरे लगे थे। वह शत्रुओंका

दीपाग्निसदृशं घोरं दर्शनेन सुदर्शनम्।  
सुवर्णरेणुपर्यन्तं वज्रनाभं भयावहम्॥ ४०

मेदोऽस्थिमज्जारुधैरः सिंकं दानवसम्भवैः।  
अद्वितीयप्रहरणं क्षुरपर्यन्तमण्डलम्॥ ४१

स्वगदाममालाविततं कामगं कामरूपिणम्।  
स्वयं स्वयस्थुवा सृष्टं भयदं सर्वविद्विषाम्॥ ४२

महर्षिरोषैराविष्टं नित्यमाहवदर्पितम्।  
क्षेपणाद् यस्य मुहूर्न्ति लोकाः स्थाणुजङ्गमाः॥ ४३

क्रव्यादानि च भूतानि तृप्तिं यान्ति महामृथे।  
तदप्रतिमकर्मोग्रं समानं सूर्यवर्चसा॥ ४४

चक्रमुद्यम्य समरे क्रोधदीपो गदाधरः।  
स मुष्णन् दानवं तेजः समरे स्वेन तेजसा॥ ४५

चिछेद बाहूंश्क्रेण श्रीधरः कालनेमिनः।  
तस्य वक्त्रशतं घोरं साग्निपूर्णाद्वृहासि वै॥ ४६

तस्य दैत्यस्य चक्रेण प्रममाथ बलाद्वरिः।  
स छिन्नबाहुर्विशिरा न प्राकप्यत दानवः॥ ४७

कबन्धोऽवस्थितः संख्ये विशाख इव पादपः।  
संवितत्य महापक्षौ वायोः कृत्वा समं जवम्॥ ४८

उरसा पातयामास गरुडः कालनेमिनम्।  
स तस्य देहो विमुखो विबाहुश्च परिभ्रमन्॥ ४९

निपपात दिवं त्यक्त्वा क्षोभयन् धरणीतलम्।  
तस्मिन् निपतिते दैत्ये देवाः सर्षिगणास्तदा॥ ५०

साधुसाध्विति वैकुण्ठं समेताः प्रत्यपूजयन्।  
अपरे ये तु दैत्याश्च युद्धे दृष्टपराक्रमाः॥ ५१

ते सर्वे बाहुभिर्व्यासा न शेकुश्लितुं रणे।  
कांश्चित् केशेषु जग्राह कांश्चित् कण्ठेषु पीडयन्॥ ५२

विनाशक था। वह प्रज्वलित अग्निकी तरह भयंकर होनेपर भी देखनेमें परम सुन्दर था। सुवर्णकी रेणुकासे धूसरित, वज्रकी नाभिसे युक्त और अत्यन्त भयानक था। वह दानवोंके शरीरसे निकले हुए मेदा, अस्थि, मज्जा और रुधिरसे चुपड़ा हुआ था। वह अपने ढंगका अकेला ही अख्त था। उसके चारों ओर क्षुरे लगे हुए थे। वह माला और हारसे विभूषित था। वह अभीप्सित स्थानपर जानेवाला तथा स्वेच्छानुकूल रूप धारण करनेवाला था। स्वयं ब्रह्माने उसकी रचना की थी। वह सम्पूर्ण शत्रुओंके लिये भयदायक था तथा महर्षिके क्रोधसे परिपूर्ण और नित्य युद्धमें गर्वाला बना रहता था। उसका प्रयोग करनेसे स्थावर-जङ्गमसहित सभी प्राणी मोहित हो जाते हैं तथा महासमरमें मांसभोजी जीव तृप्तिको प्राप्त होते हैं। वह अनुपम कर्म करनेवाला, भयंकर और सूर्यके समान तेजस्वी था ॥ ३७—४४ ॥

क्रोधसे उद्दीप हुए भगवान् गदाधरने समरभूमिमें उस चक्रको उठाकर अपने तेजसे दानवके तेजको नष्ट कर दिया और फिर उन श्रीधरने चक्रद्वारा कालनेमिकी भुजाओंको काट डाला। तत्पश्चात् श्रीहरिने उस दैत्यके सौ मुखोंको, जो भयंकर, अग्निके समान तेजस्वी और अद्वृहास कर रहे थे, बलपूर्वक चक्रके प्रहारसे काट डाला। इस प्रकार भुजाओं और सिरोंके कट जानेपर भी वह दानव विचलित नहीं हुआ, अपितु युद्धभूमिमें शाखाओंसे हीन वृक्षकी तरह कबन्धरूपसे स्थित रहा। तब गरुडने अपने विशाल पंखोंको फैलाकर और वायुके समान वेग भरकर अपनी छातीके धक्केसे कालनेमिके कबन्धको धराशायी कर दिया। मुखों और भुजाओंसे हीन उसका वह शरीर चक्कर काटता हुआ स्वर्गलोकको छोड़कर भूतलको क्षुब्ध करता हुआ नीचे गिर पड़ा। उस दैत्यके गिर जानेपर ऋषियोंसहित देवगणोंने उस समय संगठित होकर भगवान् विष्णुको साधुवाद देते हुए उनकी पूजा की। दूसरे दैत्यगण, जो युद्धमें भगवान्के पराक्रमको देख चुके थे, वे सभी भगवान्की भुजाओंके वशीभूत हो रणभूमिमें चलने-फिरनेमें भी असमर्थ थे। भगवान्ने किन्हींको केश पकड़कर पटक दिया तो किन्हींको गला घोंटकर मार डाला।

चकर्ष कस्यचिद् वक्रं मध्ये गृह्णादथापरम्।  
 ते गदाचक्रनिर्दग्धा गतसत्त्वा गतासवः ॥ ५३  
 गगनाद् भ्रष्टसर्वाङ्गा निषेतुर्धरणीतले ।  
 तेषु दैत्येषु सर्वेषु हतेषु पुरुषोत्तमः ॥ ५४  
 तस्थौ शक्तिप्रियं कृत्वा कृतकर्मा गदाधरः ।  
 तस्मिन् विमर्दे संग्रामे निवृत्ते तारकामये ॥ ५५  
 तं देशमाजगामाशु ब्रह्मा लोकपितामहः ।  
 सर्वैर्ब्रह्मिष्ठिः सार्थं गन्धर्वाप्सरसां गणैः ॥ ५६  
 देवदेवो हरिं देवं पूजयन् वाक्यमब्रवीत् ।  
 कृतं देव महत् कर्म सुराणां शल्यमुद्घृतम् ।  
 वधेनानेन दैत्यानां वयं च परितोषिताः ॥ ५७  
 योऽयं त्वया हतो विष्णो कालनेमी महासुरः ।  
 त्वमेकोऽस्य मृथे हन्ता नान्यः कश्चन विद्यते ॥ ५८  
 एष देवान् परिभवल्लोकांश्च ससुरासुरान् ।  
 ऋषीणां कदनं कृत्वा मामपि प्रति गर्जति ॥ ५९  
 तदनेन तवाउथेण परितुष्टोऽस्मि कर्मणा ।  
 यदयं कालकल्पस्तु कालनेमी निपातितः ॥ ६०  
 तदागच्छस्व भद्रं ते गच्छामः दिवमुत्तमम् ।  
 ब्रह्मर्षयस्त्वां तत्रस्थाः प्रतीक्षन्ते सदोगताः ॥ ६१  
 कं चाहं तव दास्यामि वरं वरवतां वर ।  
 सुरेष्वथ च दैत्येषु वराणां वरदो भवान् ॥ ६२  
 निर्यातयैतत् त्रैलोक्यं स्फीतं निहतकण्टकम् ।  
 अस्मिन्नेव मृथे विष्णो शक्राय सुमहात्मने ॥ ६३  
 एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिरव्ययः ।  
 देवाञ्छक्रमुखान् सर्वानुवाच शुभया गिरा ॥ ६४

### विष्णुरुच

शृणवन्तु त्रिदशाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः ।  
 श्रवणावहितैः श्रोत्रैः पुरस्कृत्य पुरुंदरम् ॥ ६५  
 अस्माभिः समरे सर्वे कालनेमिमुखा हताः ।  
 दानवा विक्रमोपेताः शक्रादपि महत्तराः ॥ ६६  
 अस्मिन् महति संग्रामे दैतेयौ द्वौ विनिःसृतौ ।  
 विरोचनश्च दैत्येन्द्रः स्वर्भानुश्च महाग्रहः ॥ ६७

किसीका मुख फाड़ दिया तो दूसरेकी कमर तोड़ दी ।  
 इस प्रकार वे सभी गदाकी चोट और चक्रसे जल चुके थे, उनके पराक्रम नष्ट हो गये थे और शरीरके सभी अङ्ग चूर-चूर हो गये थे । वे प्राणरहित होकर आकाशसे भूतलपर गिर पड़े । इस प्रकार उन सभी दैत्योंके मारे जानेपर पुरुषोत्तम भगवान् गदाधर इन्द्रका प्रिय कार्य करके कृतार्थ हो शान्तिपूर्वक स्थित हुए ॥ ४५—५४ १ ॥

तदनन्तर उस भयानक तारकामय संग्रामके निवृत्त होनेपर लोकपितामह ब्रह्मा तुरंत ही उस स्थानपर आये । उस समय उनके साथ सभी ब्रह्मिष्ठि थे तथा गन्धर्वों एवं अप्सराओंका समुदाय भी था । तब देवाधिदेव ब्रह्माने भगवान् श्रीहरिका आदर करते हुए इस प्रकार कहा—‘देव ! आपने बहुत बड़ा काम किया है । आपने तो देवताओंका काँटा ही उखाड़ दिया । दैत्योंके इस संहारसे हमलोग परम संतुष्ट हैं । विष्णो ! आपने जो इस महान् असुर कालनेमिका वध किया है, यह आपके ही योग्य है; क्योंकि एकमात्र आप ही रणभूमिमें इसके वधकर्ता हैं, दूसरा कोई नहीं है । यह दानव देवताओं और असुरोंसहित समस्त लोकों और देवताओंको तिरस्कृत करते हुए ऋषियोंका संहार कर मैरे पास भी आकर गर्जता था । इसलिये जो यह कालके समान भयंकर कालनेमि मारा गया, आपके इस श्रेष्ठ कर्मसे मैं भलीभौति संतुष्ट हूँ । अतः आपका कल्याण हो, आइये, अब हमलोग उत्तम स्वर्गलोकमें चलें । वहाँ सभामें बैठे हुए ब्रह्मिष्ठिगण आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं । वरदानियोंमें श्रेष्ठ भगवन् ! आप तो स्वयं ही देवताओं और दैत्योंके लिये श्रेष्ठ वरदायक हैं । ऐसी दशामें मैं आपको कौन-सा वर प्रदान करूँ ? विष्णो ! त्रिलोकीका यह समृद्धिशाली राज्य अब कण्टकरहित हो गया है, इसे आप इसी युद्धस्थलमें महात्मा इन्द्रको समर्पित कर दीजिये ।’ भगवान् ब्रह्माद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर अविनाशी श्रीहरि इन्द्र आदि सभी देवताओंसे मधुर वाणीमें बोले ॥ ५५—६४ ॥

भगवान् विष्णुने कहा—यहाँ आये हुए जितने देवता हैं, वे सभी इन्द्रको आगे करके सावधानीपूर्वक कान लगाकर मेरी बात सुनें । इस समरमें हमलोगोंने कालनेमि आदि सभी महान् पराक्रमी दानवोंको, जो इन्द्रसे भी बढ़कर बलशाली थे, मार डाला है; किंतु इस महान् संग्राममें दैत्येन्द्र विरोचन और महान् ग्रह राह—ये दोनों दैत्य भाग निकले हैं।

स्वां दिशं भजतां शक्रो दिशं वरुण एव च ।  
याम्यां यमः पालयतामुत्तरां च धनाधिषः ॥ ६८  
ऋक्षैः सह यथायोगं गच्छतां चैव चन्द्रमाः ।  
अब्दमृतमुखे सूर्यो भजतामयनैः सह ॥ ६९  
आज्यभागाः प्रवर्तन्तां सदस्यैरभिपूजिताः ।  
हूयन्तामग्नयो विप्रैर्वेददृष्टेन कर्मणा ॥ ७०  
देवाश्चाप्यग्निहोमेन स्वाध्यायेन महर्षयः ।  
श्राद्धेन पितरश्चैव तृप्तिं यान्तु यथासुखम् ॥ ७१  
वायुश्वरतु मार्गस्थलिधा दीप्यतु पावकः ।  
त्रींस्तु वर्णश्च लोकांस्त्रींस्तर्पयंश्वात्मजैर्गुणैः ॥ ७२  
क्रतवः सम्प्रवर्तन्तां दीक्षणीयैद्विजातिभिः ।  
दक्षिणाश्चोपपाद्यन्तां याज्ञिकेभ्यः पृथक् पृथक् ॥ ७३  
गां तु सूर्यो रसान् सोमो वायुः प्राणांश्च प्राणिषु ।  
तर्पयन्तः प्रवर्तन्तां सर्व एव स्वकर्मभिः ॥ ७४  
यथावदानुपूर्व्येण महेन्द्रमलयोद्भवाः ।  
त्रैलोक्यमातरः सर्वाः समुद्रं यान्तु सिन्धवः ॥ ७५  
दैत्येभ्यस्त्यन्यतां भीश्च शान्तिं व्रजत देवताः ।  
स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ७६  
स्वगृहे स्वर्गलोके वा संग्रामे वा विशेषतः ।  
विश्राम्भो वो न मन्तव्यो नित्यं क्षुद्रा हि दानवाः ॥ ७७  
छिद्रेषु प्रहरन्त्येते न तेषां संस्थितिर्धुवा ।  
सौम्यानामृजुभावानां भवतामार्जवं धनम् ॥ ७८  
एवमुक्त्वा सुरगणान् विष्णुः सत्यपराक्रमः ।  
जगाम ब्रह्मणा सार्थं स्वलोकं तु महायशाः ॥ ७९  
एतदाश्र्यमभवत् संग्रामे तारकामये ।  
दानवानां च विष्णोश्च यन्मां त्वं परिपृष्ठवान् ॥ ८०

अब इन्द्र अपनी पूर्व दिशाकी रक्षा करें तथा वरुण पश्चिम दिशाकी, यम दक्षिण दिशाका और कुबेर उत्तर दिशाका पालन करें। चन्द्रमा नक्षत्रोंके साथ पूर्ववत् अपने स्थानको चले जायें। सूर्य अयनोंके साथ ऋतुकालानुसार वर्षका उपभोग करें। यज्ञोंमें सदस्योद्वारा अभिपूजित हो देवगण आज्यभाग ग्रहण करें। ब्राह्मणलोग वेदविहित कर्मानुसार अग्निमें आहुतियाँ डालें। देवगण अग्निहोत्रसे, महर्षिगण स्वाध्यायसे और पितृगण श्राद्धसे सुखपूर्वक तृसिलाभ करें। वायु अपने मार्गसे प्रवाहित हों। अग्नि अपने गुणोंसे तीनों वर्णों और तीनों लोकोंको तृप्त करते हुए तीन भागोंमें विभक्त होकर प्रकाशित हों॥ ६५—७२ ॥

दीक्षित ब्राह्मणोद्वारा यज्ञानुष्ठान प्रारम्भ हों। याज्ञिक ब्राह्मणोंको पृथक्-पृथक् दक्षिणाएँ दी जायें। सूर्य पृथ्वीको, चन्द्रमा रसोंको और वायु प्राणियोंमें स्थित प्राणोंको तृप्त करते हुए सभी अपने-अपने कर्ममें प्रवृत्त हों। महेन्द्र और मलय पर्वतसे निकलनेवाली त्रिलोकीकी मातास्वरूप सभी नदियाँ आनुपूर्वी पूर्ववत् समुद्रमें प्रविष्ट हों। देवगण! आपलोग दैत्योंसे प्राप्त होनेवाले भयको छोड़ दें और शान्ति धारण करें। आपलोगोंका कल्याण हो। अब मैं सनातन ब्रह्मलोकको जा रहा हूँ। आपलोगोंको अपने घरमें अथवा स्वर्गलोकमें अथवा विशेषकर संग्राममें दैत्योंका विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि दानव सदा क्षुद्र प्रकृतिवाले होते हैं। वे छिद्र पाकर तुरंत प्रहर कर बैठते हैं। उनकी स्थिति कभी निश्चित नहीं रहती। इधर सौम्य एवं कोमल स्वभाववाले आपलोगोंका आर्जव ही धन है। महायशस्वी एवं सत्यपराक्रमी भगवान् विष्णु देवगणोंसे ऐसा कहकर ब्रह्मके साथ अपने लोकको चले गये। राजन्! दानवों और भगवान् विष्णुके मध्य घटित हुए तारकामय संग्राममें यही आश्र्य हुआ था, जिसके विषयमें तुमने मुझसे प्रश्न किया था॥ ७३—८० ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावसंग्रहो नामाष्टसपत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें पद्मोद्भवप्रादुर्भावसंग्रह नामक एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७८ ॥

## एक सौ उनासीवाँ अध्याय

शिवजीके साथ अन्धकासुरका युद्ध, शिवजीद्वारा मातृकाओंकी सृष्टि, शिवजीके हाथों अन्धककी मृत्यु और उसे गणेशत्वकी प्राप्ति, मातृकाओंकी विध्वंसलीला तथा विष्णुनिर्मित देवियोंद्वारा उनका अवरोध

ऋषय ऊचुः

श्रुतः पद्मोद्भवस्तात् विस्तरेण त्वयेरितः ।  
समासाद् भवमाहात्म्यं भैरवस्याभिधीयताम् ॥ १

सूत उवाच

तस्यापि देवदेवस्य शृणुध्वं कर्म चोत्तमम् ।  
आसीद् दैत्योऽन्धको नाम भिन्नाङ्गनचयोपमः ॥ २  
तपसा महता युक्तो ह्यवध्यस्त्रिदिवौकसाम् ।  
स कदाचिन्महादेवं पार्वत्या सहितं प्रभुम् ॥ ३  
क्रीडमानं तदा दृष्ट्वा हर्तुं देवीं प्रचक्रमे ।  
तस्य युद्धं तदा घोरमभवत् सह शम्भुना ॥ ४  
आवन्ये विषये घोरे महाकालवनं प्रति ।  
तस्मिन् युद्धे तदा रुद्रश्चान्धकेनातिपीडितः ॥ ५  
सुषुवे बाणमत्युग्रं नाम्ना पाशुपतं हि तत् ।  
रुद्रबाणविनिर्भेदाद् रुधिरादन्धकस्य तु ॥ ६  
अन्धकाश्च समुत्पन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः ।  
तेषां विदार्यमाणानां रुधिरादपरे पुनः ॥ ७  
बभूवुरन्धका घोरा वैव्यासमखिलं जगत् ।  
एवं मायाविनं दृष्ट्वा तं च देवस्तदान्धकम् ॥ ८  
यानार्थमन्धकास्त्रस्य सोऽसृजन्मातरस्तदा ।  
माहेश्वरी तथा ब्राह्मी कौमारी मालिनी तथा ॥ ९  
  
सौपर्णी हृथ वायव्या शाक्री वै नैर्ऋता तथा ।  
सौरी सौम्या शिवा दूती चामुण्डा चाथ वारुणी ॥ १०  
  
वाराही नारसिंही च वैष्णवी च चलच्छिखा ।  
शतानन्दा भगानन्दा पिञ्छिला भगमालिनी ॥ ११

ऋषियोंने पूछा—तात ! आपके द्वारा विस्तारपूर्वक कहे गये पद्मोद्भवके प्रसङ्गको हमलोग सुन चुके, अब आप भैरवस्वरूप शंकरजीके माहात्म्यका संक्षेपसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अच्छा, आपलोग देवाधिदेव शंकरजीके भी उत्तम कर्मको सुनिये । पूर्वकालमें अञ्जनसमूहके सदृश वर्णवाला अन्धक नामका एक दैत्य हुआ था । वह महान् तपोबलसे सम्पन्न था, इसी कारण देवताओंद्वारा अवध्य था । किसी समय उसकी दृष्टि पार्वतीके साथ क्रीडा करते हुए भगवान् शंकरपर पड़ी, तब वह पार्वती देवीका अपहरण करनेके लिये प्रयास करने लगा । उस समय अवन्ती-प्रदेशमें स्थित भयंकर महाकालवनमें उसका शंकरजीके साथ भीषण संग्राम हुआ । उस युद्धमें जब भगवान् रुद्र अन्धकद्वारा अत्यन्त पीडित कर दिये गये, तब उन्होंने अतिशय भयंकर पाशुपत नामक बाणको प्रकट किया । शंकरजीके उस बाणके आघातसे निकलते हुए अन्धकके रक्तसे दूसरे सैकड़ों-हजारों अन्धक उत्पन्न हो गये । पुनः उनके घायल शरीरोंसे बहते हुए रुधिरसे दूसरे भयंकर अन्धक प्रकट हुए, जिनके द्वारा सारा जगत् व्याप्त हो गया । तब उस अन्धकको इस प्रकारका मायावी जानकर भगवान् शंकरने उसके रक्तको पान करनेके लिये मातृकाओंकी सृष्टि की ॥ २—८ ॥

उन (मातृकाओं)-के नाम हैं—माहेश्वरी, ब्राह्मी, कौमारी, मालिनी, सौपर्णी, वायव्या, शाक्री, नैर्ऋती, सौरी, सौम्या, शिवा, दूती, चामुण्डा, वारुणी, वाराही, नारसिंही, वैष्णवी, चलच्छिखा, शतानन्दा, भगानन्दा, पिञ्छिला, भगमालिनी,

बला चातिबला रक्ता सुरभी मुखमण्डका ।  
 मातृनन्दा सुनन्दा च बिडाली शकुनी तथा ॥ १२  
 रेवती च महारक्ता तथैव पिलपिच्छिका ।  
 जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता ॥ १३  
 काली चैव महाकाली दूती चैव तथैव च ।  
 सुभगा दुर्भगा चैव कराली नन्दिनी तथा ॥ १४  
 अदितिश्च दितिश्चैव मारी वै मृत्युरेव च ।  
 कर्णमोटी तथा ग्राम्या उलूकी च घटोदरी ॥ १५  
 कपाली वज्रहस्ता च पिशाची राक्षसी तथा ।  
 भुशुण्डी शाङ्करी चण्डा लाङ्गली कुटभी तथा ॥ १६  
 खेटा सुलोचना धूम्रा एकवीरा करालिनी ।  
 विशालदंष्ट्रिणी श्यामा त्रिजटी कुक्कुटी तथा ॥ १७  
 वैनायकी च वैताली उन्मत्तोदुम्बरी तथा ।  
 सिद्धिश्च लेलिहाना च केकरी गर्दभी तथा ॥ १८  
 भुकुटी बहुपुत्री च प्रेतयाना विडम्बिनी ।  
 क्रौञ्चा शैलमुखी चैव विनता सुरसा दनुः ॥ १९  
 उषा रम्भा मेनका च ललिता चित्ररूपिणी ।  
 स्वाहा स्वथा वषट्कारा धृतिर्ज्येष्ठा कपर्दिनी ॥ २०  
 माया विचित्ररूपा च कामरूपा च सङ्गमा ।  
 मुखेविला मङ्गला च महानासा महामुखी ॥ २१  
 कुमारी रोचना भीमा सदाहा सा मदोद्धता ।  
 अलम्बाक्षी कालपर्णी कुम्भकर्णी महासुरी ॥ २२  
 केशिनी शङ्खिनी लम्बा पिङ्गला लोहितामुखी ।  
 घण्टारवाथ दंष्ट्राला रोचना काकजड्घिका ॥ २३  
 गोकर्णिकाजमुखिका महाग्रीवा महामुखी ।  
 उल्कामुखी धूमशिखा कम्पिनी परिकम्पिनी ॥ २४  
 मोहना कम्पना क्षेवेला निर्भया बाहुशालिनी ।  
 सर्पकर्णी तथैकाक्षी विशोका नन्दिनी तथा ॥ २५  
 ज्योत्स्नामुखी च रभसा निकुम्भा रक्तकम्पना ।  
 अविकारा महाचित्रा चन्द्रसेना मनोरमा ॥ २६  
 अदर्शना हरत्पापा मातङ्गी लम्बमेखला ।  
 अबाला वञ्चना काली प्रमोदा लाङ्गलावती ॥ २७  
 चित्ता चित्तजला कोणा शान्तिकाधविनाशिनी ।  
 लम्बस्तनी लम्बस्ता विस्ता वासचूर्णिनी ॥ २८

बला, अतिबला, रक्ता, सुरभी, मुखमण्डका, मातृनन्दा,  
 सुनन्दा, बिडाली, शकुनी, रेवती, महारक्ता, पिलपिच्छिका,  
 जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, काली, महाकाली,  
 दूती, सुभगा, दुर्भगा, कराली, नन्दिनी, अदिति, दिति,  
 मारी, मृत्यु, कर्णमोटी, ग्राम्या, उलूकी, घटोदरी, कपाली,  
 वज्रहस्ता, पिशाची, राक्षसी, भुशुण्डी, शांकरी, चण्डा,  
 लाङ्गली, कुटभी, खेटा, सुलोचना, धूम्रा, एकवीरा, करालिनी,  
 विशालदंष्ट्रिणी, श्यामा, त्रिजटी, कुक्कुटी, वैनायकी, वैताली,  
 उन्मत्तोदुम्बरी, सिद्धि, लेलिहाना, केकरी, गर्दभी, भुकुटी,  
 बहुपुत्री, प्रेतयाना, विडम्बिनी, क्रौञ्चा, शैलमुखी, विनता,  
 सुरसा, दनु, उषा, रम्भा, मेनका, सलिला, चित्ररूपिणी,  
 स्वाहा, स्वथा, वषट्कारा, धृति, ज्येष्ठा, कपर्दिनी, माया,  
 विचित्ररूपा, कामरूपा, संगमा, मुखेविला, मङ्गला, महानासा,  
 महामुखी, कुमारी, रोचना, भीमा, सदाहा, मदोद्धता, अलम्बाक्षी,  
 कालपर्णी, कुम्भकर्णी, महासुरी, केशिनी, शंखिनी, लम्बा,  
 पिङ्गला, लोहितामुखी, घण्टारवा, दंष्ट्राला, रोचना, काकजड्घिका,  
 गोकर्णिका, अजमुखिका, महाग्रीवा, महामुखी, उल्कामुखी,  
 धूमशिखा, कम्पिनी, परिकम्पिनी, मोहना, कम्पना, क्षेवेला,  
 निर्भया, बाहुशालिनी, सर्पकर्णी, एकाक्षी, विशोका,  
 नन्दिनी, ज्योत्स्नामुखी, रभसा, निकुम्भा, रक्तकम्पना,  
 अविकारा, महाचित्रा, चन्द्रसेना, मनोरमा, अदर्शना, हरत्पापा,  
 मातङ्गी, लम्बमेखला, अबाला, वञ्चना, काली, प्रमोदा,  
 लाङ्गलावती, चित्ता, चित्तजला, कोणा, शान्तिका,  
 अघविनाशिनी, लम्बस्तनी, लम्बस्ता, विस्ता, वासचूर्णिनी,

स्खलन्ती दीर्घकेशी च सुचिरा सुन्दरी शुभा ।  
 अयोमुखी कटुमुखी क्रोधनी च तथाशनी ॥ २९  
 कुटुम्बिका मुक्तिका च चन्द्रिका बलमोहिनी ।  
 सामान्या हासिनी लम्बा कोविदारी समासवी ॥ ३०  
 शङ्कुकर्णी महानादा महादेवी महौदरी ।  
 हुंकारी रुद्रसुस्टा रुद्रेशी भूतडामरी ॥ ३१  
 पिण्डजिह्वा चलज्वाला शिवा ज्वालामुखी तथा ।  
 एताश्वान्याश्व देवेशः सोऽसृजन्मातरस्तदा ॥ ३२  
 अन्धकानां महाघोराः पपुस्तद्गुधिरं तदा ।  
 ततोऽन्धकासृजः सर्वाः परां तृसिमुपागताः ॥ ३३  
 तासु तृप्तासु सम्भूता भूय एवान्धकप्रजाः ।  
 अर्दितस्तैर्महादेवः शूलमुद्गरपाणिभिः ॥ ३४  
 ततः स शङ्करो देवस्त्वन्धकैव्याकुलीकृतः ।  
 जगाम शरणं देवं वासुदेवमजं विभुम् ॥ ३५  
 ततस्तु भगवान् विष्णुः सृष्टवान् शुष्करेवतीम् ।  
 या पर्पौ सकलं तेषामन्धकानामसृक् क्षणात् ॥ ३६  
 यथा यथा च रुधिरं पिबन्त्यन्धकसम्भवम् ।  
 तथा तथाधिकं देवी संशुष्यति जनाधिप ॥ ३७  
 पीयमाने तया तेषामन्धकानां तथासृजि ।  
 अन्धकास्तु क्षयं नीताः सर्वे ते त्रिपुरारिणा ॥ ३८  
 मूलान्धकं तु विक्रम्य तदा शर्वस्त्रिलोकधृक् ।  
 चकार वेगाच्छूलाग्रे स च तुष्टाव शङ्करम् ॥ ३९  
 अन्धकस्तु महावीर्यस्तस्य तुष्टोऽभवद् भवः ।  
 सामीप्यं प्रददौ नित्यं गणेशत्वं तथैव च ॥ ४०  
 ततो मातृगणाः सर्वे शङ्करं वाक्यमब्रुवन् ।  
 भगवन् भक्षयिष्यामः सदेवासुरमानुषान् ।  
 त्वत्प्रसादाजगत्सर्वं तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ ४१

स्खलन्ती, दीर्घकेशी, सुचिरा, सुन्दरी, शुभा, अयोमुखी, कटुमुखी, क्रोधनी, अशनी, कुटुम्बिका, मुक्तिका, चन्द्रिका, बलमोहिनी, सामान्या, हासिनी, लम्बा, कोविदारी, समासवी, शंकुकर्णी, महानादा, महादेवी, महोदरी, हुंकारी, रुद्रसुस्टा, रुद्रेशी, भूतडामरी, पिण्डजिह्वा, चलज्वाला, शिवा तथा ज्वालामुखी । इनकी तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य मातृकाओंकी\* देवेश्वर शंकरने उस समय सृष्टि की ॥ ९—३२ ॥

तदनन्तर उत्पन्न हुई इन महाभयावनी मातृकाओंने अन्धकोंके रक्तको चूस लिया । इस प्रकार अन्धकोंके रक्तका पान करनेसे इन सबको परम तृसिका अनुभव हुआ । उनके तृप्त हो जानेके पश्चात् पुनः अन्धककी संतानें उत्पन्न हुईं । उन्होंने हाथमें शूल और मुद्राधारण करके पुनः महादेवजीको पीडित कर दिया । इस प्रकार जब अन्धकोंने भगवान् शंकरको व्याकुल कर दिया, तब वे सर्वव्यापी एवं अजन्मा भगवान् वासुदेवकी शरणमें गये । तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने शुष्करेवती नामवाली एक देवीको प्रकट किया, जिसने क्षणमात्रमें ही उन अन्धकोंके सम्पूर्ण रक्तको चूस लिया । जनेश्वर! वह देवी ज्यों-ज्यों अन्धकोंके शरीरसे निकले हुए रुधिरको पीती जाती थी, त्यों-त्यों वह अधिक क्षुधित एवं पिपासित होती जाती थी । इस प्रकार जब उस देवीद्वारा उन अन्धकोंका रक्त पान कर लिया गया, तब त्रिपुरारि शंकरने उन सभी अन्धकोंको कालके हवाले कर दिया । फिर त्रिलोकीको धारण करनेवाले भगवान् शंकरने जब वेगपूर्वक पराक्रम प्रकट करके प्रधान अन्धकको अपने त्रिशूलके अग्रभागका लक्ष्य बनाया, तब वह महापराक्रमी अन्धक शंकरजीकी स्तुति करने लगा । उसके स्तवन करनेसे भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये, तब उन्होंने उसे अपना नित्य सामीप्य तथा गणेशत्वका पद प्रदान कर दिया । यह देखकर सभी मातृकाएँ शंकरजीसे इस प्रकार बोलीं—‘भगवन्! हमलोग आपकी कृपासे देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत्को खा जाना चाहती हैं, इसके लिये आप हमलोगोंको आज्ञा देनेकी कृपा करें’ ॥ ३३—४१ ॥

\* अन्धकका वृत्तान्त शिव, सौरादि प्रायः दस पुराणोंमें भी है । पर इतनी संख्यामें मातृकाओंका वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं आया है ।

शङ्कर उवाच

भवतीभिः प्रजाः सर्वा रक्षणीया न संशयः ।  
तस्माद् घोरादभिप्रायान्मनः शीघ्रं निवर्त्यताम् ॥ ४२  
इत्येवं शंकरेणोक्तमनादृत्य वचस्तदा ।  
भक्ष्यामासुरत्युग्रास्त्रैलोक्यं सच्चाचरम् ॥ ४३  
त्रैलोक्ये भक्ष्यमाणे तु तदा मातृगणेन वै ।  
नृसिंहमूर्तिं देवेशं प्रदध्यौ भगवाज्जिष्वः ॥ ४४  
अनादिनिधनं देवं सर्वलोकभवोद्भवम् ।  
दैत्येन्द्रवक्षोरुधिरचर्चिताग्रमहानखम् ॥ ४५  
विद्युजिह्वं महादंष्ट्रं स्फुरत्केसरकण्ठकम् ।  
कल्पान्तमारुतक्षुब्धं सप्तार्णवसमस्वनम् ॥ ४६  
वज्रतीक्षणनखं घोरमार्णव्यादिताननम् ।  
मेरुशैलप्रतीकाशमुदयार्कसमेक्षणम् ॥ ४७  
हिमाद्रिशिखराकारं चारुदंष्ट्रोज्ज्वलाननम् ।  
नखनिःसृतरोषाग्निज्वालाकेसरमालिनम् ॥ ४८  
बद्धाङ्गदं सुमुकुटं हारकेयूरभूषणम् ।  
श्रोणीसूत्रेण महता काञ्छनेन विराजितम् ॥ ४९  
नीलोत्पलदलश्यामं वासोयुगविभूषणम् ।  
तेजसाक्रान्तसकलब्रह्माणडागारसङ्कुलम् ॥ ५०  
पवनभ्राम्यमाणानां हुतहव्यवहार्चिषाम् ।  
आवर्तसदृशाकारैः संयुक्तं देहलोमजैः ॥ ५१  
सर्वपुष्पविचित्रां च धारयन्तं महास्त्रजम् ।  
स ध्यातमात्रो भगवान् प्रददौ तस्य दर्शनम् ॥ ५२  
यादृशेनैव रूपेण ध्यातो रुद्रेण धीमता ।  
तादृशेनैव रूपेण दुर्निरीक्ष्येण दैवतैः ॥ ५३  
प्रणिपत्य तु देवेशं तदा तुष्टाव शङ्करः ॥ ५४

शङ्कर उवाच

नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ नरसिंहवपुर्धर ।  
दैत्यनाथासृजापूर्णनखशक्तिविराजित ॥ ५५

शंकरजीने कहा—देवियो! आपलोगोंको तो निःसंदेह सभी प्रजाओंकी रक्षा करनी चाहिये, अतः आपलोग शीघ्र ही उस घोर अभिप्रायसे अपने मनको लौटा लें। इस प्रकार शंकरजीद्वारा कहे गये वचनकी अवहेलना करके वे अत्यन्त निष्ठुर मातृकाएँ चराचरसहित त्रिलोकीको भक्षण करने लगीं। तब मातृकाओंद्वारा त्रिलोकीको भक्षित होते हुए देखकर भगवान् शिवने उन नृसिंहमूर्ति भगवान् विष्णुका ध्यान किया, जो आदि-अन्तसे रहित और सभी लोकोंके उत्पादक हैं, जिनके विशाल नखोंका अग्रभाग दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपुके वक्षःस्थलके रुधिरसे चर्चित है, जिनकी जीभ बिजलीकी तरह लपलपाती रहती है और दाढ़ें विशाल हैं, जिनके कंधेके बाल हिलते रहते हैं, जो प्रलयकालीन वायुकी तरह क्षुब्ध और सप्तार्णवकी भाँति गर्जना करनेवाले हैं, जिनके नख वज्र-सदृश तीक्ष्ण हैं, जिनकी आकृति भयंकर है, जिनका मुख कानतक फैला हुआ है, जो सुमेरु पर्वतके समान चमकते रहते हैं, जिनके नेत्र उदयकालीन सूर्य-सरीखे उद्दीप हैं, जिनकी आकृति हिमालयके शिखर-जैसी है, जिनका मुख सुन्दर उज्ज्वल दाढ़ोंसे विभूषित है, जो नखोंसे निकलती हुई क्रोधाग्निकी ज्वालारूपी केसरसे युक्त रहते हैं, जिनकी भुजाओंपर अङ्गद बँधा रहता है, जो सुन्दर मुकुट, हार और केयूरसे विभूषित रहते हैं, विशाल स्वर्णमयी करधनीसे जिनकी शोभा होती है, जिनकी कान्ति नीले कमलदलके समान श्याम है, जो दो वस्त्र धारण किये रहते हैं और अपने तेजसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमण्डलको आक्रान्त किये रहते हैं, वायुद्वारा घुमायी जाती हुई हवनयुक्त अग्निकी लपटोंकी भँवर-सदृश आकारवाले शरीर-रोमसे संयुक्त हैं तथा जो सभी प्रकारके पुष्पोंसे बनी हुई हवनयुक्त विचित्र एवं विशाल मालाको धारण करते हैं। ध्यान करते ही भगवान् विष्णु शिवजीके नेत्रोंके समक्ष प्रकट हो गये। बुद्धिमान् शंकरने जिस प्रकारके रूपका ध्यान किया था, वे उसी रूपसे प्रकट हुए। उनका वह रूप देवताओंद्वारा भी दुर्निरीक्ष्य था। तब शंकरजी उन देवेश्वरको प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ४२—५४ ॥

शंकरजी बोले—जगन्नाथ! आप नरसिंहका शरीर धारण करनेवाले हैं और आपकी नखशक्ति दैत्यराज हिरण्यकशिपुके रक्तसे रञ्जित होकर सुशोभित होती है, आपको नमस्कार

ततः सकलसंलग्न हेमपिङ्गलविग्रह ।  
 नतोऽस्मि पद्मनाभ त्वां सुरशक्रजगदगुरो ॥ ५६  
 कल्पान्ताभ्योदनिर्घोष सूर्यकोटिसमप्रभ ।  
 सहस्रयमसंक्रोध सहस्रेन्द्रपराक्रम ॥ ५७  
 सहस्रधनदस्फीत सहस्रवरुणात्मक ।  
 सहस्रकालरचित सहस्रनियतेन्द्रिय ॥ ५८  
 सहस्रभूमहाधैर्य सहस्रानन्तमूर्तिमन् ।  
 सहस्रचन्द्रप्रतिम सहस्रग्रहविक्रम ॥ ५९  
 सहस्ररुद्रतेजस्क सहस्रब्रह्मसंस्तुत ।  
 सहस्रबाहुवेगोग्र सहस्रास्यनिरीक्षण ।  
 सहस्रयन्त्रमथन सहस्रवधमोचन ॥ ६०  
 अन्धकस्य विनाशाय याः सृष्टा मातरो मया ।  
 अनादृत्य तु मद्वाक्यं भक्षयन्त्यद्य ताः प्रजाः ॥ ६१  
 कृत्वा ताश्च न शक्तोऽहं संहर्तुमपराजित ।  
 स्वयं कृत्वा कथं तासां विनाशमभिकारये ॥ ६२  
 एवमुक्तः स रुद्रेण नरसिंहवपुर्धरः ।  
 ससर्ज देवो जिह्वायास्तदा वागीश्वरी हरिः ॥ ६३  
 हृदयाच्च तथा माया गुह्याच्च भवमालिनी ।  
 अस्थिभ्यश्च तथा काली सृष्टा पूर्वं महात्मना ॥ ६४  
 यया तद्रुधिरं पीतमन्धकानां महात्मनाम् ।  
 या चास्मिन् कथिता लोके नामतः शुष्करेवती ॥ ६५  
 द्वात्रिंशन्मातरः सृष्टा गात्रेभ्यश्वक्रिणा ततः ।  
 तासां नामानि वक्ष्यामि तानि मे गदतः शृणु ॥ ६६  
 सर्वास्तास्तु महाभागा घण्टाकर्णी तथैव च ।  
 त्रैलोक्यमोहिनी पुण्या सर्वसत्त्ववशङ्करी ॥ ६७  
 तथा च चक्रहृदया पञ्चमी व्योमचारिणी ।  
 शङ्खिनी लेखिनी चैव कालसंकर्षणी तथा ॥ ६८  
 इत्येताः पृष्ठगा राजन् वागीशानुचराः स्मृताः ।  
 संकर्षणी तथाश्वतथा बीजभावापराजिता ॥ ६९  
 कल्याणी मधुदंष्ट्री च कमलोत्पलहस्तिका ।  
 इति देव्यष्टकं राजन् मायानुचरमुच्यते ॥ ७०

है । पद्मनाभ ! आप सर्वव्यापी हैं, आपका शरीर स्वर्णके समान पीला है और आप देवता, इन्द्र तथा जगत्के गुरु हैं, आपको प्रणाम है । आपका सिंहनाद प्रलयकालीन मेघोंके समान है, आपकी कान्ति करोड़ों सूर्योंके सदृश है, आपका क्रोध हजारों यमराजके तथा पराक्रम सहस्रों इन्द्रके समान है, आप हजारों कुबेरोंसे भी बढ़कर समृद्ध, हजारों वरुणोंके समान, हजारों कालोंद्वारा रचित और हजारों इन्द्रियनिग्रहियोंसे बढ़कर हैं, आपका धैर्य सहस्रों पृथिव्योंसे भी उत्तम है, आप सहस्रों अनन्तोंकी मूर्ति धारण करनेवाले, सहस्रों चन्द्रमा-सरीखे सौन्दर्यशाली और सहस्रों ग्रहों-सदृश पराक्रमी हैं, आपका तेज हजारों रुद्रोंके समान है, हजारों ब्रह्मा आपकी स्तुति करते हैं, आप हजारों बाहु, मुख और नेत्रवाले हैं, आपका वेग अत्यन्त उग्र है, आप सहस्रों यन्त्रोंको एक साथ तोड़ डालनेवाले तथा सहस्रोंका वध और सहस्रोंको वन्धनमुक्त करनेवाले हैं । भगवन् ! अन्धकका विनाश करनेके लिये मैंने जिन मातृकाओंकी सृष्टि की थी, वे सभी आज मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन कर प्रजाओंको खा जानेके लिये उतारू हैं । अपराजित ! उन्हें उत्पन्न कर मैं पुनः उर्होंका संहार नहीं कर सकता । स्वयं उत्पन्न करके भला मैं उनका विनाश कैसे करूँ ॥ ५५—६२ ॥

रुद्रद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर नरसिंह-विग्रहधारी भगवान् श्रीहरिने अपनी जीभसे वागीश्वरीको, हृदयसे मायाको, गुह्यप्रदेशसे भवमालिनीको और हड्डियोंसे कालीको प्रकट किया । उन महात्माने इस कालीकी सृष्टि पहले भी की थी, जिसने महान् आत्मबलसे सम्पन्न अन्धकोंके रुधिरका पान किया था और जो इस लोकमें शुष्करेवती नामसे प्रसिद्ध है । इसी प्रकार सुदर्शन चक्रधारी भगवान् ने अपने अङ्गोंसे बत्तीस अन्य मातृकाओंकी सृष्टि की, वे सभी महान् भाग्यशालिनी थीं । मैं उनके नामोंका वर्णन कर रहा हूँ, तुम उन्हें मुझसे श्रवण करो । उनके नाम हैं—घण्टाकर्णी, त्रैलोक्यमोहिनी, पुण्यमयी सर्वसत्त्ववशंकरी, चक्रहृदया, पाँचवीं व्योमचारिणी, शङ्खिनी, लेखिनी और काल-संकर्षणी । राजन् ! ये वागीश्वरीके पीछे चलनेवाली उनकी अनुचरी कही गयी हैं । राजन् ! संकर्षणी, अश्वत्था, बीजभावा, अपराजिता, कल्याणी, मधुदंष्ट्री, कमला और उत्पलहस्तिका—ये आठों देवियाँ मायाकी अनुचरी कहलाती हैं ।

अजिता सूक्ष्महृदया वृद्धा वेशाश्मदर्शना ।  
नृसिंहभैरवा बिल्वा गरुत्मद्धृदया जया ॥ ७१  
भवमालिन्यनुचरा इत्यष्टौ नृप मातरः ।  
आकर्णनी सम्भटा च तथैवोत्तरमालिका ॥ ७२  
ज्वालामुखी भीषणिका कामधेनुश्च बालिका ।  
तथा पद्मकरा राजन् रेवत्यनुचराः स्मृताः ॥ ७३  
अष्टौ महाबलाः सर्वा देवगात्रसमुद्ध्रवाः ।  
त्रैलोक्यसृष्टिसंहारसमर्थाः सर्वदेवताः ॥ ७४  
ताः सृष्टमात्रा देवेन कुद्धा मातृगणस्य तु ।  
प्रधाविता महाराज क्रोधविस्फारितेक्षणाः ॥ ७५  
अविष्वद्यतमं तासां दृष्टितेजः सुदारुणम् ।  
तमेव शरणं प्राप्ता नृसिंहो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७६  
यथा मनुष्याः पशवः पालयन्ति चिरात् सुतान् ।  
जयन्ति ते तथैवाशु यथा वै देवतागणाः ॥ ७७  
भवत्यस्तु तथा लोकान् पालयन्तु मयेरिताः ।  
मनुजैश्च तथा देवैर्यजध्वं त्रिपुरान्तकम् ॥ ७८  
न च बाधा प्रकर्तव्या ये भक्तास्त्रिपुरान्तके ।  
ये च मां संस्मरन्तीह ते च रक्ष्याः सदा नराः ॥ ७९  
बलिकर्म करिष्यन्ति युष्माकं ये सदा नराः ।  
सर्वकामप्रदास्तेषां भविष्यध्वं तथैव च ॥ ८०  
उच्छासनादिकं ये च कथयन्ति मयेरितम् ।  
ते च रक्ष्याः सदा लोका रक्षितव्यं च शासनम् ॥ ८१  
रौद्रीं चैव परां मूर्ति महादेवः प्रदास्यति ।  
युष्मन्मुख्या महादेव्यस्तदुक्तं परिरक्ष्यथ ॥ ८२  
मया मातृगणः सृष्टो योऽयं विगतसाध्वसः ।  
एष नित्यं विशालाक्षो मयैव सह रंस्यते ॥ ८३  
मया सार्धं तथा पूजां नरेभ्यश्चैव लप्स्यथ ।  
पृथक् सुपूजिता लोके सर्वान् कामान् प्रदास्यथ ॥ ८४

नरेश ! अजिता, सूक्ष्महृदया, वृद्धा, वेशाश्मदर्शना, नृसिंहभैरवा, बिल्वा, गरुत्मद्धृदया और जया—ये आठों मातृकाएँ भवमालिनीकी अनुचरी हैं । राजन् ! आकर्णनी, सम्भटा, उत्तरमालिका, ज्वालामुखी, भीषणिका, कामधेनु, बालिका तथा पद्मकरा—ये शुष्करेवतीकी अनुचरी कही जाती हैं । आठ-आठके विभागसे भगवान्‌के शरीरसे उद्भूत हुई ये सभी देवियाँ महान् बलवती तथा त्रिलोकीके सृजन और संहारमें समर्थ थीं ॥ ६३—७४ ॥

महाराज ! भगवान् विष्णुद्वारा प्रकट किये जाते ही वे देवियाँ कुपित हो मातृकाओंकी ओर क्रोधवश आँखें फाड़कर देखती हुई उनपर टूट पड़ीं । उन देवियोंके नेत्रोंका तेज अत्यन्त भीषण और सर्वथा असह्य था, इसलिये वे मातृकाएँ भगवान् नृसिंहकी शरणमें आ पड़ीं । तब भगवान् नरसिंहने उनसे इस प्रकार कहा—‘जिस प्रकार मनुष्य और पशु चिरकालसे अपनी संतानका पालन-पोषण करते आ रहे हैं और जिस प्रकार शीघ्र दोनों देवताओंको वशमें कर लेते हैं, उसी तरह तुमलोग मेरे आदेशानुसार समस्त लोकोंकी रक्षा करो । मनुष्य तथा देवता सभी त्रिपुरहन्ता शिवजीका यजन करें । जो लोग शंकरजीके भक्त हैं, उनके प्रति तुमलोगोंको कोई बाधा नहीं करनी चाहिये । इस लोकमें जो मनुष्य मेरा स्मरण करते हैं, वे तुमलोगोंद्वारा सदा रक्षणीय हैं । जो मनुष्य सदा तुमलोगोंके निमित्त बलिकर्म करेंगे, तुमलोग उनके सभी मनोरथ पूर्ण करो । जो लोग मेरे इस चरित्रिका कथन करेंगे, उन लोगोंकी सदा रक्षा तथा मेरे आदेशका भी पालन करना चाहिये । तुमलोगोंमें जो मुख्य महादेवियाँ हैं, उन्हें महादेवजी अपनी परमोक्तृष्ट रौद्री मूर्ति प्रदान करेंगे । तुमलोगोंको उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये । लज्जा और भयसे रहित हो मैंने जो इस मातृगणकी सृष्टि की है, यह विशाल नेत्रोंवाला दल नित्य मेरे साथ ही निवास करेगा तथा मेरे साथ इसे मनुष्योंद्वारा प्रदान की गयी पूजा भी प्राप्त होती रहेगी । लोगोंद्वारा पृथक्-रूपसे सुपूजित होनेपर ये देवियाँ सभी कामनाएँ प्रदान करेंगी ।

शुष्कां सम्पूजयिष्यन्ति ये च पुत्रार्थिनो जनाः ।  
 तेषां पुत्रप्रदा देवी भविष्यति न संशयः ॥ ८५  
 एवमुक्त्वा तु भगवान् सह मातृगणेन तु ।  
 ज्वालामालाकुलवपुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ८६  
 तत्र तीर्थं समुत्पन्नं कृतशौचेति यज्जगुः ।  
 तत्रापि पूर्वजो देवो जगदार्तिहरो हरः ॥ ८७  
 रौद्रस्य मातृवर्गस्य दत्त्वा रुद्रस्तु पार्थिव ।  
 रौद्रां दिव्यां तनुं तत्र मातृमध्ये व्यवस्थितः ॥ ८८  
 सप्त ता मातरो देव्यः सार्धनारीनरः शिवः ।  
 निवेश्य रौद्रं तत्स्थानं तत्रैवान्तरधीयत ॥ ८९  
 समातृवर्गस्य हरस्य मूर्ति-  
 र्यदा यदा याति च तत्समीपे ।  
 देवेश्वरस्यापि नृसिंहमूर्तेः  
 पूजां विधत्ते त्रिपुरान्धकारिः ॥ ९०

जो पुत्राभिलाषी लोग शुष्करेवतीकी पूजा करेंगे, उनके लिये वह देवी पुत्र प्रदान करनेवाली होगी—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है' ॥ ७५—८५ ॥

राजन्! ऐसा कहकर ज्वालासमूहोंसे व्यास शरीरवाले भगवान् नरसिंह उस मातृगणके साथ वहीं अन्तर्हित हो गये। वहीं एक तीर्थ उत्पन्न हो गया, जिसे लोग 'कृतशौच' नामसे पुकारते हैं। वहीं सबके पूर्वज तथा जगत्का कष्ट दूर करनेवाले भगवान् रुद्र उस भयंकर मातृवर्गको अपनी रौद्री दिव्य मूर्ति प्रदान कर उन्हीं मातृकाओंके मध्यस्थित हो गये। इस प्रकार अर्धनारी-नरस्वरूप शिव उन सातों मातृ-देवियोंको उस रौद्रस्थानपर स्थापित कर स्वयं वहीं अन्तर्हित हो गये। मातृवर्गसहित शिवजीकी मूर्ति जब-जब देवेश्वर भगवान् नरसिंहकी मूर्तिके निकट जाती है, तब-तब त्रिपुर एवं अन्धकके शत्रु शंकरजी उस नृसिंहमूर्तिकी पूजा करते हैं ॥ ८६—९० ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽन्धकवधो नामैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अन्धकवध नामक एक सौ उनासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७९ ॥

## एक सौ असीवाँ अध्याय

वाराणसी-माहात्म्यके प्रसङ्गमें हरिकेश यक्षकी तपस्या, अविमुक्तकी शोभा  
 और उसका माहात्म्य तथा हरिकेशको शिवजीद्वारा वरप्राप्ति

ऋष्य ऊचुः

श्रुतोऽन्धकवधः सूत यथावत् त्वदुदीरितः ।  
 वाराणस्यास्तु माहात्म्यं श्रोतुमिच्छाम साम्प्रतम् ॥ १  
 भगवान् पिङ्गलः केन गणत्वं समुपागतः ।  
 अन्नदत्वं च सम्प्राप्तो वाराणस्यां महाद्युतिः ॥ २  
 क्षेत्रपालः कथं जातः प्रियत्वं च कथं गतः ।  
 एतदिच्छाम कथितं श्रोतुं ब्रह्मसुत त्वया ॥ ३

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! आपद्वारा कहा गया अन्धक-वधका प्रसङ्ग तो हमलोगोंने यथार्थरूपसे सुन लिया, अब हमलोग वाराणसीका माहात्म्य सुनना चाहते हैं। ब्रह्मपुत्र सूतजी! वाराणसीमें परम कान्तिमान् भगवान् पिङ्गलको गणेशत्वकी प्राप्ति कैसे हुई? वे अन्नदाता कैसे बने और क्षेत्रपाल कैसे हो गये? तथा वे शंकरजीके प्रेमपात्र कैसे बने? आपके द्वारा कहे गये इस सारे प्रसङ्गको सुननेके लिये हमलोगोंकी उल्कट अभिलाषा है ॥ १—३ ॥

सूत उवाच

श्रणुध्वं वै यथा लेभे गणेशत्वं स पिङ्गलः ।  
अन्नदत्तं च लोकानां स्थानं वाराणसी त्विह ॥ ४  
पूर्णभद्रसुतः श्रीमानासीद्यक्षः प्रतापवान् ।  
हरिकेश इति ख्यातो ब्रह्मण्यो धार्मिकश्च ह ॥ ५  
तस्य जन्मप्रभृत्येव शर्वे भक्तिरनुत्तमा ।  
तदासीत्तन्नमस्कारस्तन्निष्ठस्तत्परायणः ॥ ६  
आसीनश्च शयानश्च गच्छस्तिष्ठन्नुव्रजन् ।  
भुज्ञानोऽथ पिबन् वापि रुद्रमेवान्वचिन्तयत् ॥ ७  
तमेवं युक्तमनसं पूर्णभद्रः पिताब्रवीत् ।  
न त्वां पुत्रमहं मन्ये दुर्जातो यस्त्वमन्यथा ॥ ८  
न हि यक्षकुलीनानामेतद् वृत्तं भवत्युत ।  
गुह्यका बत यूयं वै स्वभावात् क्रूरचेतसः ॥ ९  
क्रव्यादाशैव किञ्चक्षा हिंसाशीलाश्च पुत्रक ।  
मैवं कार्षीर्न ते वृत्तिरेवं दृष्टा महात्मना ॥ १०  
स्वयम्भुवा यथाऽऽदिष्टा त्यक्तव्या यदि नो भवेत् ।  
आश्रमान्तरजं कर्म न कुर्युर्गृहिणस्तु तत् ॥ ११  
हित्वा मनुष्यभावं च कर्मभिर्विविधैश्चरा ।  
यत्त्वमेवं विमार्गस्थो मनुष्याज्ञात एव च ॥ १२  
यथावद् विविधं तेषां कर्म तज्जातिसंश्रयम् ।  
मयापि विहितं पश्य कर्मेतन्नात्र संशयः ॥ १३

सूत उवाच

एवमुक्त्वा स तं पुत्रं पूर्णभद्रः प्रतापवान् ।  
उवाच निष्क्रम क्षिप्रं गच्छ पुत्र यथेच्छसि ॥ १४  
ततः स निर्गतस्त्यक्त्वा गृहं सम्बन्धिनस्तथा ।  
वाराणसीं समासाद्य तपस्तेषे सुदुश्शरम् ॥ १५  
स्थाणुभूतो ह्यनिमिषः शुष्ककाष्ठोपलोपमः ।  
संनियम्येन्द्रियग्राममवातिष्ठत निश्चलः ॥ १६  
अथ तस्यैवमनिशं तत्परस्य तदाशिषः ।  
सहस्रमेकं वर्षाणां दिव्यमप्यभ्यवर्तत ॥ १७  
वल्मीकेन समाक्रान्तो भक्ष्यमाणः पिपीलिकैः ।  
वज्रसूचीमुखैस्तीक्षणौर्विध्यमानस्तथैव च ॥ १८

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! पिंगलको जिस प्रकार गणेशत्व, लोकोंके लिये अन्नदत्त और वाराणसी-जैसा स्थान प्राप्त हुआ था वह प्रसङ्ग बतला रहा हूँ सुनिये । प्राचीनकालमें हरिकेश नामसे विख्यात एक सौन्दर्यशाली यक्ष हो गया है, जो पूर्णभद्रका पुत्र था । वह महाप्रतापी, ब्राह्मणभक्त और धर्मात्मा था । जन्मसे ही उसकी शंकरजीमें प्रगाढ़ भक्ति थी । वह तन्मय होकर उन्हींको नमस्कार करनेमें, उन्हींकी भक्ति करनेमें और उन्हींके ध्यानमें तत्पर रहता था । वह बैठते, सोते, चलते, खड़े होते, घूमते तथा खाते-पीते समय सदा शिवजीके ध्यानमें ही मग्न रहता था । इस प्रकार शंकरजीमें लीन मनवाले उससे उसके पिता पूर्णभद्रने कहा—‘पुत्र ! मैं तुम्हें अपना पुत्र नहीं मानता । ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अन्यथा ही उत्पन्न हुए हो; क्योंकि यक्षकुलमें उत्पन्न होनेवालोंका ऐसा आचरण नहीं होता । तुम गुह्यक\* हो । राक्षस ही स्वभावसे क्रूर चित्तवाले, मांसभक्षी, सर्वभक्षी और हिंसापरायण होते हैं । महात्मा ब्रह्माद्वारा ऐसा ही निर्देश दिया गया है । तुम ऐसा मत करो; क्योंकि तुम्हारे लिये ऐसी वृत्ति नहीं बतलायी गयी है । गृहस्थ भी अन्य आश्रमोंका कर्म नहीं करते । इसलिये तुम मनुष्यभावका परित्याग करके यक्षोंके अनुकूल विविध कर्मोंका आचरण करो । यदि तुम इस प्रकार विमार्गपर ही स्थित रहोगे तो मनुष्यसे उत्पन्न हुआ ही समझे जाओगे । अतः तुम यक्षजातिके अनुकूल विविध कर्मोंका ठीक-ठीक आचरण करो । देखो, मैं भी निःसंदेह वैसा ही आचरण कर रहा हूँ ॥ ४—१३ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! प्रतापी पूर्णभद्रने अपने उस पुत्रसे इस प्रकार (कहा; किंतु जब उसपर कोई प्रभाव पड़ते नहीं देखा, तब वह पुनः कुपित होकर) बोला—‘पुत्र ! तुम शीघ्र ही मेरे घरसे निकल जाओ और जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहाँ चले जाओ । ‘तब वह हरिकेश गृह तथा सम्बन्धियोंका त्याग कर निकल पड़ा और वाराणसीमें आकर अत्यन्त दुष्कर तपस्यामें संलग्न हो गया । वहाँ वह इन्द्रियसमुदायको संयमित कर सूखे काष्ठ और पत्थरकी भाँति निश्चल हो एकटक स्थाणु (दूँठ)-की तरह स्थित हो गया । इस प्रकार निरन्तर तपस्यामें लगे रहनेवाले हरिकेशके एक सहस्र दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये । उसके शरीरपर बिमवट जम गयी । वज्रके समान कठोर और सूर्ड़-जैसे पतले एवं तीखे मुखवाली चींटियोंने उसमें छेद कर उसे खा डाला ।

\* अमर, व्याडि, हलायुध आदि कोशों एवं महाभारतादि प्रायः सभी ग्रन्थोंमें यक्षोंकी निधिरक्षक श्रेणीको ही गुह्यक कहा गया है—‘निधिं गृहन्ति ये यक्षास्ते स्युर्गुद्वाकसंज्ञकाः ।’

निर्मासरुधिरत्वक् च कुन्दशङ्कुन्दुसप्रभः ।  
अस्थिशेषोऽभवच्छर्व देवं वै चिन्तयन्नपि ॥ १९

एतस्मिन्नन्तरे देवी व्यज्ञापयत शङ्करम् ॥ २०  
देव्युवाच

उद्यानं पुनरेवेदं द्रष्टुमिच्छामि सर्वदा ।  
क्षेत्रस्य देव माहात्म्यं श्रोतुं कौतूहलं हि मे ।  
यतश्च प्रियमेतत् ते तथास्य फलमुत्तमम् ॥ २१  
इति विज्ञापितो देवः शर्वाण्या परमेश्वरः ।  
सर्वं पृष्ठं ते यथातथ्यमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ २२  
निर्जगाम च देवेशः पार्वत्या सह शङ्करः ।  
उद्यानं दर्शयामास देव्या देवः पिनाकधृक् ॥ २३

देवदेव उवाच

प्रोत्कुल्लनानाविधगुल्मशोभितं  
लताप्रतानावनतं मनोहरम् ।

विरुद्धपुष्पैः परितः प्रियङ्गुभिः  
सुपुष्पितैः कण्टकितैश्च केतकैः ॥ २४  
तमालगुल्मैर्निचितं सुगन्धिभिः  
सकर्णिकारैर्बक्तुलैश्च सर्वशः ।

अशोकपुन्नागवैः सुपुष्पितै-  
द्विरफमालाकुलपुष्पसञ्चयैः ॥ २५

क्वचित् प्रफुल्लाम्बुजेरणुरुषितै-  
र्विहङ्गमैश्चारुकलप्रणादिभिः ।

विनादितं सारसमण्डनादिभिः  
प्रमत्तदात्यूहरुतैश्च वलुभिः ॥ २६

क्वचिच्च चक्राह्वरवोपनादितं  
क्वचिच्च कादम्बकदम्बकैर्युतम् ।

क्वचिच्च कारण्डवनादनादितं  
क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृतम् ॥ २७

मदाकुलाभिस्त्वमराङ्गनाभि-  
निषेवितं चारुसुगन्धिपुष्पम् ।

क्वचित् सुपुष्पैः सहकारवृक्षै-  
लंतोपगूढैस्तिलकद्वैश्च ॥ २८

इस प्रकार वह मांस, रुधिर और चमड़ेसे रहित हो अस्थिमात्र अवशेष रह गया, जो कुन्द, शङ्कु और चन्द्रमाके समान चमक रहा था। इतनेपर भी वह भगवान् शंकरका ध्यान कर ही रहा था। इसी बीच पार्वती देवीने भगवान् शंकरसे निवेदन किया ॥ १४—२० ॥

देवीने कहा—देव ! मैं इस उद्यानको पुनः देखना चाहती हूँ। साथ ही इस क्षेत्रका माहात्म्य सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है; क्योंकि यह आपको परम प्रिय है और इसके श्रवणका फल भी उत्तम है। इस प्रकार भवानीद्वारा निवेदन किये जानेपर परमेश्वर शंकर प्रश्नानुसार सारा प्रसंग यथार्थरूपसे कहनेके लिये उद्यत हुए। तदनन्तर पिनाकधारी देवेश्वर भगवान् शंकर पार्वतीके साथ वहाँसे चल पड़े और देवीको उस उद्यानका दर्शन कराते हुए बोले ॥ २१—२३ ॥

देवाधिदेव शंकरने कहा—प्रिये ! यह उद्यान खिले हुए नाना प्रकारके गुल्मोंसे सुशोभित है। यह लताओंके विस्तारसे अवनत होनेके कारण मनोहर लग रहा है। इसमें चारों ओर पुष्पोंसे लदे हुए प्रियङ्गुके तथा भली-भाँति खिली हुई कँटीली केतकीके वृक्ष दीख रहे हैं। यह सब ओर तमालके गुल्मों, सुगन्धित कनेर और मौलसिरी तथा फूलोंसे लदे हुए अशोक और पुनागके उत्तम वृक्षोंसे, जिसके पुष्पोंपर भ्रमरसमूह गुजार कर रहे हैं, व्यास है। कहीं पूर्णरूपसे खिले हुए कमलके परागसे धूसरित अङ्गवाले पक्षी सुन्दर कलनाद कर रहे हैं, कहीं सारसोंका दल बोल रहा है। कहीं मतवाले चातकोंकी मधुर बोली सुनायी पड़ रही है। कहीं चक्रवाकोंका शब्द गूँज रहा है। कहीं यूथ-के-यूथ कलहंस विचर रहे हैं। कहीं बतखोंके नादसे निनादित हो रहा है। कहीं झुंड-के-झुंड मतवाले भौंरे गुनगुना रहे हैं। कहीं मदसे मतवाली हुई देवाङ्गनाएँ सुन्दर एवं सुगन्धित पुष्पोंका सेवन कर रही हैं। कहीं सुन्दर पुष्पोंसे आच्छादित आमके वृक्ष और लताओंसे आच्छादित तिलकके वृक्ष शोभा पा रहे हैं।

प्रगीतविद्याधरसिद्धचारणं

प्रमत्तनृत्याप्सरसां गणाकुलम् ।

प्रहष्टनानाविधपक्षिसेवितं

प्रमत्तहारीतकुलोपनादितम् ॥ २९

मृगेन्द्रनादाकुलसत्त्वमानसैः-

क्वचित्क्लिच्छद्दृद्धकदम्बकैर्मृगैः ।

प्रफुल्लनानाविधचारुपङ्कजैः-

सरस्तटाकैरुपशोभितं क्वचित् ॥ ३०

निबिडनिचुलनीलं नीलकण्ठाभिरामं

मदमुदितविहङ्गब्रातनादाभिरामम् ।

कुसुमिततरुशाखालीनमत्तद्विरेफं

नवकिसलयशोभाशोभितप्रान्तशाखम् ॥ ३१

क्वचिच्च दन्तिक्षतचारुवीरुधं

क्वचिल्लतालिङ्गितचारुवृक्षकम् ।

क्वचिद्विलासालसगामिर्हिणं

निषेवितं किम्पुरुषव्रजैः क्वचित् ॥ ३२

पारावतध्वनिविकूजितचारुशृङ्गैः-

रथंकषैः सितमनोहरचारुरूपैः ।

आकीर्णपुष्पनिकुरम्बविमुक्तहासै-

र्विभ्राजितं त्रिदशदेवकुलैरनेकैः ॥ ३३

फुल्लोत्पलागुरुसहस्रवितानयुक्ते-

स्तोयाशयैः समनुशोभितदेवमार्गम् ।

मार्गान्तरागलितपुष्पविचित्रभक्ति-

सम्बद्धगुल्मविटपैर्विहगैरुपेतम् ॥ ३४

तुङ्गाग्रैर्नीलपुष्पस्तबक भरनतप्रान्तशाखैरशोकै-

र्मत्तालिब्रातगीतश्रुतिसुखजननैर्भासितान्तर्मनोज्ञैः ।

रात्रौ चन्द्रस्य भासा कुसुमितिलकैरेकतां सम्प्रयातं

छायासुमप्रबुद्धस्थितहरिणकुलालुम्बदर्भाङ्कराग्रम् ॥ ३५

कहीं विद्याधर, सिद्ध और चारण राग अलाप रहे हैं तो कहीं अप्सराओंका दल उन्मत्त होकर नाच रहा है। इसमें नाना प्रकारके पक्षी प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं। यह मतवाले हारीतसमूहसे निनादित है। कहीं-कहीं झुंड-के-झुंड मृगके जोड़े सिंहकी दहाड़से व्याकुल मनवाले होकर इधर-उधर भाग रहे हैं। कहीं ऐसे तालाब शोभा पा रहे हैं, जिनके तटपर नाना प्रकारके सुन्दर कमल खिले हुए हैं॥ २४—३० ॥

यह घने बेंतकी लताओं एवं नीलमयूरोंसे सुशोभित और मदसे उन्मत्त हुए पक्षिसमूहोंके नादसे मनोरम लग रहा है। इसके खिले हुए वृक्षोंकी शाखाओंमें मतवाले भौंरे छिपे हुए हैं और उन शाखाओंके प्रान्तभाग नये किसलयोंकी शोभासे सुशोभित हैं। कहीं सुन्दर वृक्ष हाथियोंके दाँतोंसे क्षत-विक्षत हो गये हैं। कहीं लताएँ मनोहर वृक्षोंका आलिङ्गन कर रही हैं। कहीं भोगसे अलसाये हुए मयूरगण मन्दगतिसे विचरण कर रहे हैं। कहीं किम्पुरुषगण निवास कर रहे हैं। जो कबूतरोंकी ध्वनिसे निनादित हो रहे थे, जिनका उज्ज्वल मनोहर रूप है, जिनपर बिखरे हुए पुष्पसमूह हासकी छटा दिखा रहे हैं और जिनपर अनेकों देवकुल निवास कर रहे हैं, उन गगनचुम्बी मनोहर शिखरोंसे सुशोभित हो रहा है। खिले हुए कमल और अगुरुके सहस्रों वितानोंसे युक्त जलाशयोंसे जिसका देवमार्ग सुशोभित हो रहा है। उन मार्गोंपर पुष्प बिखरे हुए हैं और वह विचित्र भक्तिसे युक्त पक्षियोंसे सेवित गुल्मों और वृक्षोंसे युक्त है। जिनके अग्रभाग ऊँचे हैं, जिनकी शाखाओंका प्रान्तभाग नीले पुष्पोंके गुच्छोंके भारसे झुके हुए हैं तथा जिनकी शाखाओंके अन्तर्भागमें लीन मतवाले भ्रमरसमूहोंकी त्रवण-सुखदायिनी मनोहर गीत हो रही है, ऐसे अशोकवृक्षोंसे युक्त है। रात्रिमें यह अपने खिले हुए तिलक-वृक्षोंसे चन्द्रमाकी चाँदनीके साथ एकताको प्राप्त हो जाता है। कहीं वृक्षोंकी छायामें सोये हुए, सोकर जगे हुए तथा बैठे हुए हरिणसमूहोंद्वारा काटे गये दूर्वाङ्कुरोंके अग्रभागसे युक्त

हंसानां पक्षपातप्रचलितकमलस्वच्छविस्तीर्णतोयं  
तोयानां तीरजातप्रविकचकदलीवाटनृत्यन्मयूरम्।  
मायूरैः पक्षचन्द्रैः क्वचिदपि पतितै रञ्जितक्षमाप्रदेशं  
देशे देशे विकीर्णप्रमुदितविलसन्मत्तहारीतवृक्षम्॥ ३६  
सारङ्गैः क्वचिदपि सेवितप्रदेशं  
संछन्नं कुसुमचयैः क्वचिद्विचित्रैः।  
हष्टाभिः क्वचिदपि किंनराङ्गनाभिः  
क्षीबाभिः सुमधुरगीतवृक्षखण्डम्॥ ३७  
संसृष्टैः क्वचिदुपलिसकीर्णपुष्टै-  
रावासैः परिवृतपादपं मुनीनाम्।  
आमूलात् फलनिचितैः क्वचिद्विशालै-  
रुत्तुङ्गैः पनसमहीरुहैरुपेतम्॥ ३८  
फुलातिमुक्तकलतागृहसिद्धलीलं  
सिद्धाङ्गनाकनकनूपुरनादरम्यम् ।  
रम्यप्रियद्रुतरुमञ्चरिसक्तभृङ्गं  
भृङ्गावलीषु स्खलिताम्बुकदम्बपुष्यम्॥ ३९  
पुष्पोत्करनिलविघूर्णितपादपाग्र-  
मग्रेसरो भुवि निपातितवंशगुल्मम्।  
गुल्मान्तरप्रभृतिलीनमृगीसमूहं  
सम्मुहृतां तनुभृतामपवर्गदातृ ॥ ४०  
चन्द्रांशुजालधवलैस्तिलकैर्मनोज्ञैः  
सिन्दूरकुङ्कुमकुसुम्भनिभैरशोकैः ।  
चामीकराभनिचयैरथ कर्णिकारैः  
फुलारविन्दरचितं सुविशालशाखैः ॥ ४१  
क्वचिद्रजतपर्णाभैः क्वचिद्विद्रुमसन्निभैः।  
क्वचित्काञ्छनसंकाशैः पुष्टैराचितभूतलम्॥ ४२  
पुंनागेषु द्विजगणविरुतं  
रक्ताशोकस्तबकभरनमितम् ।  
रम्योपान्तश्रमहरपवनं  
फुल्लाब्जेषु भ्रमरविलसितम्॥ ४३

है। कहीं हंसोंके पंख हिलानेसे चञ्चल हुए कमलोंसे युक्त, निर्मल एवं विस्तीर्ण जलराशि शोभा पा रही है। कहीं जलाशयोंके तटपर उगे हुए फूलोंसे सम्पन्न कदलीके लतामण्डपोंमें मयूर नृत्य कर रहे हैं। कहीं झड़कर गिरे हुए चन्द्रकयुक्त मयूरोंके पंखोंसे भूतल अनुरञ्जित हो रहा है। जगह-जगह पृथक्-पृथक् यूथ बनाकर हर्षपूर्वक विलास करते हुए मतवाले हारीत पक्षियोंसे युक्त वृक्ष शोभा पा रहे हैं। किसी प्रदेशमें सारङ्ग जातिके मृग बैठे हुए हैं। कुछ भाग विचित्र पुष्पसमूहोंसे आच्छादित है। कहीं उन्मत्त हुई किंनराङ्गनाएँ हर्षपूर्वक सुमधुर गीत अलाप रही हैं, जिनसे वृक्षखण्ड मुखरित हो रहा है॥ ३१—३७॥

कहीं वृक्षोंके नीचे मुनियोंके आवासस्थल बने हैं, जिनकी भूमि लिपी-पुती हुई है और उनपर पुष्प बिखेरा हुआ है। कहीं जिनमें जड़से लेकर अन्ततक फल लदे हुए हैं, ऐसे विशाल एवं ऊँचे कटहलके वृक्षोंसे युक्त है। कहीं खिली हुई अतिमुक्तक लताके बने हुए सिद्धोंके गृह शोभा पा रहे हैं, जिनमें सिद्धाङ्गनाओंके स्वर्णमय नूपुरोंका सुरम्य नाद हो रहा है। कहीं मनोहर प्रियंगु वृक्षोंकी मंजरियोंपर भँवरे मँडरा रहे हैं। कहीं भ्रमर-समूहोंके पंखोंके आघातसे कदम्बके पुष्प नीचे गिर रहे हैं। कहीं पुष्पसमूहका स्पर्श करके बहती हुई वायु बड़े-बड़े वृक्षोंके ऊपरकी शाखाओंको झुका दे रही है, जिनके आघातसे बाँसोंके झुरमुट भूतलपर गिर जा रहे हैं। उन गुल्मोंके अन्तर्गत हरिणियोंका समूह छिपा हुआ है। इस प्रकार यह उपवन मोहग्रस्त प्राणियोंको मोक्ष प्रदान करनेवाला है। यहाँ कहीं चन्द्रमाकी किरणों-सरीखे उज्ज्वल मनोहर तिलकके वृक्ष, कहीं सिंदूर, कुंकुम और कुसुम्भ-जैसे लाल रंगवाले अशोकके वृक्ष, कहीं स्वर्णके समान पीले एवं लम्बी शाखाओंवाले कनेरके वृक्ष और कहीं खिले हुए कमलके पुष्प शोभा पा रहे हैं। इस उपवनकी भूमि कहीं चाँदीके पत्र-जैसे श्वेत, कहीं मौंगे-सरीखे लाल और कहीं स्वर्ण-सदृश पीले पुष्पोंसे आच्छादित है। कहीं पुंनागके वृक्षोंपर पक्षिगण चहचहा रहे हैं। कहीं लाल अशोककी डालियाँ पुष्प-गुच्छोंके भारसे झुक गयी हैं। रमणीय एवं श्रमहारी पवन शरीरका स्पर्श करके बह रहा है। उत्फुल्ल कमलपुष्पोंपर भौंरे गुञ्जार कर रहे हैं।

सकलभुवनभर्ता                    लोकनाथस्तदानीं  
     तुहिनशिखरिपुत्राः सार्धमिष्टैर्गणेशैः ।  
 विविधतस्तविशालं                मत्तहष्टान्यपुष्ट-  
     मुपवनतस्तरम्यं दर्शयामास देव्याः ॥ ४४

देव्युकाच

उद्यानं दर्शितं देव शोभया परया युतम् ।  
 क्षेत्रस्य तु गुणान् सर्वान् पुनर्वक्तुमिहार्हसि ॥ ४५  
 अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यमविमुक्तस्य तत्तथा ।  
 श्रुत्वापि हि न मे तृप्तिरतो भूयो वदस्व मे ॥ ४६

देवदेव उवाच

इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम ।  
 सर्वेषामेव भूतानां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा ॥ ४७  
 अस्मिन् सिद्धाः सदा देवि मदीयं व्रतमास्थिताः ।  
 नानालिङ्गधरा नित्यं मम लोकाभिकाङ्क्षिणः ॥ ४८  
 अभ्यस्यन्ति परं योगं मुक्तात्मानो जितेन्द्रियाः ।  
 नानावृक्षसमाकीर्णं                नानाविहगकूजिते ॥ ४९  
 कमलोत्पलपुष्पाढ्यैः सरोभिः समलङ्घृते ।  
 अप्सरोगणगन्धर्वैः सदा संसेविते शुभे ॥ ५०  
 रोचते मे सदा वासो येन कार्येण तच्छृणु ।  
 मन्मना मम भक्तश्च मयि सर्वार्पितक्रियः ॥ ५१  
 यथा मोक्षमिहाज्ञोति ह्यन्यत्र न तथा क्वचित् ।  
 एतन्मम पुरं दिव्यं गुह्याद् गुह्यतरं महत् ॥ ५२  
 ब्रह्मादयस्तु जानन्ति येऽपि सिद्धा मुमुक्षवः ।  
 अतः प्रियतमं क्षेत्रं तस्माच्चेह रतिर्मम ॥ ५३  
 विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्ष्यते वा कदाचन ।  
 महत् क्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिदं स्मृतम् ॥ ५४  
 नैमिषेऽथ कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे ।  
 स्नानात् संसेविताद् वापि न मोक्षः प्राप्यते यतः ॥ ५५  
 इह सम्प्राप्यते येन तत एतद् विशिष्यते ।  
 प्रयागे च भवेन्मोक्ष इह वा मत्परिग्रहात् ॥ ५६

इस प्रकार समस्त भुवनोंके पालक जगदीश्वर शंकरने अपने प्रिय गणेश्वरोंको साथ लेकर उस विविध प्रकारके विशाल वृक्षोंसे युक्त तथा उन्मत्त और हर्ष प्रदान करनेवाले उपवनको हिमालयकी पुत्री पार्वतीदेवीको दिखाया ॥ ३८—४४ ॥

देवीने पूछा—देव ! अनुपम शोभासे युक्त इस उद्यानको तो आपने दिखला दिया । अब आप पुनः इस क्षेत्रके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन कीजिये । इस क्षेत्रका तथा अविमुक्तका माहात्म्य सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है, अतः आप पुनः मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ४५—४६ ॥

देवाधिदेव शंकर बोले—देवि ! मेरा यह वाराणसी क्षेत्र परम गुह्य है । यह सर्वदा सभी प्राणियोंके मोक्षका कारण है । देवि ! इस क्षेत्रमें नाना प्रकारका स्वरूप धारण करनेवाले नित्य मेरे लोकके अभिलाषी मुक्तात्मा जितेन्द्रिय सिद्धगण मेरा व्रत धारण कर परम योगका अभ्यास करते हैं । अब इस नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्यास, अनेकविध पक्षियोंद्वारा निनादित, कमल और उत्पलके पुष्पोंसे भरे हुए सरोवरोंसे सुशोभित और अप्सराओं तथा गन्धर्वोंद्वारा सदा संसेवित इस शुभमय उपवनमें जिस हेतुसे मुझे सदा निवास करना अच्छा लगता है, उसे सुनो । मेरा भक्त मुझमें मन लगाकर और सारी क्रियाएँ मुझमें समर्पित कर इस क्षेत्रमें जैसी सुगमतासे मोक्ष प्राप्त कर सकता है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त कर सकता । यह मेरी महान् दिव्य नगरी गुह्यसे भी गुह्यतर है । ब्रह्मा आदि जो सिद्ध मुमुक्षु हैं, वे इसके विषयमें पूर्णरूपसे जानते हैं । अतः यह क्षेत्र मुझे परम प्रिय है और इसी कारण इसके प्रति मेरी विशेष रति है । चूँकि मैं कभी भी इस विमुक्त क्षेत्रका त्याग नहीं करता, इसलिये यह महान् क्षेत्र अविमुक्त नामसे कहा जाता है । नैमिष, कुरुक्षेत्र, गङ्गाद्वार और पुष्करमें निवास करने तथा स्नान करनेसे यदि मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती तो इस क्षेत्रमें वह प्राप्त हो जाता है, इसीलिये यह उनसे विशिष्ट है । प्रयागमें अथवा मेरा आश्रय ग्रहण करनेसे काशीमें मोक्ष प्राप्त हो जाता है ॥ ४७—५६ ॥

प्रयागादपि तीर्थाङ्गादिदमेव महत् स्मृतम्।  
 जैगीषव्यः परां सिद्धिं योगतः स महातपाः ॥ ५७  
 अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद् भक्त्या च मम भावनात्।  
 जैगीषव्यो मुनिश्रेष्ठो योगिनां स्थानमिष्यते ॥ ५८  
 ध्यायतस्त्र मां नित्यं योगाग्निर्दीप्यते भृशाम्।  
 कैवल्यं परमं याति देवानामपि दुर्लभम् ॥ ५९  
 अव्यक्तलिङ्गमुनिभिः सर्वसिद्धान्तवेदिभिः।  
 इह सम्प्राप्यते मोक्षो दुर्लभो देवदानवैः ॥ ६०  
 तेभ्यश्चाहं प्रयच्छामि भोगैश्वर्यमनुत्तमम्।  
 आत्मनश्चैव सायुज्यमीप्सितं स्थानमेव च ॥ ६१  
 कुबेरस्तु महायक्षस्तथा सर्वार्पितक्रियः।  
 क्षेत्रसंवसनादेव गणेशत्वमवाप ह ॥ ६२  
 संवर्तो भविता यश्च सोऽपि भक्त्या ममैव तु।  
 इहैवाराध्य मां देवि सिद्धिं यास्यत्यनुत्तमाम् ॥ ६३  
 पराशरसुतो योगी ऋषिव्यासो महातपाः।  
 धर्मकर्ता भविष्यश्च वेदसंस्थाप्रवर्तकः ॥ ६४  
 रंस्यते सोऽपि पद्माक्षिक्षेत्रेऽस्मिन् मुनिपुङ्गवः।  
 ब्रह्मा देवर्षिभिः सार्थं विष्णुर्वायुर्दिवाकरः ॥ ६५  
 देवराजस्तथा शक्रो येऽपि चान्ये दिवौकसः।  
 उपासने महात्मानः सर्वे मामेव सुव्रते ॥ ६६  
 अन्येऽपि योगिनः सिद्धाशछन्नरूपा महाव्रताः।  
 अनन्यमनसो भूत्वा मामिहोपासते सदा ॥ ६७  
 अलर्कश्च पुरीमेतां मत्प्रसादादवाप्स्यति।  
 स चैनां पूर्ववत्कृत्वा चातुर्वर्ण्यश्रमाकुलाम् ॥ ६८  
 स्फीतां जनसमाकीर्णा भक्त्या च सुचिरं नृपः।  
 मयि सर्वार्पितप्राणो मामेव प्रतिपत्स्यते ॥ ६९  
 ततः प्रभृति चार्वद्ग्निं येऽपि क्षेत्रनिवासिनः।  
 गृहिणो लिङ्गिनो वापि मद्भक्ता मत्परायणाः ॥ ७०  
 मत्प्रसादाद् भजिष्यन्ति मोक्षं परमदुर्लभम्।  
 विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः ॥ ७१  
 इह क्षेत्रे मृतः सोऽपि संसारं न पुनर्विशेत्।  
 ये पुनर्निर्ममा धीराः सत्त्वस्था विजितेन्द्रियाः ॥ ७२

यह तीर्थश्रेष्ठ प्रयागसे भी महान् कहा जाता है। महातपस्वी जैगीषव्य मुनि यहाँ परा सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। मुनिश्रेष्ठ जैगीषव्य इस क्षेत्रके माहात्म्यसे तथा भक्तिपूर्वक मेरी भावना करनेसे योगियोंके स्थानको प्राप्त कर लिये हैं। वहाँ नित्य मेरा ध्यान करनेसे योगाग्नि अत्यन्त उद्दीप हो जाती है, जिससे देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ कैवल्य पद प्राप्त हो जाता है। यहाँ सम्पूर्ण सिद्धान्तोंके ज्ञाता एवं अव्यक्त चिह्नवाले मुनियोंद्वारा देवों और दानवोंके लिये दुर्लभ मोक्ष प्राप्त कर लिया जाता है। मैं ऐसे मुनियोंको सर्वोत्तम भोग, ऐश्वर्य, अपना सायुज्य और मनोवाञ्छित स्थान प्रदान करता हूँ। महायक्ष कुबेर, जिन्होंने अपनी सारी क्रियाएँ मुझे अर्पित कर दी थीं, इस क्षेत्रमें निवास करनेके कारण ही गणाधिपत्यको प्राप्त हुए हैं। देवि! जो संवर्तनामक ऋषि होंगे, वे भी मेरे ही भक्त हैं। वे यहीं मेरी आराधना करके सर्वश्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त करेंगे। पद्माक्षिः! जो योगसम्पन्न, धर्मके नियामक और वैदिक कर्मकाण्डके प्रवर्तक होंगे, महातपस्वी मुनिश्रेष्ठ पराशरनन्दन महर्षि व्यास भी इसी क्षेत्रमें निवास करेंगे। सुव्रते! देवर्षियोंके साथ ब्रह्मा, विष्णु, वायु, सूर्य, देवराज इन्द्र तथा जो अन्यान्य देवता हैं, सभी महात्मा मेरी ही उपासना करते हैं। दूसरे भी योगी, सिद्ध, गुप्त रूपधारी एवं महाव्रती अनन्यचित्त होकर यहाँ सदा मेरी उपासना करते हैं ॥ ५७—६७ ॥

अलर्क भी मेरी कृपासे इस पुरीको प्राप्त करेंगे। वे नरेश इसे पहलेकी तरह चारों वर्णों और आश्रमोंसे युक्त, समृद्धिशालिनी और मनुष्योंसे परिपूर्ण कर देंगे। तत्पश्चात् चिरकालतक भक्तिपूर्वक मुझमें प्राणोंसहित अपना सर्वस्व समर्पित करके मुझे ही प्राप्त कर लेंगे। सुन्दर अङ्गोंवाली देवि! तभीसे इस क्षेत्रमें निवास करनेवाले जो भी मत्परायण मेरे भक्त, चाहे वे गृहस्थ हों अथवा संन्यासी, मेरी कृपासे परम दुर्लभ मोक्षको प्राप्त कर लेंगे। जो मनुष्य धर्मत्यागका प्रेमी और विषयोंमें आसक्त चित्तवाला भी हो, वह भी यदि इस क्षेत्रमें प्राणत्याग करता है तो उसे पुनः संसारमें नहीं आना पड़ता। सुव्रते! फिर जो ममतारहित, धैर्यशाली, पराक्रमी, जितेन्द्रिय,

व्रतिनश्च निरारम्भः सर्वे ते मयि भाविताः ।  
 देहभद्रं समासाद्य धीमन्तः सङ्घवर्जिताः ।  
 गता एव परं मोक्षं प्रसादान्मम सुब्रते ॥ ७३  
 जन्मान्तरसहस्रेषु युञ्जन् योगमवानुयात् ।  
 तमिहैव परं मोक्षं मरणादधिगच्छति ॥ ७४  
 एतत् संक्षेपतो देवि क्षेत्रस्यास्य महत्फलम् ।  
 अविमुक्तस्य कथितं मया ते गुह्यमुत्तमम् ॥ ७५  
 अतः परतरं नास्ति सिद्धिगुह्यं महेश्वरि ।  
 एतद् बुद्ध्यन्ति योगज्ञा ये च योगेश्वरा भुवि ॥ ७६  
 एतदेव परं स्थानमेतदेव परं शिवम् ।  
 एतदेव परं ब्रह्म एतदेव परं पदम् ॥ ७७  
 वाराणसी तु भुवनत्रयसारभूता  
 रम्या सदा मम पुरी गिरिराजपुत्रि ।

अत्रागता विविधदुष्कृतकारिणोऽपि

पापक्षयाद् विरजसः प्रतिभान्ति मर्त्याः ॥ ७८  
 एतत्स्मृतं प्रियतमं मम देवि नित्यं  
 क्षेत्रं विचित्रतरुगुल्मलतासुपुष्पम् ।  
 अस्मिन् मृतास्तनुभृतः पदमानुवन्ति  
 मूर्खांगमेन रहितापि न संशयोऽत्र ॥ ७९

सूत उवाच

एतस्मिन्नतरे देवो देवीं प्राह गिरीन्द्रजाम् ।  
 दातुं प्रसादाद् यक्षाय वरं भक्ताय भामिनि ॥ ८०  
 भक्तो मम वरारोहे तपसा हतकिल्बिषः ।  
 अहो वरमसौ लब्ध्युमस्मत्तो भुवनेश्वरि ॥ ८१  
 एवमुक्त्वा ततो देवः सह देव्या जगत्पतिः ।  
 जगाम यक्षो यत्रास्ते कृशो धमनिसन्ततः ॥ ८२  
 ततस्तं गुह्यकं देवी दृष्टिपातैर्नीक्षती ।  
 श्वेतवर्णं विचर्माणं स्नायुबद्धास्थिपञ्चरम् ॥ ८३  
 देवी प्राह तदा देवं दशयन्ती च गुह्यकम् ।  
 सत्यं नाम भवानुग्रो देवैरुक्तस्तु शङ्कर ॥ ८४  
 ईदूशे चास्य तपसि न प्रयच्छसि यद्वरम् ।  
 अतः क्षेत्रे महादेव पुण्ये सम्यगुपासिते ॥ ८५  
 कथमेवं परिक्लेशं प्राप्तो यक्षकुमारकः ।  
 शीघ्रमस्य वरं यच्छ प्रसादात् परमेश्वर ॥ ८६  
 एवं मन्वादयो देव वदन्ति परमर्षयः ।  
 रुष्टाद् वा चाथ तुष्टाद् वा सिद्धिस्तूभयतो भवेत् ।  
 भोगप्राप्तिस्तथा राज्यमन्ते मोक्षः सदाशिवात् ॥ ८७

ब्रतधारी, आरम्भरहित, बुद्धिमान् और आसक्तिहीन हैं, वे सभी मुझमें मन लगाकर यहाँ शरीरका त्याग करके मेरी कृपासे परम मोक्षको ही प्राप्त हुए हैं। हजारों जन्मोंमें योगका अभ्यास करनेसे जो मोक्ष प्राप्त होता है, वह परम मोक्ष यहाँ मरनेसे ही प्राप्त हो जाता है। देवि ! मैंने तुमसे इस अविमुक्त क्षेत्रके इस उत्तम, गुह्य एवं महान् फलको संक्षेपरूपसे वर्णन किया है। महेश्वर ! भूतलपर इससे बढ़कर सिद्धिदाता दूसरा कोई गुह्य स्थान नहीं है। इसे जो योगेश्वर एवं योगके ज्ञाता हैं, वे ही जानते हैं। यही परमोत्कृष्ट स्थान है, यही परम कल्याणकारक है, यही परब्रह्म है और यही परमपद है। गिरिराजपुत्रि ! मेरी रमणीय वाराणसीपुरी तो सदा त्रिभुवनकी सारभूता है। अनेकों प्रकारके पाप करनेवाले मानव भी यहाँ आकर पापोंके नष्ट हो जानेसे पापमुक्त हो सुशोभित होने लगते हैं। देवि ! विचित्र वृक्षों, गुल्मों, लताओं और सुगन्धित पुष्पोंसे युक्त यह क्षेत्र मेरे लिये सदा प्रियतम कहा जाता है। वेदाध्ययनसे रहित मूर्ख प्राणी भी यदि यहाँ मरते हैं तो परम पदको प्राप्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ६८—७९ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! इसी बीच महादेवजीने गिरिराजकुमारी पार्वतीदेवीसे भक्तराज यक्षको कृपारूप वर प्रदान करनेके लिये यों कहा—‘भामिनि ! वह मेरा भक्त है। वरारोहे ! तपस्यासे उसके पाप नष्ट हो चुके हैं, अतः भुवनेश्वरि ! वह अब हमलोगोंसे वर प्राप्त करनेका अधिकारी हो गया है।’ तदनन्तर ऐसा कहकर जगदीश्वर महादेव पार्वतीदेवीके साथ उस स्थानके लिये चल पड़े, जहाँ धमनियोंसे व्यास दुर्बल यक्ष वर्तमान था। वहाँ पहुँचकर पार्वती देवी दृष्टि धुमाकर उस गुह्यककी ओर देखने लगीं, जिसका शरीर श्वेत रङ्गका हो गया था, चमड़ा गल गया था और अस्थिपंजर नसोंसे आबद्ध था। तब उस गुह्यकको दिखलाती हुई देवीने महादेवजीसे कहा—‘शंकर ! इस प्रकारकी घोर तपस्यामें निरत इसे आप जो वर नहीं प्रदान कर रहे हैं, इस कारण देवतालोग आपको जो अत्यन्त निष्ठुर बतलाते हैं, वह सत्य ही है। महादेव ! इस पुण्यक्षेत्रमें भलीभाँति उपासना करनेपर भी इस यक्षकुमारको इस प्रकारका महान् कष्ट कैसे प्राप्त हुआ ? अतः परमेश्वर ! कृपा करके इसे शीघ्र ही वरदान दीजिये। देव ! मनु आदि परमर्षि ऐसा कहते हैं कि सदाशिव चाहे रुष्ट हों अथवा तुष्ट—दोनों प्रकारसे उनसे सिद्धि, भोगकी प्राप्ति, राज्य तथा अन्तमें मोक्षकी प्राप्ति होती ही है।’

एवमुक्तस्ततो देवः सह देव्या जगत्पतिः ।  
जगाम यक्षो यत्रास्ते कृशो धमनिसंततः ॥ ८८  
तं दृष्ट्वा प्रणतं भक्त्या हरिकेशं वृषध्वजः ।  
दिव्यं चक्षुरदात् तस्मै येनापश्यत् स शङ्करम् ॥ ८९  
अथ यक्षस्तदादेशाच्छैरुन्मील्य चक्षुषी ।  
अपश्यत् सगणं देवं वृषध्वजमुपस्थितम् ॥ ९०

देवदेव उवाच

वरं ददामि ते पूर्वं त्रैलोक्ये दर्शनं तथा ।  
सावर्ण्यं च शरीरस्य पश्य मां विगतञ्चरः ॥ ९१

सूत उवाच

ततः स लब्ध्वा तु वरं शरीरेणाक्षतेन च ।  
पादयोः प्रणतस्तस्थौ कृत्वा शिरसि चाञ्चलिम् ॥ ९२  
उवाचाथ तदा तेन वरदोऽस्मीति चोदितः ।  
भगवन् भक्तिमव्यग्रां त्वच्यनन्यां विधत्स्व मे ॥ ९३  
अन्नदत्वं च लोकानां गाणपत्यं तथाक्षयम् ।  
अविमुक्तं च ते स्थानं पश्येयं सर्वदा यथा ॥ ९४  
एतदिच्छामि देवेश त्वत्तो वरमनुत्तमम् ॥ ९५

देवदेव उवाच

जरामरणसंत्यक्तः सर्वरोगविवर्जितः ।  
भविष्यसि गणाध्यक्षो धनदः सर्वपूजितः ॥ ९६  
अजेयश्चापि सर्वेषां योगैश्वर्य समाध्रितः ।  
अन्नदश्चापि लोकेभ्यः क्षेत्रपालो भविष्यसि ॥ ९७  
महाबलो महासत्त्वो ब्रह्मण्यो मम च प्रियः ।  
त्र्यक्षश्च दण्डपाणिश्च महायोगी तथैव च ॥ ९८  
उद्भ्रमः सम्भ्रमश्चैव गणौ ते परिचारकौ ।  
तवाज्ञया करिष्येते लोकस्योदभ्रमसम्भ्रमौ ॥ ९९

सूत उवाच

एवं स भगवांस्तत्र यक्षं कृत्वा गणेश्वरम् ।  
जगाम वासं देवेशः सह तेन महेश्वरः ॥ १००

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये दण्डपाणिवरप्रदानं नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके वाराणसी-माहात्म्यमें दण्डपाणि-वरप्रदान नामक एक सौ असीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८० ॥

ऐसा कहे जानेपर जगदीश्वर महादेव पार्वतीके साथ उस स्थानके निकट गये जहाँ धमनियोंसे व्यास कृशकय यक्ष स्थित था । (उनकी आहट पाकर यक्ष उनके चरणोंपर गिर पड़ा ।) इस प्रकार उस हरिकेशको भक्तिपूर्वक चरणोंमें पड़ा हुआ देखकर शिवजीने उसे दिव्य चक्षु प्रदान किया जिससे वह शंकरका दर्शन कर सके । तदनन्तर यक्षने महादेवजीके आदेशसे धीरेसे अपने दोनों नेत्रोंको खोलकर गणसहित वृषध्वज महादेवजीको सामने उपस्थित देखा ॥ ८०—९० ॥

देवाधिदेव शंकरने कहा—यक्ष ! अब तुम कष्टहित होकर मेरी ओर देखो । मैं तुम्हें पहले वह वर देता हूँ जिससे तुम्हारे शरीरका वर्ण सुन्दर हो जाय तथा तुम त्रिलोकीमें देखनेयोग्य हो जाओ ॥ ९१ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! तत्पश्चात् वरदान पाकर वह अक्षत शरीरसे युक्त हो चरणोंपर गिर पड़ा, फिर मस्तकपर हाथ जोड़कर सम्मुख खड़ा हो गया और बोला—‘भगवन् ! आपने मुझसे कहा है कि ‘मैं वरदाता हूँ’ तो मुझे ऐसा वरदान दीजिये कि आपमें मेरी अनन्य एवं अटल भक्ति हो जाय । मैं अक्षय अन्नका दाता तथा लोकोंके गणोंका अधीश्वर हो जाऊँ, जिससे आपके अविमुक्त स्थानका सर्वदा दर्शन करता रहूँ । देवेश ! मैं आपसे यही उत्तम वर प्राप्त करना चाहता हूँ ॥ ९२—९५ ॥

देवदेवने कहा—यक्ष ! तुम जरा-मरणसे विमुक्त, सम्पूर्ण रोगोंसे रहित, सबके द्वारा सम्मानित धनदाता गणाध्यक्ष होओगे । तुम सभीके लिये अजेय, योगैश्वर्यसे युक्त, लोकोंके लिये अन्नदाता, क्षेत्रपाल, महाबली, महान् पराक्रमी, ब्राह्मणभक्त, मेरा प्रिय, त्रिनेत्रधारी, दण्डपाणि तथा महायोगी होओगे । उद्भ्रम और सम्भ्रम—ये दोनों गण तुम्हारे सेवक होंगे । ये उद्भ्रम और सम्भ्रम तुम्हारी आज्ञासे लोकका कार्य करेंगे ॥ ९६—९९ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! इस प्रकार देवेश भगवान् महेश्वर वहाँ उस यक्षको गणेश्वर बनाकर उसके साथ अपने निवासस्थानको लौट गये ॥ १०० ॥

## एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय

अविमुक्तक्षेत्र (वाराणसी)-का माहात्म्य

सूत उवाच

इमां पुण्योद्दवां स्निग्धां कथां पापप्रणाशिनीम्।  
शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे सुविशुद्धास्तपोधनाः॥ १  
गणेश्वरपतिं दिव्यं रुद्रतुल्यपराक्रमम्।  
सनत्कुमारो भगवानपृच्छन्नन्दिकेश्वरम्॥ २  
ब्रूहि गुह्यं यथातत्त्वं यत्र नित्यं भवः स्थितः।  
माहात्म्यं सर्वभूतानां परमात्मा महेश्वरः॥ ३  
घोररूपं समास्थाय दुष्करं देवदानवैः।  
आभूतसम्लवं यावत् स्थाणुभूतो महेश्वरः॥ ४

नन्दिकेश्वर उवाच

पुरा देवेन यत् प्रोक्तं पुराणं पुण्यमुक्तमम्।  
तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य महेश्वरम्॥ ५  
ततो देवेन तुष्टेन उमायाः प्रियकाम्यया।  
कथितं भुवि विख्यातं यत्र नित्यं स्वयं स्थितः॥ ६  
रुद्रस्यार्थासनगता मेरुशृङ्गे यशस्विनी।  
महादेवं ततो देवी प्रणता परिपृच्छति॥ ७

देव्युवाच

भगवन् देवदेवेश चन्द्रार्धकृतशेखर।  
धर्मं प्रब्रूहि मर्त्यानां भुवि चैवोर्ध्वरेतसाम्॥ ८  
जसं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तसं कृतं च यत्।  
ध्यानाध्ययनसम्पन्नं कथं भवति चाक्षयम्॥ ९  
जन्मान्तरसहस्रेण यत् पापं पूर्वसंचितम्।  
कथं तत् क्षयमायाति तन्ममाचक्षव शङ्कर॥ १०  
यस्मिन् व्यवस्थितो भक्त्या तुष्यसि त्वं महेश्वर।  
व्रतानि नियमाश्वैव आचारो धर्म एव च॥ ११  
सर्वसिद्धिकरं यत्र ह्यक्षयगतिदायकम्।  
वक्तुमर्हसि तत् सर्वं परं कौतूहलं हि मे॥ १२

सूतजी कहते हैं—परम विशुद्ध हृदयवाले तपस्वी ऋषियो! आप सब लोग इस उत्तम कथाको जो पापकी विनाशिनी और पुण्यको उत्पन्न करनेवाली है, सुनिये! एक बार भगवान् सनत्कुमारने रुद्रके ही समान पराक्रमी तथा गणेश्वरोंके स्वामी दिव्य नन्दिकेश्वरसे पूछा—‘जो सभी जीवोंके परमात्मा महेश्वर तथा देवताओं एवं दानवोंद्वारा दुष्टाप्य हैं, वे महात्मा शंकर घोर स्वरूपको धारण कर सृष्टिसे प्रलयपर्यन्त स्थाणुरूपमें जहाँ नित्य अवस्थित रहते हैं, उस गोपनीय (स्थान)-को आप रहस्यपूर्वक हमलोगोंको बतलाइये’॥ १—४॥

नन्दिकेश्वरने कहा—पूर्वकालमें महादेवने पुण्य प्रदान करनेवाले जिस श्रेष्ठ पुराणका वर्णन किया था, वह सब मैं महेश्वरको नमस्कार कर वर्णन कर रहा हूँ। किसी समय उमाको प्रसन्न करनेकी इच्छासे प्रसन्नमना महादेवने जिस स्थानपर वे सदा स्वयं विराजमान रहते हैं, उस विश्विख्यात स्थानका वर्णन किया था। एक बार सुमेरुके शिखरपर रुद्रके आधे आसनपर विराजमान यशस्विनी देवी उमाने विनयभावसे महादेवजीसे प्रश्न किया॥ ५—७॥

देवीने पूछा—अर्धचन्द्रसे सुशोभित मस्तकवाले देवदेवेश्वर भगवन्! भूतलपर वर्तमान ऊर्ध्वरेता प्राणियोंके धर्मको विस्तारसे बतलाइये। साथ ही यह भी बतलाइये कि जप, दान, हवन, यज्ञ, तपस्या, शुभ कर्म, ध्यान और अध्ययन आदि किस प्रकार अक्षयभावको प्राप्त होते हैं? शंकर! हजारों पूर्वजन्मोंमें जो पाप सञ्चित हुए हैं, वे किस प्रकार नष्ट होते हैं? यह आप मुझे स्पष्ट बतलाइये। महेश्वर! जिस स्थानपर स्थित होकर आप भक्तिसे प्रसन्न होते हैं तथा ब्रत, नियम, आचार और धर्म जहाँ सभी सिद्धियोंके प्रदाता बन जाते हैं एवं अनश्वर गति प्रदान करते हैं, ये सभी बातें आप बतलाइये; क्योंकि इसे जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ी ही उत्कण्ठा है॥ ८—१२॥

महेश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्यानां गुह्यमुत्तमम्।  
 सर्वक्षेत्रेषु विख्यातमविमुक्तं प्रिय मम ॥ १३  
 अष्टषष्ठिः पुरा प्रोक्ता स्थानानां स्थानमुत्तमम्।  
 यत्र साक्षात् स्वयं रुद्रः कृत्तिवासाः स्वयं स्थितः ॥ १४  
 यत्र संनिहितो नित्यमविमुक्ते निरन्तरम्।  
 तत्क्षेत्रं न मया मुक्तमविमुक्तं ततः स्मृतम् ॥ १५  
 अविमुक्ते परा सिद्धिरविमुक्ते परा गतिः।  
 जसं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तसं कृतं च यत् ॥ १६  
 ध्यानमध्ययनं दानं सर्वं भवति चाक्षयम्।  
 जन्मान्तरसहस्रेण यत् पापं पूर्वसंचितम् ॥ १७  
 अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत् सर्वं ब्रजति क्षयम्।  
 अविमुक्ताग्निना दग्धमग्नौ तूलमिवाहितम् ॥ १८  
 ब्राह्मणः क्षत्रिया वैश्या: शूद्रा वै वर्णसंकराः।  
 कृमिल्लेच्छाश्रु ये चान्ये संकीर्णाः पापयोनयः ॥ १९  
 कीटाः पिपीलिकाश्रैव ये चान्ये मृगपक्षिणः।  
 कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते शृणु प्रिये ॥ २०  
 चन्द्रार्धमौलिनः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः।  
 शिवे मम पुरे देवि जायन्ते तत्र मानवाः ॥ २१  
 अकामो वा सकामो वा हृपि तिर्यग्गतोऽपि वा।  
 अविमुक्ते त्यजन् प्राणान् मम लोके महीयते ॥ २२  
 अविमुक्तं यदा गच्छेत् कदाचित् कालपर्ययात्।  
 अश्मना चरणौ भित्त्वा तत्रैव निधनं ब्रजेत् ॥ २३  
 अविमुक्तं गतो देवि न निर्गच्छेत् ततः पुनः।  
 सोऽपि मत्पदमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ २४  
 वस्त्रापथं रुद्रकोटिं सिद्धेश्वरमहालयम्।  
 गोकर्णं रुद्रकर्णं च सुवर्णाक्षं तथैव च ॥ २५  
 अमरं च महाकालं तथा कायावरोहणम्।  
 एतानि हि पवित्राणि सांनिध्यात् संध्ययोद्वयोः ॥ २६  
 कालिञ्ज्रवनं चैव शंकुकर्णं स्थलेश्वरम्।  
 एतानि च पवित्राणि सांनिध्याद्विं मम प्रिये।  
 अविमुक्ते वरारोहे त्रिसंध्यं नात्र संशयः ॥ २७  
 हरिश्चन्द्रं परं गुह्यं गुह्यमाप्नातकेश्वरम्।  
 जालेश्वरं परं गुह्यं गुह्यं श्रीपर्वतं तथा ॥ २८

महेश्वरने कहा—देवि! सुनो, मैं तुम्हें गुप्तसे भी गुप्त उत्तम विषय बतला रहा हूँ। सभी क्षेत्रोंमें प्रसिद्ध अविमुक्तक्षेत्र (वाराणसी) मुझे परम प्रिय है। पहले मैं अड़सठ श्रेष्ठ स्थानोंका वर्णन कर चुका हूँ, जहाँ गजत्रम धारण कर मैं साक्षात् रुद्रस्वरूपसे विराजमान रहता हूँ; परंतु अविमुक्तक्षेत्र (काशी) —मैं मैं नित्य-निरन्तर निवास करता हूँ। उस क्षेत्रको मैं कभी नहीं छोड़ता, इसीलिये इसे अविमुक्त कहा जाता है। उस अविमुक्त क्षेत्रमें परा सिद्धि और परमगति प्राप्त होती है। वहाँ किया गया जप, दान, हवन, यज्ञ, तप, शुभ कर्म, ध्यान, अध्ययन, दान आदि सभी अक्षय हो जाते हैं। अविमुक्त क्षेत्रमें प्रवेश करनेवाले व्यक्तिके हजारों पूर्व जन्मोंमें जो पाप संचित होते हैं वे सभी नष्ट हो जाते हैं। वे अविमुक्तरूपी अग्निमें उसी प्रकार जल जाते हैं जैसे अग्निमें समर्पित की हुई रूई। प्रिये! यदि अविमुक्त क्षेत्रमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर, कृमि, म्लेच्छ एवं अन्य निम्नस्तरके पापयोनिवाले कीट, चीटें, पशु, पक्षी आदि कालके वशीभूत हो मृत्युको प्राप्त होते हैं, (तो उनकी क्या गति होती है, उसे) सुनो। देवि! वे सभी मानव-शरीर धारणकर मस्तकपर अर्धचन्द्रसे सुशोभित, ललाटमें तृतीय नेत्रसे युक्त शिवस्वरूप होकर मेरे शिवपुरमें जन्म लेते हैं। चाहे सकाम हो या निष्काम अथवा तिर्यग्योनिगत ही क्यों न हो, यदि वह अविमुक्त क्षेत्रमें प्राणोंका त्याग करता है तो मेरे लोकमें पूजित होता है। देवि! यदि मनुष्य कालक्रमानुसार कभी अविमुक्त क्षेत्रमें पहुँच जाय तो वहाँ पत्थरसे अपने चरणोंको तोड़कर स्थित रहे और पुनः अविमुक्त क्षेत्रसे बाहर न जाय, वहीं मृत्युको प्राप्त हो जाय तो वह भी मेरे पदको प्राप्त होता है। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १३—२४ ॥

प्रिये! वस्त्रापथ (जूनागढ़, गिरिनार), रुद्रकोटि, सिद्धेश्वर, महालय, गोकर्ण, रुद्रकर्ण तथा सुवर्णाक्ष, अमरकण्टक, महाकाल (उज्जैनी) और कायावरोहण (कारावार, गुजरात) —ये सभी स्थान प्रातः और संध्याकालमें मेरी संनिधिसे पवित्र माने जाते हैं। इसी प्रकार कालिञ्ज्रवन, शङ्कुकर्ण और स्थलेश्वर (थानेश्वर) —ये भी मेरी संनिधिके कारण ही पवित्र हैं। वरारोहे! अविमुक्त क्षेत्रमें मैं तीनों संध्याओंमें स्थित रहता हूँ—इसमें संदेह नहीं है। प्रिये! हरिश्चन्द्र, आप्रातकेश्वर, जालेश्वर, श्रीपर्वत,

महालयं तथा गुह्यं कृमिचण्डेश्वरं शुभम्।  
गुह्यातिगुह्यं केदारं महाभैरवमेव च ॥ २९  
अष्टावेतानि स्थानानि सांनिध्याद्विं मम प्रिये ।  
अविमुक्ते वरारोहे त्रिसंध्यं नात्र संशयः ॥ ३०  
यानि स्थानानि श्रूयन्ते त्रिषु लोकेषु सुन्नते ।  
अविमुक्तस्य पादेषु नित्यं संनिहितानि वै ॥ ३१  
अथोत्तरां कथां दिव्यामविमुक्तस्य शोभने ।  
स्कन्दो वक्ष्यति माहात्म्यमृषीणां भावितात्मनाम् ॥ ३२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽविमुक्तमाहात्म्ये एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अविमुक्त-माहात्म्य नामक एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८१ ॥

## एक सौ बयासीवाँ अध्याय

### अविमुक्त-माहात्म्य

सूत उवाच

कैलासपृष्ठमासीनं स्कन्दं ब्रह्मविदां वरम्।  
पप्रच्छुर्त्रैषयः सर्वे सनकाद्यास्तपोथनाः ॥ १  
तथा राजर्षयः सर्वे ये भक्तास्तु महेश्वरे ।  
ब्रूहि त्वं स्कन्द भूलोके यत्र नित्यं भवः स्थितः ॥ २

स्कन्द उवाच

महात्मा सर्वभूतात्मा देवदेवः सनातनः ।  
घोररूपं समास्थाय दुष्करं देवदानवैः ॥ ३  
आभूतसम्लवं यावत् स्थाणुभूतः स्थितः प्रभुः ।  
गुह्यानां परमं गुह्यमविमुक्तमिति स्मृतम् ॥ ४  
अविमुक्ते सदा सिद्धिर्यत्र नित्यं भवः स्थितः ।  
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं यदुक्तं त्वीश्वरेण तु ॥ ५  
स्थानान्तरं पवित्रं च तीर्थमायतनं तथा ।  
श्मशानसंस्थितं वेशम् दिव्यमन्तर्हितं च यत् ॥ ६  
भूलोके नैव संयुक्तमन्तरिक्षे शिवालयम् ।  
अयुक्तास्तु न पश्यन्ति युक्ताः पश्यन्ति चेतसा ॥ ७  
ब्रह्मचर्यव्रतोपेताः सिद्धा वेदान्तकोविदाः ।  
आदेहपतनाद् यावत् तत् क्षेत्रं यो न मुच्छति ॥ ८

महालय तथा शुभदायक कृमिचण्डेश्वर, केदार और महाभैरव—ये आठ स्थान परम गुह्य हैं और मेरी संनिधिसे पवित्र माने जाते हैं। किंतु सुन्दरि! अविमुक्तक्षेत्रमें मैं तीनों संध्याओंमें निवास करता हूँ—इसमें संदेह नहीं है। सुन्नते! तीनों लोकोंमें जो भी पवित्र स्थान सुने जाते हैं, वे सभी अविमुक्त क्षेत्रके चरणोंमें सदा उपस्थित रहते हैं। शोभने! अविमुक्त क्षेत्रकी इसके बादकी दिव्य कथा और माहात्म्य स्कन्द आत्मद्रष्टा त्रृष्णियोंसे कहेंगे ॥ २५—३२ ॥

सूतजी कहते हैं—त्रृष्णियो! एक समय सनक आदि तपस्वी ब्रह्मर्षिगण, सकल राजर्षिवृन्द एवं महेश्वरके भक्तगणोंने कैलास पर्वतके शिखरपर बैठे हुए ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ स्कन्दसे पूछा—‘स्कन्द! मृत्युलोकमें जहाँ भगवान् शंकर सदैव विराजमान रहते हैं, वह स्थान आप (हमें) बतलाइये ॥ १-२ ॥

स्कन्दने कहा—सभी प्राणियोंके आत्मस्वरूप, महात्मा, सनातन, देवाधिदेव, सामर्थ्यशाली, महादेव देवता एवं दानवोंसे दुष्प्राप्य, घोररूप धारणकर प्रलयपर्यन्त जहाँ स्थिररूपसे निवास करते हैं, उसे अत्यन्त गुप्त अविमुक्त क्षेत्र कहा जाता है। जहाँ शिव सदा स्थित रहते हैं, उस अविमुक्तक्षेत्रमें सिद्धि सदा सुलभ है। इस स्थानका जो माहात्म्य भगवान् शङ्करने स्वयं कहा है, उसे सुनिये। यह स्थान परम पवित्र तीर्थ और देवालय है। महाश्मशानपर स्थित जो दिव्य एवं सुगुप्त मन्दिर है, उसका पृथ्वीलोकसे सम्बन्ध नहीं है। वह शिवका मन्दिर अन्तरिक्षमें है। योगी व्यक्ति ही ज्ञानद्वारा उसका साक्षात्कार कर पाते हैं, किंतु जो योगसे रहित हैं वे उसे नहीं देख पाते। जो ब्रह्मचारी, सिद्ध और वेदान्तको जाननेवाले मृत्युपर्यन्त उस स्थानका परित्याग नहीं करते,

ब्रह्मचर्यव्रतैः सम्यक् सम्यगिष्टं मखैर्भवेत् ।  
 अपापात्मा गतिः सर्वा या तूक्ता च क्रियावताम् ॥ ९  
 यस्त्र निवसेद् विप्रोऽसंयुक्तात्मासमाहितः ।  
 त्रिकालमपि भुञ्जानो वायुभक्षसमो भवेत् ॥ १०  
 निमेषमात्रमपि यो ह्यविमुक्ते तु भक्तिमान् ।  
 ब्रह्मचर्यसमायुक्तः परमं प्राप्नुयात् तपः ॥ ११  
 योऽत्र मासं वसेद् धीरो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।  
 सम्यक् तेन व्रतं चीर्ण दिव्यं पाशुपतं महत् ॥ १२  
 जन्ममृत्युभयं तीर्त्वा स याति परमां गतिम् ।  
 नैःश्रेयसीं गतिं पुण्यां तथा योगगतिं व्रजेत् ॥ १३  
 न हि योगगतिर्दिव्या जन्मान्तरशतैरपि ।  
 प्राप्यते क्षेत्रमाहात्म्यात् प्रभावाच्छंकरस्य तु ॥ १४  
 ब्रह्महा योऽभिगच्छेत् तु अविमुक्तं कदाचन ।  
 तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद् ब्रह्महत्या निवर्तते ॥ १५  
 आदेहपतनाद् यावत् क्षेत्रं यो न विमुच्न्ति ।  
 न केवलं ब्रह्महत्या प्राककृतं च निवर्तते ॥ १६  
 प्राप्य विश्वेश्वरं देवं न स भूयोऽभिजायते ।  
 अनन्यमानसो भूत्वा योऽविमुक्तं न मुच्न्ति ॥ १७  
 तस्य देवः सदा तुष्टः सर्वान् कामान् प्रयच्छति ।  
 द्वारं यत् सांख्ययोगानां स तत्र वसति प्रभुः ॥ १८  
 सगणो हि भवो देवो भक्तानामनुकम्पया ।  
 अविमुक्तं परं क्षेत्रमविमुक्ते परा गतिः ॥ १९  
 अविमुक्ते परा सिद्धिरविमुक्ते परं पदम् ।  
 अविमुक्तं निषेवेत देवर्षिगणसेवितम् ॥ २०  
 यदीच्छेन्मानवो धीमान् न पुनर्जायते क्वचित् ।  
 मेरोः शक्तो गुणान् वक्तुं द्वीपानां च तथैव च ॥ २१  
 समुद्राणां च सर्वेषां नाविमुक्तस्य शक्यते ।  
 अन्तकाले मनुष्याणां छिद्यमानेषु मर्मसु ॥ २२  
 वायुना प्रेर्यमाणानां स्मृतिर्नैवोपजायते ।  
 अविमुक्ते ह्यन्तकाले भक्तानामीश्वरः स्वयम् ॥ २३  
 कर्मभिः प्रेर्यमाणानां कर्णजापं प्रयच्छति ।  
 मणिकण्ड्या त्यजन् देहं गतिमिष्टां व्रजेन्नरः ॥ २४

उन्हें वह पवित्र गति प्राप्त होती है, जो ब्रह्मचर्यपूर्वक यज्ञोंद्वारा भलीभौंति अनुष्ठान करनेपर क्रियासम्पन्न व्यक्तियोंके लिये कही गयी है। जो विप्र समाधिसे रहित, योगसे शून्य एवं तीनों समय भोजन करते हुए भी वहाँ निवास करता है वह वायुभक्षीके समान माना जाता है। इस अविमुक्त क्षेत्रमें क्षणभर भी ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करनेवाला भक्तिमान् व्यक्ति परम तपको प्राप्त करता है। जो धीर पुरुष अल्प भोजन करते हुए इन्द्रियोंको वशमें कर एक मासतक यहाँ निवास करता है, वह (मानो) महान् दिव्य पाशुपत-व्रतका अनुष्ठान कर लेता है। वह पुरुष जन्म और मृत्युके भयको पारकर परमगतिको प्राप्त करता है तथा पुण्यदायक मोक्ष एवं योगगतिका अधिकारी हो जाता है। जिस दिव्य योगगतिको सैकड़ों जन्मोंमें भी नहीं प्राप्त किया जा सकता, वह स्थानके माहात्म्य और शंकरके प्रभावसे यहाँ प्राप्त हो जाती है ॥ ३—१४ ॥

ब्रह्महत्या करनेवाला व्यक्ति भी यदि किसी समय इस अविमुक्तक्षेत्रमें चला जाता है तो इस क्षेत्रके प्रभावसे उसकी ब्रह्महत्या निवृत्त हो जाती है। जो मृत्युपर्यन्त इस क्षेत्रका परित्याग नहीं करता, उसकी केवल ब्रह्महत्या ही नहीं, अपितु पहलेके किये हुए पाप भी नष्ट हो जाते हैं। वह भगवान् विश्वेश्वरको प्राप्तकर पुनः संसारमें जन्म नहीं ग्रहण करता। जो अनन्यचित्त हो अविमुक्त क्षेत्रका परित्याग नहीं करता, उसपर भगवान् शङ्कर सदा प्रसन्न रहते हैं और उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण कर देते हैं। जो सांख्य और योगका द्वारस्वरूप है उस स्थानपर भक्तोंपर अनुकम्पा करनेके लिये सर्वशक्तिसम्पन्न भगवान् शङ्कर गणोंके साथ निवास करते हैं। अविमुक्त क्षेत्र श्रेष्ठ स्थान है। अविमुक्तमें रहनेसे श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है। अविमुक्तमें रहनेसे परम सिद्धि प्राप्त होती है और अविमुक्तमें रहनेसे श्रेष्ठ स्थान प्राप्त होता है। यदि बुद्धिमान् मनुष्य यह चाहता हो कि मेरा पुनर्जन्म न हो तो उसे देवर्षिगणोंसे सेवित अविमुक्त क्षेत्रमें निवास करना चाहिये। मेर पर्वत, सभी द्वीपों तथा समुद्रोंके गुणोंका वर्णन किया जा सकता है, किंतु अविमुक्त क्षेत्रके गुणोंका वर्णन नहीं किया जा सकता। मृत्युके समय वायुसे प्रेरित मनुष्योंके मर्मस्थानोंके छिन्न हो जानेपर सृति नहीं उत्पन्न होती, किंतु अविमुक्तमें अन्तसमय कर्मोंसे प्रेरित भक्तोंके कानमें स्वयं ईश्वर मन्त्रका जाप करते हैं। मनुष्य मणिकण्डिकामें शारीरका

ईश्वरप्रेरितो याति दुष्प्रापामकृतात्मभिः ।  
अशाश्वतमिदं ज्ञात्वा मानुष्यं बहुकिल्बिषम् ॥ २५  
अविमुक्तं निषेवेत संसारभयमोचनम् ।  
योगक्षेमप्रदं दिव्यं बहुविघ्नविनाशनम् ॥ २६  
विघ्नैश्चालोड्यमानोऽपि योऽविमुक्तं न मुञ्छति ।  
स मुञ्छति जरां मृत्युं जन्म चैतदशाश्वतम् ।  
अविमुक्तप्रसादात् तु शिवसायुज्यमानुयात् ॥ २७

त्याग करनेपर इष्टगतिको प्राप्त करता है। जो गति अविशुद्ध आत्माओंद्वारा दुष्प्राप्य है, उसे भी वह ईश्वरकी प्रेरणाद्वारा यहाँ प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य अनेक पापोंसे परिपूर्ण इस मानवयोनिको नश्वर समझकर संसार-भयसे छुटकारा देनेवाले, योगक्षेमके प्रदाता, अनेक विघ्नोंके विनाशक, दिव्य अविमुक्त (काशी)-में निवास करता है तथा अनेक विघ्नोंसे आलोड़ित होनेपर भी अविमुक्तको नहीं छोड़ता, वह वृद्धावस्था, मृत्यु और इस नश्वर जन्मसे छुटकारा पा लेता है तथा अविमुक्तके माहात्म्यसे शिवसायुज्यको प्राप्त करता है॥ १५—२७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽविमुक्तमाहात्म्ये द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अविमुक्तमाहात्म्य-वर्णनमें एक सौ वयासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८२ ॥

## एक सौ तिरासीवाँ अध्याय

अविमुक्तमाहात्म्यके प्रसङ्गमें शिव-पार्वतीका प्रश्नोत्तर

देव्युवाच

हिमवन्तं गिरिं त्यक्त्वा मन्दरं गन्धमादनम् ।  
कैलासं निषधं चैव मेरूपृष्ठं महाद्युति ॥ १  
रम्यं त्रिशिखरं चैव मानसं सुमहागिरिम् ।  
देवोद्यानानि रम्याणि नन्दनं वनमेव च ॥ २  
सुरस्थानानि मुख्यानि तीर्थान्यायतनानि च ।  
तानि सर्वाणि संत्यज्य अविमुक्ते रतिः कथम् ॥ ३  
किमत्र सुमहत् पुण्यं परं गुह्यं बदस्व मे ।  
येन त्वं रमसे नित्यं भूतसम्पदगुणैर्युतः ॥ ४  
क्षेत्रस्य प्रवरत्वं च ये च तत्र निवासिनः ।  
तेषामनुग्रहः कश्चित् तत्सर्वं ब्रूहि शङ्कर ॥ ५

शंकर उवाच

अत्यद्भुतमिमं प्रश्नं यत्त्वं पृच्छसि भामिनि ।  
तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ ६  
वाराणस्यां नदी पुण्या सिद्धगन्धर्वसेविता ।  
प्रविष्टा त्रिपथा गङ्गा तस्मिन् क्षेत्रे मम प्रिये ॥ ७  
ममैव प्रीतिरतुला कृत्तिवासे च सुन्दरि ।  
सर्वेषां चैव स्थानानां स्थानं तत्तु यथाधिकम् ॥ ८

देवी पार्वतीने पूछा—कल्याणकारी पतिदेव !  
हिमालयपर्वत, मन्दर, गन्धमादन, कैलास, निषध,  
देवीप्यमान सुमेरुपीठ, मनोहर त्रिशिखर पर्वत एवं अतिशय  
विशाल मानस पर्वत, रमणीय देव-उद्यान, नन्दनवन,  
देवस्थानों, मुख्य तीर्थों और मन्दिरों—इन सभी स्थानोंको  
छोड़कर आपका अविमुक्तक्षेत्रमें इतना अधिक प्रेम क्यों  
है ? यहाँ अतिशय गोपनीय कौन-सा बहुत बड़ा पुण्य  
है, जिससे आप प्रमथोंके साथ यहाँ नित्य रमण करते  
हैं। उस क्षेत्रकी तथा वहाँके निवासियोंकी जो श्रेष्ठता है  
और उन लोगोंपर आपका जो अपूर्व अनुग्रह है—वे  
सभी बातें मुझे बतलाइये ॥ १—५ ॥

शिवजी बोले—भामिनि ! तुम जो प्रश्न कर रही  
हो यह अतिशय अद्भुत है। मैं वह सब स्पष्टरूपसे कह  
रहा हूँ, सुनो। प्रिये ! सिद्धों और गन्धवाँसे सेवित  
त्रिपथगामिनी पुण्यशीला नदी श्रीगङ्गाजी मेरे उस क्षेत्र  
वाराणसीमें प्रविष्ट होती है। सुन्दरि ! कृत्तिवासलिङ्गपर  
मेरा अपार प्रेम है, इसीलिये वह स्थान सभी स्थानोंसे

तेन कार्येण सुश्रोणि तस्मिन् स्थाने रतिर्मम ।  
 तस्मैल्लङ्घे च सांनिध्यं मम देवि सुरेश्वरि ॥ ९  
 क्षेत्रस्य च प्रवक्ष्यामि गुणान् गुणवतां वरे ।  
 याऽश्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १०  
 यदि पापो यदि शठो यदि वाधार्मिको नरः ।  
 मुच्यते सर्वपापेभ्यो ह्यविमुक्तं ब्रजेद् यदि ॥ ११  
 प्रलये सर्वभूतानां लोके स्थावरजङ्गमे ।  
 न हि त्यक्ष्यामि तत्स्थानं महागणशतैर्वृतः ॥ १२  
 यत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः ।  
 वक्त्रं मम महाभागे प्रविशन्ति युगक्षये ॥ १३  
 तेषां साक्षादहं पूजां प्रतिगृह्णामि पार्वति ।  
 सर्वगुहोत्तमं स्थानं मम प्रियतमं शुभम् ॥ १४  
 धन्याः प्रविष्टाः सुश्रोणि मम भक्ता द्विजातयः ।  
 मद्भक्तिपरमा नित्यं ये मद्भक्तास्तु ते नराः ॥ १५  
 तस्मिन् प्राणान् परित्यज्य गच्छन्ति परमां गतिम् ।  
 सदा यजति रुद्रेण सदा दानं प्रयच्छति ॥ १६  
 सदा तपस्वी भवति अविमुक्तस्थितो नरः ।  
 यो मां पूजयते नित्यं तस्य तुष्याम्यहं प्रिये ॥ १७  
 सर्वदानानि यो दद्यात् सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।  
 सर्वतीर्थाभिषिक्तश्च स प्रपद्येत मामिह ॥ १८  
 अविमुक्तं सदा देवि ये ब्रजन्ति सुनिश्चिताः ।  
 ते तिष्ठन्तीह सुश्रोणि मद्भक्ताश्च त्रिविष्टपे ॥ १९  
 मत्प्रसादात् तु ते देवि दीव्यन्ति शुभलोचने ।  
 दुर्धाश्वैव दुर्धर्षी भवन्ति विगतञ्चराः ॥ २०  
 अविमुक्तं शुभं प्राप्य मद्भक्ताः कृतनिश्चयाः ।  
 निधूतपापा विमला भवन्ति विगतञ्चराः ॥ २१

पार्वत्युवाच

दक्षयज्ञस्त्वया देव मत्प्रियार्थे निषूदितः ।  
 अविमुक्तगुणानां तु न तृसिरिह जायते ॥ २२

ईश्वर उवाच

क्रोधेन दक्षयज्ञस्तु त्वत्प्रियार्थे विनाशितः ।  
 महाप्रिये महाभागे नाशितोऽयं वरानने ॥ २३  
 अविमुक्ते यजन्ते तु मद्भक्ताः कृतनिश्चयाः ।  
 न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ २४

त्रेष्ठ है । सुश्रोणि ! इसी कारण मेरा उस स्थानपर अधिक राग है तथा सुरेश्वरि ! उस लिङ्गमें मेरा सदा निवास रहता है । सभी गुणवानोंमें त्रेष्ठ देवि ! अब मैं क्षेत्रके गुणोंका वर्णन करता हूँ जिन्हें सुनकर मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है । पापी, दुष्ट अथवा अधार्मिक मनुष्य भी यदि अविमुक्त (काशी)-में चला जाय तो वह सभी पापोंसे छूट जाता है । सभी प्राणियोंके स्थावर एवं जंगमसे व्यास लोकके प्रलयकालमें भी मैं सैकड़ों विशिष्ट गणोंके साथ रहकर उस स्थानको नहीं छोड़ता । महाभागे ! जहाँ देवता, गन्धर्व, यक्ष, नाग, राक्षस—सभी युगके नाशके समय मेरे मुखमें प्रवेश कर जाते हैं । पार्वति ! उनकी पूजाको मैं साक्षात्-रूपसे ग्रहण करता हूँ । यह शुभदायक अतिशय रहस्यमय स्थान मुझे परम प्रिय है । सुश्रोणि ! वहाँ निवास करनेवाले मेरे भक्त द्विजातिगण धन्य हैं । सदा मेरी भक्तिमें तत्पर जो मेरे भक्त हैं वे वहाँ अपने शरीरका त्याग कर परम गतिको प्राप्त होते हैं । जो मनुष्य अविमुक्त क्षेत्र (काशी)-में निवास करता है, वह सदा रुद्रसूक्तसे पूजा करता है, सदा दान देता है और सदा तपस्यामें रत रहता है । प्रिये ! जो मेरी नित्य पूजा करता है उससे मैं प्रसन्न रहता हूँ । जो सभी प्रकारका दान करता है, सभी तरहके यज्ञोंमें दीक्षित होता है और सभी तीर्थोंके जलोंके अभिषेकसे सम्पन्न है वही यहाँ मुझे प्राप्त करता है । देवि ! जो सदा सुनिश्चित रूपसे अविमुक्त क्षेत्रमें जाते रहते हैं तथा यहाँ निवास करते हैं वे स्वर्गमें भी मेरे भक्त बने रहते हैं । शुभलोचने देवि ! मेरी कृपासे वे देवीप्यमान रहते हैं तथा किसीसे पराजित न होनेवाले, पराक्रमशाली और संतापरहित होते हैं । स्थिर निश्चयवाले मेरे भक्त शुभप्रद अविमुक्तको प्राप्तकर पापरहित, निर्मल और उद्घोश्य हो जाते हैं ॥ ६—२१ ॥

पार्वतीने कहा—देव ! आपने मेरा प्रिय करनेके लिये दक्ष-यज्ञको विनष्ट किया था, किंतु अविमुक्तके गुणोंको सुननेसे मुझे यहाँ संतोष नहीं हो रहा है ॥ २२ ॥

ईश्वर बोले—महाभागे ! तुम्हें प्रसन्न करनेके लिये मैंने क्रोधवश दक्ष-यज्ञका विनाश किया था; क्योंकि वरानने ! तुम तो मेरी अतिशय प्रियतमा हो, इसीलिये उस यज्ञको नष्ट किया था । जो मेरे भक्त अविमुक्तक्षेत्रमें निश्चयपूर्वक यज्ञ करते हैं उनका सैकड़ों करोड़ कल्पोंमें भी पुनः संसारमें आगमन नहीं होता ॥ २३—२४ ॥

देव्युवाच

दुर्लभास्तु गुणा देव अविमुक्ते तु कीर्तिः ।  
सर्वास्तान् मम तत्त्वेन कथयस्व महेश्वर ॥ २५  
कौतूहलं महादेव हृदिस्थं मम वर्तते ।  
तत्सर्वं मम तत्त्वेन आख्याहि परमेश्वर ॥ २६

ईश्वर उवाच

अक्षया ह्यमराश्वैव ह्यदेहाश्व भवन्ति ते ।  
मत्प्रसादाद् वरारोहे मामेव प्रविशन्ति वै ॥ २७  
ब्रूहि ब्रूहि विशालाक्षि किमन्यच्छ्रोतुर्मर्हसि ॥ २८

देव्युवाच

अविमुक्ते महाक्षेत्रे अहो पुण्यमहो गुणाः ।  
न तृसिमधिगच्छामि ब्रूहि देव पुनर्गुणान् ॥ २९

ईश्वर उवाच

महेश्वरि वरारोहे शृणु तांस्तु मम प्रिये ।  
अविमुक्ते गुणा ये तु तथान्यानपि तच्छृणु ॥ ३०  
शाकपर्णाशिनो दान्ताः सम्प्रक्षाल्या मरीचिपाः ।  
दन्तोलूखलिनश्चान्ये अश्मकुट्टास्तथा परे ॥ ३१  
मासि मासि कुशाग्रेण जलमास्वादयन्ति वै ।  
वृक्षमूलनिकेताश्च शिलाशय्यास्तथा परे ॥ ३२  
आदित्यवपुषः सर्वे जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।  
एवं बहुविधैर्धर्मैरन्यत्र चरितव्रताः ॥ ३३  
त्रिकालमपि भुज्ञाना येऽविमुक्तनिवासिनः ।  
तपश्चरन्ति वान्यत्र कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।

येऽविमुक्ते वसन्तीह स्वर्गे प्रतिवसन्ति ते ॥ ३४

मत्समः पुरुषो नास्ति त्वत्समा नास्ति योषिताम् ।  
अविमुक्तसमं क्षेत्रं न भूतं न भविष्यति ॥ ३५

अविमुक्ते परो योगो ह्यविमुक्ते परा गतिः ।  
अविमुक्ते परो मोक्षः क्षेत्रं नैवास्ति तादृशम् ॥ ३६

परं गुह्यं प्रवक्ष्यामि तत्त्वेन वर्खणिनि ।  
अविमुक्ते महाक्षेत्रे यदुक्तं हि मया पुरा ॥ ३७

देवीने पूछा—देव ! आपने अविमुक्तक्षेत्रके जिन दुर्लभ गुणोंका वर्णन किया है, महेश्वर ! आप उन सभी गुणोंका रहस्यपूर्वक मुझसे वर्णन कीजिये । महादेव ! मेरे हृदयमें परम आश्र्य हो रहा है, अतः परमेश्वर ! उन सभी विषयोंको मुझे रहस्यपूर्वक बतलाइये ॥ २५-२६ ॥

ईश्वर बोले—सुन्दरि ! जो अविमुक्तक्षेत्रमें निवास करते हैं वे मेरी कृपासे विदेह, अक्षय और अमर हो जाते हैं तथा अन्तमें निश्चय ही मुझमें लीन हो जाते हैं । विशालनेत्रे ! कहो, कहो, तुम और क्या सुनना चाहती हो ? ॥ २७-२८ ॥

देवीने पूछा—देव ! अविमुक्त नामक विशाल क्षेत्रका आश्र्यजनक पुण्य है एवं आश्र्यजनक गुण हैं, इनके सुननेसे मुझे तृप्ति नहीं हो रही है, अतः पुनः उन गुणोंका वर्णन कीजिये ॥ २९ ॥

ईश्वरने कहा—महेश्वरि ! तुम तो परम सुन्दरी एवं मेरी प्रिया हो, अतः अविमुक्तक्षेत्रमें जो गुण हैं, उन्हें तथा उनके अतिरिक्त अन्यान्य गुणोंको भी सुनो । जो शाक एवं पत्तोंपर जीवन-निर्वाह करनेवाले, संयमी, भलीभाँति स्नानसे निर्मल सूर्य-किरणोंका पान करनेवाले, दाँतरूपी ओखलीसे निर्वाह करनेवाले, पत्थरपर कूटकर भोजन करनेवाले, प्रतिमास कुशके अग्रभागसे जलका आस्वादन करनेवाले, वृक्षकी जड़में निवास करनेवाले, पत्थरपर शयन करनेवाले, आदित्यके समान तेजस्वी शरीरधारी, क्रोधविजयी और जितेन्द्रिय हैं, तथा इसी तरह अनेक प्रकारके धर्मोंसे अन्य स्थानोंमें व्रतका आचरण करनेवाले हैं अथवा तपस्यामें संलग्न हैं, वे सभी तीनों कालोंमें भोजन करनेवाले अविमुक्तनिवासी व्यक्तिकी सोलहवीं कलाकी बराबरी नहीं कर सकते । जो अविमुक्तक्षेत्रमें निवास कर रहे हैं, वे मानो स्वर्गमें ही निवास कर रहे हैं ॥ ३०—३४ ॥

विश्वमें मेरे समान न कोई दूसरा पुरुष है, न तुम्हारे समान कोई स्त्री है और न अविमुक्तके समान कोई अन्य तीर्थस्थान हुआ है, न होगा । अविमुक्तमें परम योग, अविमुक्तमें श्रेष्ठ गति, अविमुक्तमें परम मोक्ष प्राप्त होता है, इसके समान अन्य कोई भी क्षेत्र नहीं है । शोभने ! महाक्षेत्र अविमुक्तके विषयमें मैंने जो पूर्वमें कहा है, उस परम रहस्यको मैं यथार्थरूपसे कह रहा हूँ ।

जन्मान्तरशतैर्देवि योगोऽयं यदि लभ्यते ।  
 मोक्षः शतसहस्रेण जन्मना लभ्यते न वा ॥ ३८  
 अविमुक्ते न संदेहो मद्भक्तः कृतनिश्चयः ।  
 एकेन जन्मना सोऽपि योगं मोक्षं च विन्दति ॥ ३९  
 अविमुक्ते नरा देवि ये व्रजन्ति सुनिश्चिताः ।  
 ते विशन्ति परं स्थानं मोक्षं परमदुर्लभम् ॥ ४०  
 पृथिव्यामीदृशं क्षेत्रं न भूतं न भविष्यति ।  
 चतुर्मूर्तिः सदा धर्मस्तस्मिन् संनिहितः प्रिये ।  
 चतुर्णामपि वर्णानां गतिस्तु परमा स्मृता ॥ ४१

देव्युवाच

श्रुता गुणास्ते क्षेत्रस्य इह चान्यत्र ये प्रभो ।  
 वदस्व भुवि विप्रेन्द्राः कं वा यज्ञैर्यजन्ति ते ॥ ४२

ईश्वर उवाच

इन्द्र्या चैव मन्त्रेण मामेव हि यजन्ति ये ।  
 न तेषां भयमस्तीति भवं रुद्रं यजन्ति यत् ॥ ४३  
 अमन्त्रो मन्त्रको देवि द्विविधो विधिरुच्यते ।  
 सांख्यं चैवाथ योगश्च द्विविधो योग उच्यते ॥ ४४  
 सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।  
 सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ ४५  
 आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।  
 तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ४६  
 निर्गुणः सगुणो वापि योगश्च कथितो भुवि ।  
 सगुणश्चैव विज्ञेयो निर्गुणो मनसः परः ॥ ४७  
 एतत् ते कथितं देवि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ४८

देव्युवाच

या भक्तिस्त्रिविधा प्रोक्ता भक्तानां बहुधा त्वया ।  
 तामहं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः कथयस्व मे ॥ ४९

ईश्वर उवाच

शृणु पार्वति देवेशि भक्तानां भक्तिवत्सले ।  
 प्राप्य सांख्यं च योगं च दुःखानं च नियच्छति ॥ ५०

देवि ! करोड़ों जन्मोंके पश्चात् मोक्षकी प्राप्ति होती है या नहीं, इसमें भी संदेह है, परंतु यदि कहीं सैकड़ों जन्मोंके बाद ऐसा योग उपलब्ध हो जाय तो दृढ़ निश्चयवाला मेरा भक्त अविमुक्तक्षेत्रमें एक ही जन्ममें योग और मोक्षको प्राप्त कर लेता है । देवि ! जो दृढ़ निश्चयसे सम्पन्न पुरुष अविमुक्तक्षेत्रमें जाते हैं वे परम दुर्लभ श्रेष्ठ मोक्षपदको प्राप्त करते हैं । प्रिये ! पृथ्वीमें ऐसा क्षेत्र न हुआ है और न होगा । चार मूर्तिवालाधर्म इस क्षेत्रमें सदा निवास करता है । यहाँ चारों वर्णोंकी परम गति कही गयी है ॥ ३५—४१ ॥

देवीने पूछा—प्रभो ! आपके क्षेत्रके लौकिक और पारलौकिक गुणोंको मैंने सुन लिया । अब यह बतलाइये कि पृथ्वीपर जो श्रेष्ठ विप्रवृन्द हैं वे यज्ञोद्वारा किसका यजन करते हैं ? ॥ ४२ ॥

ईश्वरने कहा—जो यज्ञ और मन्त्रद्वारा मेरा ही यजन करते हैं उन लोगोंको कोई भय नहीं रह जाता; क्योंकि वे भव और रुद्रकी आराधना करनेवाले हैं । देवि ! मन्त्रहित और मन्त्रसहित—दोनों प्रकारकी विधियाँ कही गयी हैं । इसी प्रकार सांख्य और योगके भेदसे योग भी दो प्रकारका कहा गया है । जो सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेदोंसे शून्य हो सबको एक मानकर सभी प्राणियोंमें स्थित मेरी आराधना करता है वह योगी सदा अपने स्वरूपमें रहता हुआ भी मुझमें ही स्थित रहता है । जो सर्वत्र सबको आत्मसदृश मुझमें अवस्थित देखता है, उससे न तो मैं वियुक्त होता हूँ और न वह मुझसे अलग होता है । भूतलपर निर्गुण और सगुण—दो प्रकारके योग कहे गये हैं । उनमें सगुण योग ही ज्ञानके द्वारा जाना जा सकता है, निर्गुण योग मनसे परे है । देवि ! जो तुमने मुझसे पूछा है, वह मैंने तुम्हें बतला दिया ॥ ४३—४८ ॥

देवीने पूछा—आपने भक्तोंकी जो तीन प्रकारकी भक्ति अनेक बार कही है उसे मैं सुनना चाहती हूँ । आप उसका यथार्थरूपमें मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ४९ ॥

ईश्वर (शिव) -ने कहा—भक्तोंके प्रति वात्सल्य भाव रखनेवाली देवेश्वरी पार्वती ! सुनो । जो सांख्य और योगको प्राप्त कर दुःखका सर्वथा विनाश कर लेता है,

सदा यः सेवते भिक्षां ततो भवति रञ्जितः ।  
रञ्जनात् तन्मयो भूत्वा लीयते स तु भक्तिमान् ॥ ५१  
शास्त्राणां तु वरारोहे बहुकारणदर्शिनः ।  
न मां पश्यन्ति ते देवि ज्ञानवाक्यविवादिनः ॥ ५२  
परमार्थज्ञानतृप्ता युक्ता जानन्ति योगिनः ।  
विद्यया विदितात्मानो योगस्य च द्विजातयः ॥ ५३  
प्रत्याहारेण शुद्धात्मा नान्यथा चिन्तयेच्य तत् ।  
तुष्टि च परमां प्राप्य योगं मोक्षं परं तथा ।  
त्रिभिर्गुणैः समायुक्तो ज्ञानवान् पश्यतीह माम् ॥ ५४  
एतत् ते कथितं देवि किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि ।  
भूय एव वरारोहे कथयिष्यामि सुव्रते ॥ ५५  
गुह्यं पवित्रमथवा यच्चापि हृदि वर्तते ।  
तत् सर्वं कथयिष्यामि शृणुष्वैकमनाः प्रिये ॥ ५६

देव्युवाच

त्वद्बूपं कीदृशं देव युक्ताः पश्यन्ति योगिनः ।  
एतं मे संशयं ब्रूहि नमस्ते सुरसत्तम् ॥ ५७

श्रीभगवानुवाच

अमूर्तं चैव मूर्तं च ज्योतीरूपं हि तत् स्मृतम् ।  
तस्योपलब्धिमन्विच्छन् यतः कार्यो विजानता ॥ ५८  
गुणैर्वियुक्तो भूतात्मा एवं वकुं न शक्यते ।  
शक्यते यदि वकुं वै दिव्यैर्वर्षेश्वरैर्न वा ॥ ५९

देव्युवाच

किं प्रमाणं तु तत्क्षेत्रं समन्तात् सर्वतो दिशम् ।  
यत्र नित्यं स्थितो देवो महादेवो गणैर्युतः ॥ ६०

ईश्वर उवाच

द्वियोजनं तु तत् क्षेत्रं पूर्वपश्चिमतः स्मृतम् ।  
अर्थयोजनविस्तीर्णं तत् क्षेत्रं दक्षिणोत्तरम् ॥ ६१  
वरणाऽसी नदी यावत् तावच्छुक्लनदी तु वै ।  
भीष्मचण्डिकमारभ्य पर्वतेश्वरमन्तिके ॥ ६२

सदा भिक्षासे जीवन-यापन करता है और उसीसे प्रसन्न रहता है तथा इस प्रकार प्रसन्नताके कारण उसीमें तन्मय होकर लीन हो जाता है, वह भक्तिमान् कहलाता है। वरारोहे! जो शास्त्रोंके अनेकों कारणोंपर विचार करनेवाले हैं, वे ज्ञानवाक्योंमें विवाद करनेवाले लोग मेरा दर्शन नहीं कर पाते। देवि! जो परमार्थ-ज्ञानसम्पन्न योगी हैं तथा जो द्विजातिवृन्द योगके ज्ञानसे आत्मज्ञानको प्राप्त कर चुके हैं, वे ही मुझे जान पाते हैं। जिसका आत्मा प्रत्याहारके द्वारा विशुद्ध हो गया है, जो परम संतोष, उत्कृष्ट योग और मोक्षको पाकर अन्यथा विचार नहीं करते और तीनों गुणोंसे सम्पन्न हैं, ऐसे ज्ञानी इस अविमुक्तक्षेत्रमें मेरा साक्षात्कार कर पाते हैं। देवि! यह तो मैंने तुमसे कह दिया, अब तुम और क्या सुनना चाहती हो? उत्तम पातिव्रत धारण करनेवाली सुन्दरि! मैं पुनः उसका वर्णन करूँगा। प्रिये! जो गोपनीय, पावन अथवा हृदयमें वर्तमान है, वह सब मैं कहूँगा, तुम एकाग्रचित होकर सुनो ॥ ५०—५६ ॥

देवीने पूछा—देव! योगसिद्धिसम्पन्न योगिण आपके कैसे स्वरूपका दर्शन करते हैं? देवश्रेष्ठ! मैं आपको नमस्कार करती हूँ, आप मेरे इस संदेहपर प्रकाश डालिये ॥ ५७ ॥

श्रीभगवान् ने कहा—मेरा वह ज्योतिःस्वरूप अमूर्त और मूर्त—दो प्रकारका कहा गया है। विद्वान् पुरुषको उसे प्राप्त करनेकी अभिलाषासे प्रयत्न करना चाहिये। जो प्राणी गुणोंसे रहत है, वह इस प्रकार इसका वर्णन नहीं कर सकता। यदि करना चाहे तो सैकड़ों दिव्य वर्षोंमें कर सकता है या नहीं—इसमें भी संदेह है ॥ ५८-५९ ॥

देवीने पूछा—जहाँ देवाधिदेव महादेव अपने गणोंके साथ नित्य स्थित रहते हैं, वह क्षेत्र चारों ओर सभी दिशाओंमें कितनी दूरतक विस्तृत है? ॥ ६० ॥

भगवान् शङ्करने कहा—वह क्षेत्र पूर्वसे पश्चिमतक दो योजन और दक्षिणसे उत्तरतक आधा योजन विस्तृत बतलाया जाता है। जहाँतक वरुणा और असी नदियाँ हैं, वहाँतक भीष्मचण्डिकसे लेकर पर्वतेश्वरके समीपतक शुक्लनदी है।

गणा यत्रावतिष्ठन्ति सन्नियुक्ता विनायकाः ।  
 कूष्माण्डगजतुण्डश्च जयन्तश्च मदोत्कटाः ॥ ६३  
 सिंहव्याघ्रमुखाः केचिद् विकटाः कुञ्जवामनाः ।  
 यत्र नन्दी महाकालश्चण्डघण्टो महेश्वरः ॥ ६४  
 दण्डचण्डेश्वरश्चैव घण्टाकर्णो महाबलः ।  
 एते चान्ये च बहवो गणाश्चैव गणेश्वराः ॥ ६५  
 महोदरा महाकाया वज्रशक्तिधरास्तथा ।  
 रक्षन्ति सततं देवि ह्यविमुक्तं तपोवनम् ।  
 द्वारे द्वारे च तिष्ठन्ति शूलमुद्रपाणयः ॥ ६६  
 सुवर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां चैलाजिनपयस्वनीम् ।  
 वाराणस्यां तु यो दद्यात् सवत्सां कांस्यभाजनाम् ॥ ६७  
 गां दत्त्वा तु वरारोहे ब्राह्मणे वेदपारगे ।  
 आससमं कुलं तेन तारितं नात्र संशयः ॥ ६८  
 यो दद्याद् ब्राह्मणे किञ्चित् तस्मिन् क्षेत्रे वरानने ।  
 कनकं रजतं वस्त्रमन्नाद्यं बहुविस्तरम् ॥ ६९  
 अक्षयं चाव्ययं चैव स्यातां तस्य सुलोचने ।  
 शृणु तत्त्वेन तीर्थस्य विभूतिं व्युष्टिमेव च ॥ ७०  
 तत्र स्नात्वा महाभागे भवन्ति नीरुजा नराः ।  
 दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ७१  
 तदवाजोति धर्मात्मा तत्र स्नात्वा वरानने ।  
 बहुस्वल्पे च यो दद्याद् ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ ७२  
 शुभां गतिमवाजोति अग्निवच्चैव दीप्यते ।  
 वाराणसीजाह्नवीभ्यां संगमे लोकविश्रुते ॥ ७३  
 दत्त्वान्नं च विधानेन न स भूयोऽभिजायते ।  
 एतत् ते कथितं देवि तीर्थस्य फलमुत्तमम् ॥ ७४  
 पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि तीर्थस्य फलमुत्तमम् ।  
 उपवासं तु यः कृत्वा विप्रान् संतर्पयेन्नरः ।  
 सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ७५  
 एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र वरानने ।  
 यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नशयति ॥ ७६

जहाँ कूष्माण्ड, गजतुण्ड, जयन्त, उत्कट पराक्रमी विनायकगण भलीभाँति नियुक्त होकर विराजमान रहते हैं। उनमें कुछ सिंह एवं बाघके-से मुखवाले, कुछ भयंकर, कुबड़े और वामन (बोने) हैं। जहाँ नन्दी, महाकाल, चण्डघण्ट, महेश्वर, दण्डचण्डेश्वर, महाबली घण्टाकर्ण—ये एवं अन्य अनेक गणसमूह और गणेश्वरवृन्द विद्यमान रहते हैं। देवि! ये सभी विशाल उदरवाले एवं विशालकाय हैं तथा हाथमें वज्र और शक्ति धारण करके इस अविमुक्त तपोवनकी सदा रक्षा करते हैं। ये सभी हाथमें शूल और मुद्रा धारण कर प्रत्येक द्वारपर स्थित रहते हैं॥ ६१—६६॥

वरारोहे! जो स्वर्णजटित सींगोंवाली, चाँदीसे युक्त खुरोंवाली, सुन्दर वस्त्र और मृगचर्मसे सुशोभित, दूध देनेवाली, कांसदोहनीसे युक्त सवत्सा गौका वाराणसीमें वेदपारङ्गत ब्राह्मणको दान करता है, वह अपनी सात पीढ़ियोंको तार देता है—इसमें संदेह नहीं है। वरानने! जो उस क्षेत्रमें थोड़ा अथवा अधिक मात्रामें सुवर्ण, रजत, वस्त्र, अन्न आदि ब्राह्मणको दान करता है, सुलोचने! उसका वह दान अक्षय एवं अविनाशी हो जाता है। महाभागे! इस तीर्थकी वास्तविक विभूति और विशिष्ट फलको सुनो। वहाँ स्नान कर मनुष्य रोगरहित हो जाते हैं। वरानने! दस अश्वमेध याग करनेसे मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, वह उस धर्मात्मा व्यक्तिको वहाँ स्नान करनेसे ही प्राप्त हो जाता है। जो वेदके पारङ्गत ब्राह्मणको अधिक या स्वल्प—जो भी अपनी शक्तिके अनुसार दान देता है, उस दानसे उसे शुभ गति प्राप्त होती है और वह अग्निके समान तेजस्वी हो जाता है। जो संसारमें प्रसिद्ध वरुणा—असी और गङ्गाके संगमपर विधानपूर्वक अनक्रा दान देता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। देवि! मैंने इस तीर्थका यह उत्तम फल तुम्हें बतला दिया॥ ७७—७४॥

अब मैं पुनः इस तीर्थका अन्य उत्तम फल बतला रहा हूँ। जो मनुष्य इस तीर्थमें उपवासपूर्वक विप्रोंको भलीभाँति तृप्त करता है, वह मानव सौत्रामणि नामक यज्ञका फल प्राप्त करता है। वरानने! जो वहाँ एक मासतक एक समय भोजन कर जीवन व्यतीत करता है, उसका जीवनपर्यन्त किया हुआ पाप अनायास ही नष्ट हो

अग्निप्रवेशं ये कुर्युरविमुक्ते विधानतः ।  
प्रविशन्ति मुखं ते मे निःसंदिग्धं वरानने ॥ ७७  
कुर्वन्त्यनशानं ये तु मद्दक्ताः कृतनिश्चयाः ।  
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ७८  
अर्चयेद् यस्तु मां देवि अविमुक्ते तपोवने ।  
तस्य धर्मं प्रवक्ष्यामि यदवाज्ञोति मानवः ॥ ७९  
दशाश्वमेधिकं पुण्यं लभते नात्र संशयः ।  
दशसौवर्णिकं पुण्यं योऽविमुक्ते प्रयच्छति ॥ ८०  
अग्निहोत्रफलं धूपे गन्धदाने तथा शृणु ।  
भूमिदानेन तत्तुल्यं गन्धदानफलं स्मृतम् ॥ ८१  
सम्मार्जने पञ्चशतं सहस्रमनुलेपने ।  
मालया शतसाहस्रमनन्तं गीतवाद्यतः ॥ ८२

देव्युवाच

अत्यद्भुतमिदं देवं स्थानमेतत् प्रकीर्तितम् ।  
रहस्यं श्रोतुमिच्छामि यदर्थं त्वं न मुञ्चसि ॥ ८३

ईश्वर उवाच

आसीत् पूर्वं वरारोहे ब्रह्मणस्तु शिरो वरम् ।  
पञ्चमं शृणु सुश्रोणि जातं काञ्चनसप्रभम् ॥ ८४  
ज्वलत् तत् पञ्चमं शीर्षं जातं तस्य महात्मनः ।  
तदेवमब्रवीद् देवि जन्म जानामि ते ह्यहम् ॥ ८५  
ततः क्रोधपरीतेन संरक्षनयनेन च ।  
वामाङ्गुष्ठनखाग्रेण च्छिन्नं तस्य शिरो मया ॥ ८६

ब्रह्मोवाच

यदा निरपराधस्य शिरिष्ठन्नं त्वया मम ।  
तस्माच्छापसमायुक्तः कपाली त्वं भविष्यसि ।  
ब्रह्महत्याकुलो भूत्वा चर तीर्थानि भूतले ॥ ८७  
ततोऽहं गतवान् देवि हिमवन्तं शिलोच्चयम् ।  
तत्र नारायणः श्रीमान् मया भिक्षां प्रयाचितः ॥ ८८  
ततस्तेन स्वकं पार्श्वं नखाग्रेण विदारितम् ।  
स्वतो महती धारा तस्य रक्तस्य निःसृता ॥ ८९  
प्रयाता सातिविस्तीर्णा योजनार्थशतं तदा ।  
न सम्पूर्णं कपालं तु घोरमद्भुतदर्शनम् ॥ ९०

जाता है। वरानने! जो इस अविमुक्तक्षेत्रमें विधानपूर्वक अग्निमें प्रवेश कर जाते हैं, वे निश्चय ही मेरे मुखमें प्रवेश करते हैं, जो मेरे भक्त यहाँ दृढ़ निश्चयपूर्वक निराहार रहते हैं उनका सैकड़ों करोड़ कल्पोंमें भी पुनः संसारमें आगमन नहीं होता। देवि! जो इस अविमुक्त तपोवनमें मेरी पूजा करता है, उसका धर्म बतला रहा हूँ, जो उस मनुष्यको प्राप्त होता है। वह निःसंदेह दस अश्वमेध यागके फलको प्राप्त करता है। जो इस अविमुक्तमें दस सुवर्णनिर्मित पुष्पका दान करता है तथा वहाँ धूप दान करता है, उसे अग्निहोत्रका फल प्राप्त होता है। अब गन्धदानका फल सुनो। भूमिदानके समान ही गन्ध-दानका फल कहा गया है। भलीभाँति स्नान करनेपर पाँच सौ, चन्दन लगानेसे एक हजार, माला समर्पण करनेसे एक लाख और गाने-बजानेसे अनन्त अग्निहोत्रके फलकी प्राप्ति होती है॥ ७५—८२॥

देवीने पूछा—देव! जैसा आपने बतलाया है, सचमुच ही यह स्थान अतिशय अद्भुत है। अब मैं उस रहस्यको सुनना चाहती हूँ, जिसके कारण आप इस स्थानको नहीं छोड़ते॥ ८३॥

ईश्वरने कहा—सुन्दर कटिभागवाली वरारोहे! सुनो। प्राचीनकालमें ब्रह्माका सुवर्णके समान कान्तिमान् पाँचवाँ सुन्दर सिर उत्पन्न हुआ। देवि! उस महात्माके उत्पन्न हुए उस पाँचवें देदीप्यमान मुखने इस प्रकार कहा कि मैं तुम्हारा जन्म जानता हूँ। यह सुनकर मैं क्रोधसे परिव्याप्त हो गया और मेरी आँखें लाल हो गयीं। तब मैंने बायें आँगूठेके नखके अग्रभागसे उनके सिरको काट दिया॥ ८४—८६॥

ब्रह्मा बोले—आपने बिना अपराधके ही मेरा सिर काट दिया है, अतः आप भी शापसे युक्त हो कपाली हो जायेंगे। साथ ही आप ब्रह्महत्यासे व्याकुल होकर भूतलपर तीर्थोंमें भ्रमण कीजिये। देवि! तब मैं हिमालय पर्वतपर चला गया और वहाँ मैंने श्रीमान् नारायणसे भिक्षाकी याचना की। इसके बाद उन्होंने नखके अग्रभागसे अपने पार्श्वभागको विदीर्ण कर दिया, तब उससे रक्तकी विपुल धारा प्रवाहित हुई। वह धारा बहती हुई पचास योजनतक परिव्याप्त हो गयी, किंतु भयंकर दीखनेवाला अद्भुत कपाल उससे नहीं भरा।

दिव्यं वर्षसहस्रं तु सा च धारा प्रवाहिता ।  
प्रोवाच भगवान् विष्णुः कपालं कुत ईदूशम् ॥ ९१  
आश्र्यभूतं देवेश संशयो हृदि वर्तते ।  
कुतश्च सम्भवो देव सर्वं मे ब्रूहि पृच्छतः ॥ ९२

देवदेव उवाच

श्रूयतामस्य हे देव कपालस्य तु सम्भवः ।  
शतं वर्षसहस्राणां तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ॥ ९३  
ब्रह्मासृजद् वपुर्दिव्यमद्भुतं लोमहर्षणम् ।  
तपसश्च प्रभावेण दिव्यं काञ्चनसंनिभम् ॥ ९४  
ज्वलत् तत् पञ्चमं शीर्षं जातं तस्य महात्मनः ।  
निकृतं तन्मया देव तदिदं पश्य दुर्जयम् ॥ ९५  
यत्र यत्र च गच्छामि कपालं तत्र गच्छति ।  
एवमुक्तस्ततो देवः प्रोवाच पुरुषोत्तमः ॥ ९६

श्रीभगवानुवाच

गच्छ गच्छ स्वकं स्थानं ब्रह्मणस्त्वं प्रियं कुरु ।  
तस्मिन् स्थास्यति भद्रं ते कपालं तस्य तेजसा ॥ ९७  
ततः सर्वाणि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।  
गतोऽस्मि पृथुलश्रोणि न क्वचित् प्रत्यतिष्ठत ॥ ९८  
ततोऽहं समनुप्राप्तो ह्यविमुक्ते महाशये ।  
अवस्थितः स्वके स्थाने शापश्च विगतो मम ॥ ९९  
विष्णुप्रसादात् सुश्रोणि कपालं तत् सहस्रधा ।  
स्फुटिं बहुधा जातं स्वप्नलब्धं धनं यथा ॥ १००  
ब्रह्महत्यापहं तीर्थं क्षेत्रमेतन्मया कृतम् ।  
कपालमोचनं देवि देवानां प्रथितं भुवि ॥ १०१  
कालो भूत्वा जगत् सर्वं संहरामि सृजामि च ।  
ततस्तत् पतितं तत्र शापश्च विगतो मम ॥ १०२  
कपालमोचनं तीर्थमभूद्धत्याविनाशनम् ।  
मद्भक्तास्तत्र गच्छन्ति विष्णुभक्तास्तथैव च ॥ १०३  
तत्रस्थोऽस्मि जगत् सर्वं सुकरोमि सुरेश्वरि ।  
देवेशि सर्वगुह्यानां स्थानं प्रियतरं मम ॥ १०४  
ये भक्ता भास्करे देवि लोकनाथे दिवाकरे ।  
तत्रस्थो यस्त्यजेद् देहं मामेव प्रविशेत् तु सः ॥ १०५

इस प्रकार वह धारा हजार दिव्य वर्षोंतक अनवरत प्रवाहित होती रही । तब भगवान् विष्णुने पूछा कि 'ऐसा अद्भुत कपाल आपको कहाँसे प्राप्त हुआ है ? देवेश ! मैं यह दद्यमें संदेह हो रहा है । देव ! यह कहाँसे उत्पन्न हुआ ? मुझ प्रश्नकर्ताको सभी बातें बतलाइये' ॥ ८७—९२ ॥

( तब ) देवाधिदेव शंकर बोले—देव ! आप इस कपालकी उत्पत्तिका विवरण सुनिये । ब्रह्माने सौं हजार वर्षोंतक अतिशय घोर तपस्या कर दिव्य रोमाञ्चकारी अद्भुत शरीरकी रचना की । उन महात्मा ब्रह्माके शरीरमें तपस्याके प्रभावसे सुवर्णके समान देवीष्यमान पाँचवाँ सिर उत्पन्न हुआ । देव ! मैंने उसे काट दिया । यह वही दुर्जय कपाल है । अब देखिये, मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ वहाँ यह कपाल भी मेरे पीछे लगा रहता है । ( इस प्रकार ) ऐसा कहे जानेपर पुरुषोत्तमभगवान् ने तब कहा— ॥ ९३—९६ ॥

श्रीभगवान् बोले—जाइये, आप अपने स्थानको लौट जाइये और ब्रह्माको प्रसन्न कीजिये । उनके तेजसे आपका यह श्रेष्ठ कपाल वहाँ स्थित हो जायगा । पृथुल-श्रोणि ! इसके बाद मैं सभी तीर्थों और पुण्य क्षेत्रोंमें गया, परंतु यह कहाँ भी ठहर न सका । तत्पश्चात् मैं अतिशय प्रभावशाली अविमुक्तक्षेत्रमें पहुँचा । वह वहाँ अपने स्थानपर स्थित हो गया और मेरा शाप समाप्त हो गया । सुश्रोणि ! विष्णुकी कृपासे वह कपाल स्वप्नमें प्राप्त हुए धनके समान हजारों टुकड़ोंमें टूट-फूट गया । देवि ! मैंने इस तीर्थको ब्रह्महत्याको दूर करनेवाला बना दिया । यह भूतलपर देवताओंके लिये कपालमोचनतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ । मैं कालके रूपमें उत्पन्न होकर सम्पूर्ण विश्वका संहार और सृजन करता हूँ । इस प्रकार वह कपाल इस क्षेत्रमें गिरा और मेरा शाप नष्ट हुआ । इसी कारण यह कपालमोचनतीर्थ ब्रह्महत्याका विनाशक हुआ । सुरेश्वरि ! मैं वहाँ स्थित हूँ और सम्पूर्ण विश्वका कल्याण करता हूँ । देवेशि ! सभी गुप्त स्थानोंमें यह अविमुक्तक्षेत्र मेरे लिये प्रियतर है । देवि ! वहाँ मेरे भक्त, विष्णुभक्त और जो लोकनाथ प्रभाशाली सूर्यके भक्त हैं, वे सभी जाते हैं । जो वहाँ रहकर शरीरका त्याग करता है, वह मुझमें ही प्रविष्ट हो जाता है ॥ ९७—१०५ ॥

देव्युवाच

अत्यदभुतमिदं देव यदुक्तं पद्मयोनिना।  
त्रिपुरान्तकरस्थानं गुह्यमेतन्महाद्युते ॥ १०६  
यान्यन्यानि सुतीर्थानि कलां नार्हन्ति षोडशीम्।  
यत्र तिष्ठति देवेशो यत्र तिष्ठति शङ्करः ॥ १०७  
गङ्गा तीर्थसहस्राणां तुल्या भवति वा न वा।  
त्वमेव भक्तिर्देवेश त्वमेव गतिरुत्तमा ॥ १०८  
ब्रह्मादीनां तु ते देव गतिरुक्ता सनातनी।  
श्राव्यते यद् द्विजातीनां भक्तानामनुकम्पया ॥ १०९

इति श्रीमात्ये महापुराणेऽविमुक्तमाहात्म्ये व्यशीत्यधिकशतमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके अविमुक्तमाहात्म्यमें एक साँ तिरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८३ ॥

देवीने कहा—महाकान्तिशाली देव! ब्रह्माद्वारा कथित यह विषय अत्यद्वृत है। त्रिपुरका विनाश करनेवाले शिवजीका यह प्रिय गुप्त स्थान है। अन्य जितने उत्तम तीर्थस्थान हैं, वे सभी उस स्थानकी सोलहवीं कलाकी समता नहीं कर सकते। जहाँ देवेश भगवान् शंकर निवास करते हैं तथा जिससे हजारों तीर्थोंसे श्रेष्ठ गङ्गाकी तुलना नहीं हो सकती, वह भी यहीं स्थित है। देवेश! आप ही (ज्ञानात्मिका) भक्ति हैं और आप ही उत्तम गति हैं। देव! आपने ब्रह्मा आदिकी जो सनातनी गति बतलायी है, जिसे भक्त एवं द्विजातिगण सुनते हैं, वह सब भी आपकी ही अनुकम्पा है ॥ १०६—१०९ ॥

## एक सौ चौरासीवाँ अध्याय

काशीकी महिमाका वर्णन

महेश्वर उवाच

सेवितं बहुभिः सिद्धैरपुनर्भवकाङ्गिभिः।  
विदित्वा तु परं क्षेत्रमविमुक्तनिवासिनाम् ॥ १  
तद् गुह्यं देवदेवस्य तत् तीर्थं तत् तपोवनम्।  
परं स्थानं तु ते यान्ति सम्भवन्ति न ते पुनः ॥ २  
ज्ञाने विहितनिष्ठानां परमानन्दमिच्छताम्।  
या गतिर्विहिता सद्धिः साविमुक्ते मृतस्य तु ॥ ३  
भवस्य प्रीतिरतुला ह्यविमुक्ते ह्यनुत्तमा।  
असंख्येयं फलं तत्र ह्यक्षया च गतिर्भवेत् ॥ ४  
परं गुह्यं समाख्यातं श्मशानमिति संज्ञितम्।  
अविमुक्तं न सेवने वञ्चितास्ते नरा भुवि ॥ ५  
अविमुक्ते स्थितैः पुण्यैः पांशुभिर्वायुनेरितैः।  
अपि दुष्कृतकर्मणो यास्यन्ति परमां गतिम् ॥ ६  
अविमुक्तगुणान् वक्तुं देवदानवमानवैः।  
न शक्यतेऽप्रमेयत्वात् स्वयं यत्र भवः स्थितः ॥ ७

भगवान् शिवने कहा—अविमुक्त-निवासियोंके इस परम श्रेष्ठ स्थानको जानकर पुनः संसारमें जन्मकी आकाङ्क्षा न रखनेवाले अनेक सिद्धगणोंने इस स्थानमें निवास किया है। महादेवका यह अतिशय गुह्य स्थान श्रेष्ठ तीर्थ तथा तपोवनस्वरूप है। जो लोग उस उत्तम क्षेत्रमें जाते हैं, वे पुनः संसारमें जन्म नहीं ग्रहण करते। सत्पुरुषोंद्वारा परमानन्दको प्राप्त करनेके इच्छुक तथा ज्ञानमें निष्ठा रखनेवाले व्यक्तियोंकी जो गति बतलायी गयी है, वह अविमुक्तक्षेत्रमें मरनेवालेको प्राप्त होती है। इस अविमुक्तक्षेत्रमें भगवान् शंकरकी अनुपम और अनुत्तम प्रीति है, अतः यहाँ जानेसे असंख्य फल और अक्षय गतिकी प्राप्ति होती है। (महा) श्मशानके\* नामसे प्रसिद्ध यह अविमुक्त परम गुह्य कहा गया है। भूतलपर जो मनुष्य इसका सेवन नहीं करते, वे वस्तुतः ठगे गये हैं। अविमुक्तक्षेत्रमें स्थित वायुद्वारा उड़ायी गयी पवित्र धूलके स्पर्शसे अतिशय दुष्कर्म करनेवाले व्यक्ति भी परम गतिको प्राप्त हो जाते हैं। जहाँ स्वयं भगवान् शंकर निवास करते हैं, उस अविमुक्तकी अनुपम महिमा होनेके कारण देवता, दानव और मनुष्य उसका वर्णन नहीं कर सकते।

\* काशीखण्ड एवं काशीरहस्यादिके अनुसार प्रलयकालमें सभी प्राणियोंके शमन करनेसे इसका नाम महाश्मशान है।

अनाहिताग्निर्नो यष्टा नोऽशुचिस्तस्करोऽपि वा ।  
 अविमुक्ते वसेद् यस्तु स वसेदीश्वरालये ॥ ८  
 तत्र नापुण्यकृत् कश्चित् प्रसादादीश्वरस्य च ।  
 अज्ञानाज्ञानतो वापि स्त्रिया वा पुरुषेण वा ॥ ९  
 यत्किञ्चिदशुभं कर्म कृतं मानुषबुद्धिना ।  
 अविमुक्ते प्रविष्टस्य तत्सर्वं भस्मसाद् भवेत् ॥ १०  
 सरितः सागराः शैलास्तीर्थान्यायतनानि च ।  
 भूतप्रेतपिशाचाश्च गणा मातृगणास्तथा ॥ ११  
 श्मशानिकपरीवाराः प्रियास्तस्य महात्मनः ।  
 न ते मुञ्चन्ति भूतेशं तान् भवस्तु न मुञ्चति ॥ १२  
 रमते च गणैः सार्धमविमुक्ते स्थितः प्रभुः ।  
 दृष्टैतान् भीतकृपणान् पापदुष्कृतकारिणः ॥ १३  
 अनुकम्पया तु देवस्य प्रयान्ति परमां गतिम् ।  
 भक्तानुकम्पी भगवांस्तिर्यग्योनिगतानपि ॥ १४  
 नयत्येव वरं स्थानं यत्र यान्ति च याज्ञिकाः ।  
 भार्गवाङ्गिरसः सिद्धा ऋषयश्च महाब्रताः ॥ १५  
 अविमुक्ताग्निना दग्धा अग्नौ तूलमिवाहितम् ।  
 न सा गतिः कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे ॥ १६  
 सा गतिर्विहिता पुंसामविमुक्तनिवासिनाम् ।  
 तिर्यग्योनिगताः सत्त्वा येऽविमुक्ते कृतालयाः ।  
 कालेन निधनं प्राप्तास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥ १७  
 मेरुमन्दरमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः ।  
 अविमुक्तं समासाद्य तत् सर्वं ब्रजति क्षयम् ॥ १८  
 श्मशानमिति विख्यातमविमुक्तं शिवालयम् ।  
 तद् गुह्यं देवदेवस्य तत् तीर्थं तत् तपोवनम् ॥ १९  
 तत्र ब्रह्मादयो देवा नारायणपुरोगमाः ।  
 योगिनश्च तथा साध्या भगवन्तं सनातनम् ॥ २०  
 उपासन्ते शिवं मुक्ता मद्भक्ता मत्परायणाः ।  
 या गतिर्जनितपसां या गतिर्जन्याजिनाम् ॥ २१  
 अविमुक्ते मृतानां तु सा गतिर्विहिता शुभा ।  
 संहर्तरश्च कर्तारस्तस्मिन् ब्रह्मादयः सुराः ॥ २२

जो अग्निका आधान नहीं करता, यज्ञ नहीं करता, अपवित्र या चोर है, वह भी यदि अविमुक्तक्षेत्रमें निवास करता है तो मानो महेश्वरके लोकमें ही निवास कर रहा है। महेश्वरकी कृपासे वहाँ कोई भी पापकर्म नहीं करता। खी अथवा पुरुषद्वारा मानव-बुद्धिके अनुसार जान या अनजानमें भी जो कुछ दुष्कर्म किया होता है, वह सब अविमुक्तक्षेत्रमें प्रवेश करते ही भस्म हो जाता है ॥ १—१० ॥  
 नदियाँ, सागर, पर्वत, तीर्थ, देवालय, भूत, प्रेत, पिशाच, शिवगण, मातृगण तथा श्मशान-निवासी—ये सभी उन महात्मा शिवको प्रिय हैं, अतः न तो वे भूतपति शिवको छोड़ते हैं और न शिव उनका परित्याग करते हैं। अविमुक्तमें स्थित वे प्रभु अपने प्रमथगाणोंके साथ रमण करते हैं। भयसे त्रस्त, पापी, दुराचाररत अथवा तिर्यग्योनिमें ही क्यों न उत्पन्न हुए हों, वे सभी अविमुक्तको देखकर महादेवकी अनुकम्पासे परम गतिको प्राप्त हो जाते हैं। भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले भगवान् शंकर उन सभीको ऐसे श्रेष्ठ स्थानपर पहुँचा देते हैं, जहाँ यज्ञ करनेवाले, भृगुवंशी, अंगिरागोत्री, सिद्ध तथा महाब्रती ऋषिगण जाते हैं। उनके पाप अग्निमें डाली गयी रूईके समान अविमुक्तकी अग्निसे नष्ट हो जाते हैं। अविमुक्तक्षेत्रमें निवास करनेवाले पुरुषोंकी जो गति बतलायी गयी है, वह गति कुरुक्षेत्र, गङ्गाद्वार और पुष्कर तीर्थमें नहीं मिलती। तिर्यग्योनिमें उत्पन्न हुए जो जीव अविमुक्तमें निवास करते हैं, वे समयानुसार मृत्युको प्राप्त होनेपर परमगतिको प्राप्त करते हैं। चाहे मेरु या मन्दराचलके बराबर भी पापकर्मकी राशि क्यों न हो, वह सब-का-सब पाप अविमुक्तमें आते ही नष्ट हो जाता है ॥ ११—१८ ॥  
 शिवजीका यह निवास्थान अविमुक्त श्मशानके नामसे विख्यात है। उन देवाधिदेवका वह परम गुप्त स्थान है, वह तीर्थ है और वह तपोवन है। वहाँ नारायणसहित ब्रह्मा आदि देवगण, योगिसमूह, साध्यगण तथा जीवन्मुक्त शिवपरायण शिवभक्त सनातन भगवान् शिवकी उपासनामें रत रहते हैं। ज्ञानसम्पन्न तपस्वियों तथा यज्ञोंका विधानपूर्वक अनुष्ठान करनेवालोंको जो गति प्राप्त होती है, वही शुभ गति अविमुक्तमें मरनेवालोंके लिये कही गयी है। जगत्की सृष्टि करनेवाले तथा जगत्का संहार करनेवाले ब्रह्मा

सप्राङ्गविराणमया लोका जायन्ते ह्यपुनर्भवाः ।  
 महर्जनस्तपश्वैव सत्यलोकस्तथैव च ॥ २३  
 मनसः परमो योगो भूतभव्यभवस्य च ।  
 ब्रह्मादिस्थावरान्तस्य योनिः सांख्यादिमोक्षयोः ॥ २४  
 येऽविमुक्तं न मुञ्जन्ति नरास्ते नैव वञ्चिताः ।  
 उत्तमं सर्वतीर्थानां स्थानानामुत्तमं च यत् ॥ २५  
 क्षेत्राणामुत्तमं चैव श्मशानानां तथैव च ।  
 तटाकानां च सर्वेषां कूपानां स्त्रोतसां तथा ॥ २६  
 शैलानामुत्तमं चैतत् तडागानां तथोत्तमम् ।  
 पुण्यकृद्धवभक्तैश्च ह्यविमुक्तं तु सेव्यते ॥ २७  
 ब्रह्मणः परमं स्थानं ब्रह्मणाध्यासितं च यत् ।  
 ब्रह्मणा सेवितं नित्यं ब्रह्मणा चैव रक्षितम् ॥ २८  
 अत्रैव सप्तभुवनं काञ्छनो मेरुपर्वतः ।  
 मनसः परमो योगः प्रीत्यर्थं ब्रह्मणः स तु ॥ २९  
 ब्रह्मा तु तत्र भगवांस्त्रिसंध्यं चेश्वरे स्थितः ।  
 पुण्यात् पुण्यतमं क्षेत्रं पुण्यकृद्धिर्निषेवितम् ॥ ३०  
 आदित्योपासनं कृत्वा विप्राश्वामरतां गताः ।  
 अन्येऽपि ये त्रयो वर्णा भवभक्त्या समाहिताः ॥ ३१  
 अविमुक्ते तनुं त्यक्त्वा गच्छन्ति परमां गतिम् ।  
 अष्टौ मासान् विहारस्य यतीनां संयतात्मनाम् ॥ ३२  
 एकत्र चतुरो मासान् मासौ वा निवसेत् पुनः ।  
 अविमुक्ते प्रविष्टानां विहारस्तु न विद्यते ॥ ३३  
 न देहो भविता तत्र दृष्टं शास्त्रे पुरातने ।  
 मोक्षो ह्यसंशयस्तत्र पञ्चत्वं तु गतस्य वै ॥ ३४  
 स्त्रियः पतिव्रता याश्च भवभक्ताः समाहिताः ।  
 अविमुक्ते विमुक्तास्ता यास्यन्ति परमां गतिम् ॥ ३५  
 अन्या याः कामचारिण्यः स्त्रियो भोगपरायणाः ।  
 कालेन निधनं प्राप्ता गच्छन्ति परमां गतिम् ॥ ३६  
 यत्र योगश्च मोक्षश्च प्राप्यते दुर्लभो नरैः ।  
 अविमुक्तं समासाद्य नान्यद् गच्छेत् तपोवनम् ॥ ३७

आदि देवगण एवं सप्राट् विराट् आदि मानवसमूह एवं महः, जन, तप और सत्यलोकमें निवास करनेवाले प्राणी अविमुक्तक्षेत्रमें आकर पुनर्जन्मसे छुटकारा पा जाते हैं। यह मनका तथा भूत, भविष्य और वर्तमानका, परम योग है और ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सभी प्राणिसमूहका तथा सांख्य आदि मोक्षका उत्पत्तिस्थान है। जो मनुष्य इस अविमुक्तक्षेत्र करते, वे वञ्चित नहीं हैं। यह अविमुक्तक्षेत्र सभी तीर्थों, स्थानों, क्षेत्रों, श्मशानों, सरोवरों, सभी कूपों, नालों, पर्वतों और जलाशयोंमें उत्तम है। पुण्यकर्मा शिव-भक्त अविमुक्तका ही सेवन करते हैं ॥ १९—२७ ॥

यह ब्रह्माका परमस्थान, ब्रह्माद्वारा अध्यासित, ब्रह्माद्वारा सदा सेवित और ब्रह्माद्वारा रक्षित है। ब्रह्माकी प्रसन्नताके लिये यहीं सातों भुवन और सुवर्णमय सुमेरु पर्वत है। यहीं मनका परम योग प्राप्त होता है। इस क्षेत्रमें भगवान् ब्रह्मा तीनों सन्ध्याओंमें शिवके ध्यानमें लीन रहते हैं। यह क्षेत्र पुण्यसे भी पुण्यतम है और पुण्यात्माओंद्वारा सेवित है। यहाँ आदित्यकी उपासना करके विप्रगण अमर हो गये हैं। जो अन्य तीनों वर्णोंके प्राणी हैं, वे भी शिव-भक्तिसे युक्त हो अविमुक्तक्षेत्रमें शरीरका परित्याग कर परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं। संयत आत्मावाले यतियोंके लिये आठ मासोंका विहार विहित है। (वे (चातुर्मासमें) एक स्थानमें केवल चार मास या दो मासतक निवास कर सकते हैं, किंतु अविमुक्तमें निवास करनेवाले यतियोंके लिये (यह) विहारका विधान नहीं है। (वे काशीमें सदा निवास कर सकते हैं।) प्राचीन शास्त्रमें ऐसा देखा गया है कि यहाँ मरनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता, वह निस्संदेह मोक्षको प्राप्त हो जाता है। जो पतिव्रता स्त्रियाँ शिवजीकी भक्तिमें लीन हैं, वे इस अविमुक्तमें शरीरका त्याग कर परमगतिको प्राप्त हो जाती हैं। इनसे अतिरिक्त जो कामपरायण एवं भोगमें आसक्त स्त्रियाँ हैं, वे इस क्षेत्रमें यथासमय मृत्युको प्राप्त होकर परम गतिको प्राप्त हो जाती हैं ॥ २८—३६ ॥

जहाँ मनुष्य दुर्लभ योग और मोक्षको प्राप्त करते हैं, उस अविमुक्तक्षेत्रमें पहुँचकर किसी अन्य तपोवनमें जानेकी आवश्यकता नहीं है।

सर्वात्मना तपः सेव्यं ब्राह्मणैर्नात्र संशयः ।  
 अविमुक्ते वसेद् यस्तु मम तुल्यो भवेन्नरः ॥ ३८  
 यतो मया न मुक्तं हि त्वविमुक्तं ततः स्मृतम् ।  
 अविमुक्तं न सेवन्ते मूढा ये तमसावृताः ॥ ३९  
 विष्णमूत्रेतसां मध्ये ते वसन्ति पुनः पुनः ।  
 कामः क्रोधश्च लोभश्च दम्भः स्तम्भोऽतिमत्सरः ॥ ४०  
 निद्रा तन्द्रा तथाऽलस्यं पैशुन्यमिति ते दश ।  
 अविमुक्ते स्थिता विघ्नाः शक्रेण विहिताः स्वयम् ॥ ४१  
 विनायकोपसर्गाश्च सततं मूर्धिर्ति तिष्ठति ।  
 पुण्यमेतद् भवेत् सर्वं भक्तानामनुकम्पया ॥ ४२  
 परं गुह्यमिति ज्ञात्वा ततः शास्त्रानुदर्शनात् ।  
 व्याहृतं देवदेवैस्तु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ४३  
 मेदसा विप्लुता भूमिरविमुक्ते तु वर्जिता ।  
 पूता समभवत् सर्वा महादेवेन रक्षिता ॥ ४४  
 संस्कारस्तेन क्रियते भूमेरन्यत्र सूरिभिः ।  
 ये भक्त्या वरदं देवमक्षरं परमं पदम् ॥ ४५  
 देवदानवगन्धर्वयक्षरक्षोमहोरगाः ।  
 अविमुक्तमुपासने तत्रिष्ठास्तत्परायणाः ॥ ४६  
 ते विशन्ति महादेवमाज्याहुतिरिवानलम् ।  
 तं वै प्राप्य महादेवमीश्वराध्युषितं शुभम् ॥ ४७  
 अविमुक्तं कृतार्थोऽस्मीत्यात्मानमुपलभ्यते ।  
 ऋषिदेवासुरगणैर्जपहोमपरायणैः ॥ ४८  
 यतिभिर्मोक्षकामैश्च ह्यविमुक्तं निषेव्यते ।  
 नाविमुक्ते मृतः कश्चिन्नरकं याति किल्बिषी ॥ ४९  
 ईश्वरानुगृहीता हि सर्वे यान्ति परां गतिम् ।  
 द्वियोजनमथार्थं च तत् क्षेत्रं पूर्वपश्चिमम् ॥ ५०

ब्राह्मणोंको यहाँ निःसन्देह सर्वभावसे तपस्यामें तत्पर रहना चाहिये। जो मनुष्य अविमुक्तमें निवास करता है, वह मेरे समान हो जाता है; क्योंकि मैं इस स्थानको कभी नहीं छोड़ता, इसीलिये यह अविमुक्त नामसे कहा जाता है। जो मोहग्रस्त पुरुष तमोगुणसे आवृत हो अविमुक्तमें निवास नहीं करते, वे मल-मूत्र-वीर्यके मध्यमें पुनः-पुनः निवास करते हैं। (अर्थात् उन्हें बारंबार जन्म लेना पड़ता है)। काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, स्तम्भ, अतिशय मात्सर्य, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य तथा पिशुनता—ये दस विघ्न जो स्वयं इन्द्रद्वारा विहित हैं, अविमुक्तमें स्थित रहते हैं। इनके अतिरिक्त विनायकोंके उपद्रव निरन्तर सिरपर सवार रहते हैं, किंतु ये सभी भक्तोंके प्रति भगवान्‌की अनुकम्पाके कारण पुण्यफल प्रदान करते हैं, क्योंकि श्रेष्ठ देवताओं और तत्त्वद्रष्टा मुनियोंके द्वारा शास्त्रकी आलोचनाके आधारपर इस स्थानको परम गुह्य कहा गया है। (प्राचीनकालमें मधु-कैटभक्ती) मज्जासे सम्पूर्ण पृथ्वी व्यास हो गयी थी, किंतु अविमुक्तकी भूमि उससे रहित थी। महादेवजीके द्वारा रक्षित यह सम्पूर्ण भूमि पवित्र ही बनी रही। इसीलिये (कल्पसूत्रोक्त-रीतिसे) मनीषिण अन्यत्र भूमिका संस्कार करते हैं। जो देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और प्रधान नाग भगवान् भवमें निष्ठा रखते हुए उनकी भक्तिमें तत्पर हो अविमुक्तक्षेत्रमें आकर भक्तिपूर्वक वरप्रदान करनेवाले अविनाशी परमपदस्वरूप शंकरकी उपासना करते हैं, वे महादेवमें उसी प्रकार प्रवेश कर जाते हैं, जैसे धीकी आहुति अग्निमें प्रविष्ट होती है। वे उन महादेवको तथा ईश्वरद्वारा अधिकृत शुभमय अविमुक्तको पाकर अपनेको ‘मैं कृतार्थ हूँ’—ऐसा अनुभव करते हैं ॥ ३७—४७ १/२ ॥

ऋषि, देव, असुर तथा जप-होमपरायण मुमुक्षु और यतिसमूह इस अविमुक्तमें निवास करते हैं। कोई भी पापी अविमुक्तक्षेत्रमें मरकर नरकमें नहीं जाता; क्योंकि ईश्वरके अनुग्रहसे वे सभी परमगतिको प्राप्त होते हैं। यह क्षेत्र पूर्वसे पश्चिमतक ढाई योजन और

अर्धयोजनविस्तीर्ण दक्षिणोत्तरतः समृतम्।  
वाराणसी तदीया च यावच्छुक्लनदी तु वै ॥ ५१  
एष क्षेत्रस्य विस्तारः प्रोक्तो देवेन धीमता।  
लब्ध्वा योगं च मोक्षं च काङ्क्षन्तो ज्ञानमुत्तमम् ॥ ५२  
अविमुक्तं न मुञ्चन्ति तन्निष्ठास्तत्परायणाः।  
तस्मिन् वसन्ति ये मर्त्यां न ते शोच्याः कदाचन ॥ ५३  
योगक्षेत्रं तपःक्षेत्रं सिद्धगन्धर्वसेवितम्।  
सरितः सागराः शैला नाविमुक्तसमा भुवि ॥ ५४  
भूलोके चान्तरिक्षे च दिवि तीर्थानि यानि च।  
अतीत्य वर्तते चान्यदविमुक्तं प्रभावतः ॥ ५५  
ये तु ध्यानं समासाद्य मुक्तात्मानः समाहिताः।  
संनियम्येन्द्रियग्रामं जपन्ति शतरुद्रियम् ॥ ५६  
अविमुक्ते स्थिता नित्यं कृतार्थास्ते द्विजातयः।  
भवभक्तिं समासाद्य रमन्ते तु सुनिश्चिताः ॥ ५७  
संहृत्य शक्तिः कामान् विषयेभ्यो बहिः स्थिताः।  
शक्तिः सर्वतो मुक्ताः शक्तितस्तपसि स्थिताः ॥ ५८  
करणानीह चात्मानमपुनर्भवभाविताः।  
तं वै प्राप्य महात्मानमीश्वरं निर्भयाः स्थिताः ॥ ५९  
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि।  
अविमुक्ते तु गृह्णन्ते भवेन विभुना स्वयम् ॥ ६०  
उत्पादितं महाक्षेत्रं सिद्ध्यन्ते यत्र मानवाः।  
उद्देशमात्रं कथिता अविमुक्तगुणास्तथा ॥ ६१  
समुद्रस्येव रत्नानामविमुक्तस्य विस्तरम्।  
मोहनं तदभक्तानां भक्तानां भक्तिवर्धनम् ॥ ६२  
मूढास्ते तु न पश्यन्ति श्मशानमिति मोहिताः।  
हन्यमानोऽपि यो विद्वान् वसेद् विघ्नशतैरपि ॥ ६३  
स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति।  
जन्ममृत्युजरामुक्तः परं याति शिवालयम् ॥ ६४  
अपुनर्मरणानां हि सा गतिर्मोक्षकाङ्क्षणाम्।  
यां प्राप्य कृतकृत्यः स्यादिति मन्येत पण्डितः ॥ ६५  
न दानैर्न तपोभिर्वा न यज्ञैर्नापि विद्यया।  
प्राप्यते गतिरिष्टा या ह्यविमुक्ते तु लभ्यते ॥ ६६

दक्षिणसे उत्तरतक आधा योजन विस्तृत बतलाया जाता है। यह शिवपुरी वाराणसी शुक्लनदीतक बसी हुई है। बुद्धिमान् महादेवने इस क्षेत्रका यह विस्तार स्वयं बतलाया है। शिवमें निष्ठावान् और शिवपरायण भक्तगण योग और मोक्षको प्राप्तकर उत्तम ज्ञानकी प्राप्तिके लिये अविमुक्तक्षेत्रका परित्याग नहीं करते। जो मृत्युलोकवासी व्यक्ति इस क्षेत्रमें निवास करते हैं, वे कभी भी शोचनीय नहीं होते। यह अविमुक्तक्षेत्र योगक्षेत्र है, तपःक्षेत्र है तथा सिद्ध और गन्धर्वोंसे सेवित है। भूतलपर नदी, सागर और पर्वत—कोई भी अविमुक्तके समान नहीं है। भूलोक, अन्तरिक्ष और स्वर्गमें जितने तीर्थ हैं, उनका अविमुक्त अपने प्रभावसे अतिक्रमण कर विराजमान है। अविमुक्तमें नित्य निवास करनेवाले जो द्विजगण ध्यानयोगकी प्राप्तिसे मुक्तात्मा हो समाहित चित्तसे इन्द्रियोंको निरुद्धकर शतरुद्रीका जप करते हैं, वे कृतार्थ हो जाते हैं और भवकी भक्तिको प्राप्त कर निश्चितरूपसे रमण करते हैं। जो यथाशक्ति कामनाओंका परित्याग कर विषयवासनासे रहित, यथाशक्ति सब तरहसे मुक्त, यथाशक्ति तपस्यामें स्थित तथा अपनी इन्द्रियों और आत्माको वशमें कर चुके हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। वे उन महात्मा शिवको प्राप्तकर निर्भय विचरण करते हैं। सर्वव्यापी शिव अविमुक्तमें उन व्यक्तियोंको स्वयं ग्रहण कर लेते हैं, अतः सैकड़ों कोटि कल्पोंमें भी उनका पुनरागमन नहीं होता है ॥ ४८—६० ॥

इस महाक्षेत्रको (स्वयं भगवान् शिवने) उत्पन्न किया है, जहाँ मानवोंको सभी सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। मैंने अविमुक्तके गुणोंका संक्षेपसे वर्णन किया है। अविमुक्तक्षेत्रका विस्तार समुद्रके रत्नोंकी भाँति दुष्कर है। यह अभक्तोंको मोहित करनेवाला और भक्तोंकी भक्तिकी वृद्धि करनेवाला है। मोहग्रस्त मूढ व्यक्ति इसे श्मशान समझकर इसकी ओर नहीं देखते। जो विद्वान् सैकड़ों विघ्नोंसे बाधित होकर भी अविमुक्तक्षेत्रमें निवास करता है, वह उस परमपदको प्राप्त होता है, जहाँ जाकर शोक नहीं करना पड़ता। वह जन्म-जरा-मरणसे रहित होकर शिवलोकको प्राप्त हो जाता है। मोक्षकी कामना करनेवाले पुनर्जन्मसे रहित व्यक्तियोंको जो गति प्राप्त होती है, उसी गतिको प्राप्तकर विद्वान् अपनेको कृतकृत्य मानता है। जो अभीष्ट गति दान, तप, यज्ञ और ज्ञानसे नहीं प्राप्त होती, वह अविमुक्तक्षेत्रमें सुलभ हो जाती है।

नानावर्णा विवर्णाश्च चण्डाला ये जुगुप्सिताः ।  
 किल्बिषैः पूर्णदेहाश्च प्रकृष्टैः पातकैस्तथा ॥ ६७  
 भेषजं परमं तेषामविमुक्तं विदुर्बुधाः ।  
 जात्यन्तरसहस्रेषु ह्यविमुक्ते प्रियेत् तु यः ॥ ६८  
 भक्तो विश्वेश्वरे देवे न स भूयोऽभिजायते ।  
 यत्र चेष्टं हुतं दत्तं तपस्तसं कृतं च यत् ॥ ६९  
 सर्वमक्षयमेतस्मिन्नविमुक्ते न संशयः ।  
 कालेनोपरता यान्ति भवे सायुज्यमक्षयम् ॥ ७०  
 कृत्वा पापसहस्राणि पश्चात् संतापमेत्य वै ।  
 योऽविमुक्ते वियुज्येत स याति परमां गतिम् ॥ ७१  
 उत्तरं दक्षिणं चापि अयनं न विकल्पयेत् ।  
 सर्वस्तेषां शुभः कालो ह्यविमुक्ते प्रियन्ति ये ॥ ७२  
 न तत्र कालो मीमांस्यः शुभो वा यदि वाशुभः ।  
 तस्य देवस्य माहात्म्यात् स्थानमद्भुतकर्मणः ।  
 सर्वेषामेव नाथस्य सर्वेषां विभुना स्वयम् ॥ ७३  
 श्रुत्वेदमृषयः सर्वे स्कन्देन कथितं पुरा ।  
 अविमुक्ताश्रमं पुण्यं भावयेत्करणैः शुभैः ॥ ७४

इति श्रीमात्ये महापुराणेऽविमुक्तमाहात्म्यं नाम चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अविमुक्तमाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८४ ॥

## एक सौ पचासीवाँ अध्याय

### वाराणसी-माहात्म्य

सूत उवाच

अविमुक्ते महापुण्ये चास्तिकाः शुभदर्शनाः ।  
 विस्मयं परमं जगमुर्हर्षगद्गदनिःस्वनाः ॥ १

ऊचुस्ते हृष्टमनसः स्कन्दं ब्रह्मविदां वरम् ।  
 ब्रह्मण्यो देवपुत्रस्त्वं ब्राह्मणो ब्राह्मणप्रियः ॥ २

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अतिशय पुण्यमय अविमुक्तक्षेत्रमें आस्तिक, शुभ दर्शनवाले एवं हर्षगदगद वाणीसे युक्त उन ऋषियोंको (इस आश्र्यजनक आख्यानको सुनकर) महान् आश्र्य हुआ। तब उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ स्कन्दजीसे कहा—भगवन्! आप ब्राह्मण-भक्त, महादेवजीके पुत्र, ब्राह्मण, ब्राह्मणोंके प्रिय,

ब्रह्मिष्ठो ब्रह्मविद् ब्रह्मा ब्रह्मेन्द्रो ब्रह्मलोककृत्।  
ब्रह्मकृद् ब्रह्मचारी त्वं ब्रह्मादिर्ब्रह्मवत्सलः॥ ३  
ब्रह्मतुल्योद्भवकरो ब्रह्मतुल्यो नमोऽस्तु ते।  
ऋषयो भावितात्मानः श्रुत्वेदं पावनं महत्॥ ४

तत्त्वं तु परमं ज्ञातं यज्ञात्वामृतमश्रुते।  
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामो भूलोकं शङ्करालयम्॥ ५

यत्रासौ सर्वभूतात्मा स्थाणुभूतः स्थितः प्रभुः।  
सर्वलोकहितार्थाय तपस्युगे व्यवस्थितः॥ ६

संयोज्य योगेनात्मानं रौद्रीं तनुमुपाश्रितः।  
गुह्यकैरात्मभूतस्तु आत्मतुल्यगुणैर्वृतः॥ ७

ततो ब्रह्मादिभिर्देवैः सिद्धैश्च परमर्थिभिः।  
विज्ञसः परया भक्त्या त्वत्प्रसादाद् गणेश्वर॥ ८

वस्तुमिच्छाम नियतमविमुक्ते सुनिश्चिताः।  
एवंगुणे तथा मर्त्या ह्यविमुक्ते वसन्ति ये॥ ९

धर्मशीला जितक्रोधा निर्ममा नियतेन्द्रियाः।  
ध्यानयोगपराः सिद्धिं गच्छन्ति परमाव्ययाम्॥ १०

योगिनो योगसिद्धाश्च योगमोक्षप्रदं विभुम्।  
उपासते भक्तियुक्ता गुह्यं देवं सनातनम्॥ ११

अविमुक्तं समासाद्य प्राप्तयोगान्महेश्वरात्।  
सम ब्रह्मर्थयो नीता भवसायुज्यमागताः॥ १२

एतत् परमं क्षेत्रमविमुक्तं विदुर्बुधाः।  
अप्रबुद्धा न पश्यन्ति भवमायाविमोहिताः॥ १३

तेनैव चाभ्यनुज्ञातास्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।  
अविमुक्ते तनुं त्यक्त्वा शान्ता योगगतिं गताः॥ १४

स्थानं गुह्यं शमशानानां सर्वेषामेतदुच्यते।  
न हि योगादृते मोक्षः प्राप्यते भुवि मानवैः॥ १५

अविमुक्ते निवसतां योगो मोक्षश्च सिद्ध्यति।  
एक एव प्रभावोऽस्ति क्षेत्रस्य परमेश्वरि।  
अनेन जन्मनैवेह प्राप्यते गतिरुत्तमा॥ १६

ब्रह्ममें स्थित, ब्रह्मज्ञ, स्वयं ब्रह्मस्वरूप, ब्रह्मेन्द्र, ब्रह्मलोककर्ता, ब्रह्मकृत, ब्रह्मचारी, ब्रह्मासे भी पुरातन, ब्रह्मवत्सल, ब्रह्माके समान सृष्टिकर्ता और ब्रह्मतुल्य हैं, आपको नमस्कार है। इस अतिंशय पवित्र कथाको सुनकर हम ऋषिगण कृतार्थ हुए। हमने उस परम तत्त्वको जान लिया, जिसे जानकर अमरत्व (मोक्ष)-की प्राप्ति होती है। आपका कल्याण हो, अब हमलोग पृथ्वीलोकमें शिवजीके उस निवासस्थानपर जा रहे हैं, जहाँ सभी जीवोंके आत्मस्वरूप सामर्थ्यशाली शिव स्थाणुरूपमें स्थित हैं। वे वहाँ सभी प्राणियोंके कल्याणकी कामनासे उग्र तपस्यामें संलग्न हैं। वे अपनेको योगयुक्त कर रुद्रभावापन शरीरका आश्रयण किये हुए हैं और अपने समान गुणोंसे युक्त आत्मभूत गुह्यकोंसे घिरे हुए विराजमान हैं॥ १—७॥

गणेश्वर! अब हमलोग ब्रह्मादि देवों, महर्षियों और सिद्धोंसे आज्ञा लेकर परम भक्तिपूर्वक आपकी कृपासे अविमुक्तक्षेत्रमें नियमपूर्वक सुनिश्चितरूपसे निवास करना चाहते हैं। पूर्वकथित गुणोंसे सम्पन्न इस अविमुक्तमें जो धर्मशील, क्रोधजयी, आसक्तिरहित, जितेन्द्रिय और ध्यानयोगपरायण मनुष्य निवास करते हैं, वे अविनाशिनी परम सिद्धिको प्राप्त होते हैं। योगसिद्ध योगिगण भक्तिपूर्वक योग और मोक्षको देनेवाले, सर्वव्यापी, सनातन एवं गुह्य महादेवकी उपासना करते हैं। सात ब्रह्मर्थियोंने अविमुक्त-क्षेत्रमें आकर महेश्वरकी कृपासे योगको प्राप्तकर भवसायुज्यको प्राप्त किया है। ज्ञानिगण इस अविमुक्तको परम क्षेत्र मानते हैं, किंतु भवकी मायासे विमोहित अज्ञानीलोग इसे नहीं जानते। शिवनिष्ठ एवं शिवभक्तिपरायण ऋषिगण शिवजीकी आज्ञासे अविमुक्तमें शरीरका त्यागकर शान्तिपूर्वक योगकी गतिको प्राप्त हो गये॥ ८—१४॥

सभी शमशानोंमें यह अविमुक्त गुह्य स्थान कहा गया है। मनुष्य संसारमें योगके बिना मोक्षको नहीं प्राप्त कर सकते, किंतु अविमुक्तमें निवास करनेवालोंके लिये योग और मोक्ष—दोनों ही सिद्ध हो जाते हैं। परमेश्वर! इस अविमुक्तक्षेत्रका एक ही प्रभाव है कि इसी जन्ममें और यहीं उत्तम गतिको प्राप्त किया जा सकता है।

अविमुक्ते निवसता व्यासेनामिततेजसा ।  
 नैव लब्धा क्वचिद् भिक्षा भ्रममाणेन यलतः ॥ १७  
 क्षुधाविष्टस्तः क्रुद्धोऽचिन्तयच्छापमुत्तमम् ।  
 दिनं दिनं प्रति व्यासः षण्मासं योऽवतिष्ठति ॥ १८  
 कथं ममेदं नगरं भिश्वादोषाद्धतं त्विदम् ।  
 विप्रो वा क्षत्रियो वापि ब्राह्मणी विधवापि वा ॥ १९  
 संस्कृतासंस्कृता वापि परिपक्वाः कथं नु मे ।  
 न प्रयच्छति वै लोका ब्राह्मणाश्र्वर्यकारकम् ॥ २०  
 एषां शापं प्रदास्यामि तीर्थस्य नगरस्य तु ।  
 तीर्थं चातीर्थतां यातु नगरं शापयाम्यहम् ॥ २१  
 मा भूत्रिपौरुषी विद्या मा भूत्रिपौरुषं धनम् ।  
 मा भूत्रिपुरुषं सख्यं व्यासो वाराणसीं शपन् ॥ २२  
 अविमुक्ते निवसतां जनानां पुण्यकर्मणाम् ।  
 विघ्नं सृजामि सर्वेषां येन सिद्धिर्न विद्यते ॥ २३  
 व्यासचिन्तं तदा ज्ञात्वा देवदेव उमापतिः ।  
 भीतभीतस्तदा गौरीं तां प्रियां पर्यभाषत ॥ २४  
 शृणु देवि वचो मह्यं यादृशं प्रत्युपस्थितम् ।  
 कृष्णाद्वैपायनः कोपाच्छापं दातुं समुद्यतः ॥ २५

देव्यवाच

किमर्थं शापते क्रुद्धो व्यासः केन प्रकोपितः ।  
 किं कृतं भगवंस्तस्य येन शापं प्रयच्छति ॥ २६

देवदेव उवाच

अनेन सुतपस्तसं बहून् वर्षगणान् प्रिये ।  
 मौनिना ध्यानयुक्तेन द्वादशाब्दान् वरानने ॥ २७  
 ततः क्षुधा सुसंजाता भिक्षामिटितुमागतः ।  
 नैवास्य केनचिद् भिक्षा ग्रासार्थमपि भामिनि ॥ २८  
 एवं भगवतः काल आसीत् षाण्मासिको मुनेः ।  
 ततः क्रोधापरीतात्मा शापं दास्यति सोऽधुना ॥ २९  
 यावत्रैष शपेत्तावदुपायस्तत्र चिन्त्यताम् ।  
 कृष्णाद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रिये ॥ ३०  
 कोऽस्य शापान्न बिभेति हृषिपि साक्षात् पितामहः ।  
 अदैवं दैवतं कुर्याद् दैवं चाप्यपदैवतम् ॥ ३१

किसी समय असीम प्रतापी व्यास अविमुक्तमें निवास करते हुए प्रयत्नपूर्वक धूमते रहनेपर भी कहीं भी भिक्षा नहीं पा सके । तब वे भूखसे पीड़ित होकर क्रोधपूर्वक भयंकर शाप देनेका विचार करने लगे । इस प्रकार एक-एक दिन करते व्यासके छः मास बीत गये, (तब वे सोचने लगे कि) क्या कारण है कि इस नगरमें मुझे भिक्षा नहीं मिल रही है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, ब्राह्मणी, विधवा, संस्कृता या असंस्कृता, वृद्धा कोई भी नारी या कोई भी प्राणी और ब्राह्मण मुझे भिक्षा नहीं दे रहा है—आश्र्वय है ! अतः मैं यहाँके निवासी, तीर्थ और नगर-सभीको ऐसा शाप दे रहा हूँ कि यह तीर्थ अतीर्थ हो जाय । अब मैं नगरको शाप दे रहा हूँ—यहाँ तीन पीढ़ीतक लोगोंकी विद्या नहीं रहेगी, तीन पीढ़ीतक धन नहीं रहेगा और तीन पीढ़ीतक मित्रता स्थिर नहीं रहेगी । अविमुक्तमें निवास करनेवाले सभी मनुष्योंके पुण्यकर्मोंमें विघ्न उत्पन्न हो जायगा, जिससे उन्हें सिद्धि नहीं मिल सकेगी । उस समय देवदेव उमापति व्यासके हृदयको जानकर भयभीत हो गये । तब वे अपनी प्रिया गौरीसे बोले—‘देवि ! इस नगरमें जैसी घटना घटित होनेवाली है, वह कह रहा हूँ, मेरी बात सुनो । श्रीकृष्णाद्वैपायन क्रोधवश शाप देनेके लिये उद्यत हो गये हैं’ ॥ १५—२५ ॥

देवीने पूछा—भगवन् ! व्यासजी क्रुद्ध होकर शाप देनेके लिये क्यों उद्यत हैं ? वे किसके द्वारा क्रुद्ध किये गये हैं ? उनका क्या अप्रिय कर दिया गया, जिससे वे शाप दे रहे हैं ? ॥२६ ॥

देवाधिदेव महादेवने कहा—प्रिये ! व्यासजीने अनेक वर्षोंतक कठोर तपस्या की है । वरानने ! ये मौन धारणकर ध्यानपरायण हो बारह वर्षोंतक तपस्यामें लीन रहे । तदनन्तर भूख लगनेपर ये भिक्षा माँगनेके लिये यहाँ आये हैं । किंतु भामिनि ! किसीने इन्हें आधा ग्रास भी भिक्षा नहीं दी । इस प्रकार भगवान् व्यासमुनिके छः महीने बीत गये । इसी कारण इस समय ये क्रोधसे अभिभूत होकर शाप देनेको उद्यत हो गये हैं । प्रिये ! कृष्णाद्वैपायन व्यासको साक्षात् नारायण समझो, अतः जबतक ये शाप नहीं दे देते, तभीतक इस विषयमें कोई उपाय सोच लो । कौन है, जो इनके शापसे नहीं डरता, चाहे वह साक्षात् ब्रह्मा ही क्यों न हो ! ये मनुष्यको देवता और देवताको मनुष्य

आवां तु मानुषौ भूत्वा गृहस्थाविहवासिनौ।  
तस्य तृप्तिकरीं भिक्षां प्रयच्छावो वरानने॥ ३२  
एवमुक्ता ततो देवी देवेन शम्भुना तदा।  
व्यासस्य दर्शनं दत्त्वा कृत्वा वेषं तु मानुषम्॥ ३३  
एहोहि भगवन् साधो भिक्षां गृहाण सत्तम।  
अस्मद् गृहे कदाचित् त्वं नागतोऽसि महामुने॥ ३४  
एतच्छुत्वा प्रीतमना भिक्षां ग्रहीतुमागतः।  
भिक्षां दत्त्वा तु व्यासाय षड्साममृतोपमाम्॥ ३५  
अनास्वादितपूर्वा सा भक्षिता मुनिना तदा।  
भिक्षां व्यासस्ततो भुक्त्वा चिन्तयन् हृष्टमानसः॥ ३६  
ववन्दे वरदं देवं देवीं च गिरिजां तदा।  
व्यासः कमलपत्राक्ष इदं वचनमब्रवीत्॥ ३७  
देवो देवी नदी गङ्गा मिष्ठमन्नं शुभा गतिः।  
वाराणस्यां विशालाक्षि वासः कस्य न रोचते॥ ३८  
एवमुक्त्वा ततो व्यासो नगरीमवलोकयन्।  
चिन्तयानस्ततो भिक्षां हृदयानन्दकारिणीम्॥ ३९  
अपश्यत् पुरतो देवं देवीं च गिरिजां तदा।  
गृहाङ्गणस्थितं व्यासं देवदेवोऽब्रवीदिदम्॥ ४०  
इह क्षेत्रे न वस्तव्यं क्रोधनस्त्वं महामुने।  
एवं विस्मयमापन्नो देवं व्यासोऽब्रवीद् वचः॥ ४१

व्यास उवाच

चतुर्दश्यामथाष्टम्यां प्रवेशं दातुमर्हसि।  
एवमस्त्वित्यनुज्ञाय तत्रैवान्तरधीयत॥ ४२  
न तद् गृहं न सा देवी न देवो ज्ञायते ववचित्।  
एवं त्रैलोक्यविख्यातः पुरा व्यासो महातपाः॥ ४३  
ज्ञात्वा क्षेत्रगुणान् सर्वान् स्थितस्तस्यैव पार्श्वतः।  
एवं व्यासं स्थितं ज्ञात्वा क्षेत्रं शंसन्ति पण्डिताः॥ ४४

कर सकते हैं। वरानने! हम दोनों मनुष्य होकर यहाँ गृहस्थाश्रममें निवास कर रहे हैं, अतः उन्हें संतुष्ट करनेवाली भिक्षा समर्पित करें॥ २७—३२॥

तब महादेव शिवद्वारा इस प्रकार कही जानेपर देवीने मनुष्यका वेश धारण कर व्यासको दर्शन दिया और इस प्रकार कहा—‘ऐश्वर्यशाली श्रेष्ठ साधो! आइये, आइये, भिक्षा ग्रहण कीजिये। महामुने! सम्भवतः आपने मेरे घरपर कभी आनेकी कृपा नहीं की है।’ यह सुनकर व्यासजी प्रसन्नचित्त हो भिक्षा ग्रहण करनेके लिये आये। तब देवीने व्यासजीको छः रसोंसे समन्वित अमृतके समान भिक्षा प्रदान की। मुनिने पहले वैसी न खायी हुई भिक्षाको खाया। तत्पश्चात् भिक्षाको खाकर प्रसन्नचित्त हुए व्यासजी कुछ विचार करने लगे। तदुपरात् कमलदलनेत्र व्यासजीने वरदाता शिव और देवी पार्वतीकी बन्दना की और इस प्रकार कहा—‘विशाल नेत्रोंवाली देवि! वाराणसीमें महादेव, पार्वतीदेवी, गङ्गा नदी, स्वादिष्ट भोजन और शुभगति—सभी सुलभ हैं, फिर यहाँका निवास किसे अच्छा नहीं लगेगा!’ ऐसा कहकर व्यासजी हृदयको आनन्द देनेवाली भिक्षाको सोचते हुए, नगरीका अवलोकन करते हुए धूमने लगे। तदनन्तर उन्होंने महादेव और देवी पार्वतीको अपने समक्ष उपस्थित देखा। तब देवाधिदेव महादेवने घरके आँगनमें अवस्थित व्याससे यह कहा—‘महामुने! आप अतिशय क्रोधी स्वभावके हैं, अतः आपको इस क्षेत्रमें निवास नहीं करना चाहिये।’ यह सुनकर व्यासजी आश्वर्यचकित हो गये और महादेवजीसे इस प्रकार बोले॥ ३३—४१॥

व्यासजीने कहा—भगवन्! चतुर्दशी और अष्टमीको मुझे यहाँ निवास करनेकी अनुमति दीजिये। अच्छा, ‘ऐसा ही हो’ यों अनुमति देकर शिवजी वहीं अन्तर्धान हो गये। फिर तो वहाँ न कहीं कोई घर था, न वह देवी थीं और न महादेव ही थे। वे कहाँ चले गये, कुछ भी समझमें न आया। प्राचीनकालमें इस प्रकार तीनों लोकोंमें विष्वात महातपस्वी व्यास इस क्षेत्रके सभी गुणोंको जानकर उसीके पास (गङ्गाजीके पूर्वतटपर दक्षिणकी ओर) निवास करने लगे। इस प्रकार व्यासको वहाँ स्थित जानकर पण्डितगण इस क्षेत्रकी प्रशंसा करते हैं॥ ४२—४४॥

अविमुक्तगुणानां तु कः समर्थो वदिष्यति ।  
 देवब्राह्मणविद्विष्टा देवभक्तिविडम्बकाः ॥ ४५  
 ब्रह्माश्च कृतज्ञाश्च तथा नैष्कृतिकाश्च ये ।  
 लोकद्विष्टो गुरुद्विष्टस्तीर्थायतनदूषकाः ॥ ४६  
 सदा पापरताश्चैव ये चान्ये कुत्सिता भुवि ।  
 तेषां नास्तीति वासो वै स्थितोऽसौ दण्डनायकः ॥ ४७  
 रक्षणार्थं नियुक्तं वै दण्डनायकमुत्तमम् ।  
 पूजयित्वा यथाशक्त्या गन्धपुष्पादिधूपकैः ॥ ४८  
 नमस्कारं ततः कृत्वा नायकस्य तु मन्त्रवित् ।  
 सर्ववर्णवृते क्षेत्रे नानाविधसरीसृपे ॥ ४९  
 ईश्वरानुगृहीता हि गतिं गाणेश्वरीं गताः ।  
 नानारूपधरा दिव्या नानावेषधरास्तथा ॥ ५०  
 सुरा वै ये तु सर्वे च तत्रिष्टास्तत्परायणाः ।  
 यदिच्छन्ति परं स्थानमक्षयं तदवाज्ञयुः ॥ ५१  
 परं पुरं दैवपुराद् विशिष्यते  
 तदुत्तरं ब्रह्मपुरात् पुरः स्थितम् ।

तपोबलादीश्वरयोगनिर्मितं

न तत्समं ब्रह्मदिवौकसालयम् ।

मनोरमं कामगमं ह्यनामय-  
 मतीत्य तेजांसि तपांसि योगवत् ॥ ५२  
 अधिष्ठितस्तु तत्स्थाने देवदेवो विराजते ।  
 तपांसि यानि तप्यन्ते ब्रतानि नियमाश्च ये ॥ ५३  
 सर्वतीर्थाभिषेकं तु सर्वदानफलानि च ।  
 सर्वयज्ञेषु यत् पुण्यमविमुक्ते तदाज्ञयात् ॥ ५४  
 अतीतं वर्तमानं च यज्ञानाज्ञानतोऽपि वा ।  
 सर्वं तस्य च यत्यापं क्षेत्रं दृष्ट्वा विनश्यति ॥ ५५  
 शान्तैर्दानैस्तपस्तसं यत्किञ्चिद् धर्मसंज्ञितम् ।  
 सर्वं च तदवाज्ञोति अविमुक्ते जितेन्द्रियः ॥ ५६  
 अविमुक्तं समासाद्य लिङ्गमर्चयते नरः ।  
 कल्पकोटिशतैश्चापि नास्ति तस्य पुनर्भवः ॥ ५७  
 अमरा ह्यक्षयाश्चैव क्रीडन्ति भवसंनिधौ ।  
 क्षेत्रतीर्थोपनिषदमविमुक्तं न संशयः ॥ ५८  
 अविमुक्ते महादेवमर्चयन्ति स्तुवन्ति वै ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते तिष्ठन्त्यजरामराः ॥ ५९

अविमुक्तक्षेत्रके सभी गुणोंका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? देवता और ब्राह्मणसे विद्वेष करनेवाले, देवभक्तिकी विडम्बना करनेवाले, ब्राह्मणोंकी हत्या करनेवाले, किये हुए उपकारको न माननेवाले, निश्चेष्ट-अकर्मण्य, लोकद्वेषी, गुरुद्वेषी, तीर्थस्थानोंको दूषित करनेवाले, सदा पापमें रत तथा इनके अतिरिक्त जो निषिद्ध कर्मोंके आचरण करनेवाले हैं—उन सबके लिये यहाँ स्थान नहीं है; क्योंकि यहाँ दण्डनायक अवस्थित हैं। यहाँ श्रेष्ठ दण्डनायकको इसकी रक्षाके लिये नियुक्त किया गया है। सभी वर्णाश्रमियों तथा अनेक प्रकारके जन्माओंसे भरे हुए इस क्षेत्रमें नायकके परामर्शसे यथाशक्ति गन्ध, पुष्प, धूप आदिसे पूजन करनेके पश्चात् उन्हें नमस्कार करके ईश्वरके अनुग्रहसे बहुत-से लोग गणेश्वरकी गतिको प्राप्त हो गये हैं। अनेकों वेष और विभिन्न रूप धारण करनेवाले सभी दिव्य देव, शिवमें श्रद्धासम्पन्न एवं शिवभक्ति-परायण हो जिस अक्षय श्रेष्ठ स्थानकी कामना करते हैं, वह उन्हें प्राप्त हो जाता है। यह श्रेष्ठ नगर अमरावतीसे भी अधिक प्रतिष्ठित है। यह शिवजीके तपोबल और उनकी योगमहिमासे निर्मित है, अतः इसके समान ब्रह्मलोक तथा स्वर्ग भी नहीं है। यह मनोरम, अभिलाषाको पूर्ण करनेवाला, रोगरहित, तेज और तपस्यासे परे तथा योगयुक्त है। इस अविमुक्तक्षेत्रमें देवाधिदेव शंकर सदा विराजमान रहते हैं। जो लोग सभी प्रकारके तप, ब्रत, नियम, सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान, सभी प्रकारके दान और सभी प्रकारके यज्ञानुष्ठानसे जो पुण्य प्राप्त करते हैं, वह अविमुक्तनगरमें प्राप्त हो जाता है। अतीत या वर्तमानमें ज्ञानसे या अज्ञानसे किये गये उनके सभी पाप क्षेत्रके दर्शनमात्रसे विनष्ट हो जाते हैं ॥ ४५—५५ ॥

अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखकर शान्तचित्तसे की गयी तपस्यासे एवं विहित कर्मोंके आचरणसे जो फल मिलते हैं, वह सब अविमुक्तनगरमें जितेन्द्रियको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य अविमुक्तनगरमें आकर शिवलिङ्गकी पूजा करता है, उसका सैकड़ों करोड़ कल्पोंमें भी पुनर्जन्म नहीं होता। ऐसे लोग अमर और अविनश्चर रूपमें शिवके समीप क्रीड़ा करते हैं। यह अविमुक्तनगर अन्य स्थानों और तीर्थोंका प्रकाश-संवित्स्वरूप है—इसमें संदेह नहीं है। जो अविमुक्तनगरमें महादेवकी पूजा और स्तुति करते हैं, वे सभी पापोंसे विनिर्मुक्त होकर अजर-अमर हो जाते

सर्वकामाश्र ये यज्ञः पुनरावृत्तिकाः स्मृताः ।  
 अविमुक्ते मृता ये च सर्वे ते ह्यनिवर्तकाः ॥ ६०  
 ग्रहनक्षत्रताराणां कालेन पतनाद् भयम् ।  
 अविमुक्ते मृतानां तु पतनं नैव विद्यते ॥ ६१  
 कल्पकोटिसहस्रैस्तु कल्पकोटिशतैरपि ।  
 न तेषां पुनरावृत्तिर्मृता ये क्षेत्र उत्तमे ॥ ६२  
 संसारसागरे घोरे भ्रमन्तः कालपर्ययात् ।  
 अविमुक्तं समासाद्य गच्छन्ति परमां गतिम् ॥ ६३  
 ज्ञात्वा कलियुगं घोरं हाहाभूतमचेतनम् ।  
 अविमुक्तं न मुञ्चन्ति कृतार्थास्ते नरा भुवि ॥ ६४  
 अविमुक्तं प्रविष्टस्तु यदि गच्छेत् ततः पुनः ।  
 तदा हसन्ति भूतानि अन्योन्यं करताडनैः ॥ ६५  
 कामक्रोधेन लोभेन ग्रस्ता ये भुवि मानवाः ।  
 निष्क्रमन्ते नरा देवि दण्डनायकमोहिताः ॥ ६६  
 जपथ्यानविहीनानां ज्ञानवर्जितचेतसाम् ।  
 ततो दुःखहतानां च गतिवाराणसी नृणाम् ॥ ६७  
 तीर्थानां पञ्चकं सारं विश्वेशानन्दकानने ।  
 दशाश्वमेधं लोलार्कः केशवो बिन्दुमाधवः ॥ ६८  
 पञ्चमी तु महाश्रेष्ठा प्रोच्यते मणिकर्णिका ।  
 एभिस्तु तीर्थवर्यैश्च वर्ण्यते ह्यविमुक्तकम् ॥ ६९  
 एक एव प्रभावोऽस्ति क्षेत्रस्य परमेश्वरि ।  
 एकेन जन्मना देवि मोक्षं पश्यन्त्यनुत्तमम् ॥ ७०  
 एतद् वै कथितं सर्वं देव्यै देवेन भाषितम् ।  
 अविमुक्तस्य क्षेत्रस्य तत् सर्वं कथितं द्विजाः ॥ ७१

हैं। सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले जो यज्ञ हैं, वे सभी पुनर्जन्म प्रदान करनेवाले हैं; किंतु जो अविमुक्तनगरमें शरीरका त्याग करते हैं, उनका संसारमें पुनः आगमन नहीं होता। ग्रह, नक्षत्र और तारागणोंको समयानुसार पतनका भय बना रहता है, किंतु अविमुक्तमें मरनेवालोंका पतन कभी नहीं होता। जो इस उत्तम क्षेत्रमें मरते हैं, उनका सैकड़ों-करोड़ों कल्पोंमें क्या हजारों-करोड़ कल्पोंमें भी पुनरागमन नहीं होता। जो कालक्रमानुसार संसार-सागरमें भ्रमण करते हुए अविमुक्तनगरमें आ जाते हैं, वे परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ५६—६३ ॥

जो मनुष्य हाहाकारमय एवं ज्ञानरहित भयंकर कलियुगको जानकर अविमुक्तका परित्याग नहीं करते, वे ही इस भूतलपर कृतार्थ हैं। जो अविमुक्तनगरमें जाकर यदि यहाँसे चला जाता है तो सभी प्राणी ताली बजाकर उसकी हँसी उड़ाते हैं। देवि! जो मानव भूतलपर क्रोध और लोभसे ग्रस्त हैं, वे ही दण्डनायककी मायासे मोहित होकर इस नगरसे चले जाते हैं। जो मनुष्य जप-ध्यानसे रहित, ज्ञानशून्य और दुःखसे संतप्त हैं, उनकी गति वाराणसी है। विश्वेश्वरके इस आनन्द-काननमें दशाश्वमेध, लोलार्क, केशव, बिन्दुमाधव और पाँचवीं जो परमश्रेष्ठ मणिकर्णिका कही गयी हैं—ये पाँचों तीर्थोंके सार कहे गये हैं। इन्हीं श्रेष्ठ तीर्थोंसे अविमुक्तकी प्रशंसा होती है। परमेश्वरी देवि! इस क्षेत्रकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि एक ही जन्ममें मनुष्य परमश्रेष्ठ मोक्षको प्राप्त कर लेता है। द्विजगण! अविमुक्तक्षेत्रके विषयमें महादेवजीने पार्वतीसे जो बात कही थी, वह सभी मैंने आप लोगोंसे वर्णन कर दिया ॥ ६४—७१ ॥

इति श्रीमात्त्ये महापुराणेऽविमुक्तमाहात्म्यं नाम पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणमें अविमुक्तमाहात्म्यवर्णन नामक एक सौ पचासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८५ ॥

## एक सौ छियासीवाँ अध्याय

### नर्मदा-माहात्म्यका उपक्रम

ऋषय ऊचुः

माहात्म्यमविमुक्तस्य यथावत् कथितं त्वया।  
इदानीं नर्मदायास्तु माहात्म्यं वद सत्तम्॥ १  
यत्रोङ्कारस्य माहात्म्यं कपिलासंगमस्य च।  
अमरेशस्य चैवाहुर्महात्म्यं पापनाशनम्॥ २  
कथं प्रलयकाले तु न नष्टा नर्मदा पुरा।  
मार्कण्डेयश्च भगवान् न विनष्टस्तदा किल।  
त्वयोक्तं तदिदं सर्वं पुनर्विस्तरतो वद॥ ३

सूत उवाच

एतदेव पुरा पृष्ठः पाण्डवेन महात्मना।  
नर्मदायास्तु माहात्म्यं मार्कण्डेयो महामुनिः॥ ४  
उग्रेण तपसा युक्तो वनस्थो वनवासिना।  
पृष्ठः पूर्वं महागाथां धर्मपुत्रेण धीमता॥ ५

युधिष्ठिर उवाच

श्रुता मे विविधा धर्मास्त्वत्प्रसादाद् द्विजोत्तम।  
भूयश्च श्रोतुमिच्छामि तन्मे कथय सुव्रत। ६  
कथमेषा महापुण्या नदी सर्वत्र विश्रुता।  
नर्मदा नाम विख्याता तन्मे ब्रूहि महामुने॥ ७

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी।  
तारयेत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥ ८  
नर्मदायास्तु माहात्म्यं पुराणे यन्मया श्रुतम्।  
तदेतद्ब्रिं महाराज तत्सर्वं कथयामि ते॥ ९  
पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती।  
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा॥ १०  
त्रिभिः सारस्वतं तोयं समाहेन तु यामुनम्।  
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम्॥ ११  
कलिङ्गदेशे पश्चार्थं पर्वतेऽमरकण्टके।  
पुण्या च त्रिषु लोकेषु रमणीया मनोरमा॥ १२

ऋषियोंने पूछा—सज्जनोंमें श्रेष्ठ सूतजी! आपने अविमुक्तका माहात्म्य तो भलीभाँति कह दिया, अब नर्मदाके माहात्म्यका वर्णन कीजिये, जहाँ ओंकार, कपिलासंगम और अमरेश पर्वतका पापनाशक माहात्म्य कहा जाता है। प्रलयकालमें भी नर्मदाका नाश क्यों नहीं होता? एवं भगवान् मार्कण्डेयका भी पूर्व प्रलयके समयमें विनाश क्यों नहीं हुआ? यद्यपि आपने ये बातें पूर्वमें कही हैं, तथापि इस समय पुनः विस्तारके साथ वर्णन कीजिये॥ १—३॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! प्राचीनकालमें धर्मपुत्र बुद्धिमान् महात्मा युधिष्ठिरने वनमें निवास करते समय वनवासी उग्र तपस्वी महामुनि मार्कण्डेयजीसे नर्मदाके माहात्म्यकी विस्तृत कथाके विषयमें प्रश्न किया था॥ ४—५॥

युधिष्ठिरने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! आपकी कृपासे मैंने विभिन्न धर्मोंको सुना। सुव्रत! अब मैं पुनः जो सुनना चाहता हूँ, उसे आप बतलाइये? महामुने! यह महापुण्यप्रदायिनी नर्मदा-नामसे विख्यात नदी सर्वत्र क्यों प्रसिद्ध हुई—इसका रहस्य मुझे बतलाइये॥ ६—७॥

मार्कण्डेयजीने कहा—सभी पापोंका नाश करनेवाली नदियोंमें श्रेष्ठ नर्मदा सभी स्थावर-जङ्गम जीवोंका उद्धार करनेवाली है। महाराज! मैंने इस नर्मदा नदीका जो माहात्म्य पुराणमें आपसे सुना है, वह सब कह रहा हूँ। कनखलमें गङ्गा और कुरुक्षेत्रमें सरस्वती नदी पुण्यप्रदा कही गयी हैं, किंतु चाहे गाँव हो या वन, नर्मदा तो सभी जगह पुण्यप्रदायिनी है। सरस्वतीका जल तीन दिनोंतक सेवन करनेसे, यमुनाका जल सात दिनोंमें और गङ्गाका जल (स्नान-पानादिसे) उसी समय पवित्र कर देता है, परंतु नर्मदाका जल तो दर्शनमात्रसे ही पवित्र कर देता है। कलिङ्ग देशकी पश्चिमी सीमापर स्थित अमरकण्टक पर्वतसे त्रिलोकीमें विख्यात, रमणीय, मनोरम एवं पुण्यदायिनी नर्मदा प्रवाहित होती है।

सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः।  
तपस्तप्त्वा महाराज सिद्धिं च परमां गताः॥ १३

यत्र स्नात्वा नरो राजन् नियमस्थो जितेन्द्रियः।  
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम्॥ १४

जलेश्वरे नरः स्नात्वा पिण्डं दत्त्वा यथाविधि।  
पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम्॥ १५

पर्वतस्य समंतात् तु रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिता।  
स्नात्वा यः कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनैः॥ १६

प्रीतस्तस्य भवेच्छवो रुद्रकोटिर्न संशयः।  
पश्चिमे पर्वतस्यान्ते स्वयं देवो महेश्वरः॥ १७

तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।  
पितृकार्यं च कुर्वीत विधिवन्नियतेन्द्रियः॥ १८

तिलोदकेन तत्रैव तर्पयेत् पितृदेवताः।  
आससमं कुलं तस्य स्वर्गे मोदेत पाण्डव॥ १९

षष्ठिर्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते।  
अप्सरोगणसंकीर्णे सिद्धचारणसेविते॥ २०

दिव्यगन्धानुलिपश्च दिव्यालङ्कारभूषितः।  
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले॥ २१

धनवान् दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते।  
पुनः स्मरति तत् तीर्थं गमनं तत्र रोचते॥ २२

कुलानि तारयेत् सप्त रुद्रलोकं स गच्छति।  
योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा॥ २३

विस्तारेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता।  
षष्ठिस्तीर्थसहस्राणि षष्ठिकोट्यस्तथैव च॥ २४

सर्वं तस्य समंतात् तु तिष्ठत्यमरकण्टके।  
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः॥ २५

सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः।  
एवं सर्वसमाचारो यस्तु प्राणान् परित्यजेत्॥ २६

तस्य पुण्यफलं राजञ्शृणुष्वावहितो मम।  
शतं वर्षसहस्राणां स्वर्गे मोदेत पाण्डव॥ २७

महाराज! इसके तटपर देवता, असुर, गन्धर्व और तपस्यामें रत ऋषिगणोंने तपस्या कर परम सिद्धिको प्राप्त किया है। राजन्! यदि नियमनिष्ठ एवं जितेन्द्रिय मनुष्य नर्मदामें स्नानकर एक रात उपवास करके वहाँ निवास करे तो वह अपने सौ पीढ़ियोंको तार देता है। यदि मनुष्य जलेश्वर (जालेश्वर-तीर्थ)-में स्नानकर पिण्डदान करता है तो उसके पितर विधिपूर्वक प्रलयकालपर्यन्त तृप्त रहते हैं॥ ८—१५॥

अमरकण्टक पर्वतके चारों ओर करोड़ों रुद्र प्रतिष्ठित हैं। जो मनुष्य वहाँ स्नानकर गन्ध, माल्य और चन्दनोंसे शिवजीकी पूजा करता है, उसपर भगवान् रुद्रकोटि प्रसन्न हो जाते हैं—इसमें संदेह नहीं है। पाण्डुनन्दन! उस पर्वतके पश्चिम भागके अन्तमें साक्षात् महेश्वरदेव विराजमान हैं। जो मनुष्य वहाँ स्नान करके पवित्र हो जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी एवं इन्द्रियोंको वशमें करके विधिपूर्वक पितृकार्य करता है तथा तिल-जलसे पितरों और देवताओंका तर्पण करता है, उसके सात पीढ़ीतकके पितर स्वर्गमें आनन्दका भोग करते हैं। साथ ही वह व्यक्ति दिव्य गन्धोंके अनुलेपनसे युक्त तथा दिव्य अलंकारोंसे विभूषित हो साठ हजार वर्षोंतक अप्सरासमूहोंसे परिव्याप्त एवं सिद्धों और चारणोंसे सेवित स्वर्गलोकमें पूजित होता है। तदनन्तर स्वर्गसे भ्रष्ट होनेपर प्रतिष्ठित कुलमें जन्म ग्रहण करता है। यहाँ वह धनवान्, दानशील और धार्मिक होता है। वह उस तीर्थका पुनः-पुनः स्मरण करता है तथा उसको वहाँ जाना प्रिय लगता है। वहाँ जाकर वह सात पीढ़ियोंका उद्घार कर देता है और रुद्रलोकको चला जाता है। राजेन्द्र! ऐसी ख्याति है कि यह श्रेष्ठ नदी सौ योजनसे अधिक लम्बी और दो योजन चौड़ी है। साठ करोड़ साठ हजार तीर्थ इस अमरकण्टकके चारों ओर वर्तमान हैं॥ १६—२४ १२॥

राजन्! जो मनुष्य ब्रह्मचारी, पवित्र, क्रोधजयी, जितेन्द्रिय, सभी प्रकारकी हिंसाओंसे रहित, सभी प्राणियोंके हितमें तत्पर—इस प्रकार सभी सदाचारोंसे युक्त होकर यहाँ अपने प्राणोंका परित्याग करता है, उसे जो पुण्यफल प्राप्त होता है, उसे आप मुझसे सावधान होकर सुनिये।

अप्सरोगणसंकीर्णे सिद्धचारणसेविते ।  
दिव्यगन्धानुलिपश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः ॥ २८  
क्रीडते देवलोकस्थो दैवतैः सह मोदते ।  
ततः स्वर्गात् परिभृष्टो राजा भवति वीर्यवान् ॥ २९  
गृहं तु लभते वै स नानारत्नविभूषितम् ।  
स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैदूर्यभूषितैः ॥ ३०  
आलेख्यसहितं दिव्यं दासीदाससमन्वितम् ।  
मत्तमातङ्गशब्दैश्च हयानां हेषितेन च ॥ ३१  
क्षुभ्यते तस्य तद्द्वारमिन्द्रस्य भवनं यथा ।  
राजराजेश्वरः श्रीमान् सर्वस्त्रीजनवल्लभः ॥ ३२  
तस्मिन् गृहे उषित्वा तु क्रीडाभोगसमन्विते ।  
जीवेद् वर्षशतं साग्रं सर्वरोगविवर्जितः ॥ ३३  
एवं भोगो भवेत् तस्य यो मृतोऽमरकण्टके ।  
अग्नौ विषजले वापि तथा चैव ह्यनाशके ॥ ३४  
अनिवर्तिका गतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा ।  
पतनं कुरुते यस्तु अमरेशो नराधिप ॥ ३५  
कन्यानां त्रिसहस्राणि एकैकस्यापि चापरे ।  
तिष्ठन्ति भुवने तस्य प्रेषणं प्रार्थयन्ति च ।  
दिव्यभोगैः सुसम्पन्नः क्रीडते कालमक्षयम् ॥ ३६  
पृथिव्यामासमुद्रायामीदूशो नैव जायते ।  
यादृशोऽयं नृपश्रेष्ठं पर्वतेऽमरकण्टके ॥ ३७  
तावत् तीर्थं तु विज्ञेयं पर्वतस्य तु पश्चिमे ।  
हृदो जलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ ३८  
तत्र पिण्डप्रदानेन संध्योपासनकर्मणा ।  
पितरो दश वर्षाणि तर्पितास्तु भवन्ति वै ॥ ३९  
दक्षिणे नर्मदाकूले कपिलेति महानदी ।  
सकलार्जुनसंच्छन्ना नातिदूरे व्यवस्थिता ॥ ४०  
सापि पुण्या महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।  
तत्र कोटिशतं साग्रं तीर्थानां तु युधिष्ठिर ॥ ४१  
पुराणे श्रूयते राजन् सर्वं कोटिगुणं भवेत् ।  
तस्यास्तीरे तु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात् ॥ ४२

पाण्डुपुत्र ! वह एक लाख वर्षोंतक अप्सराओंसे व्याप्त तथा सिद्धों एवं चारणोंसे सेवित स्वर्गमें आनन्दका उपभोग करता है । वह दिव्य चन्दनके लेपसे युक्त एवं दिव्य पुष्पोंसे सुशोभित हो देवलोकमें रहता हुआ देवोंके साथ क्रीड़ा करते हुए आनन्दका अनुभव करता है । तत्पश्चात् स्वर्गसे भ्रष्ट होकर इस लोकमें पराक्रमी राजा होता है । उसे अनेक प्रकारके रत्नोंसे अलंकृत ऐसे भवनकी प्राप्ति होती है, जो दिव्य हीरे, वैदूर्य और मणिमय स्तम्भोंसे विभूषित होता है । वह दिव्य चित्रोंसे सुशोभित तथा दासी-दाससे समन्वित रहता है । उसका द्वार मदमत्त हाथियोंके चिंगाड़ और घोड़ोंकी हिनहिनाहटसे इन्द्रभवनके समान संकुलित रहता है । वह सम्पूर्ण स्त्रीजनोंका प्रिय, श्रीसम्पन्न और सभी प्रकारके रोगोंसे रहित होकर राजराजेश्वरके रूपमें क्रीड़ा और भोगसे समन्वित उस गृहमें निवासकर सौ वर्षोंसे भी अधिक समयतक जीवित रहता है । जो अमरकण्टकमें शरीरका त्याग करता है, उसे इस प्रकारके आनन्दका उपभोग मिलता है । जो अग्नि, विष, जल तथा अनशन करके यहाँ मरता है, उसे आकाशमें वायुके समान स्वच्छन्द गति प्राप्त होती है । नरेश्वर ! जो इस अमरकण्टक पर्वतसे गिरकर देहत्याग करता है, उसके भवनमें एक-से-एक बढ़कर सुन्दरी तीन हजार कन्याएँ स्थित रहती हैं, जो उसकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करती रहती हैं । वह दिव्य भोगोंसे परिपूर्ण होकर अक्षय कालतक क्रीड़ा करता है ॥ २५—३६ ॥

नृपश्रेष्ठ ! अमरकण्टक पर्वतपर शरीरका त्याग करनेसे जैसा पुण्य होता है, वैसा समुद्रपर्यन्त पृथ्वीपर कहीं भी नहीं होता । इस तीर्थको पर्वतके पश्चिम प्रान्तमें समझना चाहिये । यहीं तीनों लोकोंमें विष्वात जलेश्वर नामक कुण्ड वर्तमान है, वहाँ पिण्डदान एवं संध्योपासन कर्म करनेसे पितरगण दस वर्षोंतक तृप्त बने रहते हैं । नर्मदाके दक्षिण तटपर समीप ही कपिला नामकी महानदी स्थित है । वह सब ओरसे अर्जुन वृक्षोंसे परिव्याप्त है । युधिष्ठिर ! वह महाभागा पुण्यतोया नदी भी तीनों लोकोंमें विष्वात है । वहाँ सौ करोड़से भी अधिक तीर्थ हैं । राजन् ! पुण्यमें जैसा वर्णन है, उसके अनुसार वे सभी तीर्थ करोड़गुना फल देनेवाले हैं । उसके तटके जो वृक्ष कालवश गिर जाते हैं,

नर्मदातोयसंस्पृष्टास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।  
 द्वितीया तु महाभागा विशल्यकरणी शुभा ॥ ४३  
 तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा विशल्यो भवति क्षणात्।  
 तत्र देवगणाः सर्वे सकिन्नरमहोरगाः ॥ ४४  
 यक्षराक्षसगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः।  
 सर्वे समागतास्तत्र पर्वतेऽमरकण्टके ॥ ४५  
 तैश्च सर्वैः समागम्य मुनिभिश्च तपोधनैः।  
 नर्मदामाश्रिता पुण्या विशल्या नाम नामतः ॥ ४६  
 उत्पादिता महाभागा सर्वपापप्रणाशिनी।  
 तत्र स्नात्वा नरो राजन् ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥ ४७  
 उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम्।  
 कपिला च विशल्या च श्रूयते राजसत्तम् ॥ ४८  
 ईश्वरेण पुरा प्रोक्ते लोकानां हितकाम्यया।  
 तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत् ॥ ४९  
 अनाशकं तु यः कुर्यात् तस्मिस्तीर्थे नराधिप।  
 सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ५०  
 नर्मदायास्तु राजेन्द्र पुराणे यन्मया श्रुतम्।  
 यत्र यत्र नरः स्नात्वा चाश्वमेधफलं लभेत् ॥ ५१  
 ये वसन्त्युक्ते कूले रुद्रलोके वसन्ति ते।  
 सरस्वत्यां च गङ्गायां नर्मदायां युधिष्ठिर ॥ ५२  
 समं स्नानं च दानं च यथा मे शंकरोऽब्रवीत्।  
 परित्यजति यः प्राणान् पर्वतेऽमरकण्टके ॥ ५३  
 वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते।  
 नर्मदाया जलं पुण्यं फेनोर्मिभिरलङ्घतम् ॥ ५४  
 पवित्रं शिरसा वन्द्यं सर्वपापैः प्रमोचनम्।  
 नर्मदा च सदा पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी ॥ ५५  
 अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया।  
 एवं रम्या च पुण्या च नर्मदा पाण्डुनन्दन ॥ ५६  
 त्रयाणामपि लोकानां पुण्या होषा महानदी।  
 वटेश्वरे महापुण्ये गङ्गाद्वारे तपोवने ॥ ५७  
 एतेषु सर्वस्थानेषु द्विजाः स्युः संशितव्रताः।  
 श्रुतं दशगुणं पुण्यं नर्मदोदधिसंगमे ॥ ५८

वे भी नर्मदाके जलके स्पर्शसे श्रेष्ठ गतिको प्राप्त हो जाते हैं। दूसरी महाभागा मङ्गलदायिनी विशल्यकरणी नदी है। मनुष्य उस तीर्थमें स्नानकर उसी क्षण दुःखरहित हो जाता है। वहाँ सभी देवगण, किन्नर, महान् सर्पगण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, तपस्वी ऋषिगण आये और उस अमरकण्टकपर्वतपर मुनियों और तपस्वियोंके साथ स्थित हुए। वहाँ उन लोगोंने सभी पापोंका विनाश करनेवाली महाभागा पुण्यसलिला विशल्या नामसे विख्यात नदीको उत्पन्न किया, जो नर्मदामें मिलती है। राजन्! वहाँ जो मनुष्य ब्रह्मचर्यपूर्वक जितेन्द्रिय होकर स्नानकर उपवासपूर्वक एक रात भी निवास करता है, वह अपनी सौ पीढ़ियोंको तार देता है। नृपश्रेष्ठ! ऐसा सुना जाता है कि पूर्वकालमें लोगोंके हितकी कामनासे महेश्वरने कपिला और विशल्या नामके तीर्थोंका वर्णन किया था। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य अश्वमेधके फलको प्राप्त करता है ॥ ३७—४९ ॥

नरेश्वर! इस तीर्थमें जो अनशन करता है, वह सभी पापोंसे रहित होकर रुद्रलोकको प्राप्त करता है। राजेन्द्र! मैंने स्कन्दपुराणमें नर्मदाका जो फल सुना है, उसके अनुसार वहाँ-वहाँ स्नानकर मनुष्य अश्वमेधके फलको प्राप्त करता है। जो नर्मदाके उत्तर तटपर निवास करते हैं, वे रुद्रलोकमें निवास करते हैं। युधिष्ठिर! जैसा मुझसे शंकरजीने कहा था, उसके अनुसार सरस्वती, गङ्गा और नर्मदामें स्नान और दानका फल समान होता है। जो अमरकण्टक पर्वतपर प्राणोंका परित्याग करता है, वह सौ करोड़ वर्षोंसे भी अधिक कालतक रुद्रलोकमें पूजित होता है। नर्मदाका लहरियोंके फेनसे अलंकृत, पुण्यमय पवित्र जल सभी पापोंसे मुक्त करनेवाला है, अतः वह सिरसे वन्दना करनेयोग्य है। पुण्यतोया नर्मदा ब्रह्महत्याका नाश करनेवाली है। यहाँ एक दिन-रात उपवास करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्यासे छूट जाता है। पाण्डुपुत्र! नर्मदा इस प्रकार पुण्यमयी और रमणीया है। यह महानदी तीनों लोकोंमें भी पुण्यमयी है। महापुण्यप्रद वटेश्वर, तपोवन और गङ्गाद्वार—इन स्थानोंमें द्विजगण व्रतानुष्ठान करते हैं, परंतु नर्मदा और समुद्रके सङ्गमपर उससे दसगुना अधिक फल सुना जाता है ॥ ५०—५८ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्ये षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके नर्मदामाहात्यमें एक सौ छियासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८६ ॥

## अनौपम्योवाच

भगवन् मानुषे लोके केन तुष्यति केशवः ।  
ब्रतेन नियमेनाथ दानेन तपसापि वा ॥ २६

नारद उवाच

तिलधेनुं च यो दद्याद् ब्राह्मणे वेदपारगे ।  
ससागरवनद्वीपा दत्ता भवति मेदिनी ॥ २७  
सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः ।  
मोदते चाक्षयं कालं यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ २८  
आम्रामलकपित्थानि बदराणि तथैव च ।  
कदम्बचम्पकाशोकपुनागविविधद्रुमान् ॥ २९  
अश्वत्थपिप्पलांश्वैव कदलीवटदाढिमान् ।  
पिचुमन्दं मधूकं च उपोष्य स्त्री ददाति या ॥ ३०  
स्तनौ कपित्थसदृशावूरू च कदलीसमौ ।  
अश्वत्थे वन्दनीया च पिचुमन्दे सुगन्धिनी ॥ ३१  
चम्पके चम्पकाभा स्यादशोके शोकवर्जिता ।  
मधूके मधुरं वक्ति वटे च मृदुगात्रिका ॥ ३२  
बदरी सर्वदा स्त्रीणां महासौभाग्यदायिनी ।  
कुकुटी कर्कटी चैव द्रव्यषष्ठी न शस्यते ॥ ३३  
कदम्बमिश्रकनकमञ्जरीपूजनं तथा ।  
अनग्निपक्वमन्नं च पक्वान्नानामभक्षणम् ॥ ३४  
फलानां च परित्यागः संध्यामौनं तथैव च ।  
प्रथमं क्षेत्रपालस्य पूजा कार्या प्रयत्नतः ॥ ३५  
तस्या भवति वै भर्ता मुखप्रेक्षी सदानघे ।  
अष्टमी च चतुर्थी च पञ्चमी द्वादशी तथा ॥ ३६  
संक्रान्तिर्विषुवच्चैव दिनच्छिद्रमुखं तथा ।  
एतांस्तु दिवसान् दिव्यानुपवसन्ति याः स्त्रियः ।  
तासां तु धर्मयुक्तानां स्वर्गवासो न संशयः ॥ ३७  
कलिकालुष्यनिर्मुक्ताः सर्वपापविवर्जिताः ।  
उपवासरतां नारीं नोपसर्पति तां यमः ॥ ३८

## अनौपम्योवाच

अस्मिन् कृतेन पुण्येन पुराजन्मकृतेन वा ।

भवदागमनं भूतं किंचित् पृच्छाम्यहं व्रतम् ॥ ३९

अनौपम्याने पूछा—भगवन्! मनुष्यलोकमें केशव ब्रत, नियम, दान अथवा तपस्या—इनमें किससे प्रसन्न होते हैं? ॥ २६ ॥

नारदजीने कहा—जो मनुष्य वेदमें पारङ्गत ब्राह्मणको तिलधेनुका दान करता है, उसके द्वारा समुद्र, वन और द्वीपोंसहित पृथ्वीका दान सम्पन्न हुआ समझना चाहिये। वह दाता करोड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान एवं सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले विमानोंद्वारा सूर्य, चन्द्र और तारोंकी स्थितिपर्यन्त अक्षय कालतक आनन्द मनाता है। जो स्त्री उपवास करके आम, आँवला, कैथ, बेर, कदम्ब, चम्पक, अशोक, पुनाग, जायफल, पीपल, केला, वट, अनार, नीम, महुआ आदि अनेक प्रकारके वृक्षोंका दान करती है, उसके दोनों स्तन कैथके समान और दोनों जंघाएँ केलेके सदृश सुन्दर होती हैं। वह अश्वत्थके दानसे वन्दनीय और नीमके दानसे सुगन्धयुक्त होती है। वह चम्पाके दानसे चम्पाकी-सी कान्तिवाली और अशोकके दानसे शोकरहित होती है। महुआके दानसे वह मधुरभाषिणी होती है और वटके दानसे उसका शरीर कोमल होता है। बेर स्त्रियोंके लिये सदा महान् सौभाग्यदायी होता है। ककड़ी, जटाधारी और द्रव्यषष्ठीका दान, कदम्बसे मिश्रित धूतरूकी मंजरीसे पूजन, बिना अग्निसे पकाया हुआ अन्न एवं पके हुए अन्नोंका अभक्षण, फलोंका परित्याग तथा संध्याकालमें मौनधारण—ये स्त्रियोंके लिये प्रशस्त नहीं हैं। सर्वप्रथम प्रयत्नपूर्वक क्षेत्रपालकी पूजा करनी चाहिये। पापशूले! उस स्त्रीका पति सदा उसका मुख ही देखा करता है। जो स्त्रियाँ अष्टमी, चतुर्थी, पञ्चमी और द्वादशी तिथि, संक्रान्ति, विषुवयोग और दिनच्छिद्रमुख (दोपहरमें चन्द्रमाका नये मासकी तिथिमें प्रवेश करना)—इन दिव्य दिनोंमें उपवास करती हैं, उस धर्मयुक्त स्त्रियोंका स्वर्गमें निवास होता है—इसमें संदेह नहीं है। वे कलियुगके पापोंसे रहित और सभी पापोंसे शून्य हो जाती हैं। इस प्रकार जो स्त्री उपवासमें तप्तरहती है, उसके समीप यम भी नहीं आते ॥ २७—३८ ॥

अनौपम्या बोली—नारदजी! पता नहीं, इस जन्ममें या पूर्व जन्ममें किये हुए पुण्यसे ही आपका यहाँ आगमन हुआ है। अब मैं आपसे कतिपय व्रतोंके विषयमें पूछती

अस्ति विन्द्यावलिनाम् बलिपत्नी यशस्विनी ।  
श्वश्रूमापि विप्रेन्द्र न तुष्यति कदाचन ॥ ४०  
श्वशुरोऽपि सर्वकालं दृष्ट्वा चापि न पश्यति ।  
अस्ति कुम्भीनसी नाम ननान्दा पापकारिणी ॥ ४१  
दृष्ट्वा चैवाङ्गुलीभङ्गं सदा कालं करोति माम् ।  
दिव्येन तु पथा याति मम सौख्यं कथं वद ॥ ४२  
ऊषरे न प्रोहन्ति बीजाङ्कुराः कथञ्चन ।  
येन व्रतेन चीर्णेन भवन्ति वशगा मम ।  
तद्व्रतं ब्रूहि विपेन्द्र दासभावं व्रजामि ते ॥ ४३

नारद उवाच

यदेतत् ते मया पूर्वं व्रतमुक्तं शुभानने ।  
अनेन पार्वती देवी चीर्णेन वरवर्णिनि ॥ ४४  
शंकरस्य शरीरस्था विष्णोर्लक्ष्मीस्तथैव च ।  
सावित्री ब्रह्मणश्वैव वसिष्ठस्याप्यरुच्यती ॥ ४५  
एतेनोपोषितेनेह भर्ता स्थास्यति ते वशे ।  
श्वश्रूश्वशुरयोश्वैव मुखबन्धो भविष्यति ॥ ४६  
एवं श्रुत्वा तु शुश्रोणि यथेष्टुं कर्तुमर्हसि ।  
नारदस्य वचः श्रुत्वा राज्ञी वचनमब्रवीत् ॥ ४७  
प्रसादं कुरु विपेन्द्र दानं ग्राहां यथेष्पितम् ।  
सुवर्णमणिरत्नानि वस्त्राण्याभरणानि च ॥ ४८  
तव दास्याम्यहं विप्र यच्चान्यदपि दुर्लभम् ।  
प्रगृहण द्विजश्रेष्ठं प्रीयेतां हरिशंकरौ ॥ ४९

नारद उवाच

अन्यस्मै दीयतां भद्रे क्षीणवृत्तिस्तु यो द्विजः ।  
अहं तु सर्वसम्पन्नो मद्भक्तिः क्रियतामिति ॥ ५०  
एवं तासां मनो हृत्वा सर्वासां तु पतिव्रतात् ।  
जगाम भरतश्रेष्ठं स्वकीयं स्थानकं पुनः ॥ ५१  
ततो ह्यहृष्टहृदया अन्यतोगतमानसाः ।  
पतिव्रतात्वमुत्सृज्य तासां तेजो गतं ततः ।  
पुरे छिद्रं समुत्पन्नं बाणस्य तु महात्मनः ॥ ५२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये सप्तशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणमें नर्मदामाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ सप्तशीत्याँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८७ ॥

हूँ। विप्रवर! जो बलिकी पत्नी यशस्विनी विन्द्यावलि हैं, वे मेरी भी सास हैं। वे मुझसे कभी भी प्रसन्न नहीं रहतीं। मेरे श्वशुर भी मुझे सभी समय देखते हुए भी अनदेखी करते हैं। पापाचरणमें रत रहनेवाली कुम्भीनसी नामकी मेरी ननद है। वह सभी समय मुझे देखकर अङ्गुली तोड़ती रहती है। वह दिव्य मार्गसे कैसे चले और मुझे सुखकी प्राप्ति कैसे हो—यह बतानेकी कृपा करें। (यह सत्य है कि) ऊषर भूमिमें डाले हुए बीजसे किसी प्रकार भी अङ्कुर नहीं उत्पन्न होते, फिर भी जिस ब्रतका अनुष्ठान करनेसे ये मेरे वशमें आ जायें, वह ब्रत मुझे बतलाइये। विप्रेन्द्र! मैं आपकी दासी हूँ॥ ३९—४३॥

नारदजीने कहा—सुन्दर मुखवाली! जो ब्रत मैंने पूर्वमें तुमसे कहा है, उस ब्रतका अनुष्ठान करनेसे पार्वतीदेवी शंकरके, लक्ष्मी विष्णुके, सावित्री ब्रह्माके, अरुन्धती वसिष्ठके शरीरमें विराजमान रहती हैं। इस उपवास-ब्रतसे तुम्हारा पति भी तुम्हारे अधीन रहेगा तथा सास और श्वशुरका भी मुख बंद हो जायगा अर्थात् वे तुमसे प्रेम करने लगेंगे। सुश्रोणि! ऐसा सुनकर तुम जैसा चाहो वैसा कर सकती हो। नारदजीके बचनको सुनकर रानीने इस प्रकार कहा—‘विप्रवर! मुझपर कृपा कीजिये और यथाभिलिष्ट दान स्वीकार कीजिये। विप्र! सुवर्ण, मणि, रत्न, वस्त्र, आभूषण एवं अन्य जो भी दुर्लभ पदार्थ हैं, वह सब मैं आपको दूँगी। द्विजश्रेष्ठ! आप उसे ग्रहण करें, जिससे विष्णु और शंकर मुझपर प्रसन्न हो जायें॥ ४४—४९॥

नारदजी बोले—कल्याण! जो ब्रह्मण जीविकारहित हो, उसे ही यह दान दो। मैं तो सर्वसम्पन्न हूँ। तुम मेरे प्रति भक्ति-भाव रखो। भरतश्रेष्ठ! इस प्रकार उन सभी त्रियोंके मनको पातिव्रतसे विचलित कर नारदजी पुनः अपने स्थानपर चले गये। तभीसे उन त्रियोंका हृदय उदास रहने लगा और उनका मन दूसरी ओर लग गया। इस प्रकार पातिव्रत्यके त्यागसे उनका तेज नष्ट हो गया तथा महान् आत्मबलसे सम्पन्न बाणके नगरमें छिद्र (दोष) उत्पन्न हो गया॥ ५०—५२॥

अनौपम्योवाच

भगवन् मानुषे लोके केन तुष्टि केशवः ।  
व्रतेन नियमेनाथ दानेन तपसापि वा ॥ २६

नारद उवाच

तिलधेनुं च यो दद्याद् ब्राह्मणे वेदपारगे ।  
ससागरवनद्वीपा दत्ता भवति मेदिनी ॥ २७  
सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः ।  
मोदते चाक्षयं कालं यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ २८  
आम्रामलकपित्थानि बदराणि तथैव च ।  
कदम्बचम्पकाशोकपुन्नागविविधद्वामान् ॥ २९  
अश्वत्थपिप्पलांश्वैव कदलीवटदाढिमान् ।  
पिचुमन्दं मधूकं च उपोष्य स्त्री ददाति या ॥ ३०  
स्तनौ कपित्थसदृशावूरु च कदलीसमौ ।  
अश्वत्थे वन्दनीया च पिचुमन्दे सुगन्धिनी ॥ ३१  
चम्पके चम्पकाभा स्यादशोके शोकवर्जिता ।  
मधूके मधुरं वक्ति वटे च मृदुगात्रिका ॥ ३२  
बदरी सर्वदा स्त्रीणां महासौभाग्यदायिनी ।  
कुकुटी कर्कटी चैव द्रव्यषष्ठी न शस्यते ॥ ३३  
कदम्बमिश्रकनकमञ्जरीपूजनं तथा ।  
अनग्निपक्षमन्नं च पक्वान्नानामभक्षणम् ॥ ३४  
फलानां च परित्यागः संध्यामौनं तथैव च ।  
प्रथमं क्षेत्रपालस्य पूजा कार्या प्रयत्नतः ॥ ३५  
तस्या भवति वै भर्ता मुखप्रेक्षी सदानघे ।  
अष्टमी च चतुर्थी च पञ्चमी द्वादशी तथा ॥ ३६  
संक्रान्तिर्विषुवच्चैव दिनच्छिद्रमुखं तथा ।  
एतांस्तु दिवसान् दिव्यानुपवसन्ति याः स्त्रियः ।  
तासां तु धर्मयुक्तानां स्वर्गवासो न संशयः ॥ ३७  
कलिकालुष्यनिर्मुक्ताः सर्वपापविवर्जिताः ।  
उपवासरतां नारीं नोपसर्पति तां यमः ॥ ३८

अनौपम्योवाच

अस्मिन् कृतेन पुण्येन पुराजन्मकृतेन वा ।  
भवदागमनं भूतं किंचित् पृच्छाम्यहं व्रतम् ॥ ३९

अनौपम्याने पूछा—भगवन्! मनुष्यलोकमें केशव  
व्रत, नियम, दान अथवा तपस्या—इनमें किससे प्रसन्न  
होते हैं? ॥ २६ ॥

नारदजीने कहा—जो मनुष्य वेदमें पारङ्गत ब्राह्मणको  
तिलधेनुका दान करता है, उसके द्वारा समुद्र, वन और  
द्वीपोंसहित पृथ्वीका दान सम्पन्न हुआ समझना चाहिये।  
वह दाता करोड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान एवं सभी  
कामनाओंको पूर्ण करनेवाले विमानोंद्वारा सूर्य, चन्द्र  
और तारोंकी स्थितिपर्यन्त अक्षय कालतक आनन्द मनाता  
है। जो स्त्री उपवास करके आम, आँवला, कैथ, बेर,  
कदम्ब, चम्पक, अशोक, पुन्नाग, जायफल, पीपल,  
केला, बट, अनार, नीम, महुआ आदि अनेक प्रकारके  
वृक्षोंका दान करती है, उसके दोनों स्तन कैथके समान  
और दोनों जंघाएँ केलेके सदृश सुन्दर होती हैं। वह  
अश्वत्थके दानसे वन्दनीय और नीमके दानसे सुगन्धयुक्त  
होती है। वह चम्पाके दानसे चम्पाकी-सी कान्तिवाली  
और अशोकके दानसे शोकरहित होती है। महुआके  
दानसे वह मधुरभाषिणी होती है और बटके दानसे  
उसका शरीर कोमल होता है। बेर स्त्रियोंके लिये सदा  
महान् सौभाग्यदायी होता है। ककड़ी, जटाधारी और  
द्रव्यषष्ठीका दान, कदम्बसे मिश्रित धतूरेकी मंजरीसे  
पूजन, बिना अग्निसे पकाया हुआ अन्न एवं पके हुए  
अन्नोंका अभक्षण, फलोंका परित्याग तथा संध्याकालमें  
मौनधारण—ये स्त्रियोंके लिये प्रशस्त नहीं हैं। सर्वप्रथम  
प्रयत्नपूर्वक क्षेत्रपालकी पूजा करनी चाहिये। पापशून्ये!  
उस स्त्रीका पति सदा उसका मुख ही देखा करता है। जो  
स्त्रियाँ अष्टमी, चतुर्थी, पञ्चमी और द्वादशी तिथि, संक्रान्ति,  
विषुवयोग और दिनच्छिद्रमुख (दोपहरमें चन्द्रमाका नये  
मासकी तिथिमें प्रवेश करना)—इन दिव्य दिनोंमें उपवास  
करती हैं, उस धर्मयुक्त स्त्रियोंका स्वर्गमें निवास होता है—  
इसमें संदेह नहीं है। वे कलियुगके पापोंसे रहित और सभी  
पापोंसे शून्य हो जाती हैं। इस प्रकार जो स्त्री उपवासमें तप्त  
रहती है, उसके समीप यम भी नहीं आते ॥ २७—३८ ॥

अनौपम्या बोली—नारदजी! पता नहीं, इस जन्ममें  
या पूर्व जन्ममें किये हुए पुण्यसे ही आपका यहाँ आगमन  
हुआ है। अब मैं आपसे कतिपय व्रतोंके विषयमें पूछती

अस्ति विन्ध्यावलिनाम् बलिपत्नी यशस्विनी ।  
 श्वश्रूर्ममापि विप्रेन्द्र न तुव्यति कदाचन ॥ ४०  
 श्वशुरोऽपि सर्वकालं दृष्ट्वा चापि न पश्यति ।  
 अस्ति कुम्भीनसी नाम ननान्दा पापकारिणी ॥ ४१  
 दृष्ट्वा चैवाङ्गुलीभङ्गं सदा कालं करोति माम् ।  
 दिव्येन तु पथा याति मम सौख्यं कथं वद ॥ ४२  
 ऊषरे न प्रोहन्ति बीजाङ्कुराः कथञ्चन ।  
 येन व्रतेन चीर्णेन भवन्ति वशगा मम ।  
 तद्वतं ब्रूहि विपेन्द्र दासभावं व्रजामि ते ॥ ४३

नारद उवाच

यदेतत् ते मया पूर्वं व्रतमुक्तं शुभानने ।  
 अनेन पार्वती देवी चीर्णेन वरवर्णिनि ॥ ४४  
 शंकरस्य शरीरस्था विष्णोर्लक्ष्मीस्तथैव च ।  
 सावित्री ब्रह्मणश्चैव वसिष्ठस्याप्यरुच्यती ॥ ४५  
 एतेनोपोषितेनेह भर्ता स्थास्यति ते वशे ।  
 श्वशूश्वशुरयोश्चैव मुखबन्धो भविष्यति ॥ ४६  
 एवं श्रुत्वा तु शुश्रोणि यथेष्टुं कर्तुमर्हसि ।  
 नारदस्य वचः श्रुत्वा राज्ञी वचनमब्रवीत् ॥ ४७  
 प्रसादं कुरु विपेन्द्र दानं ग्राहां यथेष्पितम् ।  
 सुवर्णमणिरत्नानि वस्त्राण्याभरणानि च ॥ ४८  
 तव दास्याम्यहं विप्र यच्चान्यदपि दुर्लभम् ।  
 प्रगृहण द्विजश्रेष्ठं प्रीयेतां हरिशंकरौ ॥ ४९

नारद उवाच

अन्यस्मै दीयतां भद्रे क्षीणवृत्तिस्तु यो द्विजः ।  
 अहं तु सर्वसम्पन्नो मद्भक्तिः क्रियतामिति ॥ ५०  
 एवं तासां मनो हृत्वा सर्वासां तु पतिव्रतात् ।  
 जगाम भरतश्रेष्ठ स्वकीयं स्थानकं पुनः ॥ ५१  
 ततो ह्यहृष्टहृदया अन्यतोगतमानसाः ।  
 पतिव्रतात्वमुत्सृज्य तासां तेजो गतं ततः ।  
 पुरे छिद्रं समुत्पन्नं बाणस्य तु महात्मनः ॥ ५२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये सप्तशतमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें नर्मदामाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ सप्तासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८७ ॥

हूँ। विप्रवर! जो बलिकी पत्नी यशस्विनी विन्ध्यावलि हैं, वे मेरी भी सास हैं। वे मुझसे कभी भी प्रसन्न नहीं रहतीं। मेरे श्वशुर भी मुझे सभी समय देखते हुए भी अनदेखी करते हैं। पापाचरणमें रत रहनेवाली कुम्भीनसी नामकी मेरी ननद है। वह सभी समय मुझे देखकर अङ्गुली तोड़ती रहती है। वह दिव्य मार्गसे कैसे चले और मुझे सुखकी प्राप्ति कैसे हो—यह बतानेकी कृपा करें। (यह सत्य है कि) ऊषर भूमिमें डाले हुए बीजसे किसी प्रकार भी अङ्गुर नहीं उत्पन्न होते, फिर भी जिस ब्रतका अनुष्ठान करनेसे ये मेरे वशमें आ जायें, वह ब्रत मुझे बतलाइये। विप्रेन्द्र! मैं आपकी दासी हूँ॥ ३९—४३॥

नारदजीने कहा—सुन्दर मुखवाली! जो ब्रत मैंने पूर्वमें तुमसे कहा है, उस ब्रतका अनुष्ठान करनेसे पार्वतीदेवी शंकरके, लक्ष्मी विष्णुके, सावित्री ब्रह्माके, अरुन्धती वसिष्ठके शरीरमें विराजमान रहती हैं। इस उपवास-ब्रतसे तुम्हारा पति भी तुम्हारे अधीन रहेगा तथा सास और श्वशुरका भी मुख बंद हो जायगा अर्थात् वे तुमसे प्रेम करने लगेंगे। सुश्रोणि! ऐसा सुनकर तुम जैसा चाहो वैसा कर सकती हो। नारदजीके बचनको सुनकर रानीने इस प्रकार कहा—‘विप्रवर! मुझपर कृपा कीजिये और यथाभिलिष्ट दान स्वीकार कीजिये। विप्र! सुवर्ण, मणि, रत्न, वस्त्र, आभूषण एवं अन्य जो भी दुर्लभ पदार्थ हैं, वह सब मैं आपको दूँगी। द्विजश्रेष्ठ! आप उसे ग्रहण करें, जिससे विष्णु और शंकर मुझपर प्रसन्न हो जायें॥ ४४—४९॥

नारदजी बोले—कल्याणि! जो ब्रह्मण जीविकारहित हो, उसे ही यह दान दो। मैं तो सर्वसम्पन्न हूँ। तुम मेरे प्रति भक्ति-भाव रखो। भरतश्रेष्ठ! इस प्रकार उन सभी लियोंके मनको पातिव्रतसे विचलित कर नारदजी पुनः अपने स्थानपर चले गये। तभीसे उन लियोंका हृदय उदास रहने लगा और उनका मन दूसरी ओर लग गया। इस प्रकार पातिव्रत्यके त्यागसे उनका तेज नष्ट हो गया तथा महान् आत्मबलसे सम्पन्न बाणके नगरमें छिद्र (दोष) उत्पन्न हो गया॥ ५०—५२॥

## एक सौ अठासीवाँ अध्याय

त्रिपुर-दाहका वृत्तान्त

मार्कण्डेय उवाच

यन्मां पृच्छसि कौन्तेय तन्मे कथयतः शृणु ।  
एतस्मिन्नन्तरे रुद्रो नर्मदातटमास्थितः ॥ १  
नामा माहेश्वरं स्थानं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।  
तस्मिन् स्थाने महादेवोऽचिन्तयत् त्रिपुरक्षयम् ॥ २  
गाण्डीवं मन्दरं कृत्वा गुणं कृत्वा च वासुकिम् ।  
स्थानं कृत्वा तु वैशाखं विष्णुं कृत्वा शरोत्तमम् ॥ ३  
शल्ये चाग्निं प्रतिष्ठाप्य पुष्टे वायुं समर्पयत् ।  
हयांश्च चतुरो वेदान् सर्वदेवमयं रथम् ॥ ४  
अभीष्वोऽश्विनौ देवावक्षो वज्रधरः स्वयम् ।  
स तस्याज्ञां समादाय तोरणे धनदः स्थितः ॥ ५  
यमस्तु दक्षिणे हस्ते वामे कालस्तु दारुणः ।  
चक्रे त्वमरकोट्यस्तु गन्धर्वा लोकविश्रुताः ॥ ६  
प्रजापतिरथं श्रेष्ठो ब्रह्मा चैव तु सारथिः ।  
एवं कृत्वा तु देवेशः सर्वदेवमयं रथम् ॥ ७  
सोऽतिष्ठत् स्थाणुभूतस्तु सहस्रपरिवत्सरान् ।  
यदा त्रीणि समेतानि अन्तरिक्षे स्थितानि वै ॥ ८  
त्रिपर्वणा त्रिशल्येन तदा तानि व्यभेदयत् ।  
शरः प्रचोदितस्तेन रुद्रेण त्रिपुरं प्रति ॥ ९  
भ्रष्टतेजाः स्त्रियो जाता बलं तासां व्यशीर्यत ।  
उत्पाताश्च पुरे तस्मिन् प्रादुर्भूताः सहस्रशः ॥ १०  
त्रिपुरस्य विनाशाय कालरूपाभवंस्तदा ।  
अदृहासं प्रमुच्छन्ति हयाः काष्ठमयास्तदा ॥ ११  
निमेषोन्मेषणं चैव कुर्वन्ति चित्ररूपिणः ।  
स्वप्ने पश्यन्ति चात्मानं रक्ताम्बरविभूषितम् ॥ १२  
स्वप्ने तु सर्वे पश्यन्ति विपरीतानि यानि तु ।  
एतान् पश्यन्ति उत्पातांस्तत्र स्थाने तु ये जनाः ॥ १३

मार्कण्डेयजीने कहा—कुन्तीनन्दन ! आपने जो मुझसे पूछा है, उसे मैं कह रहा हूँ, सुनिये ! इसी बीच रुद्रदेव नर्मदा-तटपर आये । वहाँ जो तीनों लोकोंमें विष्ण्यात माहेश्वर नामक स्थान है, उस स्थानपर बैठकर महादेव त्रिपुर-संहारके विषयमें सोचने लगे । उन्होंने मन्दराचलको गाण्डीव धनुष, वासुकि सर्पको धनुषकी प्रत्यञ्चा, कार्तिकेयको तरकस, विष्णुको श्रेष्ठ बाण, बाणके अग्रभागमें अग्निको और पुच्छ भागमें वायुको प्रतिष्ठित करके चारों वेदोंको घोड़ा बनाया । इस प्रकार उन्होंने सर्वदेवमय रथका निर्माण किया । दोनों अश्विनीकुमारोंको वागडोर और रथकी धुरीके रूपमें साक्षात् वज्रधारी इन्द्रको नियुक्त किया । उनकी आज्ञाको स्वीकार कर कुबेर तोरणके स्थानपर स्थित हुए । दाहिने हाथपर यम और बायें हाथपर भयंकर काल स्थित हुए । करोड़ों देवगण और लोकविश्रुत गन्धर्वगण रथके चक्रे हुए तथा श्रेष्ठ प्रजापति ब्रह्मा सारथि बने । इस प्रकार शिवजी सर्वदेवमय रथका निर्माण कर उसपर स्थाणुरूपमें एक हजार वर्षोंतक स्थित रहे । जब तीनों पुर अन्तरिक्षमें एक साथ सम्मिलित हुए, तब उन्होंने तीन पर्वोंवाले तीन बाणोंसे उनका भेदन किया । जिस समय भगवान् रुद्रने उस बाणको त्रिपुरके ऊपर चलाया, उस समय वहाँकी स्त्रियाँ तेजोहीन हो गयीं और उनका पातिव्रत-बल नष्ट हो गया तथा उस नगरमें हजारों प्रकारके उपद्रव उत्पन्न होने लगे ॥ १—१० ॥

उस समय वे स्त्रियाँ भी त्रिपुर-नाशके लिये कालस्वरूप हो गयीं । काष्ठमय घोड़े अदृहास करने लगे । चित्ररूपमें निर्मित जीव आँखको खोलने और बंद करने लगे । वहाँके निवासी स्वप्नमें अपनेको लाल बद्धसे अलंकृत देखने लगे । उन्हें स्वप्नमें सभी वस्तुएँ विपरीत दिखायी पड़ने लगीं । वे इस प्रकार इन उत्पातोंको देखने

तेषां बलं च बुद्धिश्च हरकोपेन नाशिते ।  
 ततः सांवर्तको वायुर्युगान्तप्रतिमो महान् ॥ १४  
 समीरितोऽनलस्तेन उत्तमाङ्गेन धावति ।  
 ज्वलन्ति पादपास्तत्र पतन्ति शिखराणि च ॥ १५  
 सर्वतो व्याकुलीभूतं हाहाकारमचेतनम् ।  
 भग्नोद्यानानि सर्वाणि क्षिप्रं तत् प्रत्यभन्यत ॥ १६  
 तेनैव पीडितं सर्वं ज्वलितं त्रिशिखैः शरैः ।  
 द्रुमाश्चारामखण्डानि गृहाणि विविधानि च ॥ १७  
 दशदिक्षु प्रवृत्तोऽयं समृद्धो हव्यवाहनः ।  
 मनःशिलापुञ्जनिभो दिशो दश विभागशः ॥ १८  
 शिखाशतैरनेकैस्तु प्रजच्चाल हुताशनः ।  
 सर्वं किंशुकवर्णाभ्यं ज्वलितं दृश्यते पुरम् ॥ १९  
 गृहाद् गृहान्तरं नैव गन्तुं धूमेन शक्यते ।  
 हरकोपानलैर्दग्धं क्रन्दमानं सुदुःखितम् ॥ २०  
 प्रदीपं सर्वतो दिक्षु दह्यते त्रिपुरं पुरम् ।  
 प्रासादशिखराग्राणि व्यशीर्यन्त सहस्रशः ॥ २१  
 नानामणिविचित्राणि विमानान्यप्यनेकधा ।  
 गृहाणि चैव रम्याणि दह्यन्ते दीमवहिना ॥ २२  
 धावन्ति द्रुमखण्डेषु वलभीषु तथा जनाः ।  
 देवागारेषु सर्वेषु प्रज्वलन्तः प्रधाविताः ॥ २३  
 क्रन्दन्ति चानलप्लुष्टा रुदन्ति विविधैः स्वरैः ।  
 गिरिकूटनिभास्तत्र दृश्यन्तेऽङ्गारराशयः ॥ २४  
 गजाश्च गिरिकूटाभा दह्यमाना यतस्ततः ।  
 स्तुवन्ति देवदेवेशं परित्रायस्व नः प्रभो ।  
 अन्योऽन्यं च परिष्वन्य हुताशनप्रधर्षिताः ॥ २५  
 स्नेहात् प्रदह्यमानाश्च तथैव वलयंगताः ।  
 दह्यन्ते दानवास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २६  
 हंसकारण्डवाकीर्णा नलिन्यः सहपङ्कजाः ।  
 दृश्यन्तेऽनलदग्धानि पुरोद्यानानि दीपिकाः ॥ २७  
 अम्लानपङ्कजच्छन्ना विस्तीर्णा योजनायताः ।  
 गिरिकूटनिभास्तत्र प्रासादा रलभूषिताः ॥ २८  
 पतन्त्यनलनिर्दग्धा निस्तोया जलदा इव ।  
 वरस्त्रीबालवृद्धेषु गोषु पक्षिषु वाजिषु ॥ २९

लगे । शंकरजीके कोपसे उनके बल और बुद्धि नष्ट हो गये । तदनन्तर प्रलयकालके समान प्रचण्ड सांवर्तक वायु बहने लगा । वायुसे प्रेरित आगकी भयंकर लपटें भी इधर-उधर व्याप होने लगीं । जिससे वहाँ वृक्ष-समूह जलने लगे और पर्वतके शिखर गिरने लगे । सभी ओर लोग व्याकुल होकर चेतनारहित हो गये । चतुर्दिक् भयंकर हाहाकार मच गया । सभी उद्यान नष्ट हो गये । वहाँ सब कुछ शीघ्र ही छिन्न-भिन्न हो गया । शंकरजीद्वारा सभी दुःखमग्न कर दिये गये । तीन शिखाओंवाले बाणोंसे वृक्ष, वाटिकाएँ और विविध प्रासाद जलने लगे । यह प्रदीप अग्नि दसों दिशाओंमें फैल गया । उस समय दसों दिशाएँ मैनशिलसमूहके समान दीखने लगीं । अग्निदेव अनेकों प्रकारकी सैकड़ों शिखाओंसे युक्त प्रज्वलित हो उठे, जिससे जला हुआ वह सम्पूर्ण त्रिपुर पलाशपुष्पके समान लाल रंगका दिखायी पड़ रहा था ॥ ११—१९ ॥

उस समय धुएँके कारण एक घरसे दूसरे घरमें जाना सम्भव नहीं था । सभी लोग शंकरजीकी क्रोधाग्निसे जलते हुए अत्यन्त दुःखके कारण चीत्कार कर रहे थे । इस प्रकार सभी दिशाओंमें धधकता हुआ त्रिपुरनगर जल रहा था । राजभवनोंके शिखरोंके अग्रभाग हजारों टुकड़ोंमें टूटकर गिर रहे थे । विविध मणियोंसे जटित अनेकों विमान और रमणीय घर उद्दीप आगसे जल रहे थे । वहाँके निवासी वृक्षोंके समूहोंमें, घरोंके छज्जोंके नीचे तथा सभी देवगृहोंमें जलते हुए इधर-उधर दौड़ रहे थे । आगकी चपेटमें आकर वे सभी विविध स्वरोंमें क्रन्दन कर रहे थे । वहाँ पर्वतशिखरके समान अङ्गारसमूह दिखायी दे रहे थे । पर्वतशिखरके समान विशाल गजराज इधर-उधर जल रहे थे । सभी देवाधिदेव शंकरकी यों स्तुति कर रहे थे—‘प्रभो ! हमलोगोंकी रक्षा कीजिये ।’ वे अग्निसे जलते हुए स्नेहके कारण एक-दूसरेका आलिङ्गन कर उसी प्रकार जलते हुए नष्ट हो रहे थे । इस प्रकार वहाँ सैकड़ों-हजारों दानव जल रहे थे ॥ २०—२६ ॥

हंसों और बतखोंसे परिपूर्ण एवं कमलोंसे युक्त पुष्करिणी, बगीचे तथा बावलियाँ, जो एक योजन लम्बी-चौड़ी और खिले हुए कमलोंसे व्याप थीं, अग्निसे जलती हुई दिखायी दे रही थीं । वहाँ रलोंसे विभूषित पर्वतशिखरके समान राजभवन अग्निके द्वारा भस्म होकर गिर रहे थे । वे जलशून्य मेघके समान दिखायी दे रहे थे । शंकरजीके क्रोधसे प्रेरित अग्नि श्रेष्ठ स्त्री, बालक, वृद्ध, गौ, पक्षी

निर्दयो व्यदहद् वह्निरक्रोधेन प्रेरितः ।  
 सहस्रशः प्रबुद्धाश्च सुमाश्च बहवो जनाः ॥ ३०  
 पुत्रमालिङ्ग्य ते गाढं दह्यन्ते त्रिपुराग्निना ।  
 निदाघोऽभूम्नमहावह्नेरन्तकालो यथा तथा ॥ ३१  
 केचिद् गुसाः प्रदग्धास्तु भायोत्सङ्गगतास्तथा ।  
 पित्रा मात्रा च सुशिलष्टा दग्धास्वे त्रिपुराग्निना ॥ ३२  
 अथ तस्मिन् पुरे दीपे स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः ॥ ३३  
 अग्निज्वालाहतास्तत्र ह्यपतन् धरणीतले ।  
 काचिच्छ्यामा विशालाक्षी मुक्तावलिविभूषिता ॥ ३४  
 धूमेनाकुलिता सा तु पतिता धरणीतले ।  
 काचित् कनकवर्णाभा इन्द्रनीलविभूषिता ॥ ३५  
 भर्तरं पतितं दृष्टा पतिता तस्य चोपरि ।  
 काचिदादित्यसङ्काशा प्रसुसा च गृहे स्थिता ॥ ३६  
 अग्निज्वालाहता सा तु पतिता गतचेतना ।  
 उत्थितो दानवस्तत्र खड्गहस्तो महाबलः ॥ ३७  
 वैश्वानरहतः सोऽपि पतितो धरणीतले ।  
 मेघवर्णापरा नारी हारकेयूरभूषिता ॥ ३८  
 श्वेतवस्त्रपरीधाना बालं स्तन्यं न्यधापयत् ।  
 दह्यन्तं बालं दृष्टा रुदती मेघशब्दवत् ॥ ३९  
 एवं स तु दहन्नग्निर्हक्रोधेन प्रेरितः ।  
 काचिच्चन्द्रप्रभा सौम्या वज्रवैदूर्यभूषिता ॥ ४०  
  
 सुतमालिङ्ग्य वेपन्ती दग्धा पतिति भूतले ।  
 काचित् कुन्देन्दुवर्णाभा क्रीडन्ती स्वगृहे स्थिता ॥ ४१  
  
 गृहे प्रज्वलिते सा तु प्रतिबुद्धा शिखार्दिता ।  
 पश्यन्ती ज्वलितं सर्वं हा सुतो मे कथं गतः ॥ ४२  
  
 सुतं संदग्धमालिङ्ग्य पतिता धरणीतले ।  
 आदित्योदयवर्णाभा लक्ष्मीवदनशोभना ॥ ४३  
  
 त्वरिता दह्यमाना सा पतिता धरणीतले ।  
 काचित् सुवर्णवर्णाभा नीलरत्नैर्विभूषिता ॥ ४४

और घोड़ोंमें फैलकर निर्दयतापूर्वक जला रहे थे। हजारों जागे हुए एवं अनेकों सोये हुए व्यक्ति, जो पुत्रका गाढ़ आलिङ्गन किये हुए थे, त्रिपुराग्निसे जल रहे थे। वहाँ प्रचण्ड अग्निके कारण प्रलयकालीन संताप परिव्याप्त था। उस त्रिपुराग्निसे कुछ लोग पलीकी गोदमें छिपे हुए ही भस्म हो गये तो कुछ लोग माँ-बापसे चिपके हुए ही जलकर भस्मसात् हो गये। उस प्रज्वलित त्रिपुरमें अप्सराओंके समान सुन्दरी स्त्रियाँ अग्निकी ज्वालाओंसे झुलसकर पृथ्वीपर गिर रही थीं। कोई मोतीकी मालाओंसे अलंकृत विशाल नेत्रोंवाली घोडशवर्षीया नायिका धूएँसे व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। कोई इन्द्रनील मणिसे अलंकृत स्वर्णके समान कान्तिवाली स्त्री पतिको गिरा हुआ देखकर उसीके ऊपर गिर पड़ी। कोई सूर्यके समान तेजस्विनी नारी घरमें ही स्थित रहकर सो रही थी, वह अग्निकी ज्वालासे चेतनारहित होकर धराशायी हो गयी। उसी समय अतिशय बलशाली एक दानव हाथमें तलवार लेकर उठ खड़ा हुआ, किंतु अग्निसे जलकर वह भी पृथ्वीपर गिर पड़ा। मेघके समान श्यामवर्णकी दूसरी स्त्री, जो हार और केयूरसे अलंकृत तथा श्वेतवस्त्र पहने हुए अपने दुधमुँहे बच्चेको सुलाये हुए थी, वह उस बच्चेको जलते हुए देखकर मेघके शब्दके समान रोने लगी। इस प्रकार शंकरजीके कोपसे प्रेरित वह अग्नि त्रिपुरको जला रही थी ॥ २७—३९ १ ॥

कोई चन्द्रके समान कान्तिवाली एवं हीरक और वैदूर्यसे अलंकृत सज्जन नायिका अपने पुत्रको गोदमें लेकर काँपती हुई जलकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। कोई कुन्द-पुष्प एवं चन्द्रमाके समान कान्तिवाली स्त्री क्रीडा करती हुई अपने घरमें ही सो रही थी, वह घरके जलनेपर अग्निशिखासे पीड़ित हो जाग उठी और सबको जलता हुआ देखकर 'हा! मेरा पुत्र कहाँ चला गया?' ऐसा कहती हुई जलते हुए पुत्रका आलिङ्गन कर पृथ्वीपर गिर पड़ी। उदयकालीन सूर्यके समान कान्तिसे युक्त एवं लक्ष्मीके मुखके समान शोभायमान मुखवाली कोई स्त्री भागती हुई जलकर पृथ्वीपर गिर गयी। कोई स्वर्णके समान कान्तिवाली नीलरत्नोंसे अलंकृत स्त्री

धूमेनाकुलिता सा तु प्रसुमा धरणीतले ।  
अन्या गृहीतहस्ता तु सखि दहृति बालिका ॥ ४५  
अनेकदिव्यरत्नाद्या दृष्टा दहनमोहिता ।  
शिरसि ह्यञ्जलिं कृत्वा विज्ञापयति पावकम् ॥ ४६  
भगवन् यदि वैरं ते पुरुषेष्वपकारिषु ।  
स्त्रियः किमपराध्यन्ते गृहपञ्चरकोकिलाः ॥ ४७  
पाप निर्दय निर्लज्ज कस्ते कोपः स्त्रियः प्रति ।  
न दाक्षिण्यं न ते लज्जा न सत्यं शौर्यवर्जितः ॥ ४८  
अनेन ह्यपसर्गेण तूपालम्भं शिखिन्यदात् ।  
किं त्वया न श्रुतं लोके ह्यवध्याः शत्रुयोषितः ॥ ४९  
किंतु तुभ्यं गुणा ह्येते दहनोत्सादनं प्रति ।  
न कारुण्यं भयं वापि दाक्षिण्यं न स्त्रियः प्रति ॥ ५०  
दयां कुर्वन्ति म्लेच्छापि दहन्तीं वीक्ष्य योषितम् ।  
म्लेच्छानामपि कष्टोऽसि दुर्निवारो ह्यचेतनः ॥ ५१  
एते चैव गुणास्तुभ्यं दहनोत्सादनं प्रति ।  
आसामपि दुराचार स्त्रीणां किं ते निपातने ॥ ५२  
दुष्ट निर्धृण निर्लज्ज हुताशिन् मन्दभाग्यक ।  
निराशत्वं दुरावास बलाद् दहसि निर्दय ॥ ५३  
एवं विलपमानास्ता जल्पन्त्यश्च बहून्यपि ।  
अन्याः क्रोशन्ति संकुद्धा बालशोकेन मोहिताः ॥ ५४  
दहते निर्दयो वह्निः संकुद्धः पूर्वशत्रुवत् ।  
पुष्करिण्यां जलं दग्धं कूपेष्वपि तथैव च ॥ ५५  
अस्मान् संदह्य म्लेच्छ त्वं कां गतिं प्रापयिष्यसि ।  
एवं प्रलपितं तासां श्रुत्वा देवो विभावसुः ।  
मूर्तिमान् सहसोत्थाय वह्निर्वचनमब्रवीत् ॥ ५६

अग्निरुवाच

स्ववशो नैव युष्माकं विनाशं तु करोम्यहम् ।  
अहमादेशकर्ता वै नाहं कर्तास्म्यनुग्रहम् ॥ ५७  
रुद्रक्रोधसमाविष्टो विचरामि यथेच्छया ।  
ततो बाणो महातेजास्त्रिपुरं वीक्ष्य दीपितम् ॥ ५८  
सिंहासनस्थः प्रोवाच ह्यहं देवैर्विनाशितः ।  
अल्पसत्त्वैर्दुराचारैरीश्वरस्य निवेदितम् ॥ ५९

धुएँसे व्याकुल होकर पृथ्वीपर सो गयी । अन्य स्त्री अपनी सखीका हाथ पकड़कर कह रही हैं—‘सखि ! बालिका जल रही है ।’ कोई अनेक दिव्य रत्नोंसे अलङ्कृत नारी अग्निको देखकर मोहित हो गयी, तब वह सिरपर हाथ जोड़कर अग्निसे प्रार्थना करने लगी—‘भगवन् ! यदि तुम्हारा अपकारी पुरुषोंसे वैर है तो घरके पिंजरेमें कोयलके समान आबद्ध स्त्रियोंने तुम्हारा क्या अपराध किया है ? अरे पापी ! तुम तो बड़े निर्दयी और निर्लज्ज हो । स्त्रियोंके प्रति यह तुम्हारा कैसा क्रोध है ! अरे कायर ! न तो तुममें कुशलता है, न लज्जा है और न सत्यता है ।’ वह ऐसे आक्षेपयुक्त वाक्योंसे अग्निको उलाहना देने लगी । (फिर दूसरी कहने लगी—) ‘क्या तुमने यह नहीं सुना है कि शत्रुकी स्त्रियाँ भी अवध्य होती हैं ? क्या जलाना और नाश करना ये ही तुम्हरे गुण हैं ? तुम्हारेमें स्त्रियोंके प्रति दया, भय अथवा उदारता नहीं है । म्लेच्छगण भी स्त्रियोंको जलती हुई देखकर उनपर दया करते हैं । तुम तो म्लेच्छोंसे भी बढ़कर हृदयशून्य दुर्निवार कष्ट हो । दुराचारिन् ! इन स्त्रियोंको मारनेसे तुम्हें क्या मिलेगा ? क्या जलाना और मारना ये ही तुम्हरे गुण हैं ? दुष्ट हुताशिन् ! तुम बड़े दयाहीन, निर्लज्ज, अभागा, कठोर और कपटी हो । अरे निर्दय ! तुम क्यों बलपूर्वक स्त्रियोंको जला रहे हो ?’ इस प्रकार वे स्त्रियाँ अनेकों प्रकारसे विलाप करती हुई चीत्कार कर रही थीं ? अन्य कुछ स्त्रियाँ बालशोकसे मोहित होकर विलाप कर रही थीं । यह निष्ठुर अग्नि कुद्ध होकर पुराने शत्रुके समान हमलोगोंको जला रहा है । पुष्करिण्यों और कुओंके भी जल सूख गये । अरे म्लेच्छ ! हमलोगोंको जलाकर तुम किस गतिको प्राप्त होगे ? इस प्रकार उनका प्रलाप सुनकर अग्निदेव सहसा मूर्तिमान् होकर उठ खड़े हुए और इस प्रकार बोले ॥ ५०—५६ ॥

अग्निदेवने कहा—मैं अपनी इच्छाके अनुसार तुमलोगोंका विनाश नहीं कर रहा हूँ, अपितु मैं आदेशका पालक हूँ । मैं अनुग्रहका कर्ता नहीं हूँ । मैं रुद्रके क्रोधसे आविष्ट होकर इच्छानुसार विचरण कर रहा हूँ । तदनन्तर सिंहासनपर बैठा हुआ महातेजस्वी बाण त्रिपुरको जलता हुआ देखकर बोला—‘मैं देवताओंद्वारा विनष्ट कर दिया गया । उस स्वल्पवलशाली दुराचारियोंने शंकरसे निवेदन

अपरीक्ष्य त्वं दग्धः शंकरेण महात्मना ।  
 नान्यः शक्तिस्तु मां हनुं वर्जयित्वा त्रिलोचनम् ॥ ६०  
 उत्थितः शिरसा कृत्वा लिङ्गं त्रिभुवनेश्वरम् ।  
 निर्गतः स पुरद्वारात् परित्यज्य सुहृत्सुतान् ॥ ६१  
 रत्नानि यान्यनर्धाणि स्त्रियो नानाविधास्तथा ।  
 गृहीत्वा शिरसा लिङ्गं गच्छन् गगनमण्डलम् ॥ ६२  
 स्तुवंश्च देवदेवेण त्रिलोकाधिपतिं शिवम् ।  
 त्यक्ता पुरी मया देव यदि वध्योऽस्मि शंकर ॥ ६३  
 त्वत्प्रसादान्महादेव मा मे लिङ्गं विनश्यतु ।  
 अर्चितं हि मया देव भक्त्या परमया सदा ॥ ६४  
 त्वत्कोपाद् यदि वध्योऽहं तदिदं मा विनश्यतु ।  
 श्लाघ्यमेतन्महादेव त्वत्कोपाद् दहनं मम ॥ ६५  
 प्रतिजन्म महादेव त्वत्पादनिरतो ह्यहम् ।  
 तोटकच्छन्दसा देव स्तौमि त्वां परमेश्वर ॥ ६६

शिव शंकर शर्व हराय नमो  
 भव भीम महेश्वर सर्व नमः ।  
 कुसुमायुधदेहविनाशकर  
 त्रिपुरान्तक अन्धकशूलधर ॥ ६७  
 प्रमदाप्रिय कान्त विरक्त नमः  
 ससुरासुरसिद्धगणैर्नमित ।  
 हयवानरसिंहगजेन्द्रमुखै-  
 रतिहस्वसुदीर्घविशालमुखैः ॥ ६८

उपलब्धुमशक्यतरैरसुरैः  
 प्रथितोऽस्मि च बाहुशतैर्बहुभिः ।  
 प्रणतोऽस्मि भवं भवभक्तिर-  
 श्वलचन्द्रकलाङ्कुर देव नमः ॥ ६९  
 न च पुत्रकलत्रहयादिधनं  
 मम तु त्वदनुस्मरणं शरणम् ।  
 व्यथितोऽस्मि शरीरशतैर्बहुभि-  
 र्गमिता च महानरकस्य गतिः ॥ ७०  
 न निवर्तति जन्म न पापमतिः  
 शुचिकर्म निबद्धमपि त्यजति ।  
 अनुकम्पति विभ्रमति त्रसति  
 मम चैव कुकर्म निवारयति ॥ ७१

किया और महात्मा शंकरने भी बिना विचार ही मुझे जला दिया । उन त्रिलोचनको छोड़कर अन्य कोई भी मेरा विनाश नहीं कर सकता । तब वह सिंहासनसे उठ खड़ा हुआ और त्रिभुवनपति शंकरके लिङ्गको सिरपर धारणकर मित्र, पुत्र, बहुमूल्य रत्नों, स्त्रियों और अन्यान्य अनेक प्रकारके पदार्थोंको छोड़कर नगरद्वारसे बाहर निकला । वह लिङ्गको सिरपर धारण कर गगनमण्डलमें जा पहुँचा और देवदेवेश त्रिभुवनपति शिवकी स्तुति करते हुए कहने लगा—‘देव ! मैंने अपनी पुरीका परित्याग कर दिया है । शंकर ! यदि मैं वस्तुतः वध करने योग्य हूँ तो महादेव ! आपकी कृपासे मेरा यह लिङ्ग विनष्ट न हो । देव ! मैंने परमभक्तिके साथ सदा इसकी पूजा की है, अतः यदि मैं आपके कोपके कारण वध्य हूँ तो यह लिङ्ग विनष्ट न हो । महादेव ! आपके कोपसे मेरा यह जल जाना प्रशस्त ही है । महादेव ! प्रत्येक जन्ममें मैं आपके चरणोंमें ही लीन हूँ, अतः देवाधिदेव परमेश्वर ! मैं तोटक-छन्दद्वारा आपकी स्तुति कर रहा हूँ ॥ ५७—६६ ॥

आप शिव, शंकर, शर्व और हरको नमस्कार हैं। भव, भीम, महेश्वर और सर्वभूतमयको प्रणाम है। आप कामदेवके शरीरके नाशक, त्रिपुरान्तक, अन्धक, त्रिशूलधर, आनन्दप्रिय, कान्त, विरक्त और सुर-असुर-सिद्धगणोंसे नमस्कृत हैं, आपको नमस्कार है। मैं अश्व, वानर, सिंह और गजेन्द्रके-से मुखोंवाले, अतिशय छोटे, विस्तृत विशालमुखोंसे युक्त और सैकड़ों भुजाओंसे सम्पन्न बहुत-से अजेय असुरोंद्वारा प्राप्त करनेके लिये अशक्यरूपसे विख्यात हूँ। शिवजीकी भक्तिमें लीन रहनेवाला वही मैं भवके चरणोंमें प्रणिपात कर रहा हूँ। चञ्चल चन्द्रकलासे सुशोभित देव ! आपको नमस्कार है। ये पुत्र, स्त्री, अश्वादि वैभव मेरे नहीं हैं, मेरे लिये तो आपका चिन्तन ही एकमात्र शरण है। मैं सैकड़ों शरीर (जन्म) धारण कर पीड़ित हो चुका हूँ। आगे महानरकमें पड़नेकी सम्भावना है। न जन्मसे छुटकारा मिलेगा, न पापबुद्धि ही निवृत्त होगी, शुद्ध कर्ममें लगा हुआ भी मन उसे छोड़ देता है, काँपता है, भ्रमित होता है और भयभीत होता है। मेरे ही कुकर्म अच्छे कर्मोंसे मुझे हटाते हैं।

यः पठेत् तोटकं दिव्यं प्रयतः शुचिमानसः ।  
बाणस्येव यथा रुद्रस्तस्यापि वरदो भवेत् ॥ ७२  
इमं स्तवं महादिव्यं श्रुत्वा देवो महेश्वरः ।  
प्रसन्नस्तु तदा तस्य स्वयं वचनमब्रवीत् ॥ ७३

महेश्वर उवाच

न भेतव्यं त्वया वत्स सौवर्णे तिष्ठ दानव ।  
पुत्रपौत्रसुहृद्भ्युभार्याभृत्यजनैः सह ॥ ७४  
अद्यप्रभृति बाण त्वमवध्यस्त्रिदशैरपि ।  
भूयस्तस्य वरो दत्तो देवदेवेन पाण्डव ॥ ७५  
अक्षयश्वाव्ययो लोके विचरस्वाकुतोभयः ।  
ततो निवारयामास रुद्रः सप्तशिखं तदा ॥ ७६  
तृतीयं रक्षितं तस्य शंकरेण महात्मना ।  
भ्रमत्तु गगने दिव्यं रुद्रतेजःप्रभावतः ॥ ७७  
एवं तु त्रिपुरं दग्धं शंकरेण महात्मना ।  
ज्वालामालाप्रदीपं तत् पतितं धरणीतले ॥ ७८  
एकं निपतितं तत्र श्रीशैले त्रिपुरान्तके ।  
द्वितीयं पतितं तस्मिन् पर्वतेऽमरकण्टके ॥ ७९  
दग्धेषु तेषु राजेन्द्र रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिता ।  
ज्वलत्तदपतत् तत्र तेन ज्वालेश्वरः स्मृतः ॥ ८०  
ऊर्ध्वेन प्रस्थितास्तस्य दिव्यज्वाला दिवं गताः ।  
हाहाकारस्तदा जातो देवासुरकृतो महान् ॥ ८१  
शरमस्तम्भयद् रुद्रो माहेश्वरपुरोत्तमे ।  
एवं वृत्तं तदा तस्मिन् पर्वतेऽमरकण्टके ॥ ८२  
चतुर्दशाख्यं भुवनं स भुक्त्वा पाण्डुनन्दन ।  
वर्षकोटिसहस्रं तु त्रिंशत्कोट्यस्तथापराः ॥ ८३  
ततो महीतलं प्राप्य राजा भवति धार्मिकः ।  
पृथिवीमेकच्छत्रेण भुइक्ते स तु न संशयः ॥ ८४  
एवं पुण्यो महाराज पर्वतोऽमरकण्टकः ।  
चन्द्रसूर्योपरागे तु गच्छेद् योऽमरकण्टकम् ॥ ८५  
अश्वमेधाद् दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः ।  
स्वर्गलोकमवाप्नोति दृष्ट्वा तत्र महेश्वरम् ॥ ८६  
ब्रह्महत्या गमिष्यन्ति राहुग्रस्ते दिवाकरे ।  
तदेवं निखिलं पुण्यं पर्वतेऽमरकण्टके ॥ ८७

जो मनुष्य संयत होकर पवित्र मनसे इस दिव्य तोटकछन्दमें रचित स्तोत्रको पढ़ता है, उसके लिये भी रुद्र बाणके समान वरदायक होते हैं। उस समय स्वयं महेश्वरदेव इस महादिव्य स्तोत्रको सुनकर उसपर प्रसन्न हो गये और इस प्रकार बोले ॥६७—७३ ॥

भगवान् महेश्वरने कहा—वत्स ! तुम्हें डरना नहीं चाहिये । दानव ! तुम पुत्र, मित्र, बन्धु, पली और भृत्यजनोंके साथ सुवर्णनिर्मित नगरमें निवास करो । बाण ! आजसे तुम देवताओंद्वारा अवध्य हो गये । अब तुम लोकमें सर्वथा निर्भय, अव्यय और अक्षय होकर विचरण करो । पाण्डुनन्दन ! इस प्रकार देवाधिदेवने बाणको पुनः वर प्रदान किया । तदनन्तर रुद्रने अग्निको जलानेसे मना कर दिया । इस प्रकार महात्मा शंकरने बाणासुरके तृतीय पुरकी रक्षा की । वह पुर रुद्रके तेजके प्रभावसे गगनमण्डलमें घूमने लगा । इस प्रकार महात्मा शंकरने त्रिपुरको जलाया । वह ज्वालामालासे प्रदीप होकर पृथ्वीतलपर गिर पड़ा । उनमेंसे एक पुर त्रिपुरान्तके श्रीशैलपर गिरा और द्वितीय उस अमरकण्टक पर्वतपर गिरा । राजेन्द्र ! उनके जल जानेपर उसपर करोड़ों रुद्र प्रतिष्ठित हुए । वह जलता हुआ गिरा था, इस कारण ज्वालेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ । उसकी दिव्य ज्वालाएँ ऊपरको उठती हुई स्वर्गलोकतक जा पहुँचीं । उस समय देवों और असुरोंके द्वारा किया गया भयंकर हाहाकार व्यास हो गया । तब रुद्रने अमरकण्टक पर्वतपर उत्तम माहेश्वरपुरमें शरको स्तम्भित कर दिया । पाण्डुनन्दन ! (इस प्रकार अमरकण्टकपर्वतपर जो व्यक्ति रुद्रकोटिकी अर्चना करता है) वह तीस करोड़ एक हजार वर्षपर्यन्त चौदहों भुवनोंका उपभोग कर अन्तमें पृथ्वीपर जन्म लेकर धार्मिक राजा होता है । वह एकच्छत्र सम्राट् होकर पृथ्वीका उपभोग करता है—इसमें संदेह नहीं है ॥ ७४—८४ ॥

महाराज ! यह अमरकण्टक पर्वत ऐसा पुण्यजनक है । जो व्यक्ति चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय अमरकण्टक पर्वतपर जाता है, वह अश्वमेध-यज्ञसे दसगुना फल प्राप्त करता है और वहाँ महेश्वरका दर्शन करके स्वर्गलोकको प्राप्त करता है—ऐसा मनीषियोंने कहा है । सूर्यग्रहणके अवसरपर अमरकण्टकपर जानेसे ब्रह्महत्याएँ निवृत हो जाती हैं । इस प्रकार अमरकण्टक पर्वतपर अशेष पुण्य

मनसापि स्मरेद् यस्तं गिरि त्वमरकण्टकम्।  
 चान्द्रायणशतं साग्रं लभते नात्र संशयः ॥ ८८  
 त्रयाणामपि लोकानां विख्यातोऽमरकण्टकः।  
 एष पुण्यो गिरिश्रेष्ठः सिद्धगन्धर्वसेवितः ॥ ८९  
 नानाद्रुमलताकीर्णो नानापुष्पोपशोभितः।  
 मृगव्याघ्रसहस्रैस्तु सेव्यमानो महागिरिः ॥ ९०  
 यत्र संनिहितो देवो देव्या सह महेश्वरः।  
 ब्रह्मा विष्णुस्तथा चेन्द्रो विद्याधरगणैः सह ॥ ९१  
 ऋषिभिः किन्नरैर्यज्ञैर्नित्यमेव निषेवितः।  
 वासुकिः सहितस्तत्र क्रीडते पन्नगोत्तमैः ॥ ९२  
 प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात् पर्वतेऽमरकण्टके।  
 पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राज्ञोति मानवः ॥ ९३  
 तत्र ज्वालेश्वरं नाम तीर्थं सिद्धनिषेवितम्।  
 तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ॥ ९४  
 ज्वालेश्वरे महाराज यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।  
 चन्द्रसूर्योपरागेषु तस्यापि शृणु यत्फलम् ॥ ९५  
 सर्वकर्मविनिर्मुक्तो ज्ञानविज्ञानसंयुतः।  
 रुद्रलोकमवाज्ञोति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ९६  
 अमरेश्वरदेवस्य पर्वतस्य उभे तटे।  
 तत्र ता ऋषिकोट्यस्तु तपस्तप्यन्ति सुव्रत ॥ ९७  
 समंताद् योजनक्षेत्रो गिरिश्चामरकण्टकः ॥ ९८  
 अकामो वा सकामो वा नर्मदायां शुभे जले।  
 स्नात्वा मुच्येत पापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ९९

प्राप्त होता है। जो मनसे भी उस अमरकण्टकपर्वतका स्मरण करता है, उसे निःसंदेह सौ चान्द्रायणब्रतसे भी अधिक फल मिलता है। अमरकण्टक पर्वत तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। यह पुण्यमय श्रेष्ठ पर्वत सिद्धों और गन्धर्वोंसे सेवित, विविध वृक्षों और लताओंसे व्याप्त तथा अनेक प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित है। यह महान् पर्वत हजारों मृगों और व्याघ्रोंसे सेवित है। जहाँ देवी पार्वतीके साथ महादेव, ब्रह्मा, विष्णु तथा विद्याधरोंके साथ इन्द्र सदा उपस्थित रहते हैं, वह अमरकण्टक पर्वत ऋषियों, किन्नरों और यक्षोंके द्वारा सदा सेवित रहता है। श्रेष्ठ सर्पोंके साथ वासुकि वहाँ क्रीड़ा करते रहते हैं। जो मनुष्य अमरकण्टक पर्वतकी प्रदक्षिणा करता है, वह पौण्डरीक यज्ञका फल प्राप्त करता है। वहाँ सिद्धोंद्वारा सेवित ज्वालेश्वर नामक तीर्थ है, उसमें स्नानकर मानव स्वर्गलोकको प्राप्त करते हैं और जो वहाँ शरीरका त्याग करते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। महाराज ! चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके अवसरपर जो व्यक्ति ज्वालेश्वरमें प्राणोंका परित्याग करता है, उसे जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनिये। वह व्यक्ति सभी कर्मोंसे विनिर्मुक्त तथा ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न हो प्रलयकालपर्यन्त रुद्रलोकको प्राप्त करता है। सुव्रत ! अमरकण्टकपर्वतके दोनों तटोंपर करोड़ों ऋषिगण तपस्यामें रत रहते हैं। यह अमरकण्टकपर्वत चारों ओरसे एक योजनमें विस्तृत है। अकाम हो या सकाम, जो मनुष्य नर्मदाके शुभदायक जलमें स्नान करता है, वह सभी पापोंसे छुटकारा पा लेता है और रुद्रलोकको प्राप्त करता है ॥ ८५—९९ ॥

इति श्रीमात्ये महापुराणे नर्मदामाहात्ये अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके नर्मदामाहात्यवर्णनमें एक सौ अठासीबाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८८ ॥

## एक सौ नवासीवाँ अध्याय

नर्मदा-कावेरी-संगमका माहात्म्य

सूत उवाच

पृच्छन्ति ते महात्मानो मार्कण्डेयं महामुनिम्।  
युधिष्ठिरपुरोगास्ते ऋषयश्च तपोधनाः॥ १  
आख्याहि भगवंस्तथं कावेरीसंगमो महान्।  
लोकानां च हितार्थाय अस्माकं च विवृद्धये॥ २  
सदा पापरता ये च नरा दुष्कृतकारिणः।  
मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यो गच्छन्ति परमं पदम्।  
एतदिच्छाम विज्ञातुं भगवन् वक्तुमर्हसि॥ ३

मार्कण्डेय उवाच

शृणवन्त्ववहिताः सर्वे युधिष्ठिरपुरोगमाः।  
अस्ति वीरो महायक्षः कुबेरः सत्यविक्रमः॥ ४  
इदं तीर्थमनुप्राप्य राजा यक्षाधिपोऽभवत्।  
सिद्धिं प्राप्नो महाराज तन्मे निगदतः शृणु॥ ५  
कावेरी नर्मदा यत्र सङ्घमो लोकविश्रुतः।  
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कुबेरः सत्यविक्रमः॥ ६  
तपोऽतप्यत यक्षेन्द्रो दिव्यं वर्षशतं महत्।  
तस्य तुष्टो महादेवः प्रादाद् वरमनुज्ञम्॥ ७  
भो भो यक्ष महासत्त्व वरं ब्रूहि यथेप्सितम्।  
ब्रूहि कार्यं यथेष्टुं तु यत्ते मनसि वर्तते॥ ८

कुबेर उवाच

यदि तुष्टोऽसि मे देव यदि देयो वरो मम।  
अद्यप्रभृति सर्वेषां यक्षाणामधिषो भवे॥ ९  
कुबेरस्य वचः श्रुत्वा परितुष्टो महेश्वरः।  
एवमस्तु ततो देवस्त्रैवान्तरधीयत॥ १०  
सोऽपि लब्धवरो यक्षः शीघ्रं लब्धफलोदयः।  
पूजितः स तु यक्षैश्च ह्यभिषिक्तस्तु पार्थिव॥ ११  
कावेरीसङ्घमं तत्र सर्वपापप्रणाशनम्।  
ये नरा नाभिजानन्ति वञ्चितास्ते न संशयः॥ १२

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! युधिष्ठिरको आगे कर वे तपोधन महात्मा-ऋषिगण महामुनि मार्कण्डेयसे पूछने लगे—‘भगवन् ! आप हमलोगोंके अभ्युदय और लोकके कल्याणके लिये उस नर्मदा और कावेरीके संगमका माहात्म्य भलीभाँति वर्णन कीजिये । भगवन् ! जिसके प्रभावसे सदा पापमें रत एवं दुराचारमें प्रवृत्त रहनेवाले मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और परमपदको प्राप्त करते हैं, उसे हमलोग जानना चाहते हैं, आप बतानेकी कृपा करें ॥१—३॥

मार्कण्डेयजीने कहा—युधिष्ठिरसहित ऋषिगण ! आपलोग सावधान होकर सुनिये । सत्य पराक्रमी एवं शूरवीर महायक्ष कुबेरने इस तीर्थमें आकर सिद्धि प्राप्त की और वे यक्षोंके अधीश्वर बने । महाराज ! मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये । किसी समय सत्यपराक्रमी यक्षपति कुबेरने जहाँ कावेरी और नर्मदाका लोकप्रसिद्ध संगम है, वहाँ स्नानकर पवित्र हो सौ दिव्य वर्षोंतक घोर तपस्या की । तब संतुष्ट होकर महादेवजीने उन्हें उत्तम वर प्रदान करते हुए कहा—‘महाबलशाली यक्ष ! तुम अपना अभीष्ट वर माँग लो । तुम्हारे मनमें जो यथेष्ट कार्य वर्तमान है, उसे बतलाओ’॥ ४—८॥

कुबेर बोले—देव ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और यदि मुझे वर देना चाहते हैं तो मैं आजसे सभी यक्षोंका अधीश्वर हो जाऊँ । कुबेरका वचन सुनकर महेश्वर परम प्रसन्न हुए और ‘ऐसा ही हो’—यों कहकर वे देवाधिदेव वहाँ अन्तर्धान हो गये । राजन् ! इस प्रकार उस यक्षने वर प्राप्त कर शीघ्र ही फलको भी प्राप्त किया । वह यक्षोंद्वारा पूजित होकर राजाके पदपर अभिषिक्त किया गया । वहाँ सभी पापोंको नाश करनेवाला कावेरी-संगम है जो मनुष्य उसे नहीं जानते, वे निःसंदेह ठगे

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्र स्नायीत मानवः ।  
 कावेरी च महापुण्या नर्मदा च महानदी ॥ १३  
 तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र हृचर्येद् वृषभध्वजम् ।  
 अश्वमेधफलं प्राप्य रुद्रलोके महीयते ॥ १४  
 अग्निप्रवेशं यः कुर्याद् यश्च कुर्यादनाशकम् ।  
 अनिवर्त्य गतिस्तस्य यथा मे शंकरोऽब्रवीत् ॥ १५  
 सेव्यमानो वरस्त्रीभिः क्रीडते दिवि रुद्रवत् ।  
 षष्ठिर्वर्षसहस्राणि षष्ठिकोट्यस्तथापराः ॥ १६  
 मोदते रुद्रलोकस्थो यत्र तत्रैव गच्छति ।  
 पुण्यक्षयात् परिभ्रष्टे राजा भवति धार्मिकः ॥ १७  
 भोगवान् दानशीलश्च महाकुलसमुद्भवः ।  
 तत्र पीत्वा जलं सम्यक् चान्द्रायणफलं लभेत् ॥ १८  
 स्वर्गं गच्छन्ति ते मर्त्यां ये पिबन्ति शुभं जलम् ।  
 गङ्गायमुनयोर्मध्ये यत्फलं प्राप्नुयान्नरः ।  
 कावेरीसंगमे स्नात्वा तत्फलं तस्य जायते ॥ १९  
 एवमादि तु राजेन्द्र कावेरीसंगमे महत् ।  
 पुण्यं महत्फलं तत्र सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २०

इति श्रीमात्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणमें नर्मदाका माहात्म्यवर्णन नामक एक सौ नवासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८९ ॥

## एक सौ नव्वेवाँ अध्याय

नर्मदाके तटवर्ती तीर्थ

मार्कण्डेय उवाच

नार्मदे चोत्तरे कूले तीर्थं योजनविस्तृतम् ।  
 यन्त्रेश्वरेति विख्यातं सर्वपापहरं परम् ॥ १  
 तत्र स्नात्वा नरो राजन् दैवतैः सह मोदते ।  
 पञ्च वर्षसहस्राणि क्रीडते कामरूपधृक् ॥ २  
 गर्जनं च ततो गच्छेद् यत्र मेघचयोत्थितः ।  
 इन्द्रजिन्नाम सम्प्राप्तस्तस्य तीर्थप्रभावतः ॥ ३  
 मेघनादं ततो गच्छेद् यत्र मेघानुर्गितम् ।  
 मेघनादो गणस्तत्र परमां गणतां गतः ॥ ४

गये। इसलिये मनुष्यको सब तरहसे प्रयत्न करके वहाँ स्नान करना चाहिये। राजेन्द्र! कावेरी और नर्मदा—ये दोनों अतिशय पुण्यशालिनी महानदी हैं। उसमें स्नानकर जो मनुष्य वृषभध्वज शिवकी पूजा करता है, वह अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करके रुद्रलोकमें पूजित होता है। जो मनुष्य वहाँ अग्निमें प्रवेश करता है या जो उपवासपूर्वक निवास करता है, उसे पुनरावृत्तिरहित गति प्राप्त होती है—ऐसा शंकरजीने मुझे बतलाया था। वह पुरुष स्वर्गलोकमें सुन्दरी खियोंद्वारा सेवित होकर रुद्रके समान साठ करोड़ साठ हजार वर्षोंतक क्रीड़ा करता है एवं रुद्रलोकमें स्थित होकर आनन्दका भोग करता है तथा जहाँ चाहता है वहाँ चला जाता है। पुनः पुण्य क्षीण होनेपर वह भ्रष्ट होकर उत्तम कुलमें उत्पन्न, भोगवान्, दानशील और धार्मिक राजा होता है। इस संगममें जलका सम्यक् पानकर मनुष्य चान्द्रायण-ब्रतका फल प्राप्त करता है। जो मानव इसके पवित्र जलको पीते हैं, वे स्वर्गको चले जाते हैं। गङ्गा और यमुनाके संगममें स्नान करनेसे मनुष्यको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल उसे कावेरीके संगममें स्नान करनेसे मिलता है। राजेन्द्र! इस तरह कावेरी और नर्मदाके संगममें स्नान करनेसे सभी पापोंका नाश करनेवाला अतिशय पुण्य और महान् फल प्राप्त होता है ॥ ९—२० ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! नर्मदाके उत्तर तटपर एक योजन विस्तृत यन्त्रेश्वर नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ तीर्थ है, जो सभी पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नानकर मानव देवताओंके साथ आनन्द मनाता है और इच्छानुसार रूप धारणकर पाँच हजार वर्षोंतक वहाँ क्रीड़ा करता है। वहाँ गर्जन नामक तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ मेघसमूह ऊपर उठते रहते हैं। इस तीर्थके प्रभावसे मेघनादको इन्द्रजित् नाम प्राप्त हुआ था। वहाँसे मेघनाद जाना चाहिये, जहाँ मेघके गर्जनकी-सी ध्वनि होती रहती है। इसी स्थानपर मेघनाद-गण गणके श्रेष्ठ पदको प्राप्त किया था।

ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र तीर्थमाग्रातकेश्वरम्।  
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गोसहस्रफलं लभेत्॥ ५  
नर्मदोत्तरतीरे तु धारा तीर्थं तु विश्रुतम्।  
तर्स्मिस्तीर्थं नरः स्नात्वा तर्पयेत् पितृदेवताः॥ ६  
सर्वान् कामानवाजोति मनसा ये विचिन्तिताः।  
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र ब्रह्मावर्तमिति स्मृतम्॥ ७  
तत्र संनिहितो ब्रह्मा नित्यमेव युधिष्ठिर।  
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ब्रह्मलोके महीयते॥ ८  
ततोऽङ्गरेश्वरं गच्छेन्नियतो नियताशनः।  
सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं स गच्छति॥ ९  
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम्।  
तत्र स्नात्वा नरो राजन् कपिलादानमाप्नुयात्॥ १०  
गच्छेत् करञ्जतीर्थं तु देवर्घिगणसेवितम्।  
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गोलोकं समवाप्नुयात्॥ ११  
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र कुण्डलेश्वरमुत्तमम्।  
तत्र संनिहितो रुद्रस्तिष्ठते ह्युम्या सह॥ १२  
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र स वन्द्यस्त्रिदशैरपि।  
पिप्लेशं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम्॥ १३  
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र रुद्रलोके महीयते।  
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम्॥ १४  
तत्र देवशिला रम्या चेश्वरेण विनिर्मिता।  
तत्र प्राणपरित्यागाद् रुद्रलोकमवाप्नुयात्॥ १५  
ततः पुष्करिणीं गच्छेत् तत्र स्नानं समाचरेत्।  
स्नातमात्रो नरस्तत्र हीन्द्रस्यार्थासनं लभेत्॥ १६  
नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद् विनिःसृता।  
तारयेत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥ १७  
सर्वदेवाधिदेवेन त्वीश्वरेण महात्मना।  
कथिता ऋषिसंघेभ्यो ह्यस्माकं च विशेषतः॥ १८  
मुनिभिः संस्तुता होषा नर्मदा प्रवरा नदी।  
रुद्रदेहाद् विनिष्क्रान्ता लोकानां हितकाम्यया॥ १९

राजेन्द्र ! इसके बाद आग्रातकेश्वर-तीर्थमें जाना चाहिये। राजन् ! वहाँ स्नानकर मानव एक हजार गौओंके दानका फल प्राप्त करता है। नर्मदाके उत्तर तटपर प्रसिद्ध धारातीर्थ है, उस तीर्थमें स्नानकर मनुष्य यदि पितरों और देवताओंका तर्पण करता है तो उसे मनोऽभिलषित कामनाएँ प्राप्त हो जाती हैं। राजेन्द्र ! इसके बाद ब्रह्मावर्त नामसे प्रसिद्ध तीर्थमें जाना चाहिये। युधिष्ठिर ! वहाँ ब्रह्मा सदा विराजमान रहते हैं। राजेन्द्र ! उस तीर्थमें स्नानकर मनुष्य ब्रह्मलोकमें पूजित होता है॥ १—८॥

वहाँ नियमपूर्वक संयत भोजन करता हुआ अङ्गरेश्वर जाना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त होकर रुद्रलोकको जाता है। राजेन्द्र ! वहाँसे कपिला नामसे प्रसिद्ध श्रेष्ठ तीर्थमें जाना चाहिये। राजन् ! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य कपिला गौंके दानका फल प्राप्त करता है। इसके बाद देवों और ऋषियोंसे सेवित करंज नामक तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। राजन् ! इस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको गोलोककी प्राप्ति होती है। राजेन्द्र ! तदनन्तर श्रेष्ठ कुण्डलेश्वर नामक तीर्थमें जाना चाहिये, वहाँ उमाके साथ रुद्र सदा निवास करते हैं। राजेन्द्र ! उस तीर्थमें स्नानकर वह देवताओंद्वारा भी वन्दनीय हो जाता है। राजेन्द्र ! तत्पश्चात् सभी पापोंके नाशक पिप्लेश-तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य रुद्रलोकमें पूजित होता है। राजेन्द्र ! वहाँसे श्रेष्ठ विमलेश्वर-तीर्थमें जाना चाहिये, वहाँ महेश्वरद्वारा निर्मित एक देवशिला है। उस स्थानपर प्राणोंका त्याग करनेसे रुद्रलोककी प्राप्ति होती है। तदुपरान्त पुष्करिणीतीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करे, वहाँ स्नान करनेमात्रसे ही मानव इन्द्रका आधा आसन प्राप्त कर लेता है॥ ९—१६॥

नदियोंमें श्रेष्ठ नर्मदा रुद्रके शरीरसे निकली है, यह स्थावर और जंगम सभी जीवोंका उद्धार करती है। ऐसा सभी देवताओंके अधीश्वर महात्मा शंकरने स्वयं ऋषिगणको और विशेषकर मुझे बताया है। मुनियोंने इस श्रेष्ठ नर्मदा नदीकी सुन्ति की है। यह नर्मदा संसारके हितकी कामनासे रुद्रके शरीरसे निकली है।

सर्वपापहरा नित्यं सर्वदेवनमस्कृता ।  
 संस्तुता देवगन्धर्वैरप्सरोभिस्तथैव च ॥ २०  
 नमः पुण्यजले ह्याद्ये नमः सागरगामिनि ।  
 नमस्ते पापनिर्दहि नमो देवि वरानने ॥ २१  
 नमोऽस्तु ते ऋषिगणसिद्धसेविते  
 नमोऽस्तु ते शंकरदेहनिःसृते ।  
 नमोऽस्तु ते धर्मभूतां वरप्रदे  
 नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रपावने ॥ २२  
 यस्त्वदं पठते स्तोत्रं नित्यं श्रद्धासमन्वितः ।  
 ब्राह्मणो वेदमाज्ञोति क्षत्रियो विजयी भवेत् ॥ २३  
 वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रश्चैव शुभां गतिम् ।  
 अर्थार्थी लभते ह्यर्थं स्मरणादेव नित्यशः ॥ २४  
 नर्मदां सेवते नित्यं स्वयं देवो महेश्वरः ।  
 तेन पुण्या नदी ज्ञेया ब्रह्महत्यापहारिणी ॥ २५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके नर्मदामाहात्म्यवर्णन-प्रसङ्गमें एक साँ नव्वेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९० ॥

## एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय

नर्मदाके तटवर्ती तीर्थोंका माहात्म्य

मार्कण्डेय उवाच

तदाप्रभृति ब्रह्माद्या ऋषयश्च तपोधनाः ।  
 सेवन्ते नर्मदां राजन् रागक्रोधविवर्जिताः ॥ १  
 युधिष्ठिर उवाच

कस्मिन् निपतितं शूलं देवस्य तु महीतले ।  
 तत्र पुण्यं समाख्याहि यथावन्मुनिसत्तम् ॥ २

मार्कण्डेय उवाच

शूलभेदमिति ख्यातं तीर्थं पुण्यतमं महत् ।  
 तत्र स्नात्वार्चयेद् देवं गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३

त्रिरात्रं कारयेद् यस्तु तस्मिस्तीर्थं नराधिप ।  
 अर्चयित्वा महादेवं पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ४

यह सभी पापोंका क्षय करनेवाली और सभी देवोंद्वारा नमस्कृत है। देव, गन्धर्व और अप्सराओंने इसकी भलीभाँति स्तुति की है। आदि गङ्गे! तुम्हें नमस्कार है। पुण्यसलिले! तुम्हें प्रणाम है। सागरकी ओर गमनशीले! तुम्हें अभिवादन है। पापोंको नष्ट करनेवाली एवं सुन्दर मुखवाली देवि! तुम्हें नमस्कार है। तुम ऋषिसमूह एवं सिद्धोंसे सेवित हो, तुम्हें प्रणाम है। शंकरके शरीरसे निकली हुई तुम्हें अभिवादन है। तुम धर्मात्मा प्राणियोंको वर देनेवाली हो, तुम्हें नमस्कार है। सभीको पवित्र एवं निष्पाप करनेवाली तुम्हें प्रणाम है। जो श्रद्धासे समन्वित होकर इस स्तोत्रका नित्य पाठ करता है, वह ब्राह्मण हो तो वेदज्ञ और क्षत्रिय हो तो विजयी होता है। वैश्य धनका लाभ करता है और शूद्रको शुभ गतिकी प्राप्ति होती है। अर्थको चाहनेवाला सदा स्मरणमात्रसे ही अर्थलाभ करता है। साक्षात् महेश्वरदेव नर्मदा नदीका नित्य सेवन करते हैं, इसीलिये इस पवित्र नदीको ब्रह्महत्यारूपी पापका निवारण करनेवाली जानना चाहिये ॥ १७-२५ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! तभीसे ब्रह्मा आदि देवता और तपस्वी ऋषिगण क्रोध-रागसे रहित होकर नर्मदाका सेवन करते हैं ॥ १ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! इस पृथ्वीपर महादेवजीका त्रिशूल किस स्थानपर गिरा था? उस स्थानका पुण्य यथार्थरूपसे बतलाइये ॥ २ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—वह महान् पुण्यमय तीर्थ शूलभेद नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ स्नानकर महादेवजीकी पूजा करे, उससे एक हजार गो-दानका फल प्राप्त होता है। नराधिप! जो मनुष्य उस तीर्थस्थानमें तीन रातक महादेवजीकी पूजा करके निवास करता है, उसका पुनर्जन्म

भीमेश्वरं ततो गच्छेन्नारदेश्वरमुत्तमम्।  
आदित्येशं महापुण्यं स्मृतं किल्बिषनाशनम्॥ ५  
नन्दिकेशं परिष्वज्य पर्यासं जन्मनः फलम्।  
वरुणोशं ततः पश्येत् स्वतन्त्रेश्वरमेव च।  
सर्वतीर्थफलं तस्य पञ्चायतनदर्शनात्॥ ६  
ततो गच्छेत् राजेन्द्र युद्धं यत्र सुसाधितम्।  
कोटितीर्थं तु विख्यातमसुरा यत्र मोहिताः॥ ७  
यत्रैव निहता राजन् दानवा बलदर्पिताः।  
तेषां शिरांस्यगृह्णत् सर्वे देवाः समागताः॥ ८  
तस्तु संस्थापितो देवः शूलपाणिर्वृषध्वजः।  
कोटिर्विनिहता तत्र तेन कोटीश्वरः स्मृतः॥ ९  
दर्शनात् तस्य तीर्थस्य सदेहः स्वर्गमारुहेत्।  
यदा त्विन्द्रेण क्षुद्रत्वाद् वज्रं कीलेन यन्त्रितम्॥ १०  
तदाप्रभृति लोकानां स्वर्गमार्गो निवारितः।  
यः स्तुतं श्रीफलं दद्यात् कृत्वा चान्ते प्रदक्षिणाम्॥ ११  
पार्वतं सहदीपं तु शिरसा चैव धारयेत्।  
सर्वकामसुसम्पन्नो राजा भवति पाण्डव॥ १२  
मृतो रुद्रत्वमाजोति ततोऽसौ जायते पुनः।  
स्वर्गादेत्य भवेद् राजा राज्यं कृत्वा दिवं ब्रजेत्॥ १३  
बहुनेत्रं ततः पश्येत् त्रयोदश्यां तु मानवः।  
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वयज्ञफलं लभेत्॥ १४  
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम्।  
नराणां पापनाशाय ह्यगस्त्येश्वरमुत्तमम्॥ १५  
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ब्रह्मलोके महीयते।  
कार्तिकस्य तु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी॥ १६  
घृतेन स्नापयेद् देवं समाधिस्थो जितेन्द्रियः।  
एकविंशकुलोपेतो न च्यवेदैश्वरात् पदात्॥ १७  
धेनुमुपानहौ छत्रं दद्याच्च घृतकम्बलम्।  
भोजनं चैव विप्राणां सर्वं कोटिगुणं भवेत्॥ १८  
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र बलाकेश्वरमुत्तमम्।  
तत्र स्नात्वा नरो राजन् सिंहासनपतिर्भवेत्॥ १९

नहीं होता। इसके बाद श्रेष्ठ भीमेश्वर और नारदेश्वर तीर्थकी यात्रा करे। आदित्येश तीर्थ महान् पुण्यशाली और पापका नाशक कहा गया है। नन्दिकेशका दर्शन करनेसे जन्म धारण करनेका पर्यास फल सुलभ हो जाता है। इसके बाद वरुणोश एवं स्वतन्त्रेश्वरका दर्शन करे। इस पञ्चायतनका दर्शन करनेसे सभी तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है। राजेन्द्र! इसके बाद कोटितीर्थ नामसे प्रसिद्ध स्थानमें जाना चाहिये। जहाँ युद्ध हुआ था और जहाँ असुरागण मोहित हुए थे, राजन्! जहाँ बलके घमंडमें चूर दानवगण मारे गये थे और आये हुए देवगणोंने उनके सिरोंको ग्रहण कर लिया था, जहाँ देवताओंद्वारा हाथमें त्रिशूल धारण किये हुए भगवान् वृषध्वज महादेवकी प्रतिष्ठा की गयी थी, वहाँ करोड़ों दानवोंका संहार हुआ था, अतः वह कोटीश्वर तीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस तीर्थका दर्शन करनेसे सशरीर स्वर्गारोहण प्राप्त होता है। जबसे इन्द्रने कृपणताके कारण वज्रको कीलसे कीलित कर दिया तबसे साधारण लोगोंके लिये स्वर्गका मार्ग बंद हो गया॥ ३—१० १३॥

पाण्डुनन्दन! जो स्तुति करनेके पश्चात् अन्तमें इस तीर्थकी प्रदक्षिणा कर बिल्वफल प्रदान करता है तथा दीपकसहित पर्वतप्रतिमा सिरपर धारण करता है, वह सभी कामनाओंसे सम्पन्न होकर राजा होता है और मृत्यु होनेपर रुद्रत्वको प्राप्त करता है। पुनः जब वह स्वर्गसे लौटकर जन्म लेता है, तब राजा होता है और राज्यका उपभोग करनेके बाद स्वर्गमें चला जाता है। इसके बाद त्रयोदशी तिथिको मानव बहुनेत्र तीर्थका दर्शन करे। वहाँ मनुष्य स्नानमात्र करनेसे सभी यज्ञोंके फलको प्राप्त कर लेता है। राजेन्द्र! तदनन्तर मनुष्योंके पापोंका नाश करनेके लिये विख्यात अगस्त्येश्वर नामक श्रेष्ठ एवं परम रमणीय तीर्थकी यात्रा करे। राजन्! उस तीर्थमें स्नान करनेसे मानव ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। जो जितेन्द्रिय मानव समाहितचित्तसे कार्तिकमासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें महादेवजीको घृतसे स्नान कराता है, उसका इकीस पीढ़ीतक महेश्वरके पदसे पतन नहीं होता। वहाँ यदि विप्रोंको धेनु, जूता, छाता, धी, कम्बल और भोजनका दान दिया जाय तो वह सभी करोड़गुना हो जाता है। राजेन्द्र! तदुपरान्त उत्तम बलाकेश्वरतीर्थमें जाना चाहिये। राजन्! उस तीर्थमें स्नान करनेसे मानव सिंहासनका

नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं शक्रस्य विश्रुतम्।  
उपोष्य रजनीमेकां स्नानं तत्र समाचरेत्॥ २०

स्नानं कृत्वा यथान्यायमर्चयेच्च जनार्दनम्।  
गोसहस्रफलं तस्य विष्णुलोकं स गच्छति॥ २१

ऋषितीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापहरं नृणाम्।  
स्नातमात्रो नरस्तत्र शिवलोकं च गच्छति॥ २२

नारदस्य तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम्।  
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत्॥ २३

देवतीर्थं ततो गच्छेद् ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।  
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ब्रह्मलोके महीयते॥ २४

अमरकण्टकं गच्छेदमरैः स्थापितं पुरा।  
स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते॥ २५

ततो गच्छेच्च राजेन्द्र रावणेश्वरमुत्तमम्।  
नित्यं चायतनं दृष्ट्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ २६

ऋणतीर्थं ततो गच्छेद् ऋणेभ्यो मुच्यते ध्रुवम्।  
वटेश्वरं ततो दृष्ट्वा पर्यासं जन्मनः फलम्॥ २७

भीमेश्वरं ततो गच्छेत् सर्वव्याधिविनाशनम्।  
स्नातमात्रो नरो राजन् सर्वदुःखैः प्रमुच्यते॥ २८

ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र तुरासङ्गमनुत्तमम्।  
तत्र स्नात्वा महादेवमर्चयन् सिद्धिमाप्न्यात्॥ २९

सोमतीर्थं ततो गच्छेत् पश्येच्चन्द्रमनुत्तमम्।  
तत्र स्नात्वा नरो राजन् भक्त्या परमया युतः॥ ३०

तत्क्षणाद् दिव्यदेहस्थः शिववन्मोदते चिरम्।  
षष्ठिवर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥ ३१

ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम्।  
अहोरात्रोपवासेन त्रिरात्रफलमाप्न्यात्॥ ३२

तस्मिस्तीर्थं तु राजेन्द्र कपिलां यः प्रयच्छति।  
यावन्ति तस्या रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च॥ ३३

तावद् वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते।  
यस्तु प्राणपरित्यागं कुर्यात् तत्र नराधिप॥ ३४

अधिपति होता है। नर्मदाके दक्षिण तटपर इन्द्रका प्रसिद्ध तीर्थ है, वहाँ एक रातका उपवास कर विधिविधानसे स्नान करे, स्नान करनेके बाद विधिपूर्वक जनार्दनकी अर्चना करे तो उसे एक हजार गौओंके दानका फल प्राप्त होता है और वह विष्णुलोकमें जाता है॥ ११—२१॥

तत्पश्चात् मनुष्योंके सभी पापोंके नाशक ऋषितीर्थकी यात्रा करे, वहाँ स्नानमात्र करनेसे मानव शिवलोकको चला जाता है। वहाँ नारदजीका परम रमणीय तीर्थ है, वहाँ स्नानमात्रसे मानव एक हजार गौओंके दानका फल प्राप्त करता है। राजन्! इसके बाद प्राचीनकालमें ब्रह्मद्वारा निर्मित देवतीर्थमें जाय, वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। तदनन्तर प्राचीनकालमें देवोंद्वारा स्थापित अमरकण्टककी यात्रा करे। वहाँ स्नान करनेमात्रसे मनुष्य रुद्रलोकमें पूजित होता है। राजेन्द्र! तत्पश्चात् श्रेष्ठ रावणेश्वर-तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ मनुष्य प्रतिदिन देवमन्दिरका दर्शनकर ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है। तदुपरान्त ऋणतीर्थमें जाय, वहाँ जानेसे मानव निश्चय ही ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। इसके बाद वटेश्वरका दर्शन करके मनुष्यजन्मका पूर्ण फल प्राप्त कर लेता है। राजन्! तदनन्तर सभी व्याधियोंको नाश करनेवाले भीमेश्वरतीर्थकी यात्रा करे। उस तीर्थमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य सभी दुःखोंसे छुटकारा पा जाता है। राजेन्द्र! तत्पश्चात् श्रेष्ठतम तुरासङ्ग तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ स्नानकर महादेवजीकी पूजा करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है। इसके बाद सोमतीर्थमें जाय और वहाँ परम श्रेष्ठ चन्द्रमाका दर्शन करे। राजन्! उस तीर्थमें परम भक्तिसे युक्त हो स्नान करनेसे मानव उसी क्षण दिव्य शरीर धारणकर शिवके समान चिरकालपर्यन्त आनन्दका अनुभव करता है और साठ हजार वर्षोंतक रुद्रलोकमें पूजित होता है॥ २२—३१॥

राजेन्द्र! इसके बाद श्रेष्ठ पिङ्गलेश्वरतीर्थकी यात्रा करे। वहाँ एक दिन-रात उपवास करनेसे त्रिरात्रका फल प्राप्त होता है। राजेन्द्र! उस तीर्थमें जो कपिला गौका दान देता है, उस दाताके वंशके कुलवाले उस गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक रुद्रलोकमें पूजित होते हैं। नराधिप! उस तीर्थमें जो मानव प्राणका

अक्षयं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।  
नर्मदातटमाश्रित्य तिष्ठेयुर्ये नरोत्तमा: ॥ ३५  
ते मृताः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ।  
सुरेश्वरं ततो गच्छेन्नामा ककोटकेश्वरम् ॥ ३६  
गङ्गावतरते तत्र दिने पुण्ये न संशयः ।  
नन्दितीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ॥ ३७  
तुष्यते तस्य नन्दीशः सोमलोके महीयते ।  
ततो दीपेश्वरं गच्छेद् व्यासतीर्थं तपोवनम् ॥ ३८  
निवर्तिता पुरा तत्र व्यासभीता महानदी ।  
हुंकारिता तु व्यासेन दक्षिणेन ततो गता ॥ ३९  
प्रदक्षिणां तु यः कुर्यात् तस्मिस्तीर्थं नराधिप ।  
अक्षयं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ४०  
व्यासस्तस्य भवेत् प्रीतः प्राज्ञुयादीप्सितं फलम् ।  
सूत्रेण वेष्टयित्वा तु दीपो देयः सवेदिकः ॥ ४१  
क्रीडते ह्यक्षयं कालं यथा रुद्रस्तथैव च ।  
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ऐरण्डीतीर्थमुत्तमम् ॥ ४२  
संगमे तु नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वपातकैः ।  
ऐरण्डी त्रिषु लोकेषु विख्याता पापनाशिनी ॥ ४३  
अथवाश्वयुजे मासि शुक्लपक्षे तु चाष्टमी ।  
शुचिर्भूत्वा नरः स्नात्वा सोपवासपरायणः ॥ ४४  
ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिता ।  
ऐरण्डीसंगमे स्नात्वा भक्तिभावानुरक्षितः ।  
मृत्तिकां शिरसि स्थाप्य हृवगाह्य च वै जलम् ॥ ४५  
नर्मदोदकसम्मिश्रं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।  
प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात् तस्मिस्तीर्थं नराधिप ॥ ४६  
प्रदक्षिणीकृता तेन समद्वीपा वसुन्धरा ।  
ततः सुवर्णसलिले स्नात्वा दत्त्वा तु काञ्चनम् ॥ ४७  
काञ्चनेन विमानेन रुद्रलोके महीयते ।  
ततः स्वर्गाच्युतः कालाद् राजा भवति वीर्यवान् ॥ ४८  
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र हीक्षुनद्यास्तु संगमम् ।  
त्रैलोक्यविश्रुतं दिव्यं तत्र संनिहितः शिवः ॥ ४९

परित्याग करता है, वह चन्द्र और सूर्यकी स्थितिपर्यन्त अक्षय कालतक आनन्दका अनुभव करता है। जो श्रेष्ठ मानव नर्मदाके टटपर निवास करते हैं, वे मरकर सन्त और पुण्यवान् व्यक्तियोंके समान स्वर्गमें जाते हैं। तदनन्तर ककोटकेश्वर नामसे प्रसिद्ध सुरेश्वरकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ पुण्यतिथिको गङ्गाका अवतरण होता है, इसमें संदेह नहीं है। तत्पश्चात् नन्दितीर्थमें जाय और वहाँ विधिपूर्वक स्नान करे। इससे उसपर नन्दीश्वर शिव प्रसन्न होते हैं और वह चन्द्रलोकमें पूजित होता है। तत्पश्चात् व्यासके तपोवन दीपेश्वर-तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ प्राचीनकालमें व्याससे डरकर महानदी पीछेकी ओर लौटने लगी थी, तब व्यासके हुंकारसे वह दक्षिणकी ओर प्रवाहित हुई, नराधिप! उस तीर्थकी जो प्रदक्षिणा करता है, वह चन्द्र और सूर्यकी स्थितिपर्यन्त अक्षय कालतक आनन्दका उपभोग करता है। उसपर व्यासदेव प्रसन्न होते हैं और उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। वहाँ वेदीपर सूतसे परिवेषित दीपका दान करना चाहिये। ऐसा करनेसे मानव रुद्रकी तरह अक्षय कालतक आनन्दपूर्वक जीवनयापन करता है ॥ ३२—४१ ३२ ॥

राजेन्द्र! तदुपरान्त श्रेष्ठ ऐरण्डी-तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। ऐरण्डी नदी पापनाशकके रूपमें तीनों लोकोंमें विख्यात है। उसके सङ्गममें स्नान करनेसे मनुष्य सभी पातकोंसे मुक्त हो जाता है। अथवा यदि मनुष्य आश्चिन-मासके शुक्लपक्षमें अष्टमी तिथिको स्नान करके पवित्र हो उपवासपूर्वक एक ब्राह्मणको भोजन करा दे तो उसे एक करोड़ ब्राह्मणोंको भोजन करानेका फल प्राप्त होता है। जो ऐरण्डी-संगममें भक्तिभावपूर्वक उसकी मिट्टीको सिरपर धारणकर नर्मदाके जलसे मिश्रित जलमें अवगाहनकर स्नान करता है, वह सभी पापोंसे छूट जाता है। नराधिप! जो उस तीर्थमें जाकर प्रदक्षिणा करता है, उसने मानो सात द्वीपोंवाली वसुन्धराकी परिक्रमा कर ली। तदनन्तर सुवर्णसलिल नामक तीर्थमें स्नानकर सुवर्णका दान करनेसे मनुष्य सुवर्णमय विमानसे जाकर रुद्रलोकमें पूजित होता है। फिर वह समयानुसार स्वर्गसे च्युत होनेपर पराक्रमी राजा होता है। राजेन्द्र! तत्पश्चात् इक्षु नदीके सङ्गमपर जाना चाहिये। यह दिव्य तीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ शिवजी सदा उपस्थित

तत्र स्नात्वा नरो राजन् गाणपत्यमवाप्नुयात्।  
 स्कन्दतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम्॥ ५०  
 आजन्म जनितं पापं स्नानमात्राद् व्यपोहति।  
 लिङ्गसारं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्॥ ५१  
 गोसहस्रफलं तस्य रुद्रलोके महीयते।  
 भङ्गतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम्॥ ५२  
 तत्र गत्वा तु राजेन्द्र स्नानं तत्र समाचरेत्।  
 सप्तजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥ ५३  
 वटेश्वरं ततो गच्छेत् सर्वतीर्थमनुज्ञम्।  
 तत्र स्नात्वा नरो राजन् गोसहस्रफलं लभेत्॥ ५४  
 संगमेशं ततो गच्छेत् सर्वदेवनमस्कृतम्।  
 स्नानमात्रान्नरस्तत्र चेन्द्रत्वं लभते ध्रुवम्॥ ५५  
 कोटितीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापहरं परम्।  
 तत्र स्नात्वा नरो राज्यं लभते नात्र संशयः॥ ५६  
 तत्र तीर्थं समासाद्य दत्त्वा दानं तु यो नरः।  
 तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं कोटिगुणं भवेत्॥ ५७  
 अथ नारी भवेत् काचित्तत्र स्नानं समाचरेत्।  
 गौरीतुल्या भवेत् सापि त्विन्द्रपली न संशयः॥ ५८  
 अङ्गारेशं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।  
 स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते॥ ५९  
 अङ्गारकचतुर्थ्या तु स्नानं तत्र समाचरेत्।  
 अक्षयं मोदते कालं शुचिः प्रयतमानसः॥ ६०  
 अयोनिसम्भवे स्नात्वा न पश्येद् योनिसंकटम्।  
 पाण्डवेशं तु तत्रैव स्नानं तत्र समाचरेत्॥ ६१  
 अक्षयं मोदते कालमवध्यस्त्रिदशैरपि।  
 विष्णुलोकं ततो गत्वा क्रीडते भोगसंयुतः॥ ६२  
 तत्र भुक्त्वा महाभोगान् मर्त्यराजोऽभिजायते।  
 कठेश्वरं ततो गच्छेत् तत्र स्नानं समाचरेत्॥ ६३  
 उत्तरायणसम्प्राप्तौ यदिच्छेत् तस्य तद्भवेत्।  
 चन्द्रभागं ततो गच्छेत् तत्र स्नानं समाचरेत्॥ ६४

रहते हैं। राजन्! वहाँ स्नान करनेसे मानव गणाधिपतिका स्थान प्राप्त कर लेता है। तदुपरान्त स्कन्द-तीर्थकी यात्रा करे। यह तीर्थ सभी पापोंका विनाशक है। यहाँ स्नान करनेमात्रसे मानव जन्मभरके किये हुए पापोंसे छूट जाता है। इसके बाद लिङ्गसार-तीर्थमें जाय और वहाँ स्नान कर। इससे उसे एक हजार गौओंके दानका फल मिलता है और वह रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर सभी पापोंके विनाशक भङ्गतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ जाकर स्नान करनेसे मानव सात जन्मोंमें किये गये पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ४२—५३॥

तदनन्तर सभी तीर्थोंमें श्रेष्ठ वटेश्वरतीर्थकी यात्रा करे। राजन्! वहाँ स्नान करनेसे मानव एक हजार गौओंके दानका फल प्राप्त करता है। तत्पश्चात् सभी देवोंद्वारा नमस्कृत सङ्गमेश-तीर्थमें जाय। वहाँ स्नानमात्रसे मनुष्य निश्चित ही इन्द्र-पदको प्राप्त करता है। इसके बाद सभी पापोंको नष्ट करनेवाले श्रेष्ठ कोटितीर्थकी यात्रा करे। वहाँ स्नानकर मनुष्य राज्यकी प्राप्ति करता है—इसमें संदेह नहीं है। उस तीर्थमें आकर जो मनुष्य दान देता है, उसका सब कुछ उस तीर्थके प्रभावसे करोड़गुना हो जाता है। यदि वहाँ कोई स्त्री स्नान करती है तो वह निःसंदेह गौरी अथवा इन्द्र-पली शचीके समान हो जाती है। इसके बाद अङ्गारेश-तीर्थकी यात्रा करके वहाँ स्नान करे। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। जो मनुष्य पवित्र एवं संयत-मन होकर अङ्गारक-चतुर्थीके दिन वहाँ स्नान करता है, वह अक्षय कालतक आनन्दका उपभोग करता है। अयोनिसम्भव नामक तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको योनिसंकटका दर्शन नहीं होता। वहीं पाण्डवेश-तीर्थ है, उसमें स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह देवताओंसे भी अवध्य होकर अक्षय कालतक आनन्दका अनुभव करता है और मरणोपरान्त विष्णुलोकमें जाकर भोगसे परिपूर्ण हो क्रीड़ा करता है तथा वहाँ उत्तम भोगोंका भोग कर मृत्युलोकमें राजा होता है। इसके बाद उत्तरायण आनेपर कठेश्वर-तीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेसे मानव जो इच्छा करता है, वह उसे प्राप्त हो जाता है॥ ५४—६३ १॥

राजन्! इसके बाद चन्द्रभागा नदीपर जाकर वहाँ

स्नातमात्रो नरो राजन् सोमलोके महीयते ।  
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र तीर्थं शक्स्य विश्रुतम् ॥ ६५  
पूजितं देवराजेन देवैरपि नमस्कृतम् ।  
तत्र स्नात्वा नरो राजन् दानं दत्त्वा तु काञ्छनम् ॥ ६६  
अथवा नीलवर्णाभं वृषभं यः समुत्सृजेत् ।  
वृषभस्य तु रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च ॥ ६७  
तावद्वृष्टसहस्राणि नरो हरपुरे वसेत् ।  
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो राजा भवति वीर्यवान् ॥ ६८  
अश्वानां श्वेतवर्णानां सहस्राणां नराधिप ।  
स्वामी भवति मत्येषु तस्य तीर्थप्रभावतः ॥ ६९  
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र ब्रह्मवर्तमनुत्तमम् ।  
तत्र स्नात्वा नरो राजस्तर्पयेत् पितृदेवताः ॥ ७०  
उपोष्य रजनीपेकां पिण्डं दत्त्वा यथाविधि ।  
कन्यागते तथाऽऽदित्ये अक्षयं स्यान्नराधिप ॥ ७१  
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम् ।  
तत्र स्नात्वा नरो राजन् कपिलां यः प्रयच्छति ॥ ७२  
सम्पूर्णपृथिवीं दत्त्वा यत्फलं तदवान्युयात् ।  
नर्मदेशं परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ ७३  
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत् ।  
नर्मदादक्षिणे कूले संगमेश्वरमुत्तमम् ॥ ७४  
तत्र स्नात्वा नरो राजन् सर्वयज्ञफलं लभेत् ।  
तत्र सर्वोद्यतो राजा पृथिव्यामेव जायते ॥ ७५  
सर्वलक्षणसम्पूर्णः सर्वव्याधिविवर्जितः ।  
नामदे चोत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम् ॥ ७६  
आदित्यायतनं दिव्यमीश्वरेण तु भाषितम् ।  
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र दानं दत्त्वा तु शक्तिः ।  
तस्य तीर्थप्रभावेण दत्तं भवति चाक्षयम् ॥ ७७  
दरिद्रा व्याधिनो ये तु ये तु दुष्कृतकर्मिणः ।  
मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यः सूर्यलोकं तु यान्ति ते ॥ ७८  
माघमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षस्य सप्तमी ।  
वसेदायतने तत्र निराहारो जितेन्द्रियः ॥ ७९

स्नान करे । वहाँ स्नानमात्रसे मनुष्य चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है । राजेन्द्र ! इसके बाद इन्द्रके प्रसिद्ध तीर्थमें जाय । वह तीर्थ साक्षात् देवराजद्वारा पूजित तथा सम्पूर्ण देवताओंद्वारा वन्दित है । राजन् ! वहाँ स्नानकर जो मनुष्य सुवर्णका दान देता है अथवा नीलवर्णवाले वृषभका उत्सर्ग करता है तो वह वृषभके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक अपने कुलमें उत्पन्न संततिके साथ शिवपुरमें निवास करता है । इसके बाद स्वर्गसे गिरनेपर वह पराक्रमी राजा होता है । नराधिप ! उस तीर्थके प्रभावसे मृत्युलोकमें आकर वह श्वेतवर्णवाले हजारों अश्वोंका स्वामी होता है । राजन् ! तदनन्तर ब्रह्मावर्त नामक श्रेष्ठ तीर्थकी यात्रा करे । राजन् ! उस तीर्थमें स्नानकर देवताओं और पितरोंका विधिवत् तर्पण करना चाहिये । नरेश्वर ! सूर्यके कन्याराशिमें स्थित होनेपर जो वहाँ एक रात उपवास करके विधिपूर्वक पिण्डदान करता है, उसका वह कर्म अक्षय हो जाता है । राजेन्द्र ! तत्पश्चात् श्रेष्ठ कपिलातीर्थकी यात्रा करनी चाहिये । राजन् ! उस तीर्थमें स्नानकर जो मनुष्य कपिला गौका दान करता है, उसे सम्पूर्ण पृथ्वीका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह मिल जाता है । नर्मदेश उत्तम तीर्थस्थान है । इसके समान तीर्थ न हुआ है, न होगा । राजन् ! उस तीर्थमें स्नानकर मानव अश्रमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है । नर्मदाके दक्षिण तटपर श्रेष्ठ सङ्गमेश्वर-तीर्थ है । राजन् ! वहाँ स्नान करनेपर मनुष्य सभी यज्ञोंके फलको प्राप्त करता है और वह पृथ्वीपर सभी प्रकारके उद्यमोंसे सम्पन्न, सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त तथा सभी प्रकारकी व्याधियोंसे रहित राजा होता है ॥ ६४—७५ ॥

नर्मदाके उत्तर तटपर अत्यन्त मनोहर आदित्यायतन नामक दिव्य तीर्थ है, ऐसा महादेवजीने कहा है । राजेन्द्र ! उस तीर्थमें स्नान करके जो यथाशक्ति दान देता है, उसका वह दान उस तीर्थके प्रभावसे अक्षय हो जाता है । जो दरिद्र, रोगग्रस्त और दुष्कर्मी हैं, वे भी (यहाँ स्नान करनेसे) सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकको चले जाते हैं । जो मनुष्य माघमासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथि आनेपर इन्द्रियोंका संयम कर और निराहार रहकर इस आदित्यायतन तीर्थमें निवास करता है, वह

न जराव्याधितो मूको न चान्धो बधिरोऽथवा ।  
 सुभगो रूपसम्पन्नः स्त्रीणां भवति वल्लभः ॥ ८०  
 एवं तीर्थं महापुण्यं मार्कण्डेयेन भाषितम् ।  
 ये न जानन्ति राजेन्द्र वञ्छितास्ते न संशयः ॥ ८१  
 गर्गेश्वरं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ।  
 स्नातमात्रो नरस्तत्र स्वर्गलोकमवान्यात् ॥ ८२  
 मोदते स्वर्गलोकस्थो यावदिन्द्राश्वरुदर्श ।  
 समीपतः स्थितं तस्य नागेश्वरतपोवनम् ॥ ८३  
 तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र नागलोकमवान्यात् ।  
 बह्वीभिर्नांगकन्याभिः क्रीडते कालमक्षयम् ॥ ८४  
 कुबेरभवनं गच्छेत् कुबेरो यत्र संस्थितः ।  
 कालेश्वरं परं तीर्थं कुबेरो यत्र तोषितः ॥ ८५  
 तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र सर्वसम्पदमान्यात् ।  
 ततः पश्चिमतो गच्छेन्मारुतालयमुत्तमम् ॥ ८६  
 तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र शुचिर्भूत्वा समाहितः ।  
 काञ्छनं तु ततो दद्याद् यथाशक्ति सुबुद्धिमान् ॥ ८७  
 पुष्पकेण विमानेन वायुलोकं स गच्छति ।  
 यवतीर्थं ततो गच्छेन्माघमासे युधिष्ठिर ॥ ८८  
 कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नानं तत्र समाचरेत् ।  
 नक्तं भोज्यं ततः कुर्यात् पश्येद् योनिसंकटम् ॥ ८९  
 अहल्यातीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ।  
 स्नातमात्रो नरस्तत्र ह्यप्सरोभिः प्रमोदते ॥ ९०  
 अहल्या च तपस्तप्त्वा तत्र मुक्तिमुपागता ।  
 चैत्रमासे तु सम्प्रासे शुक्लपक्षे चतुर्दशी ॥ ९१  
 कामदेवदिने तस्मिन्नहल्यां यस्तु पूजयेत् ।  
 यत्र यत्र नरोत्पन्नो नरस्तत्र प्रियो भवेत् ॥ ९२  
 स्त्रीवल्लभो भवेच्छ्रीमान् कामदेव इवापरः ।  
 अयोध्यां तु समासाद्य तीर्थं रामस्य विश्रुतम् ॥ ९३  
 स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ।  
 सोमतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ॥ ९४  
 स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ।  
 सोमग्रहे तु राजेन्द्र पापक्षयकरं नृणाम् ॥ ९५

न तो वृद्धावस्था और रोगसे ही ग्रस्त होता है, न गूँगा, अंधा अथवा बहरा ही होता है, अपितु भाग्यशाली, रूपवान् और स्त्रियोंका प्रिय होता है। राजेन्द्र! इस प्रकार मार्कण्डेयजीने इस महान् पुण्यदायक तीर्थका वर्णन किया था। जो उस तीर्थको नहीं जानते, वे निःसंदेह वञ्छित ही हैं। इसके बाद गर्गेश्वर-तीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करे। वहाँ स्नान करनेसे ही मानव स्वर्गलोकको प्राप्त कर लेता है और चौदह इन्द्रोंके कार्यकालतक वह स्वर्गमें आनन्दपूर्वक निवास करता है। राजेन्द्र! उसीके समीपमें नागेश्वर नामक तपोवन है। वहाँ स्नानकर मनुष्य नागलोकको प्राप्त करता है और अनेकों नागकन्याओंके साथ अक्षय कालतक क्रीडा करता है। तदनन्तर कुबेरभवनमें जाय, जहाँ कुबेर विराजमान रहते हैं। जहाँ कुबेर सन्तुष्ट हुए थे। वह कालेश्वर नामक उत्तम तीर्थ है। राजेन्द्र! इस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको सभी सम्पत्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥ ७६—८५ १॥

तत्पश्चात् उससे पश्चिममें स्थित श्रेष्ठ मारुतालय-तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। राजेन्द्र! जो बुद्धिमान् वहाँ स्नान करके पवित्र हो सावधानीपूर्वक यथाशक्ति सुवर्णका दान करता है, वह पुष्पकविमानद्वारा वायुलोकको चला जाता है। युधिष्ठिर! तदुपरान्त माघमासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको यवतीर्थमें जाकर स्नान करे और रातमें ही भोजन करे। ऐसा करनेवाले पुरुषको पुनः योनिसंकटका दर्शन नहीं करना पड़ता। इसके बाद अहल्यातीर्थमें जाय और वहाँ स्नान करे। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मानव अप्सराओंके साथ आनन्दका उपभोग करता है। उस तीर्थमें अहल्याने तपस्या कर मुक्ति पायी थी। चैत्रमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथि एवं सोमवारको जो मनुष्य वहाँ अहल्याकी पूजा करता है, वह जहाँ-जहाँ जन्म लेता है, वहाँ-वहाँ सभीका प्रिय होता है। वह दूसरे कामदेवके समान स्त्रियोंका प्रियपात्र एवं श्रीसम्पन्न होता है। श्रीरामके प्रसिद्ध तीर्थ अयोध्यामें आकर स्नानमात्र करनेसे मानव सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। इसके बाद सोमतीर्थकी यात्रा करे और वहाँ स्नान करे। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मानव सभी पापोंसे छुटकारा पा जाता है। राजेन्द्र! चन्द्रग्रहणके अवसरपर स्नान करनेसे यही तीर्थ मनुष्यके सभी पापोंको नष्ट कर देता है। राजन्!

त्रैलोक्यविश्रुतं राजन् सोमतीर्थं महाफलम्।  
यस्तु चान्द्रायणं कुर्यात् तस्मिस्तीर्थं नराधिप ॥ १६  
सर्वपापविशुद्धात्मा सोमलोकं स गच्छति।  
अग्निप्रवेशेऽथ जले अथवापि ह्यनाशके ॥ १७  
सोमतीर्थं मृतो यस्तु नासौ मर्त्येऽभिजायते।  
शुभतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ॥ १८  
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोलोके तु महीयते।  
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र विष्णुतीर्थमनुत्तमम् ॥ १९  
योधनीपुरमाख्यातं विष्णुस्थानमनुत्तमम्।  
असुरा योधितास्तत्र वासुदेवेन कोटिशः ॥ २०  
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं विष्णुः प्रीतो भवेदिह।  
अहोरात्रोपवासेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ २१  
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र तापसेश्वरमनुत्तमम्।  
हरिणी व्याधसंत्रस्ता पतिता यत्र सा मृगी ॥ २२  
जले प्रक्षिप्तगात्रा तु अन्तरिक्षं गता च सा।  
व्याधो विस्मितचित्तस्तु परं विस्मयमागतः ॥ २३  
तेन तापेश्वरं तीर्थं न भूतं न भविष्यति।  
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम् ॥ २४  
अमोहकमिति ख्यातं पितृश्वेवात्र तर्पयेत्।  
पौणमास्याममायां तु श्राद्धं कुर्याद् यथाविधि ॥ २५  
तत्र स्नात्वा नरो राजन् पितृपिण्डं तु दापयेत्।  
गजरूपा शिला तत्र तोयमध्ये प्रतिष्ठिता ॥ २६  
तस्यां तु दापयेत् पिण्डं वैशाख्यां तु विशेषतः।  
तृष्णन्ति पितरस्तत्र यावत् तिष्ठति मेदिनी ॥ २७  
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र सिद्धेश्वरमनुत्तमम्।  
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गणपत्यन्तिकं व्रजेत् ॥ २८  
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र लिङ्गो यत्र जनार्दनः।  
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र विष्णुलोके महीयते ॥ २९  
नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम्।  
कामदेवः स्वयं तत्र तपोऽतप्यत वै महत् ॥ ३०

महान् फल देनेवाला यह सोमतीर्थं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। नराधिप! उस तीर्थमें जो चान्द्रायण-ब्रत करता है, वह सभी पापोंसे विशुद्ध होकर सोमलोकको चला जाता है। जो अग्निमें प्रवेश कर, जलमें ढूबकर या भोजनका परित्याग कर इस सोमतीर्थमें प्राणका त्याग करता है, वह पुनः मृत्युलोकमें जन्म नहीं ग्रहण करता ॥ ८६—९७ ३२ ॥

तदनन्तर शुभतीर्थमें जाय और वहाँ स्नान करे। वहाँ स्नान करनेमात्रसे मनुष्य गोलोकमें पूजित होता है। राजेन्द्र! तत्पश्चात् सर्वोत्तम विष्णुतीर्थकी यात्रा करे। विष्णुका यह सर्वश्रेष्ठ स्थान योधनीपुरके नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ भगवान् वासुदेवेन करोड़ों असुरोंसे युद्ध किया था, इसी कारण यह तीर्थस्थान बन गया। यहाँ जानेसे विष्णु प्रसन्न होते हैं। यहाँ एक दिन-रात उपवास करनेसे यह ब्रह्महत्याके पापको नष्ट कर देता है। राजेन्द्र! तदुपरान्त श्रेष्ठ तापसेश्वर तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ व्याधके भयसे डरी हुई मृगी गिर पड़ी थी और जलमें शरीरका परित्याग कर अन्तरिक्षमें चली गयी थी। यह देखकर आश्चर्यचकित हुए व्याधको महान् विस्मय हुआ। इसी कारण इसका नाम तापेश्वरतीर्थ हुआ। इसके समान दूसरा तीर्थ न हुआ है, न होगा। राजेन्द्र! इसके बाद श्रेष्ठ ब्रह्मतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। यह तीर्थ अमोहक नामसे भी प्रसिद्ध है। यहाँ पितरोंका तर्पण तथा पूर्णिमा और अमावस्याको यथाविधि श्राद्ध करना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान कर मनुष्यको पितरोंको पिण्ड देना चाहिये। वहाँ जलमें गजके आकारकी एक शिला प्रतिष्ठित है। उसी शिलापर विशेषतया वैशाखकी पूर्णिमाको पिण्ड देना चाहिये। ऐसा करनेसे जबतक पृथकी स्थित रहती है, तबतक पितृगण तृप्त बने रहते हैं। राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ सिद्धेश्वर तीर्थकी यात्रा करे। राजन्! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य गणपतिके समीप पहुँच जाता है ॥ ९८—१०८ ॥

राजेन्द्र! तत्पश्चात् जनार्दन-लिङ्गकी यात्रा करे। राजेन्द्र! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य विष्णुलोकमें पूजित होता है। नर्मदाके दक्षिण तटपर परम रमणीय कुसुमेश्वर तीर्थ है। वहाँ स्वयं कामदेवेन कठोर तपस्या की थी। उसने एक

दिव्यं वर्षसहस्रं तु शंकरं पर्युपासत ।  
 समाधिभङ्गदग्धस्तु शंकरेण महात्मना ॥ १११  
 श्वेतपर्वा यमश्वैव हुताशः शुक्रपर्वणि ।  
 एते दग्धास्तु ते सर्वे कुसुमेश्वरसंस्थिताः ॥ ११२  
 दिव्यवर्षसहस्रेण तुष्टस्तेषां महेश्वरः ।  
 उमया सहितो रुद्रस्तुष्टस्तेषां वरप्रदः ॥ ११३  
 मोक्षयित्वा तु तान् सर्वान् नर्मदातटमास्थितः ।  
 ततस्तीर्थप्रभावेण पुनर्देवत्वमागताः ॥ ११४  
 ऊचुश्च परया भक्त्या देवदेवं वृषध्वजम् ।  
 त्वत्प्रसादान्महादेव तीर्थं भवतु चोत्तमम् ।  
 अर्धयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं दिक्षुं समन्ततः ॥ ११५  
 तस्मिंस्तीर्थं नरः स्नात्वा चोपवासपरायणः ।  
 कुसुमायुधरूपेण रुद्रलोके महीयते ॥ ११६  
 वैश्वानरो यमश्वैव कामदेवस्तस्था मरुत् ।  
 तपस्तप्त्वा तु राजेन्द्रं परां सिद्धिमवान्युयुः ॥ ११७  
 अङ्गोलस्य समीपे तु नातिदूरे तु तस्य वै ।  
 स्नानं दानं च तत्रैव भोजनं पिण्डपातनम् ॥ ११८  
 अग्निप्रवेशेऽथ जले अथवा तु ह्यनाशके ।  
 अनिवर्तिका गतिस्तस्य मृतस्यामुत्र जायते ॥ ११९  
 त्र्यम्बकेण तु तोयेन यश्चरुं श्रपयेन्नरः ।  
 अङ्गोलमूले दत्त्वा तु पिण्डं चैव यथाविधि ॥ १२०  
 तृप्यन्ति पितरस्तस्य यावच्यन्दिदिवाकरौ ।  
 उत्तरे त्वयने प्रासे घृतस्नानं करोति यः ॥ १२१  
 पुरुषो वाथ स्त्री वापि वसेदायतने शुचिः ।  
 सिद्धेश्वरस्य देवस्य प्रातः पूजां प्रकल्पयेत् ॥ १२२  
 स यां गतिमवाप्नोति न तां सर्वं र्महामखैः ।  
 यदावतीर्णः कालेन रूपवान् सुभगो भवेत् ॥ १२३  
 मर्त्ये भवति राजा च त्वासमुद्गान्तगोचरे ।  
 क्षेत्रपालं न पश्येत् तु दण्डपाणिं महाबलम् ॥ १२४  
 वृथा तस्य भवेद् यात्रा ह्यदृष्ट्वा कर्णकुण्डलम् ।  
 एवं तीर्थफलं ज्ञात्वा सर्वे देवाः समागताः ।  
 मुञ्जन्ति कुसुमैर्वृष्टिं तेन तत् कुसुमेश्वरम् ॥ १२५

हजार दिव्य वर्षोंतक शंकरकी सर्वभावसे उपासना की थी, किंतु महात्मा शंकरकी समाधिके भङ्ग होनेसे वह भस्म हो गया । इसी प्रकार कुसुमेश्वरमें स्थित श्वेतपर्वा, यम, हुताश और शुक्रपर्वा—ये सभी भी किसी समय जल गये थे । एक हजार दिव्य वर्षोंतक तपस्या करनेपर महेश्वर इनपर प्रसन्न हुए । इस प्रकार प्रसन्न हुए उमासहित रुद्रने इन्हें वर प्रदान किया । तब इन लोगोंको मोक्ष प्रदानकर वे नर्मदाके तटपर प्रतिष्ठित हो गये । तदनन्तर उस तीर्थके प्रभावसे उन लोगोंको पुनः देवत्व प्राप्त हो गया, तब उन्होंने अतिशय भक्तिके साथ देवाधिदेव वृषध्वजसे कहा—‘महादेव ! आपकी कृपासे दिशाओंमें चारों ओर आधा योजन विस्तृत यह क्षेत्र उत्तम तीर्थ हो जाय ।’ उस तीर्थमें उपवासपूर्वक स्नानकर मनुष्य कामदेवके रूपमें रुद्रलोकमें पूजित होता है ॥ १०९—११६ ॥

राजेन्द्र ! यहाँ वैश्वानर, यम, कामदेव और मरुत् ने तपस्या कर परम सिद्धि प्राप्त की थी । उस तीर्थसे थोड़ी दूरपर अंकोलके समीप स्नान, दान, भोजन तथा पिण्डदान करना चाहिये । यहाँ अग्निमें जलकर, जलमें ढूबकर या अनशन करके प्राण-त्याग करनेवालेको परलोकमें अपुनर्भवकी गति प्राप्त होती है । जो व्यक्ति त्र्यम्बकतीर्थके जलसे चरु पकाकर अङ्गोलके मूलमें विधिपूर्वक पिण्डदान करता है, उसके पितृगण चन्द्र और सूर्यकी स्थितिपर्यन्त तृप्त रहते हैं । उत्तरायण आनेपर चाहे पुरुष हो या स्त्री—जो कोई भी घृतसे स्नान करता है और पवित्र होकर उस आयतनमें निवास करता है तथा प्रातःकाल सिद्धेश्वरदेवकी पूजा करता है, वह जिस गतिको प्राप्त करता है, वह सभी यज्ञोंके करनेसे भी नहीं प्राप्त हो सकती । कालगतिसे पुनः जब वह मृत्युलोकमें जन्म ग्रहण करता है, तब सौभाग्यशाली एवं रूपसे सम्पन्न होकर समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका राजा होता है । जो यहाँ आकर महाबली दण्डपाणि क्षेत्रपालका दर्शन नहीं करता और कर्णकुण्डलको नहीं देखता, उसकी यात्रा व्यर्थ हो जाती है । इस प्रकार तीर्थके फलको जानकर सभी देवगण वहाँ उपस्थित होकर कुसुमोंकी वृष्टि करने लगे, इसीसे यह कुसुमेश्वर नामसे विख्यात हुआ ॥ ११७—१२५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये एकनवत्यधिकशतमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके नर्मदामाहात्म्य-वर्णनमें एक सौ इक्यानवेदाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १११ ॥

## एक सौ बानबेवाँ अध्याय

### शुक्लतीर्थका माहात्म्य

मार्कण्डेय उवाच

भार्गवेशं ततो गच्छेद् भग्नो यत्र जनार्दनः ।  
असुरैस्तु महायुद्धे महाबलपराक्रमैः ॥ १  
हुंकारितास्तु देवेन दानवाः प्रलयं गताः ।  
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २  
शुक्लतीर्थस्य चोत्पत्तिं शृणु त्वं पाण्डुनन्दन ।  
हिमवच्छिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते ॥ ३  
तरुणादित्यसंकाशे तसकाञ्छनसप्रभे ।  
वज्रस्फटिकसोपाने चित्रपटशिलातले ॥ ४  
जाम्बूनदमये दिव्ये नानापुष्पोपशोभिते ।  
तत्रासीनं महादेवं सर्वज्ञं प्रभुमव्ययम् ॥ ५  
लोकानुग्रहकर्तारं गणवृन्दैः समावृतम् ।  
स्कन्दनन्दिमहाकालैर्वीरभद्रगणादिभिः ।  
उपया सहितं देवं मार्कण्डः पर्यपृच्छत ॥ ६  
देवदेव महादेव ब्रह्मविष्णवन्द्रसंस्तुत ।  
संसारभयभीतोऽहं सुखोपायं ब्रवीहि मे ॥ ७  
भगवन् भूतभव्येश सर्वपापप्रणाशनम् ।  
तीर्थानां परमं तीर्थं तद् वदस्व महेश्वर ॥ ८

ईश्वर उवाच

शृणु विप्र महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।  
स्नानाय गच्छ सुभगं ऋषिसङ्घैः समावृतः ॥ ९  
मन्त्रत्रिकश्यपाश्वैव याज्ञवल्क्योशानोऽङ्गिराः ।  
यमापस्तम्बसंवर्ता: कात्यायनबृहस्पती ॥ १०  
नारदो गौतमश्वैव सेवन्ते धर्मकाङ्क्षिणः ।  
गङ्गा कनखले पुण्या प्रयागं पुष्करं गयाम् ॥ ११  
कुरुक्षेत्रं महापुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे ।  
दिवा वा यदि वा रात्रौ शुक्लतीर्थं महाफलम् ॥ १२

मार्कण्डेयजीने पूछा—राजेन्द्र! तदनन्तर भार्गवेशतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ एक बार भगवान् जनार्दन महायुद्धमें महाबली असुरोंके साथ युद्ध करते-करते थक गये, फिर उन प्रभुके हुंकारसे ही दानवगण नष्ट हो गये थे। वहाँ स्नान करनेसे मानव सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। पाण्डुनन्दन! अब आप शुक्लतीर्थकी उत्पत्ति सुनिये। किसी समय विविध धातुओंसे रंग-बिरंगे हिमवान् पर्वतके मनोरम शिखरपर, जो मध्याह्नकालिक सूर्यके समान देवीप्यमान, तपाये हुए सोनेकी प्रभासे युक्त, हीरक और स्फटिककी सीढ़ियोंसे सुशोभित था, एक दिव्य सुवर्णमय तथा अनेक पुष्पोंसे विभूषित शिलातलपर सर्वज्ञ, सामर्थ्यशाली, अविनाशी, लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले महादेव स्कन्द, नन्दी, महाकाल, वीरभद्र आदि गणों तथा अन्यान्य गणसमूहोंसे घिरे हुए उमाके साथ बैठे हुए थे। उसी समय मार्कण्डेयजीने उनसे पूछा—‘ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रसे वन्दित, देवाधिदेव महादेव! मैं संसार-भयसे भीत हूँ, मुझे सुखका साधन बतलाइये। ऐश्वर्यशाली महेश्वर! आप भूत और भविष्यके स्वामी हैं, अतः जो सभी पापोंका विनाशक एवं तीर्थोंमें श्रेष्ठ हो, वह तीर्थ मुझे बतलाइये ॥ १—८ ॥

भगवान् शंकरने कहा—महाबुद्धिमान् विप्र! तुम तो सकलशास्त्रविशारद और सौभाग्यशाली हो, तुम मेरी बात सुनो और ऋषियोंके साथ स्नान करनेके लिये शुक्लतीर्थमें जाओ। मनु, अत्रि, कश्यप, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, नारद और गौतम—ये ऋषिगण धर्मकी अभिलाषासे युक्त हो उसी तीर्थका सेवन करते हैं। गङ्गा कनखलमें पुण्यको देनेवाली है, सूर्यग्रहणके समय प्रयाग, पुष्कर, गया और कुरुक्षेत्र विशिष्ट पुण्यदायक हो जाते हैं, किंतु शुक्लतीर्थ दिन या रात—सभी समय महान् पुण्यफल देनेवाला है।

दर्शनात् स्पर्शनाच्चैव स्नानाद् दानात् तपो जपात् ।  
 होमाच्चैवोपवासाच्च शुक्लतीर्थं महाफलम् ॥ १३  
 शुक्लतीर्थं महापुण्यं नर्मदायां व्यवस्थितम् ।  
 चाणक्यो नाम राजर्षिः सिद्धिं तत्र समागतः ॥ १४  
 एतत् क्षेत्रं सुविपुलं योजनं वृत्तसंस्थितम् ।  
 शुक्लतीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १५  
 पादपाग्रेण दृष्टेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।  
 जगतीदर्शनाच्चैव भूणहत्यां व्यपोहति ॥ १६  
 अहं तत्र ऋषिश्रेष्ठं तिष्ठामि ह्युमया सह ।  
 वैशाखे चैत्रमासे तु कृष्णपक्षे चतुर्दशी ॥ १७  
 कैलासाच्चापि निष्क्रम्य तत्र संनिहितो ह्यहम् ।  
 दैत्यदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरास्तथा ॥ १८  
 गणाश्वाप्सरसो नागाः सर्वे देवाः समागताः ।  
 गगनस्थास्तु तिष्ठन्ति विमानैः सार्वकामिकैः ॥ १९  
 शुक्लतीर्थं तु राजेन्द्र ह्यागता धर्मकाङ्क्षिणः ।  
 रजकेन यथा वस्त्रं शुक्लं भवति वारिणा ॥ २०  
 आजन्मजनितं पापं शुक्लं तीर्थं व्यपोहति ।  
 स्नानं दानं महापुण्यं मार्कण्डं ऋषिसत्तम् ॥ २१  
 शुक्लतीर्थात् परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ।  
 पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि मानवः ॥ २२  
 अहोरात्रोपवासेन शुक्लतीर्थं व्यपोहति ।  
 तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञदर्नेन वा पुनः ॥ २३  
 देवार्चनेन या पुष्टिर्न सा क्रतुशतैरपि ।  
 कार्तिकस्य तु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी ॥ २४  
 घृतेन स्नापयेद् देवमुपोष्य परमेश्वरम् ।  
 एकविंशत्कुलोपेतो न च्यवेदैश्वरात् पदात् ॥ २५  
 शुक्लतीर्थं महापुण्यमृषिसिद्धनिषेवितम् ।  
 तत्र स्नात्वा नरो राजन् पुनर्जन्मभाग् भवेत् ॥ २६  
 स्नात्वा वै शुक्लतीर्थं तु ह्यर्चयेद् वृषभध्वजम् ।  
 कपालपूरणं कृत्वा तुष्यत्यत्र महेश्वरः ॥ २७

यह शुक्लतीर्थ दर्शन, स्पर्श, स्नान, दान, तप, जप, हवन और उपवास करनेसे महान् फलदायक होता है। यह महान् पुण्यदायक शुक्लतीर्थ नर्मदामें अवस्थित है। चाणक्य नामक राजर्षिने यहाँ सिद्ध प्राप्त की थी। यह विशाल क्षेत्र एक योजन परिमाणका गोलाकार है। यह शुक्लतीर्थ महापुण्यको प्रदान करनेवाला और सम्पूर्ण पापोंका नाशक है। यह यहाँ स्थित वृक्षके अग्रभागको देखनेसे ब्रह्महत्या और यहाँकी भूमिका दर्शन करनेसे भूणहत्याके पापको नष्ट कर देता है। ऋषिश्रेष्ठ! मैं वहाँ उमाके साथ निवास करता हूँ। चैत्र तथा वैशाख-मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको मैं कैलाससे भी आकर यहाँ उपस्थित रहता हूँ ॥ ९—१७ १॥

राजेन्द्र! दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, गण, अप्सराएँ और नाग—ये सभी देवगण आकर सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले विमानोंपर आरूढ़ हो गगनमें स्थित रहते हैं। धर्मकी अभिलाषा रखनेवाले ये सभी शुक्लतीर्थमें आते हैं; क्योंकि जैसे धोबी मलिन वस्त्रको जलसे धोकर उज्ज्वल कर देता है, उसी तरह शुक्लतीर्थ जन्मसे लेकर तबतकके किये गये पापोंको नष्ट कर देता है। ऋषिश्रेष्ठ मार्कण्डेय! यहाँका स्नान और दान महान् पुण्यफलको देनेवाले होते हैं। शुक्लतीर्थसे श्रेष्ठ तीर्थं न हुआ है और न होगा। मानव बचपनमें किये गये पाप-कर्मोंको शुक्लतीर्थमें एक दिन-रात उपवास करके नष्ट कर देता है। यहाँ तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ, दान और देवार्चनसे जो पुणि प्राप्त होती है, वह (अन्यत्र किये गये) सैकड़ों यज्ञोंसे भी नहीं मिलती। यहाँ कार्तिकमासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको उपवास कर परमेश्वर महादेवको घृतसे स्नान कराना चाहिये। ऐसा करनेसे वह अपने इकीस पीढ़ियोंतकके पूर्वजोंके साथ महादेवके स्थानसे च्युत नहीं होता। राजन्! ऋषियों और सिद्धोंद्वारा सेवित यह शुक्लतीर्थ महान् पुण्यदायक है। वहाँ स्नान करनेसे मानव पुनर्जन्मका भागी नहीं होता। शुक्लतीर्थमें स्नानकर वृषभध्वजकी पूजा करे और कपालको भर दे, ऐसा करनेसे महेश्वर प्रसन्न होते हैं ॥ १८—२७ ॥

अर्धनारीश्वरं देवं पटे भक्त्या लिखापयेत्।  
 शङ्खतूर्यनिनादैश्च ब्रह्मघोषश्च सद्विजैः ॥ २८  
 जागरं कारयेत् तत्र नृत्यगीतादिमङ्गलैः।  
 प्रभाते शुक्लतीर्थे तु स्नानं वै देवतार्चनम् ॥ २९  
 आचार्यान् भोजयेत् पश्चाच्छिवव्रतपराञ्जुचीन्।  
 दक्षिणां च यथाशक्ति वित्तशाढ्यं विवर्जयेत् ॥ ३०  
 प्रदक्षिणं ततः कृत्वा शनैर्देवान्तिकं व्रजेत्।  
 एवं वै कुरुते यस्तु तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ३१  
 दिव्ययानं समारूढो गीयमानोऽप्सरोगणैः।  
 शिवतुल्यबलोपेतस्तिष्ठत्याभूतसम्प्लवम् ॥ ३२  
 शुक्लतीर्थे तु या नारी ददाति कनकं शुभम्।  
 घृतेन स्नापयेद् देवं कुमारं चापि पूजयेत् ॥ ३३  
 एवं या कुरुते भक्त्या तस्याः पुण्यफलं शृणु।  
 मोदते शर्वलोकस्था यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ३४  
 पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां संक्रान्तौ विषुवे तथा।  
 स्नात्वा तु सोपवासः सन् विजितात्मा समाहितः ॥ ३५  
 दानं दद्याद् यथाशक्त्या प्रीयेतां हरिशंकरौ।  
 एवं तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम् ॥ ३६  
 अनाथं दुर्गतं विप्रं नाथवन्तमथापि वा।  
 उद्वाहयति यस्तीर्थे तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ३७  
 यावत्तद्रोमसंख्या च तत्प्रसूतिकुलेषु च।  
 तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ ३८

वस्त्रके ऊपर भक्तिके साथ अर्धनारीश्वर महादेवका चित्र लिखवाये और शङ्ख-तुरहीके शब्दों एवं उत्तम ब्राह्मणोंके द्वारा वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणके साथ-साथ नृत्य, गीत आदि मङ्गल-कार्य करते हुए वहाँ रातमें जागरण कराये। प्रातःकाल शुक्लतीर्थमें स्नान करके देवताकी पूजा करे। तत्पश्चात् शिवव्रत-परायण पवित्र आचार्योंको भोजन कराये और कृपणता छोड़कर उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा दे। इसके बाद उनकी प्रदक्षिणा कर धीरेसे देवताके समीप जाय। जो ऐसा करता है, उसे प्राप्त होनेवाला पुण्यफल सुनिये। वह शिवके समान बलशाली हो अप्सराओंद्वारा गाया जाता हुआ दिव्य विमानपर बैठकर प्रलयपर्यन्त स्थित रहता है। जो स्त्री शुक्लतीर्थमें शुभकारक सुवर्णका दान करती है और महादेवको घृतसे स्नान कराकर कुमार (स्कन्द)-की भी पूजा करती है, भक्तिपूर्वक ऐसा करनेवाली स्त्रीको जो पुण्यफल प्राप्त होता है, उसे सुनिये। वह रुद्रलोकमें स्थित रहकर चौंदह इन्द्रोंके कार्यकालतक आनन्दका उपभोग करती है। जो पूर्णिमा एवं चतुर्दशी तिथि, संक्रान्तिके दिन और विषुवयोगमें वहाँ स्नान करके मनको वशमें कर समाहित चित्तसे उपवासके साथ ‘विष्णु और शंकर—दोनों प्रसन्न हों’ इस भावनासे यथाशक्ति दान देता है, उसका वह सब तीर्थके प्रभावसे अक्षय हो जाता है। जो मानव उस तीर्थमें अनाथ, दुर्गतिग्रस्त अथवा सनाथ विप्रका भी विवाह कराता है उसे प्राप्त होनेवाला पुण्यफल सुनिये। वह उस ब्राह्मणके तथा उसकी वंशपरम्परामें उत्पन्न हुए लोगोंके शरीरमें जितने रोएँकी संख्या है, उतने हजार वर्षोंतक शिवलोकमें पूजित होता है ॥ २८—३८ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके नर्मदामाहात्म्यमें एक सौ बानवेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९२ ॥

## एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय

**नर्मदा-माहात्म्य-प्रसङ्गमें कपिलादि विविध तीर्थोंका माहात्म्य, भृगुतीर्थका माहात्म्य,  
भृगुमुनिकी तपस्या, शिव-पार्वतीका उनके समक्ष प्रकट होना, भृगुद्वारा  
उनकी स्तुति और शिवजीद्वारा भृगुको वर-प्रदान**

मार्कण्डेय उवाच

ततस्त्वनरकं गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।  
स्नातमात्रो नरस्त्र नरकं च न पश्यति ॥ १  
तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं शृणु त्वं पाण्डुनन्दन।  
तस्मिस्तीर्थे तु राजेन्द्र यस्यास्थीनि विनिक्षिपेत् ॥ २  
विलयं यान्ति पापानि रूपवाज्जायते नरः।  
गोतीर्थं तु ततो गत्वा सर्वपापात् प्रमुच्यते ॥ ३  
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम्।  
तत्र गत्वा नरो राजन् गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ४  
ज्येष्ठमासे तु सम्प्रासे चतुर्दश्यां विशेषतः।  
तत्रोपोष्य नरो भक्त्या कपिलां यः प्रयच्छति ॥ ५  
घृतेन दीपं प्रज्वाल्य घृतेन स्नापयेच्छिवम्।  
सघृतं श्रीफलं जग्धवा दत्त्वा चान्ते प्रदक्षिणम् ॥ ६  
घण्टाभरणसंयुक्तां कपिलां यः प्रयच्छति।  
शिवतुल्यबलो भूत्वा नैवासौ जायते पुनः ॥ ७  
अङ्गारकदिने प्राप्ये चतुर्थ्या तु विशेषतः।  
पूजयेत् तु शिवं भक्त्या ब्राह्मणेभ्यश्च भोजनम् ॥ ८  
अङ्गारकनवस्यां तु अमायां च विशेषतः।  
स्नापयेत् तत्र यत्नेन रूपवान् सुभगो भवेत् ॥ ९  
घृतेन स्नापयेल्लिङ्गं पूजयेद् भक्तितो द्विजान्।  
पुष्पकेण विमानेन सहस्रैः परिवारितः ॥ १०  
शैवं पदमवाप्नोति यत्र चाभिमतं भवेत्।  
अक्षयं मोदते कालं यथा रुद्रस्तथैव सः ॥ ११  
यदा तु कर्मसंयोगान्मर्त्यलोकमुपागतः।  
राजा भवति धर्मिष्ठो रूपवाज्जायते कुले ॥ १२  
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ऋषितीर्थमनुत्तमम्।  
तृणबिन्दुर्नाम ऋषिः शापदग्धो व्यवस्थितः ॥ १३  
तत्तीर्थस्य प्रभावेण शापमुक्तोऽभवद् द्विजः।

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! तदनन्तर अनरक नामक तीर्थमें जाय और वहाँ स्नान करे। वहाँ स्नान करनेमात्रसे मानवको नरकका दर्शन नहीं होता। पाण्डुनन्दन! अब आप उस तीर्थका माहात्म्य सुनिये। राजेन्द्र! उस तीर्थमें जिसकी हड्डियाँ डाल दी जाती हैं, उसके पापसमूह नष्ट हो जाते हैं और वह पुनः रूपवान् होकर जन्म ग्रहण करता है। तत्पश्चात् गोतीर्थमें जाकर मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। राजेन्द्र! तदुपरान्त श्रेष्ठ कपिलातीर्थकी यात्रा करे। राजन्! जो मनुष्य ज्येष्ठ-मासमें विशेषकर चतुर्दशी तिथिको वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान और उपवासकर कपिला गौका दान करता है, उसे एक हजार गोदानका फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य वहाँ धीसे दीपक जलाकर धीसे शिवको स्नान करता है और घृतके साथ बेलको स्वयं खाता है एवं दान देता है तथा अन्तमें प्रदक्षिणा करके घण्टा और अलंकारसे विभूषित कपिला गौका दान करता है, वह शिवके तुल्य बलवान् होता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता। मंगलवारको विशेषकर चतुर्थी तिथिको शिवकी भक्तिपूर्वक पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। मंगलवारकी नवमी एवं विशेषतया अमावास्या तिथिको यत्पूर्वक शिवको स्नान करानेसे मनुष्य रूपवान् और भाग्यवान् होता है। जो घृतसे शिवलिङ्गको स्नान करकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करता है, वह हजारों विमानोंसे घेरे हुए पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो शिवलोकको जाता है और यहाँ अभिलिप्त वस्तुओंको प्राप्त करता है तथा रुद्रके समान ही अक्षय कालतक वहाँ आनन्दका उपभोग करता है। जब कभी कर्मवश वह मृत्युलोकमें आता है तो कुलीन वंशमें जन्म ग्रहण करता है और रूपवान् धर्मात्मा राजा होता है। राजेन्द्र! इसके बाद श्रेष्ठ ऋषितीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। यहाँ तृणबिन्दु नामक ऋषि शापसे दग्ध होकर स्थित थे, किंतु इस तीर्थके प्रभावसे वे द्विज शापसे मुक्त हो गये ॥ १—१३ ३॥

ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र गङ्गेश्वरमनुज्ञम् ॥ १४  
 श्रावणे मासि सम्प्रासे कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।  
 स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते ॥ १५  
 पितृणां तर्पणं कृत्वा मुच्यते च ऋणत्रयात् ।  
 गङ्गेश्वरसमीपे तु गङ्गावदनमुत्तमम् ॥ १६  
 अकामो वा सकामो वा तत्र स्नात्वा तु मानवः ।  
 आजन्मजनितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ १७  
 तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ब्रजेद् वै यत्र शंकरः ।  
 सर्वदा पर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत् ॥ १८  
 पितृणां तर्पणं कृत्वा ह्यश्वमेधफलं लभेत् ।  
 प्रयागे यत्फलं दृष्टं शंकरेण महात्मना ॥ १९  
 तदेव निखिलं दृष्टं गङ्गावदनसंगमे ।  
 तस्यैव पश्चिमे स्थाने समीपे नातिदूरतः ॥ २०  
 दशाश्वमेधजननं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।  
 उपोष्य रजनीमेकां मासि भाद्रपदे तथा ॥ २१  
 अमायां च नरः स्नात्वा ब्रजते यत्र शंकरः ।  
 सर्वदा पर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत् ॥ २२  
 पितृणां तर्पणं कृत्वा चाश्वमेधफलं लभेत् ।  
 दशाश्वमेधात् पश्चिमतो भृगुब्राह्मणसत्तमः ॥ २३  
 दिव्यं वर्षं सहस्रं तु ईश्वरं पर्युपासत ।  
 वल्मीकवेष्टितश्चासौ पक्षिणां च निकेतनः ॥ २४  
 आश्र्व्यं सुमहज्जातमुमायाः शंकरस्य च ।  
 गौरी पप्रच्छ देवेशं कोऽयमेवं तु संस्थितः ।  
 देवो वा दानवो वाथ कथयस्व महेश्वर ॥ २५

महेश्वर उवाच

भृगुर्नाम द्विजश्रेष्ठं ऋषीणां प्रवरो मुनिः ।  
 मां ध्यायते समाधिस्थो वरं प्रार्थयते प्रिये ॥ २६  
 ततः प्रहसिता देवी ईश्वरं प्रत्यभाषत ।  
 धूमवत्तच्छिखा जाता ततोऽद्यापि न तुष्यसे ।  
 दुराराध्योऽसि तेन त्वं नात्र कार्या विचारणा ॥ २७

महेश्वर उवाच

न जानासि महादेवि ह्ययं क्रोधेन वेष्टितः ।  
 दर्शयामि यथातथ्यं प्रत्ययं ते करोम्यहम् ॥ २८

राजेन्द्र ! तदनन्तर श्रेष्ठ गङ्गेश्वरतीर्थकी यात्रा करे ।  
 वहाँ श्रवणमासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको स्नानमात्र  
 कर लेनेसे मनुष्य रुद्रलोकमें पूजित होता है तथा पितरोंका  
 तर्पण कर देव, पितर और ऋषि—इन तीनों ऋणोंसे मुक्त  
 हो जाता है । गङ्गेश्वरतीर्थके समीपमें गङ्गावदन नामक श्रेष्ठ  
 तीर्थ है । वहाँ कामनापूर्वक या निष्काम होकर स्नान कर  
 मनुष्य अपने जन्मभरके किये हुए पापोंसे छुटकारा पा  
 जाता है, इसमें संदेह नहीं है । उस तीर्थमें स्नानकर  
 मनुष्यको जहाँ शंकर हैं, वहीं जाना चाहिये और वहाँ  
 सर्वदा पर्वदिवपर स्नान करना चाहिये । वहाँ पितरोंका  
 तर्पण करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है । प्रयागमें  
 स्नान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह सम्पूर्ण  
 फल गङ्गावदनसङ्गममें महात्मा शंकरके दर्शनसे प्राप्त हो  
 जाता है । उसीके पश्चिम दिशामें संनिकट ही दशाश्वमेधजनन  
 नामक तीर्थ है, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है । भाद्रपदमासकी  
 अमावास्या तिथिको वहाँ एक रात उपवासकर स्नान  
 करनेके पश्चात् शंकरके निकट जाना चाहिये और वहाँ  
 सर्वदा पर्वके अवसरपर स्नान करना चाहिये । वहाँ पितरोंका  
 तर्पण करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है । दशाश्वमेधसे  
 पश्चिम दिशामें ब्राह्मणश्रेष्ठ भृगुने एक हजार दिव्य वर्षोंतक  
 शिवजीकी उपासना की थी । उनका शरीर बिमवटसे  
 परिवेष्टित हो गया था, जिससे वे पक्षियोंके निवासस्थान  
 बन गये थे । यह देखकर उमा और शंकरको महान्  
 आश्र्व्य उत्पन्न हुआ । तब पार्वतीने शंकरजीसे पूछा—  
 ‘महेश्वर ! यह कौन इस प्रकार समाधिस्थ है ? यह देव है  
 अथवा दानव ? यह मुझे बतलाइये ॥ १४—२५ ॥

महेश्वर बोले—प्रिये ! ये द्विजश्रेष्ठ भृगु हैं, जो  
 ऋषियोंमें श्रेष्ठ मुनि हैं । ये समाधिस्थ होकर मेरा ध्यान  
 कर रहे हैं और वर प्राप्त करना चाहते हैं । यह सुनकर  
 पार्वतीदेवी हँस पड़ीं और महेश्वरसे बोलीं—‘भगवन् !  
 इस तपस्वीकी शिखा धुएँके समान हो गयी, फिर भी  
 आप अभी भी संतुष्ट नहीं हो रहे हैं । इससे ऐसा प्रतीत हो  
 रहा है कि आप महान् कष्टसे आराधित-प्रसन्न होते हैं, इस  
 विषयमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ २६—२७ ॥

महेश्वरने कहा—महादेवि ! तुम नहीं जानती हो,  
 ये मुनि क्रोधसे परिपूर्ण हैं । मैं तुम्हें अभी सत्य स्थिति

ततः स्मृतोऽथ देवेन धर्मरूपो वृषस्तदा।  
स्मरणात्तस्य देवस्य वृषः शीघ्रमुपस्थितः।  
वदंस्तु मानुषीं वाचमादेशो दीयतां प्रभो॥ २९

महेश्वर उवाच

बल्मीकिं त्वं खनस्वैनं विप्रं भूमौ निपातय।  
योगस्थस्तु ततो ध्यायन् भृगुस्तेन निपातितः॥ ३०  
तत्क्षणात् क्रोधसंतसो हस्तमुत्क्षिप्य सोऽशप्त्।  
एवं सम्भाषमाणस्तु कुत्र गच्छसि भो वृष।  
अद्याहं सम्प्रकोपेण प्रलयं त्वां नये वृष॥ ३१  
धर्षितस्तु तदा विप्रश्नान्तरिक्षं गतो वृषम्।  
आकाशे प्रेक्षते विप्र एतदद्भुतमुत्तमम्॥ ३२  
तत्र प्रहसितो रुद्र ऋषिरग्रे व्यवस्थितः।  
तृतीयलोचनं दृष्ट्वा वैलक्ष्यात् पतितो भुवि।  
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ तुष्टाव परमेश्वरम्॥ ३३  
प्रणिपत्य भूतनाथं भवोद्भवं त्वामहं दिव्यरूपम्।  
भवातीतो भुवनपते प्रभो तु विज्ञापये किञ्चित्॥ ३४

त्वद्गुणनिकरान् वक्तुं कः शक्तो भवति मानुषो नाम।  
वासुकिरपि हि कदाचिद् वदनसहस्रं भवेद् यस्य॥ ३५

भक्त्या तथापि शंकर भुवनपते त्वत्स्तुतौ मुखरः।  
वदतः क्षमस्व भगवन् प्रसीद मे तव चरणपतिस्य॥ ३६

सत्त्वं रजस्तमस्त्वं स्थित्युत्पत्त्योर्विनाशने देव।  
त्वां मुक्त्वा भुवनपते भुवनेश्वर नैव दैवतं किञ्चित्॥ ३७

यमनियमयज्ञदानवेदाभ्यासाश्च धारणा योगः।  
त्वद्भक्तेः सर्वमिदं नार्हति हि कलासहस्रांशम्॥ ३८

उच्छिष्टरसरसायनखड्गाङ्गनपादुकाविवरसिद्धिर्वा।  
चिह्नं भवद्वतानां दृश्यति चंह जन्मनि प्रकटम्॥ ३९

शास्त्रेन नपति यद्यपि ददासि त्वं भूतिमिच्छतो देव।  
भक्तिर्भवभेदकर्ता पांक्षाय विनिर्मिता नाथ॥ ४०

दिखाकर विश्वस्त कर रहा हूँ। तत्पश्चात् शिवजीने उस समय धर्मरूपी वृषभका स्मरण किया। उन देवके स्मरण करते ही वह वृष शीघ्र ही उपस्थित हो गया और मनुष्यकी वाणीमें बोला—‘प्रभो! आदेश दीजिये’॥ २८-२९॥

महेश्वरने कहा—तुम इस विमवटको खोद डालो और विप्रको भूमिपर गिरा दो। तब वृषने ध्यान करते हुए योगस्थ भृगुको भूमिपर गिरा दिया। उसी क्षण क्रोधसे जले-भुने भृगु हाथ उठाकर शाप देते हुए इस प्रकार बोले—‘भो वृष! तुम कहाँ जा रहे हो? वृष! अभी मैं क्रोधके बलसे तुम्हारा संहार कर डालता हूँ।’ तब वह वृषभ उस विप्रको परास्तकर आकाशमें चला गया। उसे आकाशमें देखते हुए भृगु सोचने लगे—‘यह तो महान् आश्र्य है।’ इतनेमें ही वहाँ भगवान् रुद्र हँसते हुए ऋषिके सम्मुख उपस्थित हो गये। तब तृतीय नेत्रधारी रुद्रको देखकर भृगु व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े और दण्डके समान भूमिपर लेटकर प्रणाम कर भगवान् शंकरकी स्तुति करने लगे॥ ३०-३३॥

त्रिभुवनके स्वामी प्रभो! आप प्राणिवर्गके स्वामी, संसारके उद्धवस्थान, दिव्य रूपधारी और जन्म-मरणसे परे हैं, मैं आपको प्रणाम करके कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। यद्यपि कदाचित् किसी मानवको वासुकिके समान हजार मुख हो जाय तो भी ऐसा कोई भी मनुष्य आपके गुणसमूहोंका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हो सकता, तथापि भुवनपते शंकर! मैं भक्तिपूर्वक आपकी स्तुति करनेके लिये उद्यत हूँ। भगवन्! अपने चरणोंमें पड़े हुए मुझपर प्रसन्न हो जाइये और बोलते समय घटित हुई त्रुटियोंके लिये मुझे क्षमा कीजिये। देव! विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और लयमें आप ही सत्त्व, रज और तमस्वरूप हैं। भुवनपते! आपको छोड़कर अन्य कोई देवता नहीं है। भुवनेश्वर! यम, नियम, यज्ञ, दान, वेदाभ्यास, धारणा और योग—ये सभी आपकी भक्तिकी एक कलाके हजारवें अंशकी समता नहीं कर सकते। उच्छिष्ट, रस-रसायन, खड्ग, अञ्जन, पादुका और विवरसिद्धि—ये सभी महादेवकी आराधना करनेवालोंके चिह्न हैं, जो इस जन्ममें व्यक्त-रूपसे देखे जाते हैं॥ ३४-३९॥

देव! यद्यपि भक्त शठतापूर्वक नमस्कार करता है, तथापि आप उसे इच्छानुसार ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। नाथ! आपने मोक्ष प्रदान करनेके लिये संसारको नष्ट करनेवाली

परदारपरस्वरतं परपरिभवदुःखशोकसंतसम्।  
परवदनवीक्षणपरं परमेश्वर मां परित्राहि ॥ ४१  
मिथ्याभिमानदग्धं क्षणभद्रदेहविलसितं क्रूरम्।  
कुपथ्याभिमुखं पतितं त्वं मां पापात् परित्राहि ॥ ४२  
दीने द्विजगणसार्थे बन्धुजनेनैव दूषिता ह्याशा।  
तृष्णा तथापि शंकर किं मूढं मां विडम्बयति ॥ ४३  
तृष्णां हरस्व शीघ्रं लक्ष्मीं प्रदत्स्व यावदासिनीं नित्यम्।  
छिन्थि मदमोहपाशानुत्तारय मां महादेव ॥ ४४  
करुणाभ्युदयं नाम स्तोत्रमिदं सर्वसिद्धिदं दिव्यम्।  
यः पठति भक्तियुक्तस्तस्य तुष्टेद् भृगोर्यथा च शिवः ॥ ४५  
अहं तुष्टेऽस्मि ते वत्स प्रार्थयस्वेप्सितं वरम्।  
उमया सहितो देवो वरं तस्य ह्यदापयत् ॥ ४६

### भृगुरुवाच

यदि तुष्टेऽसि देवेश यदि देयो वरो मम।  
रुद्रवेदी भवेदेवमेतत् सम्पादयस्व मे ॥ ४७

### इश्वर उवाच

एवं भवतु विप्रेन्द्र क्रोधस्त्वां न भविष्यति।  
न पितापुत्रयोश्चैव त्वैकमत्यं भविष्यति ॥ ४८  
तदाप्रभृति ब्रह्माद्याः सर्वे देवाः सकिन्नराः।  
उपासते भृगोस्तीर्थं तुष्टो यत्र महेश्वरः ॥ ४९  
दर्शनात् तस्य तीर्थस्य सद्यः पापात् प्रमुच्यते।  
अवशाः स्ववशा वापि प्रियन्ते यत्र जन्तवः ॥ ५०  
गुह्यातिगुह्या सुगतिस्तेषां निःसंशयं भवेत्।  
एतत् क्षेत्रं सुविपुलं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ५१  
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः।  
उपानहौ च छत्रं च च्यमन्नं च काञ्छनम् ॥ ५२  
भोजनं च यथाशक्त्या ह्यक्षयं च तथा भवेत्।  
सूर्योपरागे यो दद्याद् दानं चैव यथेच्छया ॥ ५३

भक्तिका निर्माण किया है। परमेश्वर! मैं परायी स्त्री और पराये धनमें रत रहनेवाला, दूसरे द्वारा किये गये अनादरसे उत्पन्न हुए दुःख और शोकसे सन्तस और परमुखापेक्षी हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये। मैं मिथ्या अभिमानसे सन्तस, क्षणभद्र शरीरके विलासमें रत, निष्ठुर, कुमार्गामी और पतित हूँ, आप इस पापसे मेरी रक्षा कीजिये। यद्यपि द्विजगणोंके साथ-साथ मैं दीन हूँ और बन्धुजनोंने ही मेरी आशाको दूषित कर दिया है, तथापि शंकर! तृष्णा मुझ मोहग्रस्तकी विडम्बना क्यों कर रही है? महादेव! आप इस तृष्णाको शीघ्र दूर कर दें, नित्य चिरस्थायिनी लक्ष्मी प्रदान करें, मद और मोहके पाशको काट दें और मेरा उद्धार करें। यह 'करुणाभ्युदय' नामक दिव्य स्तोत्र सभी सिद्धियोंको देनेवाला है, जो भक्तिपूर्वक इसका पाठ करता है, उसपर भृगु (पर प्रसन्न होने)-के समान ही शिवजी प्रसन्न होते हैं ॥ ४०—४५ ॥

**भगवान् शंकरने कहा—वत्स!** मैं तुमपर प्रसन्न हूँ तुम अभीष्ट वर माँग लो। इस प्रकार उमासहित महादेवजी भृगुको वरदान देनेके लिये उद्यत हुए ॥ ४६ ॥

**भृगु बोले—देवेश!** यदि आप प्रसन्न हैं और यदि मुझे वर देना चाहते हैं तो मुझे यह वरदान दीजिये कि यह स्थान रुद्रवेदीके नामसे प्रसिद्ध हो जाय ॥ ४७ ॥

**शिवजीने कहा—विप्रश्रेष्ठ!** ऐसा ही होगा और अब तुम्हें क्रोध नहीं होगा। साथ ही तुम पिता और पुत्रमें सहमति नहीं होगी। तभीसे किन्नरोंसहित ब्रह्मा आदि सभी देवगण, जहाँ महेश्वर संतुष्ट हुए थे, उस भृगुतीर्थकी उपासना करते हैं। उस तीर्थका दर्शन करनेसे मनुष्य तत्काल ही पापसे मुक्त हो जाता है। स्वाधीन या पराधीन होकर भी जो प्राणी यहाँ मरते हैं, उन्हें निःसंदेह गुह्यातिगुह्य उत्तम गति प्राप्त होती है। यह अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र सभी पापोंका विनाशक है। यहाँ स्नान करके मानव स्वर्गको प्राप्त होते हैं तथा जो वहाँ मरते हैं, उनका पुनः संसारमें आगमन नहीं होता। वहाँ यथाशक्ति जूता, छाता, अन्न, सोना और खाद्य पदार्थका दान देना चाहिये; क्योंकि वह अक्षय हो जाता है। जो मनुष्य सूर्यग्रहणके समय वहाँ इच्छानुसार जो कुछ दान

दीयमानं तु तद् दानमक्षयं तस्य तद् भवेत्।  
 चन्द्रसूर्योपरागेषु यत्फलं त्वमरकण्टके॥ ५४  
 तदेव निखिलं पुण्यं भृगुतीर्थं न संशयः।  
 क्षरन्ति सर्वदानानि यज्ञदानतपःक्रियाः॥ ५५  
 न क्षरेत् तु तपस्त्वं भृगुतीर्थं युधिष्ठिर।  
 यस्य वै तपसोग्रेण तुष्टेनैव तु शम्भुना॥ ५६  
 सांनिध्यं तत्र कथितं भृगुतीर्थं नराधिप।  
 प्रख्यातं त्रिषु लोकेषु यत्र तुष्टो महेश्वरः॥ ५७  
 एवं तु वदतो देवीं भृगुतीर्थमनुत्तमम्।  
 न जानन्ति नरा मूढा विष्णुमायाविमोहिताः॥ ५८  
 नर्मदायां स्थितं दिव्यं भृगुतीर्थं नराधिप।  
 भृगुतीर्थस्य माहात्म्यं यःशृणोति नरः क्वचित्॥ ५९  
 विमुक्तः सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति।  
 ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र गौतमेश्वरमुत्तमम्॥ ६०  
 तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासपरायणः।  
 काञ्छनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते॥ ६१  
 धौतपापं ततो गच्छेत् क्षेत्रं यत्र वृषेण तु।  
 नर्मदायां कृतं राजन् सर्वपातकनाशनम्॥ ६२  
 तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्महत्यां विमुञ्चति।  
 तस्मिस्तीर्थे तु राजेन्द्र प्राणत्यागं करोति यः॥ ६३  
 चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च शिवतुल्यबलो भवेत्।  
 वसेत् कल्पायुतं साग्रं शिवतुल्यपराक्रमः॥ ६४  
 कालेन महता प्राप्तः पृथिव्यामेकराङ् भवेत्।  
 ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ऐरण्डीतीर्थमुत्तमम्॥ ६५  
 प्रयागे यत् फलं दृष्टं मार्कण्डेयेन भाषितम्।  
 तत् फलं लभते राजन् स्नातमात्रो हि मानवः॥ ६६  
 मासि भाद्रपदे चैव शुक्लपक्षे चतुर्दशी।  
 उपोष्य रजनीमेकां तस्मिन् स्नानं समाचरेत्।  
 यमदूतैर्न बाध्येत रुद्रलोकं स गच्छति॥ ६७  
 ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र सिद्धो यत्र जनार्दनः।  
 हिरण्यद्वीपविख्यातं सर्वपापप्रणाशनम्॥ ६८

देता है, उसका वह दिया हुआ दान अक्षय हो जाता है। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय अमरकण्टकमें जो फल प्राप्त होता है, वही सम्पूर्ण पुण्य निःसंदेह भृगुतीर्थमें सुलभ हो जाता है। युधिष्ठिर! सभी प्रकारके दान तथा यज्ञ, तप और कर्म—ये सभी नष्ट हो जाते हैं, किंतु भृगुतीर्थमें किया गया तप नष्ट नहीं होता। नराधिप! उस भृगुकी उग्र तपस्यासे संतुष्ट हुए शम्भुने उस भृगुतीर्थमें अपनी नित्य उपस्थिति बतलायी है, इसलिये वह भृगुतीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है; क्योंकि वहाँ महेश्वर संतुष्ट हुए थे। नराधिप! इस प्रकार महेश्वरने पार्वतीसे श्रेष्ठ भृगुतीर्थके विषयमें कहा है, किंतु विष्णुकी मायासे मोहित हुए मूढ़ मनुष्य नर्मदामें स्थित इस दिव्य भृगुतीर्थको नहीं जानते। जो मनुष्य कहीं भी भृगुतीर्थका माहात्म्य सुनता है, वह सभी पापोंसे विमुक्त होकर रुद्रलोकको जाता है॥ ४८—५९॥

राजेन्द्र! इसके बाद श्रेष्ठ गौतमेश्वर तीर्थकी यात्रा करे। राजन्! वहाँ स्नानकर उपवास करनेवाला मनुष्य सुवर्णमय विमानसे ब्रह्मलोकमें जाकर पूजित होता है। राजन्! तदनन्तर धौतपाप नामक क्षेत्रकी यात्रा करनी चाहिये। स्वयं नन्दीने नर्मदामें इस क्षेत्रका निर्माण किया था, जो सभी पातकोंका नाशक है। उस तीर्थमें स्नानकर मनुष्य ब्रह्महत्यासे विमुक्त हो जाता है। राजेन्द्र! उस तीर्थमें जो प्राण-त्याग करता है, वह चार भुजा और तीन नेत्रोंसे युक्त हो शिवके समान बलशाली हो जाता है और शिवके समान पराक्रमी होकर दस सहस्र कल्पोंसे भी अधिक कालतक स्वर्गमें निवास करता है। बहुत कालके बाद पृथ्वीपर आनेपर वह एकच्छत्र राजा होता है। राजेन्द्र! तत्पश्चात् श्रेष्ठ ऐरण्डीतीर्थमें जाना चाहिये। राजन्! मार्कण्डेयजीके द्वारा प्रयागमें जो पुण्य बतलाया गया है, वही पुण्य वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्यको सुलभ हो जाता है। जो भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिको एक रात उपवास कर वहाँ स्नान करता है, उसे यमदूत पीड़ित नहीं करते और वह रुद्रलोकको जाता है। राजेन्द्र! तदुपरान्त सभी पापोंको नष्ट करनेवाले हिरण्यद्वीप नामसे विख्यात तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ भगवान् जनार्दनने

तत्र स्नात्वा नरो राजन् धनवान् रूपवान् भवेत्।  
 ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र तीर्थं कनखलं महत्॥ ६९  
 गरुडेन तपस्तमं तस्मिंस्तीर्थे नराधिप।  
 प्रख्यातं त्रिषु लोकेषु योगिनी तत्र तिष्ठति॥ ७०  
 क्रीडते योगिभिः सार्धं शिवेन सह नृत्यति।  
 तत्र स्नात्वा नरो राजन् रुद्रलोके महीयते॥ ७१  
 ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र हंसतीर्थमनुत्तमम्।  
 हंसास्त्र विनिर्मुक्ता गता ऊर्ध्वं न संशयः॥ ७२  
 ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र सिद्धो यत्र जनार्दनः।  
 वाराहं रूपमास्थाय अर्चितः परमेश्वरः॥ ७३  
 वराहतीर्थे नरः स्नात्वा द्वादश्यां तु विशेषतः।  
 विष्णुलोकमवाजोति नरकं न च पश्यति॥ ७४  
 ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र चन्द्रतीर्थमनुत्तमम्।  
 पौर्णिमास्यां विशेषेण स्नानं तत्र समाचरेत्॥ ७५  
 स्नातमात्रो नरस्त्र चन्द्रलोके महीयते।  
 दक्षिणेन तु द्वारेण कन्यातीर्थं तु विश्रुतम्॥ ७६  
 शुक्लपक्षे तृतीयायां स्नानं तत्र समाचरेत्।  
 प्रणिपत्य तु चेशानं बलिस्तेन प्रसीदति॥ ७७  
 हरिश्चन्द्रपुरं दिव्यमन्तरिक्षे च दृश्यते।  
 शक्रध्वजे समावृत्ते सुमे नागारिकेतने॥ ७८  
 नर्मदा सलिलौघेन तर्सन् सप्लावयिष्यति।  
 अस्मिन् स्थाने निवासः स्याद् विष्णुः शंकरमब्रवीत्॥ ७९  
 द्वीपेश्वरे नरः स्नात्वा लभेद् बहु सुवर्णकम्।  
 ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र कन्यातीर्थं सुसंगमे॥ ८०  
 स्नातमात्रो नरस्त्र देव्याः स्थानमवानुयात्।  
 देवतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वतीर्थमनुत्तमम्॥ ८१  
 तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र दैवतैः सह मोदते।  
 ततो गच्छेच्च राजेन्द्र शिखितीर्थमनुत्तमम्॥ ८२  
 यत् तत्र दीयते दानं सर्वं कोटिगुणं भवेत्।  
 अपरपक्षे त्वमायां तु स्नानं तत्र समाचरेत्॥ ८३

सिद्धि प्राप्त की थी। राजन्! वहाँ स्नान कर मानव धनवान् और रूपवान् हो जाता है। राजेन्द्र! इसके बाद महान् कनखलतीर्थकी यात्रा करे। नराधिप! उस तीर्थमें गरुडने तपस्या की थी। वह तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ योगिनी रहती है, जो योगियोंके साथ क्रीडा और शिवके साथ नृत्य करती है। राजन्! वहाँ स्नान कर मनुष्य रुद्रलोकमें पूजित होता है॥ ६०—७१॥

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम हंसतीर्थमें जाय। वहाँ हंस-समूह पापसे विनिर्मुक्त होकर निःसंदेह स्वर्गको चले गये थे। राजेन्द्र! तत्पश्चात् वाराहतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ भगवान् जनार्दन सिद्ध हुए थे। वहाँ वाराहरूपधारी परमेश्वरकी पूजा हुई थी। उस वाराहतीर्थमें विशेषकर द्वादशी तिथिको स्नान कर मनुष्य विष्णुलोकको प्राप्त करता है और उसे नरकका दर्शन नहीं करना पड़ता। राजेन्द्र! तदुपरान्त श्रेष्ठ चन्द्रतीर्थकी यात्रा करे। वहाँ विशेषकर पूर्णिमा तिथिको स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य चन्द्रलोकमें पूजित होता है। उसके दक्षिण द्वारपर विख्यात कन्यातीर्थ है। वहाँ शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको स्नान करना चाहिये। वहाँ शिवजीको प्रणाम करके उन्हें बलि प्रदान करनेसे वे प्रसन्न हो जाते हैं। वहाँ हरिश्यनके समय इन्द्रध्वजके निकलनेपर अन्तरिक्षमें दिव्य हरिश्चन्द्रपुर दिखायी देता है। जब नर्मदा जलसमूहसे वृक्षोंको आप्लावित कर देगी, उस समय इस स्थानमें विष्णुका निवास होगा—ऐसा विष्णुने शंकरसे कहा है। द्वीपेश्वरतीर्थमें स्नान कर मनुष्य सुवर्णराशिको प्राप्त करता है॥ ७२—७९ ३॥

राजेन्द्र! इसके बाद कन्यातीर्थके सुन्दर संगमस्थानकी यात्रा करे। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य देवीके स्थानको प्राप्त करता है। तदनन्तर सभी तीर्थोंमें उत्तम देवतीर्थमें जाना चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ स्नान कर मनुष्य देवताओंके साथ आनन्दका अनुभव करता है। राजेन्द्र! तत्पश्चात् श्रेष्ठ शिखितीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ अमावस्या तिथिके तीसरे पहरमें स्नान करनेका विधान है। वहाँ जो कुछ भी दान दिया जाता है, वह सब, करोड़गुना हो जाता है।

ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिता ।  
 भृगुतीर्थे तु राजेन्द्र तीर्थकोटिर्वर्वस्थिता ॥ ८४  
 अकामो वा सकामो वा तत्र स्नानं समाचरेत् ।  
 अश्वमेधमवाप्नोति दैवतैः सह मोदते ॥ ८५  
 तत्र सिद्धिं परां प्राप्तो भृगुस्तु मुनिपुङ्गवः ।  
 अवतारः कृतस्तत्र शंकरेण महात्मना ॥ ८६

वहाँ एक ब्राह्मणको भोजन करानेपर करोड़ ब्राह्मणोंके भोजन करानेका फल होता है। राजेन्द्र! भृगुतीर्थमें करोड़ों तीर्थोंकी स्थिति है। वहाँ निष्काम या सकाम होकर भी स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्यको अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है और वह देवताओंके साथ आनन्दका अनुभव करता है। वहाँ मुनिश्रेष्ठ भृगुने परम सिद्धि प्राप्त की थी और महात्मा शंकर अवतीर्ण हुए थे ॥ ८०—८६ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें नर्मदामाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९३ ॥

## एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय

### नर्मदातटवर्ती तीर्थोंका माहात्म्य

मार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र ह्यङ्कुशेश्वरमुत्तमम् ।  
 दर्शनात् तस्य देवस्य मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १  
 ततो गच्छेच्च राजेन्द्र नर्मदेश्वरमुत्तमम् ।  
 तत्र स्नात्वा नरो राजन् स्वर्गलोके महीयते ॥ २  
 अश्वतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ।  
 सुभगो दर्शनीयश्च भोगवाङ्मायते नरः ॥ ३  
 पैतामहं ततो गच्छेद् ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।  
 तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या पितृपिण्डं तु दापयेत् ॥ ४  
 तिलदर्भविमिश्रं तु ह्युदकं तत्र दापयेत् ।  
 तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम् ॥ ५  
 सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु स्नानं समाचरेत् ।  
 विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते ॥ ६  
 मनोहरं ततो गच्छेत् तीर्थं परमशोभनम् ।  
 तत्र स्नात्वा नरो राजन् पितृलोके महीयते ॥ ७  
 ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र मानसं तीर्थमुत्तमम् ।  
 तत्र स्नात्वा नरो राजन् रुद्रलोके महीयते ॥ ८  
 ततो गच्छेच्च राजेन्द्र कुञ्जतीर्थमनुत्तमम् ।  
 विख्यातं त्रिषु लोकेषु सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ९  
 यान् यान् कामयते कामान् पशुपत्रधनानि च ।  
 प्राप्नुयात् तानि सर्वाणि तत्र स्नात्वा नराधिप ॥ १०

मार्कण्डेयजीने कहा—राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ अङ्कुशेश्वरतीर्थकी यात्रा करे, जहाँ उन देवके दर्शन-मात्रसे मनुष्य सभी पापोंसे छुटकारा पा जाता है। राजेन्द्र! तत्पश्चात् श्रेष्ठ नर्मदेश्वरतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। राजन्! वहाँ स्नानकर मनुष्य स्वर्गलोकमें पूजित होता है। तदुपरान्त अश्वतीर्थमें जाय और वहाँ स्नान करे। ऐसा करनेसे मनुष्य सौभाग्यशाली, दर्शनीय और रूपवान् हो जाता है। इसके बाद प्राचीनकालमें ब्रह्माद्वारा निर्मित पैतामहतीर्थकी यात्रा करे। वहाँ स्नानकर भक्तिपूर्वक पितरोंको पिण्डदान करे तथा तिल और कुशसे युक्त तर्पण करे; क्योंकि उस तीर्थके प्रभावसे वहाँ किया गया यह सब अक्षय हो जाता है। जो सावित्रीतीर्थमें जाकर स्नान करता है, वह अपने सभी पापोंको धोकर ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। राजन्! तदनन्तर अतिशय रमणीय मनोहर-तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ स्नानकर मनुष्य पितृलोकमें पूजित होता है। राजेन्द्र! तत्पश्चात् श्रेष्ठ मानसतीर्थमें जाय। राजन्! वहाँ स्नानकर मनुष्य रुद्रलोकमें पूजित होता है। राजेन्द्र! तदुपरान्त श्रेष्ठ कुञ्जतीर्थकी यात्रा करे। तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध यह तीर्थ सभी पापोंका नाशक है। नराधिप! मनुष्य, पशु, पुत्र, धन आदि जिन-जिन वस्तुओंकी कामना करता है, वह सब उसे वहाँ सान करनेसे प्राप्त हो जाता है ॥ १—१० ॥

ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र त्रिदशज्योतिविश्रुतम्।  
यत्र ता ऋषिकन्यास्तु तपोऽतप्यन्त सुव्रताः ॥ ११

भर्ता भवतु सर्वासामीश्वरः प्रभुरव्ययः।  
प्रीतस्तासां महादेवो दण्डरूपधरो हरः ॥ १२

विकृताननबीभत्सुर्वती तीर्थमुपागतः।  
तत्र कन्या महाराज वरयत् परमेश्वरः ॥ १३

कन्या ऋषेर्वरयतः कन्यादानं प्रदीयताम्।  
तीर्थं तत्र महाराज ऋषिकन्येति विश्रुतम् ॥ १४

तत्र स्नात्वा नरो राजन् सर्वपापैः प्रमुच्यते।  
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र स्वर्णविन्दु त्विति स्मृतम् ॥ १५

तत्र स्नात्वा नरो राजन् दुर्गतिं न च पश्यति।  
अप्सरेशं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ॥ १६

क्रीडते नागलोकस्थोऽप्सरोभिः सह मोदते।  
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र नरके तीर्थमुत्तमम् ॥ १७

तत्र स्नात्वार्चयेद् देवं नरकं च न पश्यति।

भारभूतिं ततो गच्छेदुपवासपरो जनः ॥ १८

एतत् तीर्थं समासाद्य चावतारं तु शाम्भवम्।  
अर्चयित्वा विरूपाक्षं रुद्रलोके महीयते ॥ १९

अस्मिस्तीर्थं नरः स्नात्वा भारभूतौ महात्मनः।  
यत्र तत्र मृतस्यापि ध्रुवं गाणेश्वरी गतिः ॥ २०

कार्तिकस्य तु मासस्य ह्यर्चयित्वा महेश्वरम्।  
अश्वमेधाद् दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ २१

दीपकानां शतं तत्र घृतपूर्णं तु दापयेत्।

विमानैः सूर्यसंकाशैर्वर्जते यत्र शंकरः ॥ २२

वृषभं यः प्रयच्छेत् तु शङ्खकुन्देन्दुसप्रभम्।  
वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति ॥ २३

धेनुमेकां तु यो दद्यात् तस्मिस्तीर्थं नराधिप।  
पायसं मधुसंयुक्तं भक्ष्याणि विविधानि च ॥ २४

राजेन्द्र! इसके बाद प्रसिद्ध त्रिदशज्योतितीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ उत्तम व्रत धारण करनेवाली उन ऋषि-कन्याओंने तपस्या की थीं। उनकी अभिलाषा थी कि अविनाशी एवं सामर्थ्यशाली महेश्वर हम सभीके पति हों। तब उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर संहारकारी महादेव, जिनका मुख विकृत और शरीर घृणास्पद था तथा जो उत्तम व्रतमें लीन थे, दण्ड धारणकर उस तीर्थमें आये। महाराज! वहाँ शंकरजीने उन कन्याओंका वरण किया। महाराज! वहाँ शंकरजीने ऋषिकन्याओंका वरण किया था, अतः वह स्थान ऋषिकन्या नामसे विख्यात तीर्थ हुआ। यहाँ कन्यादान करना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। राजेन्द्र! तदनन्तर स्वर्णबिन्दु नामक प्रसिद्ध तीर्थमें जाय। राजन्! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्यको दुर्गति नहीं देखनी पड़ती। तत्पश्चात् अप्सरेशतीर्थमें जाय और वहाँ स्नान करे। वहाँ स्नान करनेवाला नागलोकमें अप्सराओंके साथ आनन्दका अनुभव करता है। राजेन्द्र! तदुपरान्त नरक नामक श्रेष्ठ तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ स्नानकर महादेवजीकी पूजा करे तो नरक नहीं देखना पड़ता ॥ ११—१७ ३॥

इसके बाद भारभूतितीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। इस तीर्थमें आकर मनुष्य उपवासपूर्वक शम्भूके अवतार विरूपाक्षकी अर्चना करके रुद्रलोकमें पूजित होता है। महात्मा शंकरके इस भारभूतितीर्थमें स्नानकर मनुष्य जहाँ-कहीं भी मरता है तो उसे निश्चय ही गणोंके अध्यक्षकी गति प्राप्त होती है। कार्तिकमासमें यहाँ महेश्वरकी पूजा करनेसे अश्वमेधयज्ञसे दसगुना फल प्राप्त होता है—ऐसा विद्वानोंने कहा है। जो वहाँ घृतपूर्ण सौ दीपक जलाता है, वह सूर्यके समान देवीप्यमान विमानोंसे शंकरजीके निकट चला जाता है। जो वहाँ शङ्ख, कुन्द-पुष्प एवं चन्द्रमाके समान उज्ज्वल रंगके वृषभका दान करता है, वह वृषयुक्त विमानसे रुद्रलोकको जाता है। नराधिप! उस तीर्थमें जो एक धेनुका दान देता है और यथाशक्ति मधुसंयुक्त खीर एवं विविध भोज्य पदार्थ ब्राह्मणोंको खिलाता है,

यथाशक्त्या च राजेन्द्र ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः ।  
 तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥ २५  
 नर्मदाया जलं पीत्वा हृच्छयित्वा वृषध्वजम् ।  
 दुर्गतिं च न पश्यन्ति तस्य तीर्थप्रभावतः ॥ २६  
 एतत् तीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान् विमुच्छति ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो व्रजेद् वै यत्र शंकरः ।  
 जलप्रवेशं यः कुर्यात् तस्मिस्तीर्थे नराधिप ॥ २७  
 हंसयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति ।  
 यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च हिमवांश्च महोदधिः ॥ २८  
 गङ्गाद्याः सरितो यावत् तावत् स्वर्गे महीयते ।  
 अनाशकं तु यः कुर्यात् तस्मिस्तीर्थे नराधिप ॥ २९  
 गर्भवासे तु राजेन्द्र न पुनर्जायते पुमान् ।  
 ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र आषाढीतीर्थमुत्तमम् ॥ ३०  
 तत्र स्नात्वा नरो राजन्निन्द्रस्यार्थासनं लभेत् ।  
 स्त्रियास्तीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३१  
 तत्रापि स्नातमात्रस्य ध्रुवं गाणेश्वरी गतिः ।  
 ऐरण्डीनर्मदयोश्च संगमं लोकविश्रुतम् ॥ ३२  
 तच्च तीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।  
 उपवासपरो भूत्वा नित्यव्रतपरायणः ॥ ३३  
 तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र मुच्यते ब्रह्महत्यया ।  
 ततो गच्छेच्च राजेन्द्र नर्मदोदधिसंगमम् ॥ ३४  
 जामदग्न्यमिति ख्यातं सिद्धो यत्र जनार्दनः ।  
 यत्रेष्वा बहुभिर्यज्ञैरन्द्रो देवाधिपोऽभवत् ॥ ३५  
 तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र नर्मदोदधिसंगमे ।  
 त्रिगुणं चाश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ३६  
 पश्चिमस्योदधे: संधौ स्वर्गद्वारविघट्टनम् ।  
 तत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः ॥ ३७  
 आराधयन्ति देवेशं त्रिसंध्यं विमलेश्वरम् ।  
 तत्र स्नात्वा नरो राजन् रुद्रलोके महीयते ॥ ३८  
 विमलेशात् परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ।  
 तत्रोपवासं कृत्वा ये पश्यन्ति विमलेश्वरम् ॥ ३९  
 सप्तजन्मकृतं पापं हित्वा यान्ति शिवालयम् ।

राजेन्द्र! उसका वह सभी कर्म उस तीर्थके प्रभावसे करोड़गुना हो जाता है। जो लोग नर्मदाका जल पीकर शिवजीकी पूजा करते हैं, उन्हें उस तीर्थके प्रभावसे दुर्गति नहीं देखनी पड़ती। जो इस तीर्थमें आकर प्राणोंका त्याग करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर शंकरजीके समीप चला जाता है। नराधिप! उस तीर्थमें जो जलमें प्रवेश (करके प्राण-त्याग) करता है, वह हंसयुक्त विमानसे रुद्रलोकको जाता है तथा जबतक चन्द्रमा, सूर्य, हिमालय, महासागर और गङ्गा आदि नदियाँ हैं, तबतक स्वर्गमें पूजित होता है। नराधिप! जो पुरुष उस तीर्थमें अनशन करता है, राजेन्द्र! वह पुनः गर्भमें वास नहीं करता ॥ १८—२९ १ ॥

राजेन्द्र! तदनन्तर ऐष्ठ आषाढीतीर्थकी यात्रा करे। राजन्! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य इन्द्रके आधे आसनको प्राप्त कर लेता है। तत्पश्चात् सभी पापोंके विनाशक स्त्री-तीर्थमें जाय। वहाँ भी स्नानमात्रसे निश्चय ही गाणेश्वरी गति प्राप्त होती है। ऐरण्डी और नर्मदाका संगम लोकप्रसिद्ध तीर्थ है, वह अतिशय पुण्यदायक तथा सभी पापोंका विनाश करनेवाला है। राजेन्द्र! वहाँ उपवास और नित्य व्रतोंका सम्पादन करते हुए स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जाता है। राजेन्द्र! तदुपरान्त नर्मदा और समुद्रके संगमपर जाना चाहिये, जो जामदग्न्य नामसे प्रसिद्ध है। इसी तीर्थमें जनार्दनको सिद्ध प्राप्त हुई थी तथा इन्द्र अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान कर देवताओंके अधीश्वर हुए। राजेन्द्र! उस नर्मदा और सागरके सङ्गममें स्नान कर मनुष्य अश्वमेधयज्ञसे तिगुना फल प्राप्त करता है। पश्चिम समुद्रके संधि-स्थानपर स्वर्गद्वारविघट्टन तीर्थ है, वहाँ देवता, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध और चारण तीनों संध्याओंमें विमलेश्वर महादेवकी आराधना करते हैं। राजन्! वहाँ स्नानकर मानव रुद्रलोकमें पूजित होता है। विमलेश्वरसे बढ़कर तीर्थ न हुआ है और न होगा। उस तीर्थमें उपवास कर जो विमलेश्वरका दर्शन करते हैं, वे सात जन्मोंके पापोंसे मुक्त होकर शिवपुरीमें जाते हैं ॥ ३०—३९ १ ॥

ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र कौशिकीतीर्थमुत्तमम् ॥ ४०  
 तत्र स्नात्वा नरो राजन्नपवासपरायणः ।  
 उपोष्य रजनीमेकां नियतो नियताशनः ॥ ४१  
 एतत्तीर्थप्रभावेण मुच्यते ब्रह्महत्यया ।  
 सर्वतीर्थाभिषेकं तु यः पश्येत् सागरेश्वरम् ॥ ४२  
 योजनाभ्यन्तरे तिष्ठन्नावर्ते संस्थितः शिवः ।  
 तं दृष्ट्वा सर्वतीर्थानि दृष्टान्येव न संशयः ॥ ४३  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो यत्र रुद्रः स गच्छति ।  
 नर्मदासंगमं यावद् यावच्चामरकण्टकम् ॥ ४४  
 अत्रान्तरे महाराज तीर्थकोट्यो दश स्मृताः ।  
 तीर्थान्तीर्थान्तरं यत्र ऋषिकोटिनिषेवितम् ॥ ४५  
 साग्निहोत्रैस्तु विद्वद्भिः सर्वैर्ध्यानपरायणैः ।  
 सेवितानेन राजेन्द्र त्वीप्सितार्थप्रदायिका ॥ ४६  
 यस्त्विदं वै पठेन्नित्यं शृणुयाद् वापि भावतः ।  
 तस्य तीर्थानि सर्वाणि ह्यभिषिञ्चन्ति पाण्डव ॥ ४७  
 नर्मदा च सदा प्रीता भवेद् वै नात्र संशयः ।  
 प्रीतस्तस्य भवेद् रुद्रो मार्कण्डेयो महामुनिः ॥ ४८  
 वन्ध्या चैव लभेत् पुत्रान् दुर्भगा सुभगा भवेत् ।  
 कन्या लभेत भर्तां यश्च वाञ्छेत् तु यत्फलम् ।  
 तदेव लभते सर्वं नात्र कार्या विचारणा ॥ ४९  
 ब्राह्मणो वेदमाज्ञोति क्षत्रियो विजयी भवेत् ।  
 वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रः प्राज्ञोति सदगतिम् ॥ ५०  
 मूर्खस्तु लभते विद्यां त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः ।  
 नरकं च न पश्येत् तु वियोगं च न गच्छति ॥ ५१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्यं नाम चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणमें नर्मदामाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ चौरानवें अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९४ ॥

राजेन्द्र! इसके बाद श्रेष्ठ कौशिकीतीर्थकी यात्रा करे। राजन्! वहाँ उपवासपूर्वक स्नान करने और नियमित भोजन करके एक रात निवास करनेसे मनुष्य इस तीर्थके प्रभावसे ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जाता है। जो सागरेश्वरका दर्शन करता है, उसे सभी तीर्थोंके अभिषेकका फल प्राप्त हो जाता है। वहाँसे एक योजनके भीतर बर्तुलस्थानमें शिवजी संस्थित हैं, अतः उनका दर्शन कर लेनेसे सभी तीर्थोंका दर्शन हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। वह मानव सभी पापोंसे मुक्त होकर जहाँ रुद्र रहते हैं, वहाँ चला जाता है। महाराज! नर्मदा-सङ्गमसे लेकर अमरकण्टकके मध्यमें दस करोड़ तीर्थ बतलाये जाते हैं। वहाँ एक तीर्थसे दूसरे तीर्थके मध्यमें करोड़ों ऋषिगण निवास करते हैं। राजेन्द्र! सभी ध्यानपरायण अग्निहोत्री विद्वानोंद्वारा सेवित यह तीर्थ-परम्परा अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली है। पाण्डव! जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इन तीर्थोंका पाठ करता है या श्रवण करता है, उसे सभी तीर्थोंमें अभिषेक करनेका फल प्राप्त होता है और उसपर नर्मदा सदा प्रसन्न होती है—इसमें संदेह नहीं है। साथ ही उसपर महामुनि मार्कण्डेय एवं रुद्र प्रसन्न होते हैं। (इस तीर्थके प्रभावसे) वन्ध्याको पुत्रकी प्राप्ति होती है, अभागिनी सौभाग्यवती हो जाती है, कन्या पतिको प्राप्त करती है तथा अन्य जो कोई जिस फलको चाहता है, उसे वह सब फल प्राप्त हो जाता है—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। ब्राह्मण वेदका ज्ञान प्राप्त करता है, क्षत्रिय विजयी होता है, वैश्य धन प्राप्त करता है और शूद्रको अच्छी गति प्राप्त होती है तथा मूर्ख विद्याको प्राप्त करता है। जो मनुष्य तीनों संध्याओंमें इसका पाठ करता है उसे न तो नरकका दर्शन होता है और न प्रियजनोंका वियोग ही प्राप्त होता है ॥ ४०—५१ ॥

## एक सौ पञ्चानबेवाँ अध्याय

गोत्रप्रवर-निरूपण \*-प्रसङ्गमें भृगुवंशकी परम्पराका विवरण

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य स राजेन्द्र ओंकारस्याभिवर्णनम्।  
ततः पप्रच्छ देवेशं मत्स्यरूपं जलार्णवे॥ १

मनुरुवाच

ऋषीणां नाम गोत्राणि वंशावतरणं तथा।  
प्रवराणां तथा साम्यमसाम्यं विस्तराद् वद॥ २  
महादेवेन ऋषयः शासा: स्वायम्भुवान्तरे।  
तेषां वैवस्वते प्राप्ते सम्भवं मम कीर्तय॥ ३  
दाक्षायणीनां च तथा प्रजाः कीर्तय मे प्रभो।  
ऋणीणां च तथा वंशं भृगुवंशविवर्धनम्॥ ४

मत्स्य उवाच

मन्वन्तरेऽस्मिन् सम्प्राप्ते पूर्वं वैवस्वते तथा।  
चरित्रं कथ्यते राजन् ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ ५  
महादेवस्य शापेन त्यक्त्वा देहं स्वयं तथा।  
ऋषयश्च समुद्भूता हुते शुक्रे महात्मना॥ ६  
देवानां मातरो दृष्ट्वा देवपत्न्यस्तथैव च।  
स्कन्दं शुक्रं महाराज ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ ७  
तज्जुहाव ततो ब्रह्मा ततो जातो हुताशनात्।  
ततो जातो महातेजा भृगुश्च तपसां निधिः॥ ८  
अङ्गारेष्वद्गिरा जातो हर्षिभ्योऽत्रिस्तथैव च।  
मरीचिभ्यो मरीचिस्तु ततो जातो महातपाः॥ ९  
केशैस्तु कपिशो जातः पुलस्त्यश्च महातपाः।  
केशैः प्रलम्बैः पुलहस्ततो जातो महातपाः॥ १०  
वसुमध्यात् समुत्पन्नो वसिष्ठस्तु तपोधनः।  
भृगुः पुलोम्नस्तु सुतां दिव्यां भार्यामविन्दत॥ ११

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार ओंकारका वर्णन सुननेके पश्चात् राजेन्द्र मनुने उस जलार्णवमें स्थित मत्स्यरूपी देवेश विष्णुसे पुनः (इस प्रकार) प्रश्न किया॥ १॥

मनुजीने पूछा—प्रभो! ऋषियोंके नाम, गोत्र, वंश, अवतार तथा प्रवरोंकी समता और विषमता—इन विषयोंका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें महादेवजीने ऋषियोंको शाप दिया था, अतः वैवस्वतमन्वन्तरमें उनकी पुनः उत्पत्ति कैसे हुई? यह मुझे बतलाइये। साथ ही दक्ष प्रजापतिकी संतानोंसे उत्पन्न प्रजाओंका, ऋषियोंके वंशका तथा भृगुवंशके विस्तारका वर्णन कीजिये॥ २—४॥

मत्स्यभगवान् बोले—राजन्! अब मैं पूर्वकालमें वैवस्वत-मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर जो परमेष्ठी ब्रह्मा थे, उनका चरित्र बतला रहा हूँ। महादेवजीके शापसे अपने शरीरका परित्याग कर ऋषिगण महात्मा ब्रह्माद्वारा अग्निसे उत्पन्न हुए। उसी अग्निसे परम तेजस्वी तपोनिधि भृगु उत्पन्न हुए। अङ्गारोंसे अङ्गिरा, शिखाओंसे अत्रि और किरणोंसे महातपस्वी मरीचि उत्पन्न हुए। केशोंसे कपिश रंगवाले महातपस्वी पुलस्त्य प्रकट हुए। तत्पश्चात् लम्बे केशोंसे महातपस्वी पुलहने जन्म लिया। अग्निकी दीसिसे तपोनिधि वसिष्ठ उत्पन्न हुए। महर्षि भृगुने पुलोमा ऋषिकी दिव्य पुत्रीको भार्यारूपमें ग्रहण किया।

\* गोत्र-प्रवर-निर्णयपर कई स्वतन्त्र निवन्ध हैं। पर वे सभी इन्हीं (१९५—२०३) अध्यायोंपर आधृत हैं। वैसे ऋग्संहिता (७। १८। ६—८। ३। ९ तक) तथा स्कन्दपुराण माहेश्वर खं० एवं ब्रह्मखण्डमें भी इसपर विस्तृत विचार है।

तस्यामस्य सुता जाता देवा द्वादश याज्ञिकाः ।  
भुवनो भौवनश्चैव सुजन्यः सुजनस्तथा ॥ १२  
क्रतुर्बसुश्च मूर्धा च त्याज्यश्च वसुदश्च ह ।  
प्रभवश्चाव्ययश्चैव दक्षोऽथ द्वादशस्तथा ॥ १३  
इत्येते भृगवो नाम देवा द्वादश कीर्तिताः ।  
पौलोम्यां जनयद् विप्रान् देवानां तु कनीयसः ॥ १४  
च्यवनं तु महाभागमाजुवानं तथैव च ।  
आप्नुवानात्मजश्चैर्वो जमदग्निस्तदात्मजः ॥ १५  
और्वों गोत्रकरस्तेषां भार्गवाणां महात्मनाम् ।  
तत्र गोत्रकरान् वक्ष्ये भृगोर्वै दीपतेजसः ॥ १६  
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च ।  
और्वश्च जमदग्निश्च वात्स्यो दण्डर्नडायनः ॥ १७  
वैगायनो वीतिहव्यः पैलश्चैवात्र शौनकः ।  
शौनकायनजीवन्तिरायेदः कार्षणिस्तथा ॥ १८  
वैहीनरिर्विरूपाक्षो रौहित्यायनिरेव च ।  
वैश्वानरिस्तथा नीलो लुब्धः सावर्णिकश्च सः ॥ १९  
विष्णुः पौरोऽपि बालाकिरैलिकोऽनन्तभागिनः ।  
मृगमार्गेयमार्कण्डजविनो नीतिनस्तथा ॥ २०  
मण्डमाण्डव्यमाण्डूकफेनपा: स्तनितस्तथा ।  
स्थलपिण्डः शिखावर्णः शार्कराक्षिस्तथैव च ॥ २१  
जालधिः सौधिकः क्षुभ्यः कुत्सोऽन्यो मौद्गलायनः ।  
माङ्कायनो देवपतिः पाण्डुरोचिः सगालवः ॥ २२  
सांस्कृत्यश्चातकिः सर्पिर्यज्ञपिण्डायनस्तथा ।  
गार्यायणो गायनश्च ऋषिर्गर्हायणस्तथा ॥ २३  
गोष्ठायनो वाह्यायनो वैशम्पायन एव च ।  
वैकर्णिनिः शार्ङ्गरवो याज्ञेयिभ्राष्ट्रकायणिः ॥ २४  
लालाटिनांकुलिश्चैव लौकिण्योपरिमण्डलौ ।  
आलुकिः सौचकिः कौत्सस्तथान्यः पैङ्गलायनिः ॥ २५  
सात्यायनिर्मालयनिः कौटिलिः कौचहस्तिकः ।  
सौहः सोक्तिः सकौवाक्षिः कौसिश्चान्द्रमसिस्तथा ॥ २६  
नैकजिह्वो जिह्वकश्च व्याधाज्यो लौहवैरिणः ।  
शारद्वितिकनेतिष्यौ लोलाक्षिश्चलकुण्डलः ॥ २७  
वागायनिश्चानुमतिः पूर्णिमागतिकोऽसकृत् ।  
सामान्येन यथा तेषां पञ्चते प्रवरा मताः ॥ २८  
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च ।  
और्वश्च जमदग्निश्च पञ्चते प्रवरा मताः ॥ २९

उस पलीसे उनके यज्ञ करनेवाले बारह देवतुल्य पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम हैं—भुवन, भौवन, सुजन्य, सुजन, क्रतु, वसु, मूर्धा, त्याज्य, वसुद, प्रभव, अव्यय तथा वारहवें दक्ष। इस प्रकार ये बारह ‘देवभृगु’ नामसे विख्यात हैं। इसके बाद भृगुने पौलोमीके गर्भसे देवताओंसे कुछ निम्नकोटिके ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया। उनके नाम हैं—महाभाग्यशाली च्यवन और आप्नुवान। आप्नुवानके पुत्र और्व हैं। और्वके पुत्र जमदग्नि हुए॥ ५—१५॥

और्व उन महात्मा भार्गवोंके गोत्र-प्रवर्तक हुए। अब मैं दीप तेजस्वी भृगुके गोत्र-प्रवर्तकोंका वर्णन कर रहा हूँ—भृगु, च्यवन, आप्नुवान, और्व, जमदग्नि, वात्स्य, दण्ड, नडायन, वैगायन, वीतिहव्य, पैल, शौनक, शौनकायन, जीवन्ति, आयेद, कार्षणि, वैहीनरि, विरूपाक्ष, रौहित्यायनि, वैश्वानरि, नील, लुब्ध, सावर्णिक, विष्णु, पौर, बालाकि, ऐलिक, अनन्तभागिन, मृग, मार्गेय, मार्कण्ड, जविन, नीतिन, मण्ड, माण्डव्य, माण्डूक, फेनप, स्तनित, स्थलपिण्ड, शिखावर्ण, शार्कराक्षि, जालधि, सौधिक, क्षुभ्य, कुत्स, मौद्गलायन, माङ्कायन, देवपति, पाण्डुरोचि, गालव, सांकृत्य, चातकि, सर्पि, यज्ञपिण्डायन, गार्यायण, गायन, गार्हायण, गोष्ठायन, बाह्यायन, वैशम्पायन, वैकर्णिनि, शार्ङ्गरव, याज्ञेयि, भ्राष्ट्रकायणि, लालाटि, नाकुलि, लौकिण्य, उपरिमण्डल, आलुकि, सौचकि, कौत्स, पैङ्गलायनि, सात्यायनि, मालयनि, कौटिलि, कौचहस्तिक, सौह, सोक्ति, सकौवाक्षि, कौसि, चान्द्रमसि, नैकजिह्व, जिह्वक, व्याधाज्य, लौहवैरिण, शारद्वितिक, नैतिष्य, लोलाक्षि, चलकुण्डल, वागायनि, आनुमति, पूर्णिमागतिक और असकृत्। साधारणरूपसे इन ऋषियोंमें ये पाँच प्रवर कहे जाते हैं—भृगु, च्यवन, आप्नुवान, और्व और जमदग्नि॥ १६—२९॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि शृणु त्वन्यान् भृगूद्ध्रहान्।  
जमदग्निर्बिदश्चैव पौलस्त्यो बैजभृत् तथा ॥ ३०  
ऋषिश्चोभयजातश्च कायनिः शाकटायनः।  
और्वेया मारुताश्चैव सर्वेषां प्रवराः शुभाः ॥ ३१  
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्जुवानस्तथैव च।  
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥ ३२  
भृगुदासो मार्गपथो ग्राम्यायणिकटायनी।  
आपस्तम्बस्तथा बिल्वनैकशिः कपिरेव च ॥ ३३  
आर्षिषेणो गार्दभिश्च कार्दमायनिरेव च।  
आश्वायनिस्तथा रूपिः पञ्चार्षेयाः प्रकीर्तिताः ॥ ३४  
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्जुवानस्तथैव च।  
आर्षिषेणस्तथारूपिः प्रवराः पञ्च कीर्तिताः ॥ ३५  
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।  
यस्को वा वीतिहव्यो वा मथितस्तु तथा दमः ॥ ३६  
जैवन्त्यायनिर्माञ्चश्च पिलिश्चैव चलिस्तथा।  
भागिलो भागवित्तिश्च कौशापिस्त्वथ काश्यपिः ॥ ३७  
बालपिः श्रमदागेपिः सौरस्तिथिस्तथैव च।  
गार्गीयस्त्वथ जाबालिस्तथा पौष्ण्यायनो हृषिः ॥ ३८  
रामोदश्च तथैतेषामार्षेयाः प्रवरा मताः।  
भृगुश्च वीतिहव्यश्च तथा रैवसवैवसौ ॥ ३९  
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।  
शालायनिः शाकटाक्षो मैत्रेयः खाण्डवस्तथा ॥ ४०  
द्रौणायनो रौक्मायणिरापिशिश्चापिकायनिः।  
हंसजिह्वस्तथैतेषां मार्षेयाः प्रवरा मताः ॥ ४१  
भृगुश्चैवाथ वदध्यश्चो दिवोदासस्तथैव च।  
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥ ४२  
एकायनो यज्ञपतिर्मत्यगन्धस्तथैव च।  
प्रत्यहश्च तथा सौरिश्चौक्षिकैँ कार्दमायनिः ॥ ४३  
तथा गृत्समदो राजन् सनकश्च महानृषिः।  
प्रवरास्तु तथोक्तानामार्षेयाः परिकीर्तिताः ॥ ४४  
भृगुर्गृत्समदश्चैव आर्षवितौ प्रकीर्तितौ।  
परस्परमवैवाह्या इत्येते परिकीर्तिताः ॥ ४५

इसके बाद भृगुवंशमें उत्पन्न अन्य ऋषियोंका वर्णन कर रहा हैं, सुनिये। जमदग्नि, बिद, पौलस्त्य, बैजभृत्, उभयजात, कायनि, शाकटायन, और्वेय और मारुत। इनके तीन शुभ प्रवर हैं—भृगु, च्यवन और आप्जुवान। इन ऋषियोंमें परस्पर विवाहका निषेध है। भृगुदास, मार्गपथ, ग्राम्यायणि, कटायनि, आपस्तम्ब, बिल्व, नैकशि, कपि, आर्षिषेण, गार्दभि, कार्दमायनि, आश्वायनि तथा रूपि। इनके प्रवर ये पाँच हैं—भृगु, च्यवन, आप्जुवान, आर्षिषेण तथा रूपि। इन पाँच प्रवरवालोंमें भी विवाहकर्म निषिद्ध है। यस्क, वीतिहव्य, मथित, दम, जैवन्त्यायनि, मौञ्ज, पिलि, चलि, भागिल, भागवित्ति, कौशापि, काश्यपि, बालपि, श्रमदागेपि, सौर, तिथि, गार्गीय, जाबालि, पौष्ण्यायन और रामोद। इन वंशोंमें ये प्रवर हैं—भृगु, वीतिहव्य, रैवस और वैवस। इनमें भी परस्पर विवाह नहीं होते। शालायनि, शाकटाक्ष, मैत्रेय, खाण्डव, द्रौणायन, रौक्मायणि, आपिशि, आपिकायनि और हंसजिह्व। इनके प्रवर इन ऋषियोंके हैं—भृगु, वदध्यश्च और दिवोदास। इनमें भी परस्पर विवाह निषिद्ध है। राजन्! एकायन, यज्ञपति, मत्स्यगन्ध, प्रत्यह, सौरि, ओक्षि, कार्दमायनि, गृत्समद और महर्षि सनक। इन वंशोंके दो ऋषियोंके प्रवर हैं—भृगु तथा गृत्समद। इन वंशोंमें भी परस्पर विवाह निषिद्ध है।

एते तवोक्ता भृगुवंशजाता  
 महानुभाव नृप गोत्रकाराः ।  
 एषां तु नामा परिकीर्तितेन  
 पापं समग्रं विजहाति जन्तुः ॥ ४६

राजन्! इस प्रकार मैंने आपसे भृगुवंशमें उत्पन्न महानुभाव गोत्रप्रवर्तक ऋषियोंका वर्णन कर दिया। इनके नामोंका कीर्तन करनेसे प्राणी सभी पापोंसे छुटकारा पा जाता है ॥ ३०—४६ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भृगुवंशप्रवर्वरकीर्तनं नाम पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें भृगुवंशप्रवर्वर्वरण नामक एक सौ पञ्चानवें अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९५ ॥

## एक सौ छानबेवाँ अध्याय

प्रवरानुकीर्तनमें महर्षि अङ्गिराके वंशका वर्णन

मत्स्य उवाच

मरीचितनया राजन् सुरूपा नाम विश्रुता ।  
 भार्या चाङ्गिरसो देवास्तस्याः पुत्रा दश स्मृताः ॥ १ ॥  
 आत्मायुर्दमनो दक्षः सदः प्राणस्तथैव च ।  
 हविष्मानश्च गविष्टश्च ऋतः सत्यश्च ते दश ॥ २ ॥  
 एते चाङ्गिरसो नाम देवा वै सोमपायिनः ।  
 सुरूपा जनयामास ऋषीन् सर्वेश्वरानिमान् ॥ ३ ॥  
 बृहस्पतिं गौतमं च संवर्तमृषिमुत्तमम् ।  
 उतथ्यं वामदेवं च अजस्यमृषिजं तथा ॥ ४ ॥  
 इत्येते ऋषयः सर्वे गोत्रकाराः प्रकीर्तिताः ।  
 तेषां गोत्रसमुत्पन्नान् गोत्रकारान् निबोध मे ॥ ५ ॥  
 उतथ्यो गौतमश्चैव तौलेयोऽभिजितस्तथा ।  
 सार्धनेमिः सलौगाक्षिः क्षीरः कौष्ठिकिरेव च ॥ ६ ॥  
 राहुकर्णिः सौपुरिश्च कैरातिः सामलोमकिः ।  
 पौषाजितिभार्गवतो ह्यषिश्चैरीडवस्तथा ॥ ७ ॥  
 कारोटकः सजीवी च उपबिन्दुसुरैषिणौ ।  
 वाहिनीपतिवैशाली क्रोष्टा चैवारुणायनिः ॥ ८ ॥  
 सोमोऽत्रायनिकासोरुकौशल्याः पार्थिवस्तथा ।  
 रौहिण्यायनिरेवाग्नी मूलपः पाण्डुरेव च ॥ ९ ॥  
 क्षपाविश्वकरोऽरिश्च पारिकारारिरेव च ।  
 आर्बेयाः प्रवराश्चैव तेषां च प्रवराऽशृणु ॥ १० ॥  
 अङ्गिराः सुवचोतथ्य उशिजश्च महानृषिः ।  
 परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥ ११ ॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन्! महर्षि मरीचिकी कन्या सुरूपा नामसे विख्यात थी। वह महर्षि अङ्गिराकी पत्नी थी। उसके दस देव-तुल्य पुत्र थे। उनके नाम हैं—आत्मा, आयु, दमन, दक्ष, सद, प्राण, हविष्मान्, गविष्ट, ऋत और सत्य। ये दस अङ्गिराके पुत्र सोमरसके पान करनेवाले देवता माने गये हैं। सुरूपाने इन सर्वेश्वर ऋषियोंको उत्पन्न किया था। बृहस्पति, गौतम, ऋषिश्रेष्ठ संवर्त, उतथ्य, वामदेव, अजस्य तथा ऋषिज—ये सभी ऋषि गोत्रप्रवर्तक कहे गये हैं। अब इनके गोत्रोंमें उत्पन्न हुए गोत्रप्रवर्तकोंको मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। उतथ्य, गौतम, तौलेय, अभिजित, सार्धनेमि, सलौगाक्षि, क्षीर, कौष्ठिकि, राहुकर्णि, सौपुरि, कैराति, सामलोमकि, पौषाजिति, भार्गवत, चैरीडव, कारोटक, सजीवी, उपबिन्दु, सुरैषिण, वाहिनीपति, वैशाली, क्रोष्टा, आरुणायनि, सोम, अत्रायनि, कासोरु, कौशल्य, पार्थिव, रौहिण्यायनि, रेवाग्नि, मूलप, पाण्डु, क्षया, विश्वकर, अरि और पारिकारारि—ये सभी श्रेष्ठ ऋषि गोत्रप्रवर्तक हैं। अब इनके प्रवरोंको सुनिये—अङ्गिरा सुवचोतथ्य तथा महर्षि उशिज। इन ऋषियोंके वंशवाले आपसमें विवाह नहीं करते थे ॥ १—११ ॥

आत्रेयायणिसौवेष्ट्यावग्निवेश्यः शिलास्थलिः ।  
 बालिशायनिश्चैकेपी वाराहिर्बाष्कलिस्तथा ॥ १२  
 सौटिश्च तृणकर्णिश्च प्रावहिश्चाश्वलायनिः ।  
 वाराहिर्बर्हिसादी च शिखाग्रीविस्तथैव च ॥ १३  
 कारकिश्च महाकापिस्तथा चोदुपतिः प्रभुः ।  
 कौचकिर्धमितश्चैव पुष्पान्वेषिस्तथैव च ॥ १४  
 सोमतन्त्रिभ्रह्मतन्त्रिः सालडिर्बालडिस्तथा ।  
 देवरारिदेवस्थानिर्हारिकर्णिः सरिद्धुविः ॥ १५  
 प्रावेपिः साद्यसुग्रीविस्तथा गोमेदगन्धिकः ।  
 मत्स्याच्छाद्यो मूलहरः फलाहारस्तथैव च ॥ १६  
 गाङ्गोदधिः कौरुपतिः कौरुक्षेत्रिस्तथैव च ।  
 नायकिर्जैत्यद्रौणिश्च जैह्लायनिरेव च ॥ १७  
 आपस्तम्बिमर्माञ्चवृष्टिर्मार्षिपङ्गलिरेव च ।  
 पैलश्चैव महातेजाः शालंकायनिरेव च ॥ १८  
 द्व्याख्येयो मारुतश्चैषां सर्वेषां प्रवरो नृप ।  
 अङ्गिराः प्रथमस्तेषां द्वितीयश्च बृहस्पतिः ॥ १९  
 तृतीयश्च भरद्वाजः प्रवराः परिकीर्तिताः ।  
 परस्परमवैवाह्या इत्येते परिकीर्तिताः ॥ २०  
 काण्वायनाः कोपचयास्तथा वात्स्यतरायणाः ।  
 भ्राष्टकृद् राष्ट्रपिण्डी च लैन्द्राणिः सायकायनिः ॥ २१  
 क्रोष्टाक्षी बहुवीती च तालकृत्मधुरावहः ।  
 लावकृद् गालविद् गाथी मार्कटिः पौलिकायनिः ॥ २२  
 स्कन्दसश्च तथा चक्री गार्ग्यः श्यामायनिस्तथा ।  
 बलाकिः साहरिश्चैव पञ्चार्षेयाः प्रकीर्तिताः ॥ २३  
 अङ्गिराश्च महातेजा देवाचार्यो बृहस्पतिः ।  
 भरद्वाजस्तथा गर्गः सैत्यश्च भगवानृषिः ॥ २४  
 परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।  
 कपीतरः स्वस्तितरो दाक्षिः शक्तिः पतञ्जलिः ॥ २५  
 भूयसिर्जलसंधिश्च विन्दुर्मादिः कुसीदकिः ।  
 ऊर्वस्तु राजकेशी च वौषडिः शंसपिस्तथा ॥ २६  
 शालिश्च कलशीकण्ठ ऋषिः कारीरयस्तथा ।  
 काट्यो धान्यायनिश्चैव भावास्यायनिरेव च ॥ २७  
 भरद्वाजिः सौबुधिश्च लघ्वी देवमतिस्तथा ।  
 ऋषार्षेयोऽभिमतश्चैषां प्रवरो भूमिपोत्तम ॥ २८

आत्रेयायणि, सौवेष्ट्य, अग्निवेश्य, शिलास्थलि, बालिशायनि, चैकेपी, वाराहि, बाष्कलि, सौटि, तृणकर्णि, प्रावहि, आश्वलायनि, वाराहि, बर्हिसादी, शिखाग्रीवि, कारकि, महाकापि, उदुपति, कौचकि, धमित, पुष्पान्वेषि, सोमतन्त्रि, ब्रह्मतन्त्रि, सालडि, बालडि, देवरारि, देवस्थानि, हारिकर्णि, सरिद्धुवि, प्रावेपि, साद्यसुग्रीवि, गोमेदगन्धिक, मत्स्याच्छाद्य, मूलहर, फलाहार, गाङ्गोदधि, कौरुपति, कौरुक्षेत्रि, नायकि, जैत्यद्रौणि, जैह्लायनि, आपस्तम्बि, मौञ्जवृष्टि, मार्षिपङ्गलि, महातेजस्वी पैल, शालङ्कायनि, द्व्याख्येय तथा मारुत । नुप ! इन ऋषियोंके प्रवर प्रथम अङ्गिरा, दूसरे बृहस्पति तथा तीसरे भरद्वाज कहे गये हैं । इन गोत्रवालोंमें भी परस्पर विवाह-कर्म नहीं होते ॥ १२—२० ॥

काण्वायन, कोपचय, वात्स्यतरायण, भ्राष्टकृत्, राष्ट्रपिण्डी, लैन्द्राणि, सायकायनि, क्रोष्टाक्षी, बहुवीती, तालकृत्, मधुरावह, लावकृत्, गालवित्, गाथी, मार्कटि, पौलिकायनि, स्कन्दस, चक्री, गार्ग्य, श्यामायनि, बलाकि तथा साहरि । इनके भी निम्नलिखित पाँच ऋषि प्रवर कहे गये हैं—महातेजस्वी अङ्गिरा, देवाचार्य बृहस्पति, भरद्वाज, गर्ग तथा ऐश्वर्यशाली महर्षि सैत्य । इनके वंशवालोंमें भी परस्पर विवाह नहीं होता । कपीतर, स्वस्तितर, दाक्षि, शक्ति, पतञ्जलि, भूयसि, जलसन्धि, विन्दु, मादि, कुसीदकि, ऊर्व, राजकेशी, वौषडि, शंसपि, शालि, कलशीकण्ठ, कारीरय, काट्य, धान्यायनि, भावास्यायनि, भरद्वाजि, सौबुधि, लघ्वी तथा देवमति । राजसत्तम ! इन ऋषियोंके तीन

अङ्गिरा दमवाह्यश्च तथा चैवाप्युरुक्षयः ।  
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥ २९  
संकृतिश्च त्रिमार्षिश्च मनुः सम्बद्धिरेव वा ।  
तण्डश्चेनातकिश्चैव तैलका दक्ष एव च ॥ ३०  
नारायणिश्चार्षिणिश्च लौकिकांगर्यहरिस्तथा ।  
गालवश्च अनेहश्च सर्वेषां प्रवरो मतः ॥ ३१  
अङ्गिराः संकृतिश्चैव गौरवीतिस्तथैव च ।  
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥ ३२  
कात्यायनो हरितकः कौत्सः पिंगस्तथैव च ।  
हण्डदासो वात्स्यायनिर्माद्रिमालिः कुबेरणिः ॥ ३३  
भीमवेगः शाश्वदर्भिः सर्वे त्रिप्रवराः स्मृताः ।  
अङ्गिरा बृहदश्च जीवनाश्वस्तथैव च ॥ ३४  
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।  
बृहदुक्थो वामदेवस्तथा त्रिप्रवरा मताः ॥ ३५  
अङ्गिरा बृहदुक्थश्च वामदेवस्तथैव च ।  
परस्परमवैवाह्या इत्येते परिकीर्तिताः ॥ ३६  
कुत्सगोत्रोद्धवाश्चैव तथा त्रिप्रवरा मताः ।  
अङ्गिराश्च सदस्युश्च पुरुकुत्सस्तथैव च ।  
कुत्साः कुत्सैवाह्या एवमाहुः पुरातनाः ॥ ३७  
रथीतराणां प्रवरास्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः ।  
अङ्गिराश्च विरूपश्च तथैव च रथीतरः ।  
रथीतरा ह्यवैवाह्या नित्यमेव रथीतरैः ॥ ३८  
विष्णुसिद्धिः शिवमतिर्जतृणः कतृणस्तथा ।  
पुत्रवश्च महातेजास्तथा वैरपरायणः ॥ ३९  
त्र्यार्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरो नृप ।  
अङ्गिराश्च विरूपश्च वृषपर्वस्तथैव च ।  
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥ ४०  
सात्यमुग्रिर्महातेजा हिरण्यस्तम्बिमुद्गलौ ।  
त्र्यार्षेयो हि मतस्तेषां सर्वेषां प्रवरो नृप ॥ ४१  
अङ्गिरा मत्स्यदग्धश्च मुद्गलश्च महातपाः ।  
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥ ४२  
हंसजिह्वो देवजिह्वो ह्यग्निजिह्वो विराङ्गपः ।  
अपाग्नेयस्तवश्चयुश्च परण्यस्ता विमौद्गलाः ॥ ४३

प्रवर बतलाये गये हैं—अङ्गिरा, दमवाह्य तथा उरुक्षय ।  
इन गोत्रवालोंमें परस्पर विवाह नहीं होता ॥ २१—२९ ॥  
संकृति, त्रिमार्षि, मनु, सम्बद्धि, तण्डि, एनातकि (नाचिकेत), तैलक, दक्ष, नारायणि, आर्षिणि, लौकिक, गार्घ्य, हरि, गालव तथा अनेह—इन सबके प्रवर अङ्गिरा, संकृति तथा गौरवीति माने गये हैं। इनमें भी परस्पर विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। कात्यायन, हरितक, कौत्स, पिङ्ग, हण्डदास, वात्स्यायनि, माद्रि, मौलि, कुबेरणि, भीमवेग तथा शाश्वदर्भि—इन सभीके तीन प्रवर कहे गये हैं। उनके नाम हैं—अङ्गिरा, बृहदश्व तथा जीवनाश्व ।  
इनके वंशवालोंमें भी परस्पर विवाह नहीं होता। बृहदुक्थ तथा वामदेवके भी तीन प्रवर माने गये हैं। उनके नाम हैं—अङ्गिरा, बृहदुक्थ तथा वामदेव। इन वंशवालोंमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। कुत्सगोत्रमें उत्पन्न होनेवालोंके तीन प्रवर हैं—अङ्गिरा, सदस्यु तथा पुरुकुत्स। प्राचीन लोग बतलाते हैं कि कुत्सगोत्रवालोंसे कुत्सगोत्रवालोंका विवाह नहीं होता। रथीतरके वंशमें उत्पन्न होनेवालोंके भी तीन प्रवर हैं—अङ्गिरा, विरूप तथा रथीतर। ये लोग आपसमें विवाह नहीं करते। विष्णुसिद्धि, शिवमति, जतृण, कतृण, महातेजस्वी पुत्र तथा वैरपरायण—ये सभी अङ्गिरा, विरूप और वृषपर्व—इन तीन ऋषियोंके प्रवरवाले माने गये हैं। राजन्! इन ऋषियोंके वंशमें परस्पर विवाह-कर्म नहीं होता ॥ ३०—४० ॥  
महातेजस्वी सात्यमुग्रि, हिरण्यस्तम्बि तथा मुद्गल—ये सभी अङ्गिरा, मत्स्यदग्ध तथा महातपस्वी मुद्गल—इन तीन ऋषियोंके प्रवर माने गये हैं। इन तीन ऋषियोंके गोत्रोंमें उत्पन्न होनेवालोंका परस्पर विवाह नहीं होता। हंसजिह्व, देवजिह्व, अग्निजिह्व, विराङ्गप, अपाग्नेय, अश्वयु, परण्यस्त तथा विमौद्गल—

त्र्यार्षेयाभिमतास्तेषां सर्वेषां प्रवरा: शुभाः ।  
 अङ्गिराश्वैव तापिडश्च मौद्रल्यश्च महातपाः ॥ ४४  
 परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।  
 अपाण्डुश्च गुरुश्वैव तृतीयः शाकटायनः ।  
 ततः प्रागाथमा नारी मार्कण्डो मरणः शिवः ॥ ४५  
 कटुर्मर्कटपश्वैव तथा नाडायनो हृषिः ।  
 श्यामायनस्तथैषां त्र्यार्षेयाः प्रवरा: शुभाः ॥ ४६  
 अङ्गिराश्वाजमीढश्च कट्यश्वैव महातपाः ।  
 परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥ ४७  
 तित्तिरिः कपिभूश्वैव गार्घ्यश्वैव महानृषिः ।  
 त्र्यार्षेयो हि मतस्तेषां सर्वेषां प्रवरः शुभः ॥ ४८  
 अङ्गिरास्तित्तिरिश्वैव कपिभूश्च महानृषिः ।  
 परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥ ४९  
 अथ ऋक्षभरद्वाजौ ऋषिवान् मानवस्तथा ।  
 ऋषिमैत्रवरश्वैव पञ्चार्षेयाः प्रकीर्तिताः ॥ ५०  
 अङ्गिरा सभरद्वाजस्तथैव च बृहस्पतिः ।  
 ऋषिमैत्रवरश्वैव ऋषिवान् मानवस्तथा ।  
 परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥ ५१  
 भारद्वाजो हुतः शौङ्गः शैशिरेयस्तथैव च ।  
 इत्येते कथिताः सर्वे द्व्यामुष्यायणगोत्रजाः ॥ ५२  
 पञ्चार्षेयास्तथा होषां प्रवराः परिकीर्तिताः ।  
 अङ्गिराश्च भरद्वाजस्तथैव च बृहस्पतिः ॥ ५३  
 मौद्रल्यः शैशिरश्वैव प्रवराः परिकीर्तिताः ।  
 परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥ ५४  
 एते तत्त्वोक्ताङ्गिरसस्तु वंशे  
     महानुभावा ऋषिगोत्रकाराः ।  
 येषां तु नामा परिकीर्तितेन  
     पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥ ५५

ये सभी अङ्गिरा, तापिड तथा महातपस्वी मौद्रगल्य—इन तीनों ऋषियोंके प्रवर माने गये हैं। इनके वंशधरोंमें भी विवाह नहीं होता। अपाण्डु, गुरु, शाकटायन, प्रागाथमा, नारी, मार्कण्ड, मरण, शिव, कटु, मर्कटप, नाडायन तथा श्यामायन—ये सभी अङ्गिरा, अजमीढ तथा महातपस्वी कठ्य—इन तीन ऋषियोंके प्रवरवाले माने गये हैं। इनमें भी परस्पर विवाह नहीं होते। तित्तिरि, कपिभू और महर्षि गार्घ्य—इन सबके अङ्गिरा, तित्तिरि तथा कपिभू नामक तीन प्रवर कहे गये हैं, जिनमें एक-दूसरेका विवाह निषिद्ध है। ऋक्ष, भरद्वाज, ऋषिवान्, मानव तथा मैत्रवर—ये पाँच आर्षेय कहे गये हैं। इनके अङ्गिरा, भरद्वाज, बृहस्पति, मैत्रवर, ऋषिवान् तथा मानव नामक पाँच प्रवर हैं। इनमें परस्पर विवाह नहीं होता। भारद्वाज, हुत, शौङ्ग तथा शैशिरेय—ये सभी द्व्यामुष्यायण गोत्रमें उत्पन्न कहे गये हैं। इन सबके अङ्गिरा, भरद्वाज, बृहस्पति, मौद्रगल्य तथा शैशिर नामक पाँच प्रवर हैं। इनमें भी परस्पर विवाह नहीं होता। इस प्रकार मैंने आपसे इस अङ्गिरा-वंशमें उत्पन्न होनेवाले गोत्रप्रवर्तक महानुभाव ऋषियोंका वर्णन कर दिया, जिनके नामका उच्चारण करनेसे पुरुष अपने सभी पापोंसे छुटकारा पा लेता है ॥ ४१—५५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तनेऽङ्गिरोवंशकीर्तनं नाम षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रवरानुकीर्तनप्रसङ्गमें अङ्गिरावंशवर्णन नामक एक सौ छानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९६ ॥

## एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय

महर्षि अत्रिके वंशका वर्णन

मत्स्य उवाच

अत्रिवंशसमुत्पन्नान् गोत्रकारान् निबोध मे।  
कर्दमायनशाखेयास्तथा शारायणाश्च ये॥ १  
उद्दालकिः शौणकर्णिरथः शौक्रतवश्च ये।  
गौरग्रीवो गौरजिनस्तथा चैत्रायणाश्च ये॥ २  
अर्धपण्या वामरथ्या गोपनास्तकिबिन्दवः।  
कर्णजिह्वो हरप्रीतिलैङ्ग्राणिः शाकलायनिः॥ ३  
तैलपश्च सवैलेयो अत्रिर्गोणीपतिस्तथा।  
जलदो भगपादश्च सौपुष्टिश्च महातपाः॥ ४  
छन्दोगेयस्तथैतेषां त्र्यार्षेयाः प्रवरा मताः।  
श्यावाश्चश्च तथात्रिश्च आर्चनानश एव च॥ ५  
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।  
दाक्षिर्बलिः पर्णविश्च ऊर्णुनाभिः शिलार्दनिः॥ ६  
बीजवापी शिरीषश्च मौञ्जकेशो गविष्ठिरः।  
भलन्दनस्तथैतेषां त्र्यार्षेयाः प्रवरा मताः॥ ७  
अत्रिर्गविष्ठिरश्चैव तथा पूर्वातिथिः स्मृतः।  
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ ८  
आत्रेयपुत्रिकापुत्रानत ऊर्ध्वं निबोध मे।  
कालेयाश्च सवालेया वामरथ्यास्तथैव च॥ ९  
धात्रेयाश्चैव मैत्रेयास्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः।  
अत्रिश्च वामरथ्यश्च पौत्रिश्चैव महानृषिः।  
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ १०  
इत्यत्रिवंशप्रभवास्तवोक्ता  
महानुभावा नृप गोत्रकाराः।  
येषां तु नामा परिकीर्तितेन  
पापं समग्रं पुरुषो जहाति॥ ११

मत्स्यभगवान् कहा—राजेन्द्र! अब मुझसे महर्षि अत्रिके वंशके उत्पन्न हुए कर्दमायन तथा शारायणशाखीय गोत्रकर्ता मुनियोंका वर्णन सुनिये। ये हैं—उद्दालकि, शौणकर्णिरथ, शौक्रतव, गौरग्रीव, गौरजिन, चैत्रायण, अर्धपण्य, वामरथ्य, गोपन, अस्तकि, बिन्दु, कर्णजिह्व, हरप्रीति, लैङ्ग्राणि, शाकलायनि, तैलप, सवैलेय, अत्रि, गोणीपति, जलद, भगपाद, महातपस्वी सौपुष्टि तथा छन्दोगेय—ये शारायणके वंशमें कर्दमायनशाखामें उत्पन्न हुए ऋषि हैं। इनके प्रवर श्यावाश्च, अत्रि और आर्चनानश—ये तीन हैं। इनमें परस्परमें विवाह नहीं होता। दाक्षि, बलि, पर्णवि, ऊर्णुनाभि, शिलार्दनि, बीजवापी, शिरीष, मौञ्जकेश, गविष्ठिर तथा भलन्दन—इन ऋषियोंके अत्रि, गविष्ठिर तथा पूर्वातिथि—ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं। इनमें भी परस्पर विवाह-सम्बन्ध निषिद्ध है। इसके बाद अब मुझसे अत्रिकी पुत्रिका आत्रेयीसे उत्पन्न प्रवरकर्ता ऋषियोंका विवरण सुनिये—कालेय, वालेय, वामरथ्य, धात्रेय तथा मैत्रेय—इन ऋषियोंके अत्रि, वामरथ्य और महर्षि पौत्रि—ये तीन प्रवर ऋषि माने गये हैं। इनमें भी परस्पर विवाह नहीं होता। राजन्! इस प्रकार मैंने आपको इन अत्रिवंशमें उत्पन्न होनेवाले गोत्रकार महानुभाव ऋषियोंका नाम सुना दिया, जिनके नामसंकीर्तनमात्रसे मनुष्य अपने सभी पाप-कर्मोंसे छुटकारा पा जाता है॥ १—११॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तनेऽत्रिवंशानुकीर्तनं नाम सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९७॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रवरानुकीर्तनप्रसङ्गमें अत्रिवंशवर्णन नामक एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १९७॥

## एक सौ अद्वानबेवाँ अध्याय

प्रवरानुकीर्तनमें महर्षि विश्वामित्रके वंशका वर्णन

मत्स्य उवाच

अत्रेवापरं वंशं तव वक्ष्यामि पार्थिव ।  
 अत्रः सोमः सुतः श्रीमांस्तस्य वंशोद्भवो नृप ॥ १  
 विश्वामित्रस्तु तपसा ब्राह्मण्यं समवासवान् ।  
 तस्य वंशमहं वक्ष्ये तन्मे निगदतः शृणु ॥ २  
 वैश्वामित्रो देवरातस्तथा वैकृतिगालवः ।  
 वतण्डश्च शलंकश्च हाभयश्चायतायनः ॥ ३  
 श्यामायना याज्ञवल्क्या जाबालाः सैन्धवायनाः ।  
 वाभ्रव्याश्च करीषाश्च संश्रुत्या अथ संश्रुताः ॥ ४  
 उलूपा औपहावाश्च पयोदजनपादपाः ।  
 खरबाचो हलयमाः साधिता वास्तुकौशिकाः ॥ ५  
 त्र्यार्षेयाः प्रवरास्तेषां सर्वेषां परिकीर्तिताः ।  
 विश्वामित्रो देवरात उद्घालश्च महायशाः ॥ ६  
 परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।  
 देवश्रवाः सुजातेयाः सौमुकाः कारुकायणाः ॥ ७  
 तथा वैदेहराता ये कुशिकाश्च नराधिप ।  
 त्र्यार्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरः शुभः ॥ ८  
 देवश्रवा देवरातो विश्वामित्रस्तथैव च ।  
 परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥ ९  
 धनंजयः कपर्देयः परिकूटश्च पार्थिव ।  
 पाणिनिश्चैव त्र्यार्षेयाः सर्व एते प्रकीर्तिताः ॥ १०  
 विश्वामित्रस्तथाद्याश्च माधुच्छन्दस एव च ।  
 त्र्यार्षेयाः प्रवरा होते ऋषयः परिकीर्तिताः ॥ ११  
 विश्वामित्रो मधुच्छन्दास्तथा चैवाधर्मणः ।  
 परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥ १२  
 कामलायनिजश्चैव अश्मरथ्यस्तथैव च ।  
 वज्ञुलिश्चापि त्र्यार्षेयः सर्वेषां प्रवरो मतः ॥ १३

मत्स्यभगवान् ने कहा—राजन्! अब मैं आपसे महर्षि अत्रिके ही वंशमें उत्पन्न अन्य शाखाका वर्णन कर रहा हूँ। नरेश्वर! महर्षि अत्रिके पुत्र श्रीमान् सोम हुए। उनके वंशमें विश्वामित्र उत्पन्न हुए, जिन्होंने अपनी तपस्याके बलसे ब्राह्मणत्वको प्राप्त किया। अब मैं उनके वंशका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। वैश्वामित्र (मधुच्छन्दा), देवरात, वैकृति, गालव, वतण्ड, शलंक, अभय, आयतायन, श्यामायन, याज्ञवल्क्य, जाबाल, सैन्धवायन, वाभ्रव्य, करीष, संश्रुत्य, संश्रुत, उलूप, औपहाव, पयोद, जनपादप, खरबाच, हलयम, साधित तथा वास्तुकौशिक—इन सभी ऋषियोंके वंशमें उत्पन्न होनेवालोंमें विश्वामित्र, देवरात तथा महायशस्वी उद्घाल—ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं। इनमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। नराधिप! देवश्रवा, सुजातेय, सौमुक, कारुकायण, वैदेहरात तथा कुशिक—इन सभी महर्षियोंके वंशमें देवश्रवा, देवरात तथा विश्वामित्र—ये तीनों प्रवर माने गये हैं। इन वंशजोंमें परस्पर विवाह निषिद्ध है। राजन्! धनंजय, कपर्देय, परिकूट तथा पाणिनि\*—इनके वंशमें विश्वामित्र, धनंजय और माधुच्छन्दस—ये तीन प्रवर माने गये हैं। विश्वामित्र, मधुच्छन्दा और अधर्मण—इन तीन ऋषियोंके वंशजोंमें भी परस्पर विवाह नहीं होते ॥ १—१२ ॥

कामलायनिज, अश्मरथ्य और वज्ञुलि—इन ऋषियोंके विश्वामित्र, अश्मरथ्य और महातपस्वी वज्ञुलि—ये तीनों प्रवर माने गये हैं।

\* इससे सिद्ध है कि व्याकरण-कर्ता पाणिनि भी बहुत प्राचीन हैं।

विश्वामित्रश्चाश्मरथ्यो वञ्जुलिश्च महातपाः।  
परस्परमवैवाहा ऋषयः परिकीर्तिताः॥ १४  
विश्वामित्रो लोहितश्च अष्टकः पूरणस्तथा।  
विश्वामित्रः पूरणश्च तयोद्वौ प्रवरौ स्मृतौ॥ १५  
परस्परमवैवाहा: पूरणाश्च परस्परम्।  
लोहिता अष्टकाश्चैषां त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः॥ १६  
विश्वामित्रो लोहितश्च अष्टकश्च महातपाः।  
अष्टका लोहितैर्नित्यमवैवाहा: परस्परम्॥ १७  
उदरेणुः क्रथकश्च ऋषिश्चोदावहिस्तथा।  
आर्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरः स्मृतः॥ १८  
ऋणवन् गतिनश्चैव विश्वामित्रस्तथैव च।  
परस्परमवैवाहा ऋषयः परिकीर्तिताः॥ १९  
उदुम्बरः सैषिरिटिर्घृषिस्त्राक्षायणिस्तथा।  
शाट्यायनिः करीराशी शालंकायनिलावकी।  
मौञ्ज्यायनिश्च भगवांस्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः॥ २०  
खिलिखिलिस्तथा विद्यो विश्वामित्रस्तथैव च।  
परस्परमवैवाहा ऋषयः परिकीर्तिताः॥ २१  
एते तवोक्ताः कुशिका नरेन्द्र  
महानुभावाः सततं द्विजेन्द्राः।  
येषां तु नामां परिकीर्तितेन  
पापं समग्रं पुरुषो जहाति॥ २२

इति श्रीमात्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने विश्वामित्रवंशानुवर्णनं नामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९८॥

इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके प्रवरानुकीर्तन-प्रसङ्गमें विश्वामित्रवंशानुवर्णन नामक एक सौ अद्वानवेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १९८॥

इनमें भी परस्पर विवाह निषिद्ध है। विश्वामित्र, लोहित, अष्टक और पूरण—इनके विश्वामित्र और पूरण—ये दो प्रवर माने गये हैं। इनमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध निषिद्ध है। पूरण, लोहित तथा अष्टक—इन ऋषियोंके विश्वामित्र, लोहित तथा महातपस्वी अष्टक प्रवर माने गये हैं। इनमें अष्टक वंशवालोंका लोहित वंशवालोंके साथ परस्पर विवाह नहीं होता। उदरेणु, क्रथक तथा उदावहि—इन सबके ऋणवन्, गतिन तथा विश्वामित्र—ये तीन प्रवर माने गये हैं। इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है। उदुम्बर, सैषिरिटि, त्राक्षायणि, शाट्यायनि, करीराशी, शालंकायनि, लावकि तथा ऐश्वर्यशाली मौञ्ज्यायनि—इन ऋषियोंके खिलिखिलि, विद्य तथा विश्वामित्र—ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं। इनमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। नरेन्द्र! मैंने आपसे इन कुशिकवंशी महानुभाव द्विजेन्द्रोंका वर्णन कर चुका। इनके नामसंकीर्तनसे मनुष्य समग्र पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १३—२२॥

इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके प्रवरानुकीर्तन-प्रसङ्गमें विश्वामित्रवंशानुवर्णन नामक एक सौ अद्वानवेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १९८॥

## एक सौ निन्यानबेवाँ अध्याय

गोत्रप्रवर-कीर्तनमें महर्षि कश्यपके वंशका वर्णन

मत्स्य उवाच

मरीचे: कश्यपः पुत्रः कश्यपस्य तथा कुले।  
गोत्रकारानृषीन् वक्ष्ये तेषां नामानि मे शृणु॥ १  
आश्रायणिऋषिगणो मेषकीरिटिकायनाः।  
उदग्रजा माठराश्च भोजा विनयलक्षणाः॥ २

मत्स्यभगवान् कहा—राजन्! महर्षि मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। अब मैं उन्हीं कश्यपके कुलमें जन्म लेनेवाले गोत्र-प्रवर्तक ऋषियोंका वर्णन कर रहा हूँ, उनके नाम मुझसे सुनिये—आश्रायणि, मेषकीरिटिकायन,

शालाहलेया: कौरिष्टा: कन्यकाश्चासुरायणः ।  
 मन्दाकिन्यां वै मृगयाः श्रोतना भौतपायनाः ॥ ३  
 देवयाना गोमयाना हृधश्छायाभयाश्च ये ।  
 कात्यायनाः शाक्रायणा बर्हिर्योगगदायनाः ॥ ४  
 भवनन्दिर्महाचक्रिर्दक्षपायण एव च ।  
 योधयानाः कार्तिक्यो हस्तिदानास्तथैव च ॥ ५  
 वात्स्यायना निकृतजा ह्याश्वलायनिनस्तथा ।  
 प्रागायणाः पैलमौलिराश्ववातायनस्तथा ॥ ६  
 कौबेरकाश्च श्याकारा अग्निशर्मायणाश्च ये ।  
 मेषपाः कैकरसपास्तथा चैव तु बभ्रवः ॥ ७  
 प्राचेयो ज्ञानसंज्ञेया आग्ना प्रासेव्य एव च ।  
 श्यामोदरा वैवशपास्तथा चैवोद्बलायनाः ॥ ८  
 काष्ठाहारिणमारीचा आजिहायनहास्तिकाः ।  
 वैकर्णेयाः काश्यपेयाः सासिसाहारितायनाः ॥ ९  
 मातङ्गिनश्च भृगवस्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः ।  
 वत्सरः कश्यपश्चैव निधुवश्च महातपाः ॥ १०  
 परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।  
 अतः परं प्रवक्ष्यामि द्व्यामुष्यायणगोत्रजान् ॥ ११  
 अनसूयो नाकुरयः स्नातपो राजवर्तपः ।  
 शैशिरोदवहिश्चैव सैरन्धी रौपसेवकिः ॥ १२  
 यामुनिः काद्वुपिङ्गाक्षिः सजातम्बिस्तथैव च ।  
 दिवावष्टाश्च इत्येते भक्त्या ज्ञेयाश्च काश्यपाः ॥ १३  
 त्र्यार्षेयाश्च तथैवैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः ।  
 वत्सरः कश्यपश्चैव वसिष्ठश्च महातपाः ॥ १४  
 परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।  
 संयातिश्च नभश्चोभौ पिप्पल्योऽथ जलंधरः ॥ १५  
 भुजातपूरः पूर्यश्च कर्दमो गर्दभीसुखः ।  
 हिरण्यबाहुकैरातावुभौ काश्यपगोभिलौ ॥ १६  
 कुलहो वृषकण्डश्च मृगकेतुस्तथोत्तरः ।  
 निदाघमसृणौ भत्स्या महान्तः केरलाश्च ये ॥ १७  
 शापिङ्गल्यो दानवश्चैव तथा वै देवजातयः ।  
 पैप्पलादिः सप्रवरा ऋषयः परिकीर्तिताः ॥ १८

उदग्रज, माठर, भोज, विनयलक्षण, शालाहलेय, कौरिष्ट, कन्यक, आसुरायण, मन्दाकिनीमें उत्पन्न मृगय, श्रोतन, भौतपायन, देवयान, गोमयान, अधश्छाय, अभय, कात्यायन, शाक्रायण, बर्हिर्योग, गदायन, भवनन्दि, महाचक्रि, दाक्षपायण, बोधयान, कार्तिक्य, हस्तिदान, वात्स्यायन, निकृतज, आश्वलायनी, प्रागायण, पैलमौलि, आश्ववातायन, कौबेरक, श्याकार, अग्निशर्मायण, मेषप, कैकरसप, बभ्रु, प्राचेय, ज्ञानसंज्ञेय, आग्न, प्रासेव्य, श्यामोदर, वैवशप, उद्ग्लायन, काष्ठाहारिण, मारीच, आजिहायन, हास्तिक, वैकर्णेय, काश्यपेय, सासि, साहारितायन तथा मातङ्गी भृगु—इन ऋषियोंके वत्सर, कश्यप तथा महातपस्वी निधुव—ये तीन प्रवर माने गये हैं। इनमें भी आपसमें विवाह नहीं होता ॥ १—१० ५॥

इसके उपरान्त अब मैं द्व्यामुष्यायणके गोत्रमें उत्पन्न ऋषियोंके नामोंको बतला रहा हूँ—अनसूय, नाकुरय, स्नातप, राजवर्तप, शैशिर, उदवहि, सैरन्धी, रौपसेवकि, यामुनि, काद्वुपिंगाक्षि, सजातम्बि तथा दिवावष्ट—इन्हें भक्तिपूर्वक कश्यपके वंशमें उत्पन्न समझना चाहिये। इन सभी ऋषियोंके वत्सर, कश्यप तथा महातपस्वी वसिष्ठ—ये तीनों प्रवर माने गये हैं। इनमें भी परस्पर विवाह निषिद्ध है। संयाति, नभ, पिप्पल्य, जलंधर, भुजातपूर, पूर्य, कर्दम, गर्दभीमुख, हिरण्यबाहु, कैरात, काश्यप, गोभिल, कुलह, वृषकण्ड, मृगकेतु उत्तर, निदाघ, मसृण, भत्स्य, महान्, केरल, शापिङ्गल्य, दानव, देवजाति तथा पैप्पलादि—इन सभी ऋषियोंके

त्र्यार्थेयाभिमताश्वेषां सर्वेषां प्रवरा: शुभाः ।  
 असितो देवलश्वैव कश्यपश्च महातपाः ।  
 परस्परमवैवाहा ऋषयः परिकीर्तिताः ॥ १९  
 ऋषिप्रधानस्य च कश्यपस्य  
 दाक्षायणीभ्यः सकलं प्रसूतम् ।  
 जगत्समग्रं मनुसिंहं पुण्यं  
 किं ते प्रवक्ष्याम्यहमुत्तरं तु ॥ २०

असित, देवल तथा महातपस्वी कश्यप—ये तीनों ऋषि प्रवर माने गये हैं। इनमें भी परस्पर विवाह निषिद्ध है। मनुओंमें श्रेष्ठ राजन्! ऋषियोंमें प्रमुख कश्यपद्वारा दाक्षायणीके गर्भसे इस समग्र जगत्की उत्पत्ति हुई है। अतः उनके बंशका यह विवरण अति पुण्यदायक है। इसके पश्चात् अब मैं तुमसे किस पवित्र कथाका वर्णन करूँ? ॥ १९—२० ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने कश्यपवंशवर्णनं नाम नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रवरानुकीर्तन-प्रसङ्गमें कश्यप-वंश-वर्णन नामक एक सौ निन्यानवेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९९ ॥

## दो सौवाँ अध्याय

### गोत्रप्रवर-कीर्तनमें महर्षि वसिष्ठकी शाखाका कथन

मत्स्य उवाच

वसिष्ठवंशजान् विप्रान् निबोध वदतो मम ।  
 एकार्थेयस्तु प्रवरो वासिष्ठानां प्रकीर्तिः ॥ १  
 वसिष्ठ एव वासिष्ठ अविवाहा वसिष्ठजैः ।  
 व्याघ्रपादा औपगवा वैकलवा शाद्वलायनाः ॥ २  
 कपिष्ठला औपलोमा अलब्धाश्च शठाः कठाः ।  
 गौपायना बोधपाश्च दाकव्या हृथ वाहूकाः ॥ ३  
 बालिशयाः पालिशयास्ततो वाग्ग्रन्थयश्च ये ।  
 आपस्थूणाः शीतवृत्तास्तथा ब्राह्मपुरेयकाः ॥ ४  
 लोमायनाः स्वस्तिकराः शाण्डिलिंगौडिनिस्तथा ।  
 वाडोहलिश्च सुमनाश्चोपावृद्धिस्तथैव च ॥ ५  
 चौलिवौलिर्ब्रह्मबलः पौलिः श्रवस एव च ।  
 पौडवो याज्ञवल्क्यश्च एकार्थेया महर्षयः ॥ ६  
 वसिष्ठ एषां प्रवरो ह्यवैवाहा: परस्परम् ।  
 शैलालयो महाकर्णः कौरव्यः क्रोधिनस्तथा ॥ ७  
 कपिञ्जला वालखिल्या भागवित्तायनाश्च ये ।  
 कौलायनः कालशिखः कोरकृष्णाः सुरायणाः ॥ ८  
 शाकाहार्याः शाकधियः काण्वा उपलपाश्च ये ।  
 शाकायना उहाकाश्च अथ माषशरावयः ॥ ९  
 दाकायना बालवयो वाकयो गोरथास्तथा ।  
 लम्बायनाः श्यामवयो ये च क्रोडोदरायणाः ॥ १०

मत्स्यभगवान् कहा—राजन्! इसके बाद अब मैं वसिष्ठगोत्रमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंका वर्णन कर रहा हूँ सुनिये। वसिष्ठगोत्रियोंका प्रवर एकमात्र वसिष्ठ ही है। इनका परस्पर विवाह नहीं होता। व्याघ्रपाद, औपगव, वैकलव, शाद्वलायन, कपिष्ठल, औपलोम, अलब्ध, शठ, कठ, गौपायन, बोधप, दाकव्य, वाहूक, बालिशय, पालिशय, वाग्ग्रन्थि, आपस्थूण, शीतवृत्त, ब्राह्मपुरेयक, लोभायन, स्वस्तिकर, शाण्डिलि, गौडिनि, वाडोहलि, सुमना, उपावृद्धि, चौलि, बौलि, ब्रह्मबल, पौलि, श्रवस, पौण्डव तथा याज्ञवल्क्य—ये सभी महर्षि एक प्रवरवाले हैं। महर्षि वसिष्ठ इनके प्रवर हैं और इनमें परस्पर विवाह नहीं होता। शैलालय, महाकर्ण, कौञ्च्य, क्रोधिन, कपिञ्जल, वालखिल्य, भागवित्तायन, कौलायन, कालशिख, कोरकृष्ण, सुरायण, शाकाहार्य, शाकधी, काण्व, उपलप, शाकायन, उहाक, माषशरावय, दाकायन, बालवय, वाकय, गोरथ, लम्बायन, श्यामवय, क्रोडोदरायण,

प्रलम्बायनाश्च ऋषय औपमन्यव एव च।  
 सांख्यायनाश्च ऋषयस्तथा वै वेदशेरकाः ॥ ११  
 पालंकायन उद्गाहा ऋषयश्च बलेक्षवः।  
 मातेया ब्रह्मलिनः पन्नागारिस्तथैव च ॥ १२  
 त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैषां सर्वेषां प्रवरस्तथा।  
 भगीवसुर्वसिष्ठश्च इन्द्रप्रमदिरेव च ॥ १३  
 परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिः।  
 औपस्थलास्वस्थलयो बालो हालो हलाश्च ये ॥ १४  
 मध्यन्दिनो माक्षतयः पैप्लादिर्विचक्षुषः।  
 त्रैशृङ्गायणसैबल्काः कुण्डनश्च नरोत्तम ॥ १५  
 त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः।  
 वसिष्ठमित्रावरुणौ कुण्डनश्च महातपाः ॥ १६  
 दानकाया महावीर्या नागेयाः परमास्तथा।  
 आलम्बा वायनश्चापि ये चक्रोडादयो नराः ॥ १७  
 परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिः।  
 शिवकर्णो वयश्चैव पादपश्च तथैव च ॥ १८  
 त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैषां सर्वेषां प्रवरस्तथा।  
 जातूकण्यो वसिष्ठश्च तथैवात्रिश्च पार्थिव।  
 परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिः ॥ १९  
 वसिष्ठवंशेऽभिहिता मयैते  
 ऋषिप्रधानाः सततं द्विजेन्द्राः।  
 येषां तु नामां परिकीर्तिनेन  
 पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥ २०

प्रलम्बायन, औपमन्य, सांख्यायन, वेदशेरक, पालंकायन, उद्गाह, बलेक्षु, मातेय, ब्रह्मली तथा पन्नगारि—इन सभी ऋषियोंके भगीवसु, वसिष्ठ तथा इन्द्रप्रमदि—ये तीन ऋषि प्रवर कहे गये हैं। इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है ॥ १—१३ ½ ॥

नरोत्तम! औपस्थल, अस्वस्थलय, बाल, हाल, हल, मध्यन्दिन, माक्षतय, पैप्लादि, विचक्षुष, त्रैशृङ्गायण, सैबल्क तथा कुण्डन—इन सभी ऋषियोंके वसिष्ठ, मित्रावरुण तथा महातपस्वी कुण्डन—ये तीन प्रवर माने गये हैं। दानकाय, महावीर्य, नागेय, परम, आलम्ब, वायन तथा चक्रोड आदि—इनमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। राजन्! शिवकर्ण, वय तथा पादप—इन सभीके जातूकण्य, वसिष्ठ तथा अत्रि—ये तीन प्रवर कहे गये हैं। इनमें परस्पर विवाह नहीं होता। इस प्रकार महर्षि वसिष्ठके गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषियोंकी नामावलि मैं आपसे बता चुका। इनके नामोंके संकीर्तनसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १४—२० ॥

इति श्रीमात्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने वसिष्ठगोत्रानुवर्णनं नाम द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रवरानुकीर्तन-प्रसङ्गमें वसिष्ठगोत्रानुवर्णन नामक दो सौवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २०० ॥

## दो सौ एकवाँ अध्याय

प्रवरानुकीर्तनमें महर्षि पराशका वर्णन

मत्स्य उवाच

वसिष्ठस्तु महातेजा निमेः पूर्वपुरोहितः ।  
 बभूः पार्थिवश्रेष्ठ यज्ञास्तस्य समंततः ॥ १  
 श्रान्तात्मा पार्थिवश्रेष्ठ विशश्राम तदा गुरुः ।  
 तं गत्वा पार्थिवश्रेष्ठो निर्मिर्वचनमब्रवीत् ॥ २  
 भगवन् यष्टुमिच्छामि तन्मां याजय मा चिरम् ।  
 तमुवाच महातेजा वसिष्ठः पार्थिवोत्तमम् ॥ ३  
 कञ्चित्कालं प्रतीक्षस्व तव यज्ञैः सुसत्तमैः ।  
 श्रान्तोऽस्मि राजन् विश्रम्य याजयिष्यामि ते नृप ॥ ४  
 एवमुक्तः प्रत्युवाच वसिष्ठं नृपसत्तमः ।  
 पारलौकिककार्ये तु कः प्रतीक्षितुमुत्सहेत् ॥ ५  
 न च मे सौहृदं ब्रह्मन् कृतान्तेन बलीयसा ।  
 धर्मकार्ये त्वरा कार्या चलं यस्माद्वि जीवितम् ॥ ६  
 धर्मपथ्यौदनो जन्मुर्मृतोऽपि सुखमश्नुते ।  
 श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाङ्गे चापराह्लिकम् ॥ ७  
 न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं चास्य न वा कृतम् ।  
 क्षेत्रापणगृहासत्कमन्यत्रगतमानसम् ॥ ८  
 वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ।  
 न कालस्य प्रियः कश्चिद्द्वेष्यश्चास्य न विद्यते ॥ ९  
 आयुष्ये कर्मणि क्षीणे प्रसह्य हरते जनम् ।  
 प्राणवायोश्चलत्वं च त्वया विदितमेव च ॥ १०  
 यदत्र जीव्यते ब्रह्मन् क्षणमात्रं तदद्दुतम् ।  
 शरीरं शाश्वतं मन्ये विद्याभ्यासे धनार्जने ॥ ११  
 अशाश्वतं धर्मकार्ये ऋणवानस्मि संकटे ।  
 सोऽहं सम्भृतसम्भारो भवन्मूलमुपागतः ॥ १२  
 न चेद् याजयसे मां त्वमन्यं यास्यामि याजकम् ।

मत्स्यभगवान् ने कहा—राजसत्तम! महातेजस्वी वसिष्ठजी निमिके पूर्व पुरोहित थे। उनके सदा चारों ओर यज्ञ होते रहते थे। पार्थिवश्रेष्ठ! किसी समय यज्ञोंका सम्पादन करानेसे श्रान्त हुए गुरु वसिष्ठ विश्राम कर रहे थे, उसी समय राजाओंमें श्रेष्ठ निमिने उनके पास जाकर इस प्रकार कहा—‘भगवन्! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ, अतः मेरा यज्ञ कराइये, देर मत कीजिये।’ यह सुनकर महातेजस्वी वसिष्ठजीने राजश्रेष्ठ निमिसे कहा—‘राजन्! मैं आपके श्रेष्ठ यज्ञोंका अनुष्ठान करानेसे थक गया हूँ, अतः कुछ कालतक प्रतीक्षा कीजिये। नरेश! विश्राम कर लेनेके बाद मैं पुनः आपका यज्ञ कराऊँगा।’ ऐसा कहे जानेपर राजश्रेष्ठ निमिने वसिष्ठजीको इस प्रकार उत्तर दिया—‘ब्रह्मन्! परलोक-सम्बन्धी कार्यमें कौन मनुष्य प्रतीक्षा करना चाहेगा? बलवान् यमराजसे मेरी कोई मित्रता तो है नहीं, अतः धर्मकार्यमें शीघ्रता ही करनी चाहिये; क्योंकि जीवन क्षणभङ्गुर है। धर्मरूप ओदनको पथ्य बनानेवाला प्राणी मरनेपर भी सुखका उपभोग करता है। इसलिये कल होनेवाले कार्यको आज ही एवं दूसरे प्रहरमें सम्पादित होनेवाले कार्यको पूर्वप्रहरमें ही सम्पन्न कर लेना चाहिये; क्योंकि मृत्यु इस बातकी प्रतीक्षा नहीं करती कि इसने अपना कार्य कर लिया है अथवा नहीं। अतः मृत्यु खेत, बाजार और गृहमें आसक्त या अन्यत्र कहीं आसक्त मनवाले मनुष्यको उसी प्रकार लेकर चल देती है, जैसे भेड़िया मृगके बच्चेको लेकर चला जाता है। कालका न तो कोई प्रिय है और न कोई द्वेष्य ही है। आयुके साधक कर्मके क्षीण होते ही वह बलपूर्वक मनुष्यका अपहरण कर लेता है। प्राणवायुकी चञ्चलता तो आप भी जानते ही हैं। ब्रह्मन्! ऐसी दशामें जो क्षणभर भी जीवित रहता है, यही आश्र्य है। विद्याके अभ्यास और धनके उपार्जनमें शरीरको चिरस्थायी समझना चाहिये, किंतु धर्म-कार्यमें उसे क्षणभङ्गुर मानना चाहिये। ऐसे संकटके समय मैं ऋणी बन गया हूँ, अतः मैं सभी द्रव्योंका आयोजन कर आपके चरणोंके निकट आया हूँ। यदि इस समय आप मेरा यज्ञ नहीं करायेंगे तो मैं किसी अन्य याजकके पास जाऊँगा’॥१—१२ ३॥

एवमुक्तस्तदा तेन निमिना ब्राह्मणोत्तमः ॥ १३  
 शशाप तं निमिं क्रोधाद् विदेहस्त्वं भविष्यसि ।  
 श्रान्तं मां त्वं समुत्सृज्य यस्मादन्यं द्विजोत्तमम् ॥ १४  
 धर्मज्ञस्तु नरेन्द्र त्वं याजकं कर्तुमिच्छसि ।  
 निमिस्तं प्रत्युवाचाथ धर्मकार्यरतस्य मे ॥ १५  
 विघ्नं करोषि नान्येन याजनं च तथेच्छसि ।  
 शापं ददामि तस्मात् त्वं विदेहोऽथ भविष्यसि ॥ १६  
 एवमुक्ते तु तौ जातौ विदेहौ द्विजपार्थिवौ ।  
 देहहीनौ तयोर्जीवौ ब्रह्मणमुपजग्मतुः ॥ १७  
 तावागतौ समीक्ष्याथ ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।  
 अद्यप्रभृति ते स्थानं निमिजीव ददाम्यहम् ॥ १८  
 नेत्रपक्षमसु सर्वेषां त्वं वसिष्यसि पार्थिव ।  
 त्वत्सम्बन्धात् तथा तेषां निमेषः सम्भविष्यति ॥ १९  
 चालयिष्यन्ति तु तदा नेत्रपक्षमाणि मानवाः ।  
 एवमुक्तो मनुष्याणां नेत्रपक्षमसु सर्वशः ॥ २०  
 जगाम निमिजीवस्तु वरदानात् स्वयम्भुवः ।  
 वसिष्ठजीवो भगवान् ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ २१  
 मित्रावरुणयोः पुत्रो वसिष्ठ त्वं भविष्यसि ।  
 वसिष्ठेति च ते नाम तत्रापि च भविष्यति ॥ २२  
 जन्मद्वयमतीतं च तत्रापि त्वं स्मरिष्यसि ।  
 एतस्मिन्नेव काले तु मित्रश्च वरुणस्तथा ॥ २३  
 बद्याश्रममासाद्य तपस्तेपतुरव्ययम् ।  
 तपस्यतोस्तयोरेवं कदाचिन्माधवे ऋतौ ॥ २४  
 पुष्पितद्वुमसंस्थाने शुभे दयितमारुते ।  
 उर्वशी तु वरारोहा कुर्वती कुसुमोच्ययम् ॥ २५  
 सुसूक्ष्मरक्तवसना तयोर्दृष्टिपथं गता ।  
 तां दृष्टेन्दुमुखीं सुभूं नीलनीरजलोचनाम् ॥ २६  
 उभौ चुक्षुभतुर्देवौ तद्रूपपरिमोहितौ ।  
 तपस्यतोस्तयोर्वीर्यमस्खलच्च मृगासने ॥ २७  
 स्कन्नं रेतस्ततो दृष्ट्वा शापभीता वराप्सरा ।  
 चकार कलशे शुक्रं तोयपूर्णं मनोरमे ॥ २८  
 तस्मादृषिवरौ जातौ तेजसाप्रतिमौ भुवि ।  
 वसिष्ठश्चाप्यगस्त्यश्च मित्रावरुणयोः सुतौ ॥ २९

तब उन निमिद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर ब्राह्मणश्रेष्ठ वसिष्ठने क्रोधपूर्वक निमिको शाप देते हुए कहा—‘नरेन्द्र! यदि तुम धर्मके ज्ञाता होकर भी मुझ थके हुए पुरोहितका परित्याग कर किसी अन्य ब्राह्मणश्रेष्ठको याजक बनाना चाहते हो तो तुम शरीररहित हो जाओगे।’ तब निमिने उत्तर दिया—‘मैं धार्मिक कार्यके लिये उद्यत हूँ, किंतु आप इसमें विघ्न डाल रहे हैं तथा दूसरेके द्वारा यज्ञ सम्पन्न होने देना भी नहीं चाहते, अतः मैं भी आपको शाप दे रहा हूँ कि आप भी विदेह हो जायेंगे।’ ऐसा कहते ही वे दोनों ब्राह्मण और राजा शरीररहित हो गये। तब उन दोनोंके देहहीन जीव ब्रह्माके पास गये। उन दोनोंको आया हुआ देखकर ब्रह्मा इस प्रकार बोले—‘निमिरूप जीव! आजसे मैं तुम्हारे लिये एक स्थान दे रहा हूँ। राजन्! तुम सभी प्राणियोंके नेत्रोंके पलकोंमें निवास करोगे। तुम्हारे संयोगसे ही उनके निमेष-उन्मेष (आँखें खुलना और बंद होना) होंगे। तब सभी मानव नेत्रोंके पलकोंको चलाते रहेंगे।’ इस प्रकार कहे जानेपर निमिका जीव ब्रह्माके वरदानसे सभी मनुष्योंके नेत्र-पलकोंपर स्थित हो गया ॥ १३—२० ३ ॥

तदनन्तर भगवान् ब्रह्माने वसिष्ठके जीवसे कहा—‘वसिष्ठ! तुम मित्रावरुणके पुत्र होओगे। वहाँ भी तुम्हारा नाम वसिष्ठ ही होगा और तुम्हें बीते हुए दो जन्मोंका स्मरण बना रहेगा। इसी समय मित्र और वरुण—दोनों बदरिकाश्रममें आकर दुष्कर तपस्यामें तत्पर थे। इस प्रकार उन दोनोंके तपस्यामें रत रहनेपर किसी समय वसन्त-ऋतुमें जब सभी वृक्ष और लताएँ पुष्टि थीं, मन्द-मन्द मनोहर पवन प्रवाहित हो रहा था, सुन्दरी उर्वशी पुष्पोंको चुनती हुई वहाँ आयी। वह महीन लाल वस्त्र धारण किये हुए थी। संयोगवश वह उन दोनों तपस्वियोंकी आँखोंके सामने आ गयी। उसके नेत्र नील कमलके समान थे तथा मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर था। उस सुन्दर भौंहोंवाली उर्वशीको देखकर उसके रूपपर मोहित हो उन दोनों तपस्वियोंका मन क्षुब्ध हो उठा। तब तपस्या करते हुए ही उन दोनोंका वीर्य मृगासनपर स्खलित हो गया। तब शापसे भयभीत हुई सुन्दरी उर्वशीने उस वीर्यको जलपूर्ण मनोरम कलशमें रख दिया। उस कलशसे वसिष्ठ और अगस्त्य नामक दो ऋषिश्रेष्ठ उत्पन्न हुए, जो भूतलपर अनुपम तेजस्वी थे। वे मित्र और वरुणके पुत्र कहलाये। तदनन्तर वसिष्ठने

वसिष्ठस्तूपयेऽथ भगिनीं नारदस्य तु।  
अरुंधतीं वरारोहां तस्यां शक्तिमजीजनत्॥ ३०

शक्तेः पराशरः पुत्रस्तस्य वंशं निबोध मे।  
यस्य द्वैपायनः पुत्रः स्वयं विष्णुरजायत॥ ३१

प्रकाशो जनितो लोके येन भारतचन्द्रमाः।  
येनाज्ञानमोऽन्धस्य लोकस्योत्तमीलनं कृतम्।  
पराशरस्य तस्य त्वं शृणु वंशमनुत्तमम्॥ ३२

काण्डशयो वाहनपो जैह्यपो भौमतापनः।  
गोपालिरेषां पञ्चम एते गौरा: पराशराः॥ ३३

प्रपोहया वाह्यमया: ख्यातेयाः कौतुजातयः।  
हर्यश्चिं पञ्चमो ह्येषां नीला ज्ञेयाः पराशराः॥ ३४

काष्ठायनाः कपिमुखाः काकेयस्था जपातयः।  
पुष्करः पञ्चमशैषां कृष्णा ज्ञेयाः पराशराः॥ ३५

श्राविष्ठायनबालेयाः स्वायष्टाश्चोपयाश्च ये।  
इषीकहस्तश्चेते वै पञ्च इवेताः पराशराः॥ ३६

वाटिको बादरिश्चैव स्तम्बा वै क्रोधनायनाः।  
क्षैमिरेषां पञ्चमस्तु एते श्यामाः पराशराः॥ ३७

खल्यायना वाष्ठायनास्तैलेयाः खलु यूथपाः।  
तन्तिरेषां पञ्चमस्तु एते धूम्राः पराशराः॥ ३८

पराशराणां सर्वेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो मतः।  
पराशरश्च शक्तिश्च वसिष्ठश्च महातपाः।

परस्परमवैवाह्या सर्व एते पराशराः॥ ३९

उक्तास्तवैते नृप वंशमुख्याः।  
पराशराः सूर्यसमप्रभावाः।

येषां तु नामां परिकीर्तितेन  
पापं समग्रं पुरुषो जहाति॥ ४०

देवर्षि नारदकी बहन सुन्दरी अरुंधतीसे विवाह किया और उसके गर्भसे शक्ति नामक पुत्रको उत्पन्न किया। शक्तिके पुत्र पराशर हुए। अब मुझसे उनके वंशका वर्णन सुनिये। स्वयं भगवान् विष्णु पराशरके पुत्र-रूपमें द्वैपायन नामसे उत्पन्न हुए, जिन्होंने इस लोकमें भारतरूपी चन्द्रमाको प्रकाशित किया, जिससे अज्ञानान्धकारसे अन्धे हुए लोगोंके नेत्र खुल गये। अब उन पराशरके श्रेष्ठ वंशकी परम्परा सुनिये॥ २१—३२॥

काण्डशय, वाहनप, जैह्यप, भौमतापन और पाँचवें गोपालि—ये गौर पराशर नामसे प्रसिद्ध हैं। प्रपोहय, वाह्यमय, ख्यातेय, कौतुजाति और पाँचवें हर्यश्चिं—इन्हें नील पराशर जानना चाहिये। काष्ठायन, कपिमुख, काकेयस्थ, जपाति और पाँचवें पुष्कर—इन्हें कृष्ण पराशर समझना चाहिये। श्राविष्ठायन, बालेय, स्वायष्ट, उपय और इषीकहस्त—ये पाँच श्वेत पराशर हैं। वाटिक, बादरि, स्तम्ब, क्रोधनायन और पाँचवें क्षैमि—ये श्याम पराशर हैं। खल्यायन, वाष्ठायन, तैलेय, यूथप और पाँचवें तन्ति—ये धूम्र पराशर हैं। इन सभी पराशरोंके पराशर, शक्ति और महातपस्वी वसिष्ठ—ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं। इन सभी पराशरोंका परस्पर विवाह-सम्बन्ध निषिद्ध है। राजन्! मैंने आपसे सूर्यके समान प्रभावशाली पराशरवंशी गोत्रप्रवर्तक ऋषियोंका वर्णन कर दिया। इनके नामोंके परिकीर्तनसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३३—४०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने पराशरवंशवर्णनं नामैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०१॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रवरानुकीर्तनमें पराशर-वंश-वर्णन नामक दो सौ एकवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २०१॥

## दो सौ दोवाँ अध्याय

गोत्रप्रवरकीर्तनमें महर्षि अगस्त्य, पुलह, पुलस्त्य और क्रतुकी शाखाओंका वर्णन

मत्स्य उवाच

अतः परमगस्त्यस्य वक्ष्ये वंशोद्भवान् द्विजान् ।  
 अगस्त्यश्च करम्भश्च कौसल्याः शकटास्तथा ॥ १  
 सुमेधसो मयोभुवस्तथा गान्धारकायणाः ।  
 पौलस्त्याः पौलहाश्चैव क्रतुवंशभवास्तथा ॥ २  
 त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः ।  
 अगस्त्यश्च महेन्द्रश्च ऋषिश्चैव मयोभुवः ॥ ३  
 परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।  
 पौर्णमासाः पारणाश्च त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः ॥ ४  
 अगस्त्यः पौर्णमासश्च पारणश्च महातपाः ।  
 परस्परमवैवाह्याः पौर्णमासास्तु पारणैः ॥ ५  
 एवमुक्तो ऋषीणां तु वंश उत्तमपौरुषः ।  
 अतः परं प्रवक्ष्यामि किं भवानद्य कथ्यताम् ॥ ६

मनुरुवाच

पुलहस्य पुलस्त्यस्य क्रतोश्चैव महात्मनः ।  
 अगस्त्यस्य तथा चैव कथं वंशस्तदुच्यताम् ॥ ७

मत्स्य उवाच

क्रतुः खल्वनपत्योऽभूद् राजन् वैवस्वतेऽन्तरे ।  
 इध्मवाहं स पुत्रत्वे जग्राह ऋषिसत्तमः ॥ ८  
 अगस्त्यपुत्रं धर्मज्ञमागस्त्याः क्रतवस्ततः ।  
 पुलहस्य तथा पुत्रास्त्रयश्च पृथिवीपते ॥ ९  
 तेषां तु जन्म वक्ष्यामि उत्तरत्र यथाविधि ।  
 पुलहस्तु प्रजां दृष्ट्वा नातिप्रीतमनाः स्वकाम् ॥ १०  
 अगस्त्यजं दृढास्यं तु पुत्रत्वे वृतवांस्ततः ।  
 पौलहाश्च तथा राजन्नागस्त्याः परिकीर्तिताः ॥ ११  
 पुलस्त्यान्वयसम्भूतान् दृष्ट्वा रक्षः समुद्भवान् ।  
 अगस्त्यस्य सुतं धीमान् पुत्रत्वे वृतवांस्ततः ॥ १२  
 पौलस्त्याश्च तथा राजन्नागस्त्याः परिकीर्तिताः ।  
 सगोत्रत्वादिमे सर्वे परस्परमनन्वयाः ॥ १३

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन्! इसके बाद अब मैं अगस्त्यके वंशमें उत्पन्न हुए द्विजोंका वर्णन कर रहा हूँ। अगस्त्य, करम्भ, कौसल्य, शकट, सुमेधा, मयोभुव, गान्धारकायण, पौलस्त्य, पौलह तथा क्रतु-वंशोत्पन्न—इनके अगस्त्य, महेन्द्र और महर्षि मयोभुव—ये तीन शुभ प्रवर माने गये हैं। इनमें परस्पर विवाह नहीं होता। पौर्णमास और पारण—इन ऋषियोंके अगस्त्य, पौर्णमास और महातपस्वी पारण—ये तीन प्रवर हैं। पौर्णमासोंका पारणोंके साथ विवाह निषिद्ध है। राजन्! इस प्रकार मैंने ऋषियोंके उत्तम पुरुषोंसे परिपूर्ण वंशका वर्णन कर दिया। इसके बाद अब मैं किसका वर्णन करूँ, यह अब आप बतलाइये ॥ १—६ ॥

मनुजीने पूछा—भगवन्! पुलह, पुलस्त्य, महात्मा क्रतु और अगस्त्यका वंश कैसा था, इसे बतलाइये ॥ ७ ॥

मत्स्यभगवान् बोले—राजन्! वैवस्वत-मन्वन्तरमें क्रतु जब संतानहीन हो गये, तब उन ऋषिश्रेष्ठोंने अगस्त्यके धर्मज्ञ पुत्र इध्मवाहको पुत्ररूपमें स्वीकार कर लिया। तभीसे अगस्त्यवंशी क्रतुवंशी कहलाने लगे। भूपाल! पुलहके तीन पुत्र थे, उनका जन्म-वृत्तान्त मैं आगे विधिपूर्वक वर्णन करूँगा। पुलहका मन अपनी संतानको देखकर प्रसन्न नहीं रहता था, अतः उन्होंने अगस्त्यके पुत्र दृढास्यको पुत्ररूपमें वरण कर लिया। राजन्! इसीलिये पुलहवंशी अगस्त्यवंशीके नामसे कहे जाते हैं। पुलस्त्य ऋषि अपनी संततिको राक्षसोंसे उत्पन्न होते देखकर अत्यन्त दुःखी हुए। तब उन बुद्धिमान्ने अगस्त्यके पुत्रको पुत्ररूपमें वरण कर लिया। राजन्! तभीसे पुलस्त्यवंशी भी अगस्त्यवंशी कहलाने लगे। सगोत्र होनेके कारण इन सभीमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध वर्जित हैं।

एते तवोक्ताः प्रवरा द्विजानां  
महानुभावा नृप वंशकाराः।  
एषां तु नामां परिकीर्तिनेन  
पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥ १४

नरेश! इस प्रकार मैंने ब्राह्मणोंके वंशप्रवर्तक महानुभाव प्रवरोंका वर्णन कर दिया। इन लोगोंके नामोंका कीर्तन करनेसे मानवके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ८—१४ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने द्वयिधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रवरानुकीर्तनमें अगस्त्यवंश-वर्णन नामक दो सौ दोवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २०२ ॥

## दो सौ तीनवाँ अध्याय

### प्रवरकीर्तनमें धर्मके वंशका वर्णन

मत्स्य उकाच

अस्मिन् वैवस्वते प्राप्ते शृणु धर्मस्य पार्थिव ।	
दाक्षायणीभ्यः सकलं वंशं दैवतमुत्तमम् ॥ १	
पर्वतादिमहादुर्गशरीराणि नराधिप ।	
अरुन्धत्याः प्रसूतानि धर्माद् वैवस्वतेऽन्तरे ॥ २	
अष्टौ च वसवः पुत्राः सोमपाश्च विभोस्तथा ।	
धरो ध्रुवश्च सोमश्च आपश्चैवानलानिलौ ॥ ३	
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ।	
धरस्य पुत्रो द्रविणः कालः पुत्रो ध्रुवस्य तु ॥ ४	
कालस्यावयवानां तु शरीराणि नराधिप ।	
मूर्तिमन्ति च कालाद्वि सम्प्रसूतान्यशेषतः ॥ ५	
सोमस्य भगवान् वर्चाः श्रीमांश्चापस्य कीर्त्यते ।	
अनेकजन्मजननः कुमारस्त्वनलस्य तु ॥ ६	
पुरोजवाश्चानिलस्य प्रत्यूषस्य तु देवलः ।	
विश्वकर्मा प्रभासस्य त्रिदशानां स वर्धकिः ॥ ७	
समीहितकराः प्रोक्ता नागवीथ्यादयो नव ।	
लम्बापुत्रः स्मृतो घोषो भानोः पुत्राश्च भानवः ॥ ८	
ग्रहक्षणां च सर्वेषामन्येषां चामितौजसाम् ।	
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तः सर्वे पुत्राः प्रकीर्तिताः ॥ ९	
संकल्पायाश्च संकल्पस्तथा पुत्रः प्रकीर्तिः ।	
मुहूर्ताश्च मुहूर्तायाः साध्याः साध्यासुताः स्मृताः ॥ १०	

मत्स्यभगवान् कहा—राजन्! इस वैवस्वत मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर धर्मने दक्षकी कन्याओंके गर्भसे जिस उत्तम देव-वंशका विस्तार किया, उसका वर्णन सुनिये। नरेश्वर! इस वैवस्वत मन्वन्तरमें धर्मके द्वारा अरुन्धतीके गर्भसे पर्वत आदि एवं महादुर्गके समान विशालकाय संतान उत्पन्न हुए तथा उन्हीं सर्वव्यापी धर्मसे आठ सोमपायी पुत्र उत्पन्न हुए, जो वसु कहलाते हैं। उनके नाम हैं—धर, ध्रुव, सोम, आप, अनल, अनिल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु कहे गये हैं। धरका पुत्र द्रविण और ध्रुवका पुत्र काल हुआ। नरेश! कालके अवयवोंके जितने मूर्तिमान् शरीर हैं, वे सभी कालसे ही उत्पन्न हुए हैं। सोमके प्रभावशाली पुत्रको वर्चा और आपके पुत्रको श्रीमान् कहा जाता है। अनेक जन्म धारण करनेवाला कुमार अनलका पुत्र हुआ। अनिलका पुत्र पुरोजव और प्रत्यूषका पुत्र देवल हुआ। प्रभासका पुत्र विश्वकर्मा हुआ जो देवताओंका बद्री है ॥ १—७ ॥

नागवीथी आदि नव सन्तति अभीष्टको पूर्ण करनेवाली है। लम्बाका पुत्र घोष और भानुके पुत्र भानव (बारह आदित्य) कहे गये हैं, जो ग्रहों, नक्षत्रों एवं अन्य सभी अमित ओजस्वियोंमें बढ़-चढ़कर हैं। सभी मरुदण्ड मरुत्वतीके पुत्र हैं तथा संकल्पाका पुत्र संकल्प कहा जाता है। मुहूर्तके पुत्र मुहूर्त और साध्याके पुत्र साध्यगण

मनो मनुश्च प्राणश्च नरोषा नोच वीर्यवान् ।  
 चित्तहार्योऽयनश्चैव हंसो नारायणस्तथा ॥ ११  
 विभुशापि प्रभुश्चैव साध्या द्वादश कीर्तिः ।  
 विश्वायाश्च तथा पुत्रा विश्वेदेवाः प्रकीर्तिः ॥ १२  
 क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालकामो मुनिस्तथा ।  
 कुरजो मनुजो वीजो रोचमानश्च ते दश ॥ १३  
 एतावदुक्तस्तव धर्मवंशः  
 संक्षेपतः पार्थिववंशमुख्य ।  
 व्यासेन वक्तुं न हि शक्यमस्ति  
 राजन् विना वर्षशतैरनेकैः ॥ १४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे धर्मवंशवर्णने धर्मप्रवरानुकीर्तनं नाम त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०३ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके धर्मवंशवर्णनमें धर्म-प्रवरानुकीर्तन नामक दो सौ तीनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २०३ ॥

कहे गये हैं। मन, मनु, प्राण, नरोषा, नोच, वीर्यवान्, चित्तहार्य, अयन, हंस, नारायण, विभु और प्रभु—ये बारह साध्य कहे गये हैं। विश्वाके पुत्र विश्वेदेव कहे जाते हैं। क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, कालकाम, मुनि, कुरज, मनुज, बीज और रोचमान—ये दस विश्वेदेव हैं। राजवंशश्रेष्ठ! मैंने आपसे यहाँतक धर्मके वंशका संक्षेपसे वर्णन कर दिया। राजन्! अनेक सैकड़ों वर्षोंके बिना इसका विस्तारसे वर्णन करना सम्भव नहीं है ॥ ८—१४ ॥

## दो सौ चारवाँ अध्याय

### श्राद्धकल्प—पितृगाथा-कीर्तन

मत्स्य उवाच

एतद्वंशभवा विप्राः श्राद्धे भोज्याः प्रयत्नतः ।  
 पितृणां वल्लभं यस्मादेषु श्राद्धं नरेश्वर ॥ १  
 अतः परं प्रवक्ष्यामि पितृभिर्याः प्रकीर्तिः ।  
 गाथाः पार्थिवशार्दूल कामयद्धिः पुरे स्वके ॥ २  
 अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं यो नो दद्याज्जलाञ्जलिम् ।  
 नदीषु बहुतोयासु शीतलासु विशेषतः ॥ ३  
 अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं यः श्राद्धं नित्यमाचरेत् ।  
 पयोमूलफलैर्भक्ष्यैस्तिलतोयेन वा पुनः ॥ ४  
 अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं यो नो दद्यात्रयोदशीम् ।  
 पायसं मधुसर्पिर्भ्या वर्षासु च मधासु च ॥ ५  
 अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं खड्गमांसेन यः सकृत् ।  
 श्राद्धं कुर्यात् प्रयत्नेन कालशाकेन वा पुनः ॥ ६  
 कालशाकं महाशाकं मधु मुन्यन्नमेव च ।  
 विषाणवर्जा ये खड्गा आसूर्य तदशीमहि ॥ ७  
 गयायां दर्शने राहोः खड्गमांसेन योगिनाम् ।  
 भोजयेत् कः कुलेऽस्माकं छायायां कुञ्जरस्य च ॥ ८

मत्स्यभगवान् कहा—नरेश्वर! इन धर्मके वंशमें उत्पन्न हुए विप्रोंको श्राद्धमें प्रयत्नपूर्वक भोजन कराना चाहिये; क्योंकि इन ब्राह्मणोंके सम्बन्धसे किया हुआ श्राद्ध पितरोंको अतिशय प्रिय है। राजसिंह! इसके बाद अब मैं उस गाथाका वर्णन कर रहा हूँ जिसका अपने पुरमें स्थित कामना करनेवाले पितरोंने कथन किया था। क्या हमलोगोंके वंशमें कोई ऐसा व्यक्ति जन्म लेगा जो अधिक एवं शीतल जलवाली नदियोंमें जाकर हमलोगोंको जलाञ्जलि देगा? क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा व्यक्ति जन्म लेगा जो दूध, मूल, फल और खाद्य सामग्रियोंसे या तिलसहित जलसे नित्य श्राद्ध करेगा? क्या हमारे वंशमें कोई ऐसा व्यक्ति जन्म लेगा जो वर्षा-ऋतुके मधानक्षत्रकी त्रयोदशी तिथिको मधु और घीसे मिश्रित दूधमें पका हुआ खाद्य पदार्थ हमें समर्पित करेगा? क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा व्यक्ति जन्म लेगा, जो कालशाकसे श्राद्ध करेगा? कालशाक, महाशाक, मधु और मुनिजनोंके अनुकूल अन्त्रोंको हमलोग सूर्यस्तसे पूर्व ही ग्रहण करते हैं। हमारे कुलमें उत्पन्न हुआ कौन व्यक्ति सूर्यग्रहणके अवसरपर अर्थात् राहुके दर्शनकालतक गयातीर्थमें एवं गजच्छायायोगमें योगियोंको फलके गूदेका भोजन करायेगा?

आकल्पकालिकी तृमिस्तेनास्माकं भविष्यति ।  
दाता सर्वेषु लोकेषु कामचारो भविष्यति ॥ ९  
आभूतसम्प्लवं कालं नात्र कार्या विचारणा ।  
यदेतत्पञ्चकं तस्मादेकेनापि वयं सदा ॥ १०  
तृमिं प्राप्त्याम चानन्तां किं पुनः सर्वसम्पदा ।  
अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं दद्यात् कृष्णाजिनं च यः ॥ ११  
अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं कश्चित् पुरुषसत्तमः ।  
प्रसूयमानां यो धेनुं दद्याद् ब्राह्मणपुङ्गवे ॥ १२  
अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं वृषभं यः समुत्सृजेत् ।  
सर्ववर्णविशेषेण शुक्लं नीलं वृषं तथा ॥ १३  
अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं यः कुर्याच्छ्रद्धयान्वितः ।  
सुवर्णदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च ॥ १४  
अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं कश्चित् पुरुषसत्तमः ।  
कूपारामतडागानां वापीनां यश्च कारकः ॥ १५  
अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं सर्वभावेन यो हरिम् ।  
प्रयायाच्छरणं विष्णुं देवेशं मधुसूदनम् ॥ १६  
अपि नः स कुले भूयात् कश्चिद् विद्वान् विचक्षणः ।  
धर्मशास्त्राणि यो दद्याद् विधिना विदुषामपि ॥ १७  
एतावदुक्तं तत्र भूमिपाल  
श्राद्धस्य कल्पं मुनिसम्प्रदिष्टम् ।  
पापापहं पुण्यविवर्धनं च  
लोकेषु मुख्यत्वकरं तथैव ॥ १८  
इत्येतां पितृगाथां तु श्राद्धकाले तु यः पितृन् ।  
श्रावयेत्तस्य पितरो लभन्ते दत्तमक्षयम् ॥ १९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पितृगाथाकीर्तनं नाम चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें पितृगाथानुकीर्तन नामक दो सौ चारवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २०४ ॥

इन खाद्य पदार्थोंसे हमलोगोंको कल्पपर्यन्त तृसि बनी रहती है और दाता प्रलयकालपर्यन्त सभी लोकोंमें स्वेच्छानुसार विचरण करता है—इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। पूर्वकथित इन पाँचोंमेंसे एकसे भी हमलोग सदा अनन्त तृसि प्राप्त करते हैं, फिर सभीके द्वारा करनेपर तो कहना ही क्या है? क्या हमारे वंशमें कोई ऐसा व्यक्ति उत्पन्न होगा, जो कृष्णमृगचर्मका दान देगा? ॥ १—११ ॥

क्या हमारे वंशमें कोई ऐसा नरश्रेष्ठ पैदा होगा, जो ब्राह्मणश्रेष्ठको व्याती हुई गायका दान देगा? क्या हमारे वंशमें कोई ऐसा व्यक्ति जन्म लेगा, जो वृषभका उत्सर्ग करेगा? वह वृष विशेषरूपसे सभी रङ्गोंकी अपेक्षा नील अथवा शुक्ल वर्णका होना चाहिये। क्या हमलोगोंके कुलमें कोई ऐसा व्यक्ति उत्पन्न होगा, जो श्रद्धासम्पन्न होकर सुवर्ण-दान, गो-दान और पृथ्वीदान करेगा? क्या हमारे वंशमें कोई ऐसा पुरुषश्रेष्ठ पैदा होगा, जो कूप, बगीचा, सरोवर और बावलियोंका निर्माण करायेगा? क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा व्यक्ति जन्म ग्रहण करेगा जो सभी प्रकारसे मधु दैत्यके नाशक देवेश भगवान् विष्णुकी शरण ग्रहण करेगा? क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा प्रतिभाशाली विद्वान् होगा, जो विद्वानोंको विधिपूर्वक धर्मशास्त्रकी पुस्तकोंका दान देगा? भूपाल! मैंने इस प्रकार आपसे मुनियोंद्वारा कही गयी इस श्राद्धकर्मकी विधिका वर्णन कर दिया। यह पापनाशिनी, पुण्यको बढ़ानेवाली एवं संसारमें प्रमुखता प्रदान करनेवाली है। जो श्राद्धके समय पितरोंको यह पितृगाथा सुनाता है उसके पितर दिये गये पदार्थोंको अक्षयरूपमें प्राप्त करते हैं ॥ १२—१९ ॥

## दो सौ पाँचवाँ अध्याय

### धेनु-दान-विधि

मनुरुक्ताच

प्रसूयमाना दातव्या धेनुब्राह्मणपुङ्गवे ।  
विधिना केन धर्मज्ञ दानं दद्याच्य किं फलम् ॥ १

मत्स्य उक्ताच

स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां मुक्तालाङ्गूलभूषिताम् ।  
कांस्योपदोहनां राजन् सवत्सां द्विजपुङ्गवे ॥ २

प्रसूयमानां गां दत्त्वा महत्पुण्यफलं लभेत् ।  
यावद्वृत्सो योनिगतो यावद्भर्भ न मुञ्चति ॥ ३

तावद् वै पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना ।  
प्रसूयमानां यो दद्याद् धेनुं द्रविणसंयुताम् ॥ ४

ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना ।  
चतुरन्ता भवेद् दत्ता पृथिवी नात्र संशयः ॥ ५

यावन्ति धेनुरोमाणि वत्सस्य च नराधिप ।  
तावत्संख्यं युगगणं देवलोके महीयते ॥ ६

पितृन् पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान् ।  
उद्धरिष्यत्यसंदेहं नरकाद् भूरिदक्षिणः ॥ ७

घृतक्षीरवहाः कुल्या दधिपायसकर्दमाः ।  
यत्र तत्र गतिस्तस्य द्रुमाश्चेप्सितकामदाः ।

गोलोकः सुलभस्तस्य ब्रह्मलोकश्च पार्थिव ॥ ८

स्त्रियश्च तं चन्द्रसमानवक्त्राः  
प्रतसजाम्बूनदतुल्यरूपाः ।

महानितम्बास्तनुवृत्तमध्या  
भजन्त्यजस्त्रं नलिनाभनेत्राः ॥ ९

इति श्रीमात्ये महापुराणे धेनुदानं नाम पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०५ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें धेनु-दान-माहात्म्य नामक दो सौ पाँचवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २०५ ॥

मनुजीने पूछा—धर्मके तत्त्वोंको जाननेवाले भगवन्!  
श्रेष्ठ ब्राह्मणको व्याती हुई गौका दान किस विधिसे देना चाहिये और उस दानसे क्या फल प्राप्त होता है? ॥ १ ॥

मत्स्यभगवान् बोले—राजन्! जिसके सींग सुवर्णजटित हों, खुर चाँदीसे मढ़े गये हों, जिसकी पूँछ मोतियोंसे सुशोभित हो तथा जिसके निकट काँसेकी दोहनी रखी हो, ऐसी सवत्सा गौका दान श्रेष्ठ ब्राह्मणको देना चाहिये। व्याती हुई गायका दान करनेपर महान् पुण्यफल प्राप्त होता है। जबतक बछड़ा योनिके भीतर रहता है एवं जबतक गर्भको नहीं छोड़ता, तबतक उस गौको वन-पर्वतोंसहित पृथ्वी समझना चाहिये। जो व्यक्ति द्रव्यसहित व्याती हुई गायका दान देता है, उसने मानो सभी समुद्र, गुफा, पर्वत और जंगलोंके साथ चतुर्दिव्यास पृथ्वीका दान कर दिया, इसमें संदेह नहीं है। नरेश्वर! उस बछड़ेके तथा गौके शरीरमें जितने रोए होते हैं उतने युगोंतक दाता देवलोकमें पूजित होता है। विपुल दक्षिणा देनेवाला मनुष्य निश्चय ही अपने पिता, पितामह तथा प्रपितामहका नरकसे उद्धार कर देता है। वह जहाँ-कहीं जाता है, वहाँ उसे दही और पायसरूपी कीचड़से युक्त घृत एवं क्षीरकी नदियाँ प्राप्त होती हैं तथा मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाले वृक्ष प्राप्त होते रहते हैं। राजन्! उसे गोलोक और ब्रह्मलोक सुलभ हो जाते हैं तथा चन्द्रमुखी, तपाये हुए सुवर्णके समान वर्णवाली, स्थूल नितम्बवाली, पतली कमरसे सुशोभित, कमलनयनी स्त्रियाँ निरन्तर उसकी सेवा करती हैं ॥ २—९ ॥

## दो सौ छठा अध्याय

कृष्णमृगचर्मके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

मनुरुवाच

कृष्णाजिनप्रदानस्य विधिकालौ ममानघ ।

ब्राह्मणं च तथाऽऽचक्ष्व तत्र मे संशयो महान् ॥ १

मत्य उवाच

वैशाखी पौर्णमासी च ग्रहणे शशिसूर्ययोः ।

पौर्णमासी तु या माघी ह्याषाढ़ी कार्तिकी तथा ॥ २

उत्तरायणे च द्वादश्यां तस्यां दत्तं महाफलम् ।

आहिताग्निर्द्विंजो यस्तु तद् देयं तस्य पार्थिव ॥ ३

यथा येन विधानेन तमे निगदतः शृणु ।

गोमयेनोपलिप्ते तु शुचौ देशे नराधिप ॥ ४

आदावेव समास्तीर्य शोभनं वस्त्रमाविकम् ।

ततः सशृङ्गं सखुरमास्तरेत् कृष्णमार्गकम् ॥ ५

कर्तव्यं रुक्मशृङ्गं तद् रौप्यदत्तं तथैव च ।

लाङ्गलं मौक्तिकैर्युक्तं तिलच्छन्नं तथैव च ॥ ६

तिलैः सुपूरितं कृत्वा वाससाऽऽच्छादयेद् बुधः ।

सुवर्णनाभं तत् कुर्यादलंकुर्याद् विशेषतः ॥ ७

रत्नैर्गन्धैर्यथाशक्त्या तस्य दिशु च विन्यसेत् ।

कांस्यपात्राणि चत्वारि तेषु दद्याद् यथाक्रमम् ॥ ८

मृणमयेषु च पात्रेषु पूर्वादिषु यथाक्रमम् ।

घृतं क्षीरं दधि क्षौद्रमेवं दद्याद् यथाविधि ॥ ९

चम्पकस्य तथा शाखामब्रणं कुर्मभेव च ।

बाह्योपस्थानकं कृत्वा शुभचित्तो निवेशयेत् ॥ १०

सूक्ष्मवस्त्रं शुभं पीतं मार्जनार्थं प्रयोजयेत् ।

तथा धातुमयं पात्रं पादयोस्तस्य दापयेत् ॥ ११

यानि कानि च पापानि मया लोभात् कृतानि वै ।

लौहपात्रादिदानेन प्रणश्यन्तु ममाशु वै ॥ १२

मनुजीने पूछा—निष्पाप परमात्मन् ! कृष्ण मृगचर्म प्रदान करनेकी विधि, उसका समय तथा कैसे ब्राह्मणको दान देना चाहिये—इसका विधान मुझे बताइये । इस विषयमें मुझे महान् संदेह है ॥ १ ॥

मत्यभगवान् बोले—राजन् ! वैशाखकी पूर्णिमाको, चन्द्रमा एवं सूर्यके ग्रहणके अवसरपर, माघ, आषाढ़ तथा कार्तिककी पूर्णिमा तिथिमें, सूर्यके उत्तरायण रहनेपर तथा द्वादशी तिथिमें (कृष्णमृगचर्मके) दानका महाफल कहा गया है । जो ब्राह्मण नित्य अग्न्याधान करनेवाला हो उसीको वह दान देना चाहिये । अब जिस प्रकार और जिस विधानसे वह दान देना चाहिये, उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनिये । नरेश्वर ! पवित्र स्थानपर गोबरसे लिपी हुई पृथ्वीपर सर्वप्रथम सुन्दर ऊनी वस्त्र बिछाकर फिर खुर और सींगोंसे युक्त उस कृष्णमृगचर्मको बिछा दे । उस मृगचर्मके सींगोंको सुवर्णसे, दाँतोंको चाँदीसे, पूँछको मोतियोंसे अलङ्कृत कर उसे तिलोंसे आवृत कर दे । बुद्धिमान् पुरुष उस मृगचर्मको तिलोंसे पूरित कर वस्त्रसे ढक दे । उसकी सुवर्णमय नाभि बनाकर उसे अपनी शक्तिके अनुकूल रलों तथा सुगन्धित पदार्थोंसे विशेषरूपसे अलङ्कृत कर दे । फिर क्रमानुसार काँसेके बने हुए चार पात्रोंको उसकी चारों दिशाओंमें रखे । फिर पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमशः चार मिट्टीके पात्रोंमें घृत, दुध, दही तथा मधु विधिवत् भर दे । तदुपरान्त चम्पककी एक डाल तथा छिद्ररहित एक कलश बाहर पूर्वकी ओर मङ्गलमय भावनासे स्थापित करे ॥ २—१० ॥

मार्जनके लिये एक सुन्दर महीन पीले वस्त्रका प्रयोग करे तथा धातु-निर्मित पात्र उसके दोनों पैरोंके पास रख दे । तत्पश्चात् ऐसा कहे कि 'मैंने लोभमें पड़कर जिन-जिन पापोंको किया है, वे लौहमय पात्रादिका दान करनेसे शीघ्र ही नष्ट हो जायें ।'

तिलपूर्णं ततः कृत्वा वामपादे निवेशयेत्।  
 यानि कानि च पापानि कर्मोत्थानि कृतानि च ॥ १३  
 कांस्यपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा।  
 मधुपूर्णं तु तत् कृत्वा पादे वै दक्षिणे न्यसेत् ॥ १४  
 परापवादपैशुन्याद् वृथा मांसस्य भक्षणात्।  
 तत्रोत्थितं च मे पापं ताम्रपात्रात् प्रणश्यतु ॥ १५  
 कन्यानृताद् गवां चैव परदाराभिमर्षणात्।  
 रौप्यपात्रप्रदानाद्ब्रिं क्षिप्रं नाशं प्रयातु मे ॥ १६  
 ऊर्ध्वपादे त्विमे कार्यं ताम्रस्य रजतस्य च।  
 जन्मान्तरसहस्रेषु कृतं पापं कुबुद्धिना ॥ १७  
 सुवर्णपात्रदानात् तु नाशयाशु जनार्दन।  
 हेममुक्ता विद्वुमं च दाढिमं बीजपूरकम् ॥ १८  
 प्रशस्तपात्रे श्रवणे खुरे शृङ्गाटकानि च।  
 एवं कृत्वा यथोक्तेन सर्वशाकफलानि च ॥ १९  
 तत्प्रतिग्रहविद् विद्वानाहिताग्निर्द्विजोत्तमः।  
 स्नातो वस्त्रयुगच्छन्नः स्वशक्त्या चाप्यलङ्घतः ॥ २०  
 प्रतिग्रहश्च तस्योक्तः पुच्छदेशे महीपते।  
 तत एवं समीपे तु मन्त्रमेनमुदीरयेत् ॥ २१  
 कृष्णाजिनेति कृष्णान् हिरण्यं मधुसर्पिषी।  
 ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥ २२  
 यस्तु कृष्णाजिनं दद्यात् सखुं शृङ्गसंयुतम्।  
 तिलैः प्रच्छाद्य वासोभिः सर्ववस्त्रैरलंकृतम् ॥ २३  
 वैशाख्यां पौर्णमास्यां तु विशाखायां विशेषतः।  
 ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना ॥ २४  
 समद्वीपान्विता दत्ता पृथिवी नात्र संशयः।  
 कृष्णकृष्णाङ्गलो देवः कृष्णाजिन नमोऽस्तु ते ॥ २५  
 सुवर्णदानात् त्वददानाद् धूतपापस्य प्रीयताम्।  
 त्रयस्त्रिंशत्सुराणां त्वमाधारत्वे व्यवस्थितः ॥ २६  
 कृष्णोऽसि मूर्तिमान् साक्षात् कृष्णाजिन नमोऽस्तु ते।  
 सुवर्णनाभिकं दद्यात् प्रीयतां वृषभध्वजः ॥ २७

फिर काँसेके पात्रको तिलोंसे भरकर बायें पैरके पास रखे और कहे कि 'मैंने प्रसङ्गवश जिन-जिन पापोंका आचरण किया है, मेरे वे सभी पाप इस कांस्य-पात्रके दानसे सदाके लिये नष्ट हो जायें।' फिर ताम्र-पात्रमें मधु भरकर दाहिने पैरके पास रखे और कहे कि 'दूसरेकी निन्दा या चुगुली करने अथवा किसी अवैध मांसका भक्षण करनेसे उत्पन्न हुआ मेरा पाप इस ताम्र-पात्रका दान करनेसे नष्ट हो जाय।' 'कन्या और गौके लिये मिथ्या कहनेसे तथा परकीय स्त्रीका स्पर्श करनेसे जो पाप उत्पन्न हुआ हो, मेरा वह पाप चाँदीके पात्रदानसे शीघ्र ही नष्ट हो जाय।' चाँदी तथा ताँबेके बने हुए पात्रोंको पैरके ऊपरी भागमें रखना चाहिये। 'जनार्दन! मैंने अपनी दुष्ट बुद्धिके द्वारा हजारों जन्मोंमें जो पाप किया है उसे आप सुवर्णपात्रके दानसे शीघ्र ही नष्ट कर दें।' यह मन्त्र सुवर्णपात्र दान करते समय कहे। उस समय सुवर्ण, मोती, मूँगा, अनार और बिजौरा नींबूको अच्छे पात्रमें रखकर उस मृगचर्मके कान, खुर और सींगपर स्थापित कर दे। यथोक्त विधिके अनुसार ऐसा करके सभी प्रकारके शाक-फलोंको भी रख दे। महीपते! तत्पश्चात् जो ब्राह्मणश्रेष्ठ प्रतिग्रहकी विधिका ज्ञाता, विद्वान् और अग्न्याधान करने-वाला हो तथा स्नानके पश्चात् दो सुन्दर वस्त्रको धारणकर अपनी शक्तिके अनुसार अलंकृत भी हो, ऐसे ब्राह्मणको उस मृगचर्मके पुच्छदेशमें दान देनेका विधान है। उस समय उसके समीप इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। जो 'कृष्णाजिनेति०'—इस मन्त्रका उच्चारण कर कृष्णमृगचर्म, सुवर्ण, मधु और धृत ब्राह्मणको दान करता है, वह सभी दुष्कर्मोंसे छूट जाता है ॥ ११—२२ ॥

जो मनुष्य खुर तथा सींगसहित कृष्णमृगचर्मको तिलोंसे ढककर एवं सभी प्रकारके वस्त्रोंसे अलङ्घत कर विशेषतया विशाखा नक्षत्रसे युक्त वैशाखमासकी पूर्णिमा तिथिको दान करता है, उसने निःसंदेह समुद्रों, गुफाओं, पर्वतों एवं जंगलोंसमेत सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीका दान कर दिया। कृष्णाजिन! तुम कृष्णस्वरूपधारी देवता हो, तुम्हें नमस्कार है। सुवर्णदान तथा तुम्हारे दानसे जिसके समस्त पाप नष्ट हो गये हैं, ऐसे मुझपर तुम प्रसन्न हो जाओ। कृष्णाजिन! तुम तींतीस देवताओंके आधार-स्वरूप निश्चित किये गये हो और साक्षात् मूर्तिमान् श्रीकृष्ण हो, तुम्हें प्रणाम है। पुनः वृषभध्वज शंकर मुझपर प्रसन्न हो जायें—इस भावनासे सुवर्णयुक्त नाभिवाले मृगचर्मका दान

कृष्णः कृष्णागलो देवः कृष्णाजिनधरस्तथा ।  
तद्वानाद्वतपापस्य प्रीयतां वृषभध्वजः ॥ २८  
अनेन विधिना दत्त्वा यथावत् कृष्णमार्गकम् ।  
न स्पृश्योऽसौ द्विजो राजश्चित्यूपसमो हि सः ॥ २९  
तं दाने श्राद्धकाले च दूरतः परिवर्जयेत् ।  
स्वगृहात् प्रेष्य तं विप्रं मङ्गलस्नानमाचरेत् ॥ ३०  
पूर्णकुम्भेन राजेन्द्र शाखया चम्पकस्य तु ।  
कृत्वा ऽचार्यश्च कलशं मन्त्रेणानेन मूर्धनि ॥ ३१  
आप्यायस्व समुद्रज्येष्ठा ऋचा संस्नाय्य षोडश ।  
अहते वाससी वीत आचान्तः शुचितामियात् ॥ ३२  
तद्वासः कुम्भसहितं नीत्वा क्षेप्य चतुष्पथे ।  
ततो मण्डलमाविशेत् कृत्वा देवान् प्रदक्षिणम् ॥ ३३  
पीते वृत्ते सपत्नीकं मार्जयेद् याज्यकं द्विजः ।  
मार्जयेन्मुक्तिकामं तु ब्राह्मणेन घटेन वै ॥ ३४  
श्रीकामं वैष्णवेनेह कलशेन तु पार्थिव ।  
राज्यकामं तथा मूर्ध्णि ऐन्द्रेण कलशेन तु ॥ ३५  
द्रव्यप्रतापकामं तु आग्नेयघटवारिणा ।  
मृत्युञ्जयविधानाय याम्येन कलशेन तु ॥ ३६  
ततस्तु तिलकं कार्यं ब्राह्मणेभ्यस्तु दक्षिणाम् ।  
दत्त्वा तत्कर्मसिद्ध्यर्थं ग्राहा ऽशीस्तु विशेषतः ॥ ३७  
कृतेनानेन या तुष्टिर्न सा शक्या सुरैरपि ।  
वक्तुं हि नृपतिश्रेष्ठं तथाप्युद्देशतः शृणु ॥ ३८  
समग्रभूमिदानस्य फलं प्राज्ञोत्यसंशयम् ।  
सर्वाल्लोकांश्च जयति कामचारी विहङ्गवत् ॥ ३९  
आभूतसम्प्लवं तावत् स्वर्गमाणोत्यसंशयम् ।  
न पिता पुत्रमरणं वियोगं भार्या सह ॥ ४०

करना चाहिये । जो श्यामवर्ण, कृष्णकण्ठ तथा कृष्णचर्म धारण करनेवाले देवता हैं, आपके दानसे पापशून्य हुए मुझपर वे शंकर प्रसन्न हों। राजन्! उपर्युक्त विधिसे कृष्णमृगचर्मका दान देनेके पश्चात् उस प्रतिगृहीता ब्राह्मणका स्पर्श नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह (श्मशानस्था अस्पृश्या) चिताके खूंटेके समान हो जाता है। उसका श्राद्ध और दानके समय दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये । उस ब्राह्मणको अपने घरसे विदाकर फिर मङ्गलस्नान करनेका विधान है ॥ २३—३० ॥

राजेन्द्र! तत्पश्चात् आचार्य चम्पककी शाखासे युक्त जलपूर्ण कलशके जलसे दाताके मस्तकपर 'आप्यायस्व समुद्रज्येष्ठा०' आदि सोलह ऋचाओंसे अभिषेचन करे, तब वह दो बिना फटे वस्त्रोंको पहनकर आचमन करके पवित्र होता है । पुनः उस वस्त्रको कलशमें डालकर उसे चौराहेपर फेंक दे । इसके बाद देवताओंकी प्रदक्षिणा कर मण्डपमें प्रवेश करे । तदनन्तर ब्राह्मण उस पीत वस्त्रधारी सपत्नीक यजमानका मार्जन करे । यदि यजमान मुक्तिकी इच्छा रखता हो तो ब्राह्मणसम्बन्धी घटसे उसका मार्जन करे । राजन्! यदि यजमान लक्ष्मीका अभिलाषी हो तो विष्णुसम्बन्धी कलशके जलसे उसका मार्जन करे । यदि राज्यकी कामना हो तो इन्द्रसम्बन्धी कलशके जलसे यजमानके मस्तकपर अभिषेक करे । द्रव्य और प्रतापकी कामना करनेवाले यजमानका अर्णिसम्बन्धी कलशके जलसे सिंचन करे । मृत्युपर विजय पानेके विधानके लिये यमसम्बन्धी कलशके जलसे अभिषेक करे । तत्पश्चात् यजमानको तिलक लगाये । दाता ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर कृष्णमृगचर्म-दानकी सिद्धिके लिये उनसे विशेष रूपसे आशीर्वाद ग्रहण करे ॥ ३१—३७ ॥

नृपतिश्रेष्ठ! इसके करनेसे जो तुष्टि प्राप्त होती है, उसका वर्णन करनेकी शक्ति यद्यपि देवताओंमें भी नहीं है तथापि मैं संक्षेपमें बतला रहा हूँ, सुनिये । वह दाता निश्चय ही समग्र पृथ्वीके दानका फल प्राप्त करता है, सभी लोकोंको जीत लेता है, पक्षीके समान सर्वत्र स्वेच्छानुसार विचरण करता है, महाप्रलयकालपर्यन्त निःसंदेह स्वर्गलोकमें स्थित रहता है, पिता पुत्रकी मृत्यु और पत्नीके वियोगको नहीं देखता ।

धनदेशपरित्यागं न चैवेहाप्नुयात् क्वचित्।  
 कृष्णोप्सितं कृष्णमृगस्य चर्म  
 दत्त्वा द्विजेन्द्राय समाहितात्मा।  
 यथोक्तमेतन्मरणं न शोचेत्  
 प्राप्नोत्यभीष्टं मनसः फलं तत्॥ ४१

उसे मर्त्यलोकमें कहीं भी धन और देशके परित्यागका अवसर नहीं प्राप्त होता। जो मनुष्य समाहितचित्त हो कुलीन ब्राह्मणको श्रीकृष्णकी प्रिय वस्तु कृष्ण-मृगचर्मका दान करता है वह कभी मृत्युकी चिन्तासे शोकग्रस्त नहीं होता और अपने मनके अनुकूल सभी फलोंको प्राप्त कर लेता है॥ ३८—४१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कृष्णजिनप्रदानं नाम षडधिकद्विशततत्त्वोऽध्यायः ॥ २०६ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कृष्णमृगचर्मप्रदान नामक दो सौ छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २०६ ॥

## दो सौ सातवाँ अध्याय

उत्सर्ग किये जानेवाले वृषके लक्षण, वृषोत्सर्गका विधान और उसका महत्त्व

मनुरुवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि वृषभस्य च लक्षणम्।  
 वृषोत्सर्गविधिं चैव तथा पुण्यफलं महत्॥ १

मत्स्य उवाच

धेनुमादौ परीक्षेत् सुशीलां च गुणान्विताम्।  
 अव्यङ्ग्नामपरिक्लिष्टां जीववत्सामरोगिणीम्॥ २  
 स्निग्धवर्णा स्निग्धखुरां स्निग्धशृङ्खीं तथैव च।  
 मनोहराकृतिं सौम्यां सुप्रमाणामनुद्धताम्॥ ३  
 आवर्तेदक्षिणावर्तेयुक्तां दक्षिणतस्तथा।  
 वामावर्तेवर्वामितश्च विस्तीर्णजघनां तथा॥ ४  
 मृदुसंहतताप्नोष्टीं रक्तग्रीवासुशोभिताम्।  
 अश्यामदीर्घा स्फुटिता रक्तजिह्वा तथा च या॥ ५  
 विस्त्रावामलनेत्रा च शफैरविरलैर्दृढैः।  
 वैदूर्यमधुवर्णेश्च जलबुद्बुदसंनिभैः॥ ६  
 रक्तस्निग्धैश्च नयनैस्तथा रक्तकनीनिकैः।  
 सप्तचतुर्दशदन्ता तथा वा श्यामतालुका॥ ७  
 षड्जन्नता सुपाश्वेषुः पृथुपञ्चसमायता।  
 अष्टायतशिरोग्रीवा या राजन् सा सुलक्षणा॥ ८

मनुरुवाच

षड्जन्नताः के भगवन् के च पञ्च समायताः।  
 आयताश्च तथैवाष्टौ धेनूनां के शुभावहाः॥ ९

मनुजीने कहा—भगवन्! अब मैं उत्सर्ग किये जानेवाले वृषभके लक्षणों, वृषोत्सर्गकी विधि और वृषोत्सर्गसे प्राप्त होनेवाले महान् पुण्यफलको सुनना चाहता हूँ॥ १॥

मत्स्यभगवान् बोले—राजन्! सर्वप्रथम धेनुकी परीक्षा करनी चाहिये। जो सुशीला, गुणवती, अविकृत अङ्गोवाली, मोटी-ताजी, जिसके बछड़े जीते हों, रोगरहित, मनोहर रंगवाली, चिकने खुरवाली, चिकने सींगोंवाली, सुदृश्य, सीधी-सादी, न अधिक ऊँची, न अधिक नाटी अर्थात् मध्यम कदवाली, अचञ्चल, भँवरीवाली, विशेषतः दाहिनी ओरकी भँवरियाँ दाहिनी ओर और बायीं ओरकी बायीं ओर हों, विस्तृत जाँधोंवाली, मुलायम एवं सटे हुए लाल होठोंवाली, लाल गलेसे सुशोभित, काली एवं लम्बी न हो ऐसी स्फुटित लाल जिह्वावाली, अश्रुरहित निर्मल नेत्रोंवाली, सुदृढ़ एवं सटे हुए खुरोंवाली, वैदूर्य, मधु अथवा जलके बुद्बुदके समान रंगोंवाली, लाल चिकने नेत्र और लाल कनीनिकासे युक्त, इकीकीस दाँत और श्यामवर्णके तालुसे सम्पन्न हो, जिसके छः स्थान उच्च, पाँच स्थान समान, सिर, ग्रीवा और आठ स्थान विस्तृत तथा बगल और ऊरु देश सुन्दर हों, वह गौ शुभ लक्षणोंसे युक्त मानी गयी है॥ २—८॥

मनुने पूछा—भगवन्! आपने जो यह बतलाया कि गौओंके छः स्थान उत्तर, पाँच स्थान सम तथा आठ स्थान आयत होने चाहिये, वे शुभदायक स्थान कौन-कौन हैं?॥ ९॥

## मत्स्य उवाच

उरः पृष्ठं शिरः कुक्षी श्रोणी च वसुधाधिप ।  
 घडुन्नतानि धेनूनां पूजयन्ति विचक्षणाः ॥ १०  
 कर्णो नेत्रे ललाटं च पञ्च भास्करनन्दन ।  
 समायतानि शस्यन्ते पुच्छं सास्ना च सक्षिथनी ॥ ११  
 चत्वारश्च स्तना राजन् ज्ञेया ह्यष्टौ मनीषिभिः ।  
 शिरो ग्रीवायताश्वैते भूमिपाल दश स्मृताः ॥ १२  
 तस्याः सुतं परीक्षेत वृषभं लक्षणान्वितम् ।  
 उन्नतस्कन्धं ककुदमृजुलाङ्गुलकम्बलम् ॥ १३  
 महाकटितस्कन्धं वैदूर्यमणिलोचनम् ।  
 प्रवालगर्भशृङ्गाग्रं सुदीर्घपृथुवालधिम् ॥ १४  
 नवाष्टादशसंख्यैर्वा तीक्ष्णाग्रैर्दशनैः शुभैः ।  
 मल्लिकाक्षश्च मोक्षव्यो गृहेऽपि धनधान्यदः ॥ १५  
 वर्णतस्ताम्रकपिलो ब्राह्मणस्य प्रशस्यते ।  
 श्वेतो रक्तश्च कृष्णश्च गौरः पाटल एव च ॥ १६  
 मद्रिकस्ताम्रपृष्ठश्च शबलः पञ्चवालकैः ।  
 पृथुकर्णो महास्कन्धः श्लक्षणरोमा च यो भवेत् ।  
 रक्ताक्षः कपिलो यश्च रक्तशृङ्गतलो भवेत् ॥ १७  
 श्वेतोदरः कृष्णपाश्चो ब्राह्मणस्य तु शस्यते ।  
 स्निग्धो रक्तेन वर्णेन क्षत्रियस्य प्रशस्यते ॥ १८  
 काञ्चनाभेन वैश्यस्य कृष्णोनाप्यन्त्यजन्मनः ।  
 यस्य प्रागायते शृङ्गे भूमुखाभिमुखे सदा ॥ १९  
 सर्वेषामेव वर्णानां सर्वः सर्वार्थसाधकः ।  
 मार्जरपादः कपिलो धन्यः कपिलपिङ्गलः ॥ २०  
 श्वेतो मार्जरपादस्तु धन्यो मणिनिभेक्षणः ।  
 करटः पिङ्गलश्वैव श्वेतपादस्तथैव च ॥ २१  
 सर्वपादसितो यश्च द्विपादश्वेत एव च ।  
 कपिङ्गलनिभो धन्यस्तथा तित्तिरिसंनिभः ॥ २२  
 आकर्णमूलं श्वेतं तु मुखं यस्य प्रकाशते ।  
 नन्दीमुखः स विज्ञेयो रक्तवर्णो विशेषतः ॥ २३

मत्स्यभगवान् कहा—पृथ्वीपते ! छाती, पीठ, सिर, दोनों कोख तथा कमर— इन छः उन्नत स्थानोंवाली धेनुओंको विज्ञलोग श्रेष्ठ मानते हैं । सूर्यपुत ! दोनों कान, दोनों नेत्र तथा ललाट—इन पाँच स्थानोंका सम-आयत होना प्रशंसित है । पूँछ, गलकम्बल, दोनों सविथयाँ (घुटनोंसे नीचेके भाग) और चारों स्तन—ये आठ तथा सिर और गर्दन—ये दो मिलाकर दस स्थान आयत होनेपर श्रेष्ठ माने गये हैं । भूपते ! ऐसी सर्वलक्षणसम्पन्न धेनुके शुभ लक्षणोंसे युक्त बछड़ेकी भी परीक्षा करनी चाहिये । जिसका कंधा और ककुद ऊँचा हो, पूँछ और गलेका कम्बल (चमड़ा) कोमल हो, कटितट और स्कन्ध विशाल हो, वैदूर्य मणिके समान नेत्र हों, सींगोंका अग्रभाग प्रबाल (मूँगे)-के सदृश हो, पूँछ लम्बी तथा मोटी हो, तीखे अग्रभागवाले नौ या अठारह सुन्दर दाँत हों तथा मल्लिका-पुष्पोंकी तरह श्वेत आँखें हों, ऐसे वृषका उत्सर्ग करना चाहिये, उसके गृहमें रहनेसे भी धन-धान्यकी वृद्धि होती है ॥ १०—१५ ॥

ब्राह्मणके लिये ताम्रके समान लाल अथवा कपिल वर्णका वृषभ उत्तम है । जो सफेद, लाल, काला, भूरा, पाटल, पूरा ऊँचा लाल पीठवाला, पाँच प्रकारके रोएँसे चितकबरा, स्थूल कानोंवाला विशाल कंधेसे युक्त, चिकने रोमोंवाला, लाल आँखोंवाला, कपिल, सींगका निचला भाग लाल रंगवाला, सफेद पेट और कृष्ण पार्श्वभागवाला हो, ऐसा वृषभ ब्राह्मणके लिये श्रेष्ठ कहा गया है । लाल रंगके चिकने रोमवाला वृषभ क्षत्रिय जातिके लिये, सुवर्णके समान वर्णवाला वृषभ वैश्यके लिये और काले रंगका वृष शूद्रके लिये उत्तम माना गया है । जिस वृषभके सींग आगेकी ओर विस्तृत तथा भौंहें मुखकी ओर झुकी हों, वह सभी वर्णोंके लिये सर्वार्थ-सिद्ध करनेवाला होता है । बिलावके समान पैरोंवाला, कपिल या पीले रंगका मिश्रित वृषभ धन्य होता है । श्वेत रंगका, बिल्लीके समान पैरवाला और मणिके समान आँखोंवाला वृषभ धन्य है । कौवेके समान काले और पीले रंगवाला तथा श्वेत पैरोंवाला वृष धन्य है । जिसके सभी पैर अथवा दो पैर श्वेतवर्णके हों और जिसका रंग कपिङ्गल अथवा तीतरके समान हो, वह भी धन्य है ॥ १६—२२ ॥

जिस वृषभका मुख कानतक श्वेत दिखायी पड़ता हो तथा विशेषतया वह लाल वर्णका हो, उसे नन्दीमुख जानना चाहिये ।

श्रेतं तु जठरं यस्य भवेत् पृष्ठं च गोपते: ।  
 वृषभः स समुद्राक्षः सतं कुलवर्धनः ॥ २४  
 मल्लिकापुष्पचित्रश्च धन्यो भवति पुङ्गवः ।  
 कमलैर्मण्डलैश्चापि चित्रो भवति भाग्यदः ॥ २५  
 अतसीपुष्पवर्णश्च तथा धन्यतरः स्मृतः ।  
 एते धन्यास्तथाधन्यान् कीर्तयिष्यामि ते नृप ॥ २६  
 कृष्णतालवोष्टवदना रुक्षशृङ्गशफाश्च ये ।  
 अव्यक्तवर्णा हुस्वाश्च व्याघ्रसिंहनिभाश्च ये ॥ २७  
 ध्वाङ्गृधसवर्णश्च तथा मूषकसंनिभाः ।  
 कुण्ठाः काणास्तथा खञ्जाः केकराक्षास्तथैव च ॥ २८  
 विषमश्वेतपादाश्च उद्भ्रान्तनयनास्तथा ।  
 नैते वृषाः प्रमोक्तव्या न च धार्यास्तथा गृहे ॥ २९  
 मोक्तव्यानां च धार्याणां भूयो वक्ष्यामि लक्षणम् ।  
 स्वस्तिकाकारशृङ्गाश्च तथा मेघोघनिःस्वनाः ॥ ३०  
 महाप्रमाणाश्च तथा मत्तमातङ्गामिनः ।  
 महोरस्का महोच्छाया महाबलपराक्रमाः ।  
 शिरः कण्ठौ ललाटं च वालधिश्चरणास्तथा ॥ ३१  
 नेत्रे पाश्चें च कृष्णानि शस्यन्ते चन्द्रभासिनाम् ।  
 श्वेतान्येतानि शस्यन्ते कृष्णस्य तु विशेषतः ॥ ३२  
 भूमौ कर्षति लाङ्गूलं प्रलम्बस्थूलवालधिः ।  
 पुरस्तादुद्यतो नीलो वृषभश्च प्रशस्यते ॥ ३३  
 शक्तिध्वजपताकाढ्या येषां राजी विराजते ।  
 अनङ्गाहस्तु ते धन्याश्चित्रसिद्धिजयावहाः ॥ ३४  
 प्रदक्षिणं निवर्तन्ते स्वयं ये विनिवर्तिताः ।  
 समुन्नतशिरोग्रीवा धन्यास्ते यूथवर्धनाः ॥ ३५  
 रक्तशृङ्गाग्रनयनः श्वेतवर्णो भवेद् यदि ।  
 शफैः प्रवालसदूर्शैर्नास्ति धन्यतरस्ततः ॥ ३६  
 एते धार्याः प्रयत्नेन मोक्तव्या यदि वा वृषाः ।  
 धारिताश्च तथा मुक्ता धनधान्यप्रवर्धनाः ॥ ३७

जिस वृषभका पेट तथा पीठ श्वेतवर्ण हो, वह समुद्राक्ष नामक वृषभ कहा जाता है। वह सर्वदा कुलकी वृद्धि करनेवाला होता है। जो वृष मल्लिकाके फूलके समान चितकबेरे रंगवाला होता है, वह धन्य है। जो कमल-मण्डलके समान चितकबरा होता है, वह सौभाग्यवर्द्धक होता है तथा अलसीके फूलके समान नीले रंगवाला बैल धन्यतर कहा गया है। राजन्! ये उत्तम लक्षणोंवाले वृष हैं। अब मैं आपसे अशुभ लक्षणसम्पन्न वृषभोंका वर्णन कर रहा हूँ। जो काले तालु, ओंठ और मुखवाले, रुखे सींगों एवं खुरोंवाले, अव्यक्त रंगवाले, नाटे, बाघ तथा सिंहके समान भयानक, कौवे और गृध्रके समान रंगवाले या मूषकके समान अल्पकाय, मन्द स्वभाववाले, काने, लँगड़े, नीची-ऊँची आँखोंवाले, विषम (तीन या एक) पैरोंमें श्वेत रंगवाले तथा चञ्चल नेत्रोंवाले हों, ऐसे वृषभोंका न तो उत्सर्ग करना चाहिये और न उन्हें अपने घरमें ही रखना ठीक है। मैं पुनः उत्सर्ग करने तथा पालने योग्य (श्रेष्ठ) वृषभोंका लक्षण बतला रहा हूँ। जिनके सींग स्वस्तिकके आकारके हों और स्वर बादलकी गर्जनाके सदृश हो, जो ऊँचे कदवाले, हाथीके समान चलनेवाले, विशाल छातीवाले, बहुत ऊँचे, महान् बल-पराक्रमसे युक्त हों तथा चन्द्रमाके समान श्वेत वर्णके जिन वृषभोंके सिर, दोनों कान, ललाट, पूँछ, चारों पैर, दोनों नेत्र, दोनों बगलें काले रंगके हों एवं काले रंगवाले वृषभोंके ये स्थान श्वेत हों तो वे उत्तम माने गये हैं। जिसकी लम्बी और मोटी पूँछ पृथ्वीपर रगड़ खाती हो और जिसका अगला भाग उठा हुआ हो, वह नील वृषभ प्रशंसनीय माना गया है ॥ २३—३३ ॥

जिनके शरीरमें शक्ति, ध्वज और पताकाओंकी रेखा बनी हो, वे वृषभ धन्य हैं और विचित्र सिद्धि एवं विजय प्रदान करनेवाले हैं। जो धुमाये जानेपर या स्वयं धूमनेपर दाहिनी ओर धूमते हों तथा जिनके सिर एवं कंधे समुन्नत हों, वे धन्य तथा अपने समूहके वृद्धिकारक हैं। जिसके सींगोंके अग्रभाग तथा नेत्र लाल हों और वह यदि श्वेतवर्णका हो तथा उसके खुर प्रवालके समान लाल हों तो उससे श्रेष्ठ कोई वृषभ नहीं होता। ऐसे वृषभोंका प्रयत्नपूर्वक पालन अथवा उत्सर्ग करना चाहिये; क्योंकि ये रखने अथवा उत्सर्ग करने—दोनों दशाओंमें धन-धान्यको बढ़ाते हैं।

चरणानि मुखं पुच्छं यस्य श्रेतानि गोपते: ।  
लाक्षारससवर्णश्च तं नीलमिति निर्दिशेत् ॥ ३८  
वृष एवं स मोक्तव्यो न सन्धार्यो गृहे भवेत् ।  
तदर्थमेषा चरति लोके गाथा पुरातनी ॥ ३९  
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।  
गौरी चाप्युद्धेत् कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ ४०  
एवं वृषं लक्षणसम्प्रयुक्तं  
गृहोद्भवं क्रीतमथापि राजन् ।  
मुक्त्वा न शोचेन्मरणं महात्मा  
मोक्षं गतश्चाहमतोऽभिधास्ये ॥ ४१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वृषभलक्षणं नाम सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०७ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वृषभलक्षण नामक दो सौ सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २०७ ॥

जिस वृषभके चारों चरण, मुख और पूँछ श्वेत हों तथा शेष शरीरका रंग लाह-रसके समान हो, उसे नील वृषभ कहते हैं । ऐसा वृषभ उत्सर्ग कर देना चाहिये, उसे घरमें पालना ठीक नहीं हैं; क्योंकि ऐसे वृषभके लिये लोकमें एक ऐसी पुरानी गाथा प्रचलित है कि बहुतेरे पुत्रोंकी कामना करनी चाहिये; क्योंकि उनमेंसे कोई भी तो गयाकी यात्रा करेगा या गौरी कन्याका दान करेगा या नीले वृषभका उत्सर्ग करेगा । राजन्! ऐसे लक्षणयुक्त वृषभका चाहे वह घरमें उत्पन्न हुआ हो या खरीदा गया हो, उत्सर्ग कर महात्मा पुरुष कभी मृत्युके भयसे शोकग्रस्त नहीं होता; उसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है । इसीलिये मैं आपसे कह रहा हूँ ॥ ३४—४१ ॥

## दो सौ आठवाँ अध्याय

### सावित्री और सत्यवानका चरित्र

सूत उवाच

ततः स राजा देवेशं पप्रच्छामितविक्रमः ।  
पतिव्रतानां माहात्म्यं तत्सम्बद्धां कथामपि ॥ १  
मनुरुक्त्वा

पतिव्रतानां का श्रेष्ठ क्या मृत्युः पराजितः ।  
नामसंकीर्तनं कस्याः कीर्तनीयं सदा नरैः ।  
सर्वपापक्षयकरमिदानीं कथयस्व मे ॥ २

मत्स्य उवाच

वैलोम्यं धर्मराजोऽपि नाचरत्यथ योषिताम् ।  
पतिव्रतानां धर्मज्ञं पूज्यास्तस्यापि ताः सदा ॥ ३  
अत्र ते वर्णयिष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ।  
यथा विमोक्षितो भर्ता मृत्युपाशगतः स्त्रिया ॥ ४  
मद्रेषु शाकलो राजा बभूवाश्वपतिः पुरा ।  
अपुत्रस्तप्यमानोऽसौ पुत्रार्थी सर्वकामदाम् ॥ ५

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तदनन्तर अपरिमित पराक्रमी राजा मनुने भगवान् मत्स्यसे पतिव्रता स्त्रियोंके माहात्म्य तथा तत्सम्बन्धी कथाके विषयमें प्रश्न किया ॥ १ ॥

मनुजीने पूछा—(प्रभो!) पतिव्रता स्त्रियोंमें कौन श्रेष्ठ है? किस स्त्रीने मृत्युको पराजित किया है? तथा मनुष्योंको सदा किस (सती नारी)-का नामोच्चारण करना चाहिये? आप अब मुझसे सभी पापोंको नष्ट करनेवाली इस कथाका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥

मत्स्यभगवान् कहा—धर्मज्ञ! धर्मराज भी पतिव्रता स्त्रियोंके प्रतिकूल कोई व्यवहार नहीं कर सकते; क्योंकि वे उनके लिये भी सर्वदा सम्माननीय हैं । इस विषयमें मैं तुमसे पापोंको नष्ट करनेवाली वैसी कथाका वर्णन कर रहा हूँ कि किस प्रकार पतिव्रता स्त्रीने मृत्युके पाशमें पड़े हुए अपने पतिको बन्धनमुक्त कराया था । प्राचीन समयमें मद्रदेश (वर्तमान स्यालकोट जनपद) -में शाकलवंशी अश्वपति नामक एक राजा थे । उनके कोई पुत्र नहीं था ।

आराधयति सावित्रीं लक्षितोऽसौ द्विजोत्तमैः।  
सिद्धार्थकैर्हूयमानां सावित्रीं प्रत्यहं द्विजैः॥ ६

शतसंख्यैश्चतुर्थ्या तु दशमासागते दिने।  
काले तु दर्शयामास स्वां तनुं मनुजेश्वरम्॥ ७

सावित्रिवाच

राजन् भक्तोऽसि मे नित्यं दास्यामि त्वां सुतां सदा।  
तां दत्तां मत्प्रसादेन पुत्रीं प्राप्त्यसि शोभनाम्॥ ८

एतावदुक्त्वा सा राज्ञः प्रणतस्यैव पार्थिव।  
जगामादर्शनं देवी खे तथा नृप चञ्चला॥ ९

मालती नाम तस्यासीद् राज्ञः पत्नी पतिव्रता।  
सुषुवे तनयां काले सावित्रीमिव रूपतः॥ १०

सावित्र्याहुतया दत्ता तद्रूपसदृशी तथा।  
सावित्री च भवत्वेषा जगाद् नृपतिर्द्विजान्॥ ११

नामाकुर्वन् द्विजश्रेष्ठाः सावित्रीति नृपोत्तम।  
कालेन यौवनं प्राप्तं ददौ सत्यवते पिता॥ १२

नारदस्तु ततः प्राह राजानं दीपतेजसम्।

संवत्सरेण क्षीणायुर्भविष्यति नृपात्मजः।  
सकृत् कन्याः प्रदीयन्ते चिन्तयित्वा नराधिपः॥ १३

तथापि प्रददौ कन्यां द्युमत्सेनात्मजे शुभे।  
सावित्र्यपि च भर्तारमासाद्य नृपमन्दिरे॥ १४

नारदस्य तु वाक्येन दूयमानेन चेतसा।  
शश्रूषां परमां चक्रे भर्तृश्वशुरयोर्वने॥ १५

राज्याद् भ्रष्टः सभार्यस्तु नष्टचक्षुर्नराधिपः।  
न तुतोष समासाद्य राजपुत्रीं तथा स्नुषाम्॥ १६

चतुर्थेऽहनि मर्तव्यं तथा सत्यवता द्विजाः।  
श्वशुरेणाभ्यनुज्ञाता तदा राजसुतापि सा॥ १७

चक्रे त्रिरात्रं धर्मज्ञा द्रतं तस्मिस्तदा दिने।  
दारुपुष्पफलाहारी सत्यवांस्तु यथौ वनम्॥ १८

श्वशुरेणाभ्यनुज्ञाता याचनामङ्ग्नीरुणा।  
सावित्र्यपि जगामार्ता सह भर्ता महद्वनम्॥ १९

तब ब्राह्मणोंके निर्देशपर वे पुत्रकी कामनासे सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली सावित्रीकी आराधना करने लगे। वे प्रतिदिन सैकड़ों ब्राह्मणोंके साथ सावित्रीदेवीकी प्रसन्नताके लिये सफेद सरसोंका हवन करते थे। दस महीना बीत जानेपर चतुर्थी तिथिको सावित्री (गायत्री) देवीने राजाको दर्शन दिया॥ ३—७॥

सावित्रीने कहा—राजन्! तुम मेरे नित्य भक्त हो, अतः मैं तुम्हें कन्या प्रदान करूँगी। मेरी कृपासे तुम्हें मेरी दी हुई सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या प्राप्त होगी। राजन्! चरणोंमें पढ़े हुए राजासे इतना कहकर वह देवी आकाशमें बिजलीकी भाँति अदृश्य हो गयी। नरेश! उस राजाकी मालती नामकी पतिव्रता पत्नी थी। समय आनेपर उसने सावित्रीके समान रूपवाली एक कन्याको जन्म दिया। तब राजाने ब्राह्मणोंसे कहा—तपके द्वारा आवाहन किये जानेपर सावित्रीने इसे मुझे दिया है तथा यह सावित्रीके समान रूपवाली है, अतः इसका नाम सावित्री होगा। नृपश्रेष्ठ! तब उन ब्राह्मणोंने उस कन्याका सावित्री नाम रख दिया। समयानुसार सावित्री युवती हुई, तब पिताने उसका सत्यवान् के लिये वाप्दान कर दिया। इसी बीच नारदने उस उद्घीष तेजस्वी राजासे कहा कि ‘उस राजकुमारकी आयु एक ही वर्षमें समाप्त हो जायगी।’ (नारदजीकी वाणी सुनकर) यद्यपि राजाके मनमें चिन्ता तो हुई, पर यह विचारकर कि ‘कन्यादान एक ही बार किया जाता है’ उन्होंने अपनी कन्या सावित्रीको द्युमत्सेनके सुन्दर पुत्र सत्यवान् को प्रदान कर दिया। सावित्री भी पतिको पाकर अपने भवनमें नारदकी अशुभ वाणी सुनकर दुःखित मनसे काल व्यतीत करने लगी। वह वनमें सास-श्वसुर तथा पतिदेवकी बड़ी शुश्रूषा करती थी; किंतु राजा द्युमत्सेन अपने राज्यसे च्युत हो गये थे तथा पत्नीसहित अन्धा होनेके कारण वैसी गुणवती राजपुत्रीको पुत्रवधू-रूपमें प्राप्तकर संतुष्ट नहीं थे। ‘आजसे चौथे दिन सत्यवान् मर जायगा’ ऐसा ब्राह्मणोंके मुखसे सुनकर धर्मपरायणा राजपुत्री सावित्रीने श्वशुरसे आज्ञा लेकर त्रिरात्र-व्रतका अनुष्ठान किया। चौथा दिन आनेपर जब सत्यवान् लकड़ी, पुष्प एवं फलकी टोहमें जंगलकी ओर प्रस्थान किया, तब याचनामङ्ग्नसे डरती हुई सावित्री भी सास-श्वशुरकी आज्ञा लेकर दुःखित मनसे पतिके साथ उस भयंकर जंगलमें गयी। (नारदके वचनका ध्यान कर) चित्तमें अतिशय कष्ट रहनेपर भी

चैतसा दूयमानेन गूहमाना महद्वयम्।  
वने पप्रच्छ भर्तारं द्रुमांश्चासदृशांस्तथा ॥ २०  
आश्वासयामास स राजपुत्रीं  
क्लान्तां वने पद्मविशालनेत्राम्।  
संदर्शनेनाथ द्रुमद्विजानां  
तथा मृगाणां विपिने नृवीरः ॥ २१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने सावित्रीवनप्रवेशो नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सावित्री-उपाख्यानमें सावित्रीवनप्रवेश नामक दो सौ आठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २०८ ॥

उसने अपने इस महान् भयको अपने पतिसे व्यक्त नहीं किया, किंतु मन-बहलावके लिये वनमें छोटे-बड़े वृक्षोंके बारेमें पतिसे झूठ-मूठ पूछ-ताछ करती रही। शूरवीर सत्यवान् उस भयंकर वनमें विशाल वृक्षों, पक्षियों एवं पशुओंके दलको दिखला-दिखलाकर थकी हुई एवं कमलके समान विशाल नेत्रोंवाली राजकुमारी सावित्रीको आश्वासन देता रहा ॥ ८—२१ ॥

## दो सौ नवाँ अध्याय

### सत्यवान्का सावित्रीको वनकी शोभा दिखाना

सत्यवानुवाच

वनेऽस्मिन्शाद्वलाकीर्णे सहकारं मनोहरम्।  
नेत्रद्वाणसुखं पश्य वसन्ते रतिवर्धनम् ॥ १  
वनेऽप्यशोकं दृष्ट्वैनं रागवनं सुपुष्पितम्।  
वसन्तो हसतीवायं मामेवायतलोचने ॥ २  
दक्षिणे दक्षिणेनैतां पश्य रम्यां वनस्थलीम्।  
पुष्पितैः किंशुकैर्युक्तां ज्वलितानलसप्रभैः ॥ ३  
सुगन्धिकुसुमामोदो वनराजिविनिर्गतः।  
करोति वायुर्दाक्षिण्यमावयोः क्लमनाशनम् ॥ ४  
पश्चिमेन विशालाक्षि कर्णिकारैः सुपुष्पितैः।  
काञ्छनेन विभात्येषा वनराजी मनोरमा ॥ ५  
अतिमुक्तलताजालरुद्धमार्ग वनस्थली।  
रम्या सा चारुसर्वाङ्गि कुसुमोत्करभूषणा ॥ ६  
मधुमत्तालिङ्गंकारव्याजेन वरवर्णिनि।  
चापाकृष्टिं करोतीव कामः पान्थजिधांसया ॥ ७  
फलास्वादलसद्वक्त्रपुंस्कोकिलविनादिता।  
विभाति चारुतिलका त्वमिवैषा वनस्थली ॥ ८  
कोकिलशूतशिखरे मञ्जरीरेणुपिञ्चरः।  
गदितैर्व्यक्ततां याति कुलीनश्चेष्टैरिव ॥ ९  
पुष्परेणुविलिमाङ्गीं प्रियामनुसरन् वने।  
कुसुमं कुसुमं याति कूजन् कामी शिलीमुखः ॥ १०

सत्यवान् कहा—विशाल नेत्रोंवाली सावित्री ! हरी-हरी घासोंसे भेरे हुए इस वनमें वसन्तमें रतिकी वृद्धि करनेवाले एवं नेत्र तथा नासिकाको सुख प्रदान करनेवाले इस मनोहर आमके वृक्षको देखो । इस वनमें फूलोंसे लदे हुए इस लाल अशोक-वृक्षको भी देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो यह वसन्त मेरा ही परिहास कर रहा है । दाहिनी ओर दक्षिण दिशामें जलते हुए अंगारकी-सी कान्तिवाले फूलोंसे लदे हुए किंशुक-वृक्षोंसे युक्त इस रमणीय वनस्थलीको देखो । सुगन्धित पुष्पोंकी सुगन्धसे युक्त वन-पंक्तियोंसे निकली हुई वायु उदारतापूर्वक हमलोगोंकी थकावटका नाश कर रही है । विशाललोचने ! इधर पश्चिममें फूले हुए कनेरके पुष्पोंसे युक्त स्वर्णिम शोभावाली वनपङ्क्ति शोभायमान हो रही है । सुन्दरि ! तिनिसके लतासमूहोंसे वनस्थलीका मार्ग अवरुद्ध हो गया है । पुष्पोंके समूहोंसे विभूषित हुई वह पृथ्वी कितनी मनोहर लग रही है । मधुसे उन्मत्त हुए भ्रमर-समूहोंकी गुआरके व्याजसे मालूम पड़ता है कि कामदेव (हम-जैसे) पथिकोंको मारनेके लिये धनुषकी प्रत्यञ्चा खींच रहा है । नाना प्रकारके फलोंके आस्वादनसे उल्लसित मुखवाले कोकिलोंके स्वरसे निनादित एवं सुन्दर तिलक-वृक्षोंसे सुशोभित यह वनस्थली तुम्हारे ही समान शोभा दे रही है । आमकी ऊँची डालीपर बैठी हुई कोकिला मञ्जरीकी धूलसे पीत वर्ण होकर अपने सुरीले शब्दोंसे चेष्टाओंद्वारा कुलीन पुरुषकी भाँति अपना परिचय दे रही है । कामी मधुकर वनमें गुनगुनाता हुआ प्रत्येक पुष्पपर पुष्पोंकी धूलिसे धूसरित प्रियतमाका अनुसरण करता हुआ उड़ रहा है ॥ १—१० ॥

मङ्गरीं सहकारस्य कान्ताचञ्चाग्रखण्डिताम्।  
 स्वदते बहुपुष्पेऽपि पुंस्कोकिलयुवा वने॥ ११  
 काकः प्रसूतां वृक्षाग्रे स्वामेकाग्रेण चञ्चुना।  
 काकीं सम्भावयत्येष पक्षाच्छादितपुत्रिकाम्॥ १२  
 भूभागं निम्नमासाद्य दयितासहितो युवा।  
 नाहारमपि चादते कामाक्रान्तः कपिंजलः॥ १३  
 कलविंकस्तु रमयन् प्रियोत्सङ्घं समास्थितः।  
 मुहुर्मुहुर्विशालाक्षि उत्कण्ठयति कामिनः॥ १४  
 वृक्षशाखां समारूढः शुकोऽयं सह भार्या।  
 भरेण लम्बयज् शाखां करोति सफलामिव॥ १५  
 वनेऽत्र पिशितास्वादतृसो निद्रामुपागतः।  
 शेते सिंहयुवा कान्ता चरणान्तरगामिनी॥ १६  
 व्याघ्रयोर्मिथुनं पश्य शैलकन्द्रसंस्थितम्।  
 ययोर्नेत्रप्रभालोके गुहा भिन्नेव लक्ष्यते॥ १७  
 अयं द्वीपी प्रियां लेढि जिह्वाग्रेण पुनः पुनः।  
 प्रीतिमायाति च तया लिह्यमानः स्वकान्तया॥ १८  
 उत्सङ्घकृतमूर्धानं निद्रापहृतचेतसम्।  
 जन्तुद्धरणतः कान्तं सुखयत्येव वानरी॥ १९  
 भूमौ निपतितां रामां मार्जारो दर्शितोदरीम्।  
 नखैर्दन्तैर्दशत्येष न च पीडयते तथा॥ २०  
 शशकः शशकी चोभे संसुसे पीडिते इमे।  
 संलीनगात्रचरणे कर्णैर्व्यक्तिमुपागते॥ २१  
 स्वात्वा सरसि पद्माढ्ये नागस्तु मदनप्रियः।  
 सम्भावयति तन्वङ्गि मृणालकवलैः प्रियाम्॥ २२  
 कान्तप्रोथसमुथानैः कान्तमार्गानुगामिनी।  
 करोति कवलं मुस्तैर्वराही पोतकानुगा॥ २३  
 दृढाङ्गसंधिर्महिषः कर्दमाक्ततनुवर्णे।  
 अनुद्रजति धावन्तीं प्रियामुद्धतमुत्सुकः॥ २४  
 पश्य चार्वङ्गि सारङ्गं त्वं कटाक्षविभावनैः।  
 सभार्यं मां हि पश्यन्तं कौतूहलसमन्वितम्॥ २५  
 पश्य पश्चिमपादेन रोही कण्ठूयते मुखम्।  
 स्नेहाद्र्भावात् कर्षन्ती भर्तारं शृङ्गकोटिना॥ २६

वनमें तरुण पुंस्कोकिल अनेक पुष्पोंके रहते हुए भी अपनी प्रियतमाकी चोंचके अग्रभागसे खण्डित हुई आग्र-मङ्गरीका स्वाद ले रहा है। कौआ वृक्षके अग्रभागपर बैठकर पंखोंसे बच्चेको छिपाकर बैठी हुई अपनी प्रसूती पत्नीको चोंचके अग्रभागसे आनन्दित कर रहा है। अपनी पत्नीके साथ कामदेवसे अभिभूत हुआ तरुण कपिंजल (तीतर) निचले भूभागपर बैठा हुआ आहार भी नहीं ग्रहण कर रहा है। विशालनेत्रे! चटक (गौरेया) अपनी प्रियाकी गोदमें स्थित हो बारम्बार रमण करता हुआ कामीजनोंको उत्कण्ठित कर रहा है। अपनी प्रियाके साथ वृक्षकी डालीपर बैठा हुआ यह शुक पंजेसे शाखाको खींचता हुआ उसे फलयुक्त-सा कर रहा है। इस वनमें मांसाहारसे तृप्त युवा सिंह निद्रामें लीन हो सो रहा है और उसकी प्रियतमा उसके पैरोंके मध्यभागमें शयन कर रही है। पर्वतकी कन्दरामें बैठे हुए व्याग्र-दम्पत्तिको देखो, जिनके नेत्रोंकी कान्तिसे गुफा भिन्न-सी दिखायी दे रही है। यह गैंडा अपनी प्रियाको जीभके अग्रभागसे बारम्बार चाट रहा है और अपनी उस प्रियाद्वारा चाटे जानेपर आनन्दका अनुभव कर रहा है। वह वानरी अपनी गोदमें सिर रखकर गाढ़ निद्रामें सोते हुए पतिको जूक आदि जन्तुओंको निकालकर सुख दे रही है। वह बिडाल पृथ्वीपर लेटकर पेटको दिखाती हुई अपनी प्रियतमाको नखों और दाँतोंसे काट रहा है, परंतु वास्तवमें वह पीड़ा नहीं दे रहा है॥ ११—२०॥

ये खरगोश-दम्पति पीडित होकर अपने पैरोंको शरीरमें छिपाकर सो रहे हैं। ये कानोंद्वारा ही जाने जा सकते हैं। सूक्ष्माङ्गि! कामार्त हाथी कमलयुक्त सरोवरमें स्नान कर कमल-डंठलोंके ग्रासोंसे प्रियाको संतुष्ट कर रहा है। पीछे-पीछे चलनेवाले अपने बच्चोंसे घिरी हुई शूकरी प्रियतमके मार्गपर चलती हुई प्रियतमके द्वारा उखाड़े गये मोथोंको खाती जा रही है। इस वनमें दृढ़ अङ्गोंवाला एवं शरीरमें कीचड़ पोते हुए कामार्त महिष भागती हुई प्रियाके पीछे दौड़ रहा है। सुन्दरि! अपनी प्रियाके सहित इस मृगको देखो, जो कुतूहलवश मुझे मनोहर कटाक्षोंसे देख रहा है। देखो, वह मृगी स्नेहयुक्त हो अपने सोंगोंके अग्रभागसे प्रियतमको ढकेलती हुई पिछले पैरसे मुखको खुजला रही है। अरे, उस

द्रागिमां चमरीं पश्य सितवालानुगच्छतीम्।  
अन्वास्ते चमरः कामी मां च पश्यति गर्वितः॥ २७  
आतपे गवयं पश्य प्रकृष्टं भार्या सह।  
रोमन्थनं प्रकुर्वाणं काकं ककुदि वारयन्॥ २८  
पश्याजं भार्या सार्धं न्यस्ताग्रचरणद्वयम्।  
विपुले बदरीस्कन्धे बदराशनकाम्यया॥ २९  
हंसं सभार्यं सरसि विचरन्तं सुनिर्मलम्।  
सुमुक्तस्येन्दुबिष्वस्य पश्य वै श्रियमुद्वहन्॥ ३०  
सभार्यश्वक्रवाकोऽयं कमलाकरमध्यगः।  
करोति पद्मिनीं कान्तां सुपुष्पामिव सुन्दरि॥ ३१  
मया फलोच्चयः सुभूत्या पुष्पोच्चयः कृतः।  
इन्धनं न कृतं सुभूत्या तत्करिष्यामि साम्प्रतम्॥ ३२  
त्वमस्य सरस्त्वारे ह्रुमच्छायां समाश्रिता।  
क्षणमात्रं प्रतीक्षस्व विश्रमस्व च भामिनि॥ ३३

सावित्रुवाच

एवमेतत् करिष्यामि मम दृष्टिपथस्त्वया।  
दूरं कान्त न कर्तव्यो बिभेमि गहने वने॥ ३४

मत्स्य उवाच

ततः स काष्ठानि चकार तस्मिन्।  
वने तदा राजसुतासमक्षम्।  
तस्या ह्यदूरे सरस्तदानीं  
मेने च सा तं मृतमेव राजन्॥ ३५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्रुपाख्याने वनदर्शनं नाम नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०९॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सावित्री-उपाख्यानमें वनदर्शन नामक दो सौ नवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २०९॥

श्वेत चमरी गायको देखो, जो चमरके पीछे चली जा रही है। इधर कामार्त चमर खड़ा है और गर्वके साथ मेरी ओर देख रहा है। धूपमें बैठे हुए उस नीलगायको देखो, जो अपनी प्रियाके साथ आनन्दपूर्वक जुगाली कर रहा है और ककुदपर बैठे हुए कौवेका निवारण कर रहा है। प्रियाके साथ उस बकरेको देखो, जो वेर वृक्षकी मोटी शाखापर फल खानेकी इच्छासे अगले दोनों पैरोंको रखे हुए है। सरोवरमें विचरण करते हुए हंसिनीसहित उस अत्यन्त निर्मल हंसको देखो, जो सुप्रकाशित चन्द्रबिम्बकी शोभा धारण कर रहा है। सुन्दरि! चक्रवाक अपनी प्रियाके साथ कमलोंसे सुशोभित सरोवरमें अपनी प्रियाको फूली हुई पश्चिमीके समान कर रहा है। (ऐसा कहकर सत्यवान् ने फिर कहा—) सुन्दर भौंहोंवाली! मैं फलोंको एकत्र कर चुका तथा तुम पुष्पोंको एकत्र कर चुकी, किंतु अभी इंधनका कोई प्रबन्ध नहीं किया गया, अतः अब मैं उसे एकत्र करूँगा। भामिनि! तबतक तुम इस सरोवरके तटपर वृक्षकी छायामें बैठकर क्षणभर प्रतीक्षा करते हुए विश्राम करो॥ २१—३३॥

सावित्री बोली—कान्त! जैसा आप कहेंगे, मैं वैसा ही करूँगी, परंतु आप मेरे नेत्रोंके सामनेसे दूर न जायँ; क्योंकि मैं इस घने वनमें डर रही हूँ॥ ३४॥

मत्स्यभगवान् कहा—राजन्! सावित्रीके ऐसा कहनेपर सत्यवान् उस वनमें राजपुत्रीके सम्मुख ही उस सरोवरसे थोड़ी ही दूरपर काष्ठ एकत्र करने लगे, परंतु राजपुत्री उतनी दूर जानेपर भी उन्हें मरा हुआ-सा मानने लगी॥ ३५॥

## दो सौ दसवाँ अध्याय

यमराजका सत्यवान्‌के प्राणको बाँधना तथा सावित्री और यमराजका वार्तालाप

मत्स्य उवाच

तस्य पाटयतः काष्ठं जज्ञे शिरसि वेदना ।  
 स वेदनार्तः संगम्य भार्या वचनमब्रवीत् ॥ १  
 आयासेन ममानेन जाता शिरसि वेदना ।  
 तमश्च प्रविशामीव न च जानामि किञ्चन ॥ २  
 त्वदुत्सङ्गे शिरः कृत्वा स्वसुमिच्छामि साम्प्रतम् ।  
 राजपुत्रीमेवमुक्त्वा तदा सुष्वाप पार्थिव ॥ ३  
 तदुत्सङ्गे शिरः कृत्वा निद्रयाऽविललोचनः ।  
 पतिव्रता महाभागा ततः सा राजकन्यका ॥ ४  
 ददर्श धर्मराजं तु स्वयं तं देशमागतम् ।  
 नीलोत्पलदलश्यामं पीताम्बरधरं प्रभुम् ॥ ५  
 विद्युल्लतानिबद्धाङ्गं सतोयमिव तोयदम् ।  
 किरीटेनार्कवर्णेन कुण्डलाभ्यां विराजितम् ॥ ६  
 हारभारपिंतोरस्कं तथाङ्गदविभूषितम् ।  
 तथानुगम्यमानं च कालेन सह मृत्युना ॥ ७  
 स तु सम्प्राप्य तं देशं देहात् सत्यवतस्तदा ।  
 अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं पाशबद्धं वशं गतम् ॥ ८  
 आकृष्य दक्षिणामाशां प्रययौ सत्वरं तदा ।  
 सावित्र्यपि वरारोहा दृष्ट्वा तं गतजीवितम् ॥ ९  
 अनुवद्राज गच्छन्तं धर्मराजमतन्दिता ।  
 कृताङ्गलिरुवाचाथ हृदयेन प्रवेपता ॥ १०  
 इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् ।  
 गुरुशुश्रूषया चैव ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥ ११  
 सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः ।  
 अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥ १२  
 यावत् त्रयस्ते जीवेयुस्तावनान्यं समाचरे ।  
 तेषां च नित्यं शुश्रूषां कुर्यात् प्रियहिते रतः ॥ १३  
 तेषामनुपरोधेन पारतन्यं यदा चरेत् ।  
 तत्तत्रिवेदयेत् तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ।  
 त्रिष्वप्येतेषु कृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते ॥ १४

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! लकड़ी काटते हुए सत्यवान्‌के सिरमें पीड़ा उत्पन्न हुई, तब वे पीड़ासे व्याकुल हो पत्नीके पास आकर इस प्रकार कहने लगे—‘इस परिश्रमसे मेरे सिरमें बहुत पीड़ा हो रही है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मैं अन्धकारमें प्रविष्ट हो रहा हूँ। मुझे कुछ भी सूझ नहीं रहा है। इस समय मैं तुम्हारी गोदमें सिर रखकर सोना चाहता हूँ।’ राजन्! राजपुत्रीसे ऐसा कहकर सत्यवान् उस समय उसकी गोदमें सो गये। जब सावित्रीकी गोदमें सिर रखकर सोते हुए सत्यवान्‌के नेत्र निद्रावश मुँद गये, तब उस पतिव्रता महाभागा राजपुत्री सावित्रीने उस स्थानपर आये हुए सामर्थ्यशाली स्वयं धर्मराजको देखा, जो नीले कमलके—से श्यामवर्णसे सुशोभित और पीताम्बर धारण किये हुए थे। वे चमकती हुई बिजलियोंसे युक्त जलपूर्ण मेघ—जैसे दीख रहे थे तथा सूर्यके समान तेजस्वी मुकुट और दो कुण्डलोंसे सुशोभित थे। उनके वक्षः स्थलपर हार लटक रहा था। वे बाजूबांदसे विभूषित थे तथा उनके पीछे मृत्युसहित महाकाल भी था। धर्मराजने उस स्थानपर पहुँचकर उस समय सत्यवान्‌के शरीरसे अंगूठेके परिमाणवाले पुरुषको पाशमें बाँधकर अपने अधीन किया और उसे खींचकर शीघ्रतापूर्वक दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान किया। तब आलस्यरहित हो सुन्दरी सावित्री पतिको प्राणरहित देखकर जाते हुए धर्मराजके पीछे—पीछे चली और काँपते हुए हृदयसे अञ्जलि बाँधकर धर्मराजसे बोली—‘माताकी भक्तिसे इस लोक, पिताकी भक्तिसे मध्यम लोक और गुरुकी शुश्रूषासे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। जो इन तीनोंका आदर करता है, उसने मानो सभी धर्मोंका पालन कर लिया तथा जिसने इन तीनोंका आदर नहीं किया, उसकी सारी सत्क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। जबतक ये तीनों जीवित रहें, तबतक किसी अन्य धर्मके पालनकी आवश्यकता नहीं है। उनके प्रिय एवं सुखके कार्योंमें तत्पर रहकर नित्य उनकी शुश्रूषा करनी चाहिये। उनकी आज्ञासे यदि कभी परतन्त्रता भी स्वीकार करनी पड़े तो वह सब मन-वचन-कर्मद्वारा उन्हें निवेदित कर देना चाहिये। पुरुषके सारे कर्म माता, पिता और गुरु—इन्हीं तीनोंमें समाप्त हो जाते हैं ॥ १—१४ ॥

यम उवाच

कृतेन कामेन निवर्तयाशु  
धर्मो न तेभ्योऽपि हि उच्यते च।  
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्या-  
त्तथाधुना तेन तव ब्रवीमि ॥ १५

गुरुपूजारतिर्भर्ता त्वं च साध्वी पतिव्रता।  
विनिवर्तस्व धर्मज्ञे ग्लानिर्भवति तेऽधुना ॥ १६  
सावित्र्युवाच

पतिर्हि दैवतं स्त्रीणां पतिरेव परायणम्।  
अनुगम्यः स्त्रिया साध्व्या पतिः प्राणधनेश्वरः ॥ १७  
मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।  
अमितस्य प्रदातारं भर्तारं का न पूजयेत् ॥ १८  
नीयते यत्र भर्ता मे स्वयं वा यत्र गच्छति।  
मयापि तत्र गन्तव्यं यथाशक्ति सुरोत्तम ॥ १९  
पतिमादाय गच्छन्तमनुगन्तुमहं यदा।  
त्वां देव न हि शक्ष्यामि तदा त्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ २०  
मनस्विनी तु या काचिद्वैधव्याक्षरदूषिता।  
मुहूर्तमपि जीवेत मण्डनार्हा ह्यमणिडता ॥ २१

यम उवाच

पतिव्रते महाभागे परितुष्टोऽस्मि ते शुभे।  
विना सत्यवतः प्राणीर्वं वरय मा चिरम् ॥ २२  
सावित्र्युवाच

विनष्टचक्षुषो राज्यं चक्षुषा सह कारय।  
च्युतराष्ट्रस्य धर्मज्ञ श्वशुरस्य महात्मनः ॥ २३

यम उवाच

दूरे पथे गच्छ निवर्त भद्रे  
भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम्।  
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्या-  
त्तथाधुना तेन तव ब्रवीमि ॥ २४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने प्रथमवरलाभो नाम दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१० ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सावित्री-उपाख्यानमें प्रथम वरलाभ नामक दो सौ दसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २१० ॥

यमराजने कहा—तुम हमसे जिस कामनाको पूर्ण करानेके लिये आ रही हो उस कामनाको छोड़ दो और शीघ्र लौट जाओ। सचमुच संसारमें माता-पिता तथा गुरुकी सेवासे बढ़कर कोई अन्य धर्म नहीं है। तुम्हारे इस प्रकार पीछे-पीछे आनेसे मेरे काममें विघ्न पड़ रहा है और तुम भी थकावटसे चूर हो रही हो। इसलिये मैं इस समय तुमसे ऐसा कह रहा हूँ। धर्मज्ञ! तुम्हारा पति सचमुच गुरुजनोंकी पूजामें प्रेम करनेवाला है और तुम भी पतिव्रता साध्वी हो। इस समय तुम्हें कष्ट हो रहा है, अतः तुम लौट जाओ ॥ १५-१६ ॥

सावित्री बोली—स्त्रियोंका पति ही देवता है, पति ही उसको शरण देनेवाला है, इसलिये साध्वी स्त्रियोंको प्राणपति प्रियतमका अनुगमन करना चाहिये। पिता, भाई तथा पुत्र परिमित सम्पत्ति देनेवाले हैं, किंतु पति अपरिमित सम्पत्तिका दाता है। भला, ऐसे पतिकी कौन स्त्री पूजा नहीं करेगी। सुरोत्तम! आप मेरे पतिको जहाँ ले जा रहे हैं अथवा स्वयं जहाँ जा रहे हैं, वहीं मुझे भी यथाशक्ति जाना चाहिये। देव! मेरे प्राणपतिको ले जाते हुए आपके पीछे चलनेमें यदि मैं समर्थ न हो सकूँगी तो प्राणोंको त्याग दूँगी। जो कोई मनस्विनी स्त्री वैधव्य-धर्मसे दूषित होकर मुहूर्तभर जीवित रहती है तो वह सभी आभूषणोंसे अलंकृत होते हुए भी भाग्यहीन है ॥ १७-२१ ॥

यमने कहा—महाभाग्यशालिनी पतिव्रते! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, अतः शुभे! सत्यवान्‌के प्राणोंको छोड़कर कोई भी वरदान माँग लो, देर मत करो ॥ २२ ॥

सावित्री बोली—धर्मज्ञ! जो राज्यसे च्युत हो गये हैं तथा जिनकी आँखें नष्ट हो गयी हैं, ऐसे मेरे महात्मा शशुरको राज्य और नेत्रसे संयुक्त कर दीजिये ॥ २३ ॥

यमराजने कहा—भद्रे! तुम बहुत दूरतक चली आयी हो, अतः अब लौट जाओ। तुम्हारी यह सब अभिलाषा पूर्ण होगी। तुम्हारे मेरे पीछे चलनेसे मेरे काममें विघ्न पड़ेगा और तुम्हें भी थकावट होगी, इसीलिये इस समय मैं तुमसे ऐसा कह रहा हूँ ॥ २४ ॥

## दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय

सावित्रीको यमराजसे द्वितीय वरदानकी प्राप्ति

सावित्रियुवाच

कुतः क्लमः कुतो दुःखं सदृभिः सह समागमे ।  
 सतां तस्मान्न मे ग्लानिस्त्वत्समीपे सुरोत्तम ॥ १  
 साधूनां वाप्यसाधूनां संत एव सदा गतिः ।  
 नैवासतां नैव सतामसन्तो नैवमात्मनः ॥ २  
 विषाग्निसर्पशस्त्रेभ्यो न तथा जायते भयम् ।  
 अकारणजगद्वैरिखलेभ्यो जायते तथा ॥ ३  
 संतः प्राणानपि त्यक्त्वा परार्थं कुर्वते यथा ।  
 तथासंतोऽपि संत्यज्य परपीडासु तत्पराः ॥ ४  
 त्यजत्यसूनयं लोकस्तृणवद् यस्य कारणात् ।  
 परोपधातशक्तास्तं परलोकं तथासतः ॥ ५  
 निकायेषु निकायेषु तथा ब्रह्मा जगद्गुरुः ।  
 असतामुपधाताय राजानं ज्ञातवान् स्वयम् ॥ ६  
 नरान् परीक्षयेद् राजा साधून् सम्मानयेत् सदा ।  
 निग्रहं चासतां कुर्यात् स लोके लोकजित्तमः ॥ ७  
 निग्रहेणासतां राजा सतां च परिपालनात् ।  
 एतावदेव कर्तव्यं राजा स्वर्गमभीप्सुना ॥ ८  
 राजकृत्यं हि लोकेषु नास्यन्यज्जगतीपते ।  
 असतां निग्रहादेव सतां च परिपालनात् ॥ ९  
 राजभिश्चाप्यशास्तानामसतां शासिता भवान् ।  
 तेन त्वमधिको देवो देवेभ्यः प्रतिभासि मे ॥ १०  
 जगत् धार्यते सदृभिः सतामग्रहस्तथा भवान् ।  
 तेन त्वामनुयान्त्या मे क्लमो देव न विद्यते ॥ ११

सावित्रीने कहा—देवश्रेष्ठ! सत्पुरुषोंके साथ समागम होनेपर कैसा परिश्रम? और कैसा दुःख? आप—जैसे महानुभावोंके समीपमें मुझे किसी प्रकारकी भी ग्लानि नहीं है। चाहे साधु प्रकृतिके हों या असाधु प्रकृतिके, सभीके निर्वाहक सदा सत्पुरुष ही होते हैं, किंतु असत्पुरुष न तो सज्जनोंके काम आ सकते हैं, न असत्पुरुषोंके ही और न स्वयं अपना ही कल्याण कर सकते हैं। विष, अग्नि, सर्प तथा शस्त्रसे लोगोंको उतना भय नहीं होता, जितना अकारण जगत्‌से वैर करनेवाले दुष्टोंसे होता है। जैसे सत्पुरुष अपने प्राणोंका विसर्जन करके भी परोपकार करते हैं, उसी प्रकार दुर्जन भी अपने प्राणोंका परित्याग कर दूसरेको कष्ट देनेमें तत्पर रहते हैं। जिस परलोककी प्राप्ति के लिये सत्पुरुष अपने प्राणोंको भी तृणके समान त्याग देते हैं, उसी परलोककी परायी हानिमें निरत रहनेवाले दुर्जन कुछ भी चिन्ता नहीं करते। स्वयं जगद्गुरु ब्रह्माने सभी प्राणि-समूहोंमें असत्प्राणियोंके निग्रहके लिये राजाको नियुक्त किया है। राजा सर्वदा पुरुषोंकी परीक्षा करे। जो सज्जन हों उनका आदर करे और दुष्टोंको दण्ड दे। जो ऐसा करता है, वह सभी लोकविजेता राजाओंमें श्रेष्ठ है। सत्पुरुषोंको सम्मान देने तथा दुष्टोंका निग्रह करनेके कारण ही वह राजा है। स्वर्ग-प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले राजाको इन दोनों कार्योंका पालन करना चाहिये। जगतीपते! राजाओंके लिये सत्पुरुषोंके परिपालन तथा दुष्टोंके नियमनके अतिरिक्त दूसरा कोई राजधर्म संसारमें नहीं है। उन राजाओंद्वारा भी जो दुष्ट शासित नहीं किये जा सकते, ऐसे दुर्जनोंके शासक आप हैं, इसी कारण आप मुझे सभी देवताओंसे अधिक महत्वशाली देवता प्रतीत हो रहे हैं। यह जगत् सत्पुरुषोंद्वारा धारण किया जाता है तथा आप उन सत्पुरुषोंके अग्रणी हैं, इसलिये देव! आपके पीछे चलते हुए मुझे कुछ भी क्लेश नहीं है ॥ १—११ ॥

यम उवाच

तुष्टोऽस्मि ते विशालाक्षि वचनैर्धर्मसङ्गतैः ।  
विना सत्यवतः प्राणाद् वरं वरय मा चिरम् ॥ १२ ॥

सावित्रीवाच

सहोदराणां भ्रातृणां कामयामि शतं विभो ।  
अनपत्यः पिता प्रीतिं पुत्रलाभात् प्रयातु मे ॥ १३ ॥  
तामुवाच यमो गच्छ यथागतमनिन्दिते ।  
और्ध्वदेहिककार्येषु यत्नं भर्तुः समाचर ॥ १४ ॥  
नानुगन्तुमयं शक्यस्त्वया लोकान्तरं गतः ।  
पतिव्रतासि तेन त्वं मुहूर्तं मम यास्यसि ॥ १५ ॥  
गुरुशुश्रूषणाद् भद्रे तथा सत्यवता महत् ।  
पुण्यं समर्जितं येन नयाम्येनमहं स्वयम् ॥ १६ ॥  
एतावदेव कर्तव्यं पुरुषेण विजानता ।  
मातुः पितुश्च शुश्रूषा गुरोश्च वरवर्णिनि ॥ १७ ॥  
तोषितं त्रयमेतच्च सदा सत्यवता वने ।  
पूजितं विजितः स्वर्गस्त्वयानेन चिरं शुभे ॥ १८ ॥  
तपसा ब्रह्मचर्येण अग्निशुश्रूषया शुभे ।  
पुरुषाः स्वर्गमायान्ति गुरुशुश्रूषया तथा ॥ १९ ॥  
आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ।  
नाचैतेऽप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन तु विशेषतः ॥ २० ॥  
आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापते ।  
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता वै मूर्तिरात्मनः ॥ २१ ॥  
जन्मना पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।  
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥ २२ ॥  
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य तु सर्वदा ।  
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥ २३ ॥  
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते ।  
न च तैरननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥ २४ ॥  
त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः ।  
त एव च त्रयो वेदास्तथैवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ॥ २५ ॥  
पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माता दक्षिणतः स्मृतः ।  
गुरुराहवनीयश्च साग्नित्रेता गरीयसी ॥ २६ ॥

यमराज बोले—विशालाक्षि ! तुम्हारे इन धर्मयुक्त वचनोंसे मैं प्रसन्न हूँ, अतः सत्यवान्‌के प्राणोंके अतिरिक्त दूसरा वर माँग लो, देर न करो ॥ १२ ॥

सावित्रीने कहा—विभो ! मैं सौ सहोदर भाइयोंकी अभिलाषिणी हूँ। मेरे पिता पुत्रहीन हैं, अतः वे पुत्रलाभसे प्रसन्न हों। तब यमराजने सावित्रीसे कहा—‘अनिन्दिते ! तुम जैसे आयी हो, वैसे ही लौट जाओ तथा अपने पतिके और्ध्वदेहिक क्रियाओंके लिये यत्र करो। अब यह दूसरे लोकमें चला गया है, अतः तुम इसके पीछे नहीं चल सकती। चूँकि तुम पतिव्रता हो, अतः दो घड़ीतक और मेरे साथ चल सकती हो। भद्रे ! सत्यवान् ने गुरुजनोंकी शुश्रूषा कर महान् पुण्य अर्जित किया है, अतः मैं स्वयं इसे ले जा रहा हूँ। सुन्दरि ! विद्वान् पुरुषको माता, पिता तथा गुरुकी सेवामें सदा तत्पर रहना चाहिये। सत्यवान् ने वनमें इन तीनोंको अपनी शुश्रूषासे प्रसन्न किया है। शुभे ! इसके साथ तुमने भी स्वर्गको जीत लिया है। शुभे ! मनुष्य तपस्या, ब्रह्मचर्य तथा अग्नि और गुरुकी शुश्रूषासे स्वर्गको प्राप्त करते हैं, अतः विशेषरूपसे ब्राह्मणको आचार्य, पिता, माता तथा बड़े भाईका कभी अपमान नहीं करना चाहिये; क्योंकि आचार्य ब्रह्माका, पिता प्रजापतिका, माता पृथ्वीका और भाई अपना ही स्वरूप है। मनुष्यके जन्मके समय माता और पिता जो कष्ट सहन करते हैं, उसका बदला सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं चुकाया जा सकता। अतः मनुष्यको माता, पिता तथा आचार्यका सर्वदा प्रिय कार्य करना चाहिये; क्योंकि इन तीनोंके संतुष्ट होनेपर सभी तपस्याएँ सम्पन्न हो जाती हैं। इन तीनोंकी शुश्रूषा परम तपस्या कही गयी है, अतः उनकी आज्ञाके बिना किसी अन्य धर्मका आचरण नहीं करना चाहिये। वे ही तीनों लोक हैं, वे ही तीनों आश्रम हैं, वे ही तीनों वेद हैं तथा तीनों अग्नियाँ भी वे ही कहलाते हैं। पिता गार्हपत्याग्नि, माता दक्षिणाग्नि तथा गुरु आहवनीयाग्नि हैं। ये तीनों अग्नियाँ सर्वश्रेष्ठ हैं।

त्रिषु प्रमाद्यते नैषु त्रील्लोकान् जयते गृही।  
दीप्यमानः स्ववपुषा देववद् दिवि मोदते॥ २७  
कृतेन कामेन निर्वर्त भद्रे  
भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम्।  
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्या-  
त्तथाधुना तेन तव ब्रवीमि॥ २८

इति श्रीमात्स्ये महापूराणे सावित्र्युपाख्याने द्वितीयवरलाभो नामैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २११  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणक सावित्री-उपाख्यानमें द्वितीय वरका लाभ नामक दो साँ ग्याहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २११

जो गृहस्थ इन तीनों गुरुजनोंकी सेवामें कभी असावधानी नहीं करता, वह तीनों लोकोंको जीत लेता है और अपने शरीरसे देवताओंके समान देवीप्यमान होते हुए स्वर्गमें आनन्दका अनुभव करता है। भद्रे! तुम्हारा काम पूरा हो गया, अब तुम लौट जाओ। तुम्हारे द्वारा कही हुई वे सारी बातें पूर्ण होंगी। इस प्रकार हमारे पीछे आनेसे मेरे कार्यमें विघ्न पड़ता है और तुम्हें भी कष्ट हो रहा है, इसीलिये मैं इस समय तुमसे ऐसा कह रहा हूँ॥ १३—२८॥

## दो सौ बारहवाँ अध्याय

यमराज-सावित्री-संवाद तथा यमराजद्वारा सावित्रीको तृतीय वरदानकी प्राप्ति

### सावित्र्युवाच

धर्मार्जने सुरश्रेष्ठ कुतो ग्लानिः क्लमस्तथा।  
त्वत्पादमूलसेवा च परमं धर्मकारणम्॥ १  
धर्मार्जनं तथा कार्यं पुरुषेण विजानता।  
तल्लाभः सर्वलाभेभ्यो यदा देव विशिष्यते॥  
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गो जन्मनः फलम्।  
धर्महीनस्य कामार्थौ वन्ध्यासुतसमौ प्रभौ॥  
धर्मादर्थस्तथा कामो धर्माल्लोकद्वयं तथा।  
धर्म एकोऽनुयात्येनं यत्र क्वचनगामिनम्॥  
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्विद्धि गच्छति।  
एको हि जायते जन्मुरेक एव विपद्यते॥ ५  
धर्मस्तमनुयात्येको न सुहन्त च बान्धवाः।  
क्रिया सौभाग्यलावण्यं सर्वं धर्मेण लभ्यते॥ ६  
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रसर्वेन्दुयमार्काग्न्यनिलाम्भसाम्।  
वस्वश्चिधनदाद्यानां ये लोकाः सर्वकामदाः॥ ७  
धर्मेण तानवाप्नोति पुरुषः पुरुषान्तक।  
मनोहराणि द्वीपानि वर्षाणि सुसुखानि च॥ ८  
प्रयान्ति धर्मेण नरास्तथैव नरगण्डकाः।  
नन्दनादीनि मुख्यानि देवोद्यानानि यानि च॥ ९  
तानि पुण्येन लक्ष्यन्ते नाकपृष्ठं तथा नरैः।  
विमानानि विचित्राणि तथैवाप्सरसः शुभाः॥ १०

सावित्रीने कहा—देवश्रेष्ठ! धर्मोपार्जनके कार्यमें कैसी ग्लानि और कैसा कष्ट? आपके चरणमूलकी सेवा ही परम धर्मका कारण है। देव! ज्ञानी पुरुषको सर्वदा धर्मोपार्जन करना चाहिये; क्योंकि उसका लाभ सभी लाभोंसे विशेष महत्त्वपूर्ण है। प्रभो! धर्म, अर्थ और काम—ये तीनों एक साथ संसारमें जन्म लेनेके फल हैं; क्योंकि धर्महीन पुरुषके अर्थ और काम वन्ध्याके पुत्रकी भाँति निष्फल हैं। धर्मसे अर्थ और कामकी प्राप्ति होती है तथा धर्मसे ही दोनों लोक सिद्ध होते हैं। जहाँ-कहीं भी जानेवाले प्राणीके पीछे अकेले धर्म ही जाता है। अन्य सभी वस्तुएँ शरीरके साथ ही नष्ट हो जाती हैं। प्राणी अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही मरकर जाता है। एक धर्म ही उसके पीछे-पीछे जाता है, मित्र एवं भाई-बन्धु कोई भी साथ नहीं देता। कार्योंमें सफलता, सौभाग्य और सौन्दर्य आदि सब कुछ धर्मसे ही प्राप्त होते हैं। पुरुषान्तक! ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, शिव, चन्द्रमा, यम, सूर्य, अग्नि, वायु, वरुण, वसुगण, अश्विनीकुमार एवं कुबेर आदि देवताओंके जो सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले लोक हैं, उन सबको मनुष्य धर्मके द्वारा ही प्राप्त करता है। मनुष्य मनोहर द्वीपों एवं सुखदायी वर्षोंको धर्मके द्वारा ही प्राप्त करते हैं। देवताओंके जो नन्दनादि मुख्य उद्यान हैं, वे भी मनुष्योंको पुण्यसे ही प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार स्वर्ग, विचित्र विमान और सुन्दर अप्सराएँ पुण्यसे ही प्राप्त होती हैं॥ १—१०॥

तैजसानि शरीराणि सदा पुण्यवतां फलम्।  
 राज्यं नृपतिपूजा च कामसिद्धिस्तथेपिता ॥ ११  
 संस्काराणि च मुख्यानि फलं पुण्यस्य दृश्यते।  
 रुक्मवैदूर्यदण्डानि चण्डांशुसदृशानि च ॥ १२  
 चामराणि सुराध्यक्ष भवन्ति शुभकर्मणाम्।  
 पूर्णेन्दुमण्डलाभेन रत्नांशुकविकासिना ॥ १३  
 धार्यतां याति छत्रेण नरः पुण्येन कर्मणा।  
 जयशङ्खस्वरौघेण सूतमागथनिःस्वनैः ॥ १४  
 वरासनं सभृङ्गारं फलं पुण्यस्य कर्मणः।  
 वरान्नपानं गीतं च भृत्यमाल्यानुलेपनम् ॥ १५  
 रत्नवस्त्राणि मुख्यानि फलं पुण्यस्य कर्मणः।  
 रूपौदार्यगुणोपेताः स्त्रियश्चातिमनोहराः ॥ १६  
 वासाः प्रासादपृष्ठेषु भवन्ति शुभकर्मिणाम्।  
 सुवर्णकिङ्गिरीमिश्रचामरापीडधारिणः ॥ १७  
 वहन्ति तुरगा देव नरं पुण्येन कर्मणा।  
 हैमकक्षैश्च मातङ्गैश्चलत्पर्वतसंनिधैः ॥ १८  
 खेलद्विः पादविन्यासैर्यान्ति पुण्येन कर्मणा।  
 सर्वकामप्रदे देव सर्वाघदुरितापहे ॥ १९  
 वहन्ति भक्तिं पुरुषः सदा पुण्येन कर्मणा।  
 तस्य द्वाराणि यजनं तपो दानं दमः क्षमा ॥ २०  
 ब्रह्मचर्यं तथा सत्यं तीर्थानुसरणं शुभम्।  
 स्वाध्यायसेवा साधूनां सहवासः सुराच्चनम् ॥ २१  
 गुरुणां चैव शुश्रूषा ब्राह्मणानां च पूजनम्।  
 इन्द्रियाणां जयश्चैव ब्रह्मचर्यममत्सरम् ॥ २२  
 तस्माद् धर्मः सदा कार्यो नित्यमेव विजानता।  
 न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वाकृतम् ॥ २३  
 बाल एव चरेद् धर्ममनित्यं देव जीवितम्।  
 को हि जानाति कस्याद्य मृत्युरेवा पतिष्ठति ॥ २४  
 पश्यतोऽप्यस्य लोकस्य मरणं पुरतः स्थितम्।  
 अमरस्येव चरितमत्याश्र्यं सुरोत्तम ॥ २५  
 युवत्वापेक्षया बालो वृद्धत्वापेक्षया युवा।  
 मृत्युरुत्सङ्गमारूढः स्थविरः किमपेक्षते ॥ २६

पुण्यशाली मनुष्योंके तेजस्वी शरीर पुण्यके ही फल हैं। राज्यकी प्राप्ति, राजाओंद्वारा सम्मान, अभीष्ट मनोरथोंकी सिद्धि तथा मुख्य संस्कार—ये सभी पुण्यके ही फल देखे जाते हैं। देवाध्यक्ष! पुण्यवान् पुरुषोंके चँवर सुवर्ण तथा वैदूर्यके बने हुए डंडेवाले तथा सूर्यके समान तेजोमय होते हैं। पूर्णिमाके चन्द्रमण्डलके समान कान्तिमान् एवं रत्नजटित वस्त्रसे सुशोभित छत्र मनुष्योंके पुण्य कर्मसे ही प्राप्त होता है। विजयकी सूचना देनेवाले शङ्ख-स्वरों तथा मागध-बन्दियोंकी माङ्गलिक ध्वनियोंके साथ अभिषेक-पात्रसहित श्रेष्ठ सिंहासनका प्राप्त होना पुण्यकर्मका ही फल है। उत्तम अन्न, जल, गीत, अनुचर, मालाएँ, चन्दन, रत्न तथा बहुमूल्य वस्त्र—ये सब पुण्यकर्मोंके फल हैं। सुन्दरता और औदार्य गुणोंसे युक्त अतिशय मनोहर स्त्रियाँ और उच्च महलोंपर निवास शुभ कर्मियोंको प्राप्त होते हैं। देव! मस्तकपर स्वर्णकी घंटियोंसे युक्त चमर धारण करनेवाले घोड़े पुण्यकर्मसे ही मनुष्यको वहन करते हैं। चलते हुए पर्वतोंके समान, सुवर्णनिर्मित अम्बारीसे सुशोभित तथा चञ्चल पादविन्याससे युक्त हाथियोंकी सवारी पुण्यकर्मके प्रभावसे ही प्राप्त होती है। देव! सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले एवं सभी पापोंको दूर करनेवाले स्वर्गमें पुरुष सदा पुण्यकर्मोंके प्रभावसे ही भक्ति प्राप्त करते हैं। उसकी प्राप्तिके उपाय हैं—यज्ञ, तप, दान, इन्द्रियनिग्रह, क्षमाशीलता, ब्रह्मचर्य, सत्य, शुभदायक तीर्थोंकी यात्रा, स्वाध्याय, सेवा, सत्पुरुषोंकी संगति, देवार्चन, गुरुजनोंकी शुश्रूषा, ब्राह्मणोंकी पूजा, इन्द्रियोंको वशमें रखना तथा मत्सररहित ब्रह्मचर्य। इसलिये विद्वान् पुरुषको सर्वदा धर्माचरण करना चाहिये; क्योंकि मृत्यु इसकी प्रतीक्षा नहीं करती कि इसने अपना कार्य पूरा किया अथवा नहीं। देव! मनुष्यको बाल्यावस्थासे ही धर्माचरण करना चाहिये; क्योंकि यह जीवन नश्वर है। यह कौन जानता है कि आज किसकी मृत्यु हो जायगी। सुरोत्तम! इस जीवके देखते हुए भी मृत्यु सामने खड़ी रहती है, फिर भी वह मृत्युरहितकी भाँति आचरण करता है—यह महान् आश्र्य है। युवककी अपेक्षा बालक और वृद्धकी अपेक्षा युवक अपनेको मृत्युसे दूर मानता है, किंतु मृत्युकी गोदमें बैठा हुआ वृद्ध किसकी अपेक्षा करता है।

तत्रापि विन्दतस्त्राणं मृत्युना तस्य का गतिः ।  
न भयं मरणं चैव प्राणिनामभयं क्लचित् ।  
तत्रापि निर्भयाः सन्तः सदा सुकृतकारिणः ॥ २७

यम उवाच

तुष्टोऽस्मि ते विशालाक्षि वचनैर्धर्मसंगतैः ।  
विना सत्यवतः प्राणान् वरं वरय मा चिरम् ॥ २८

सावित्र्युवाच

वरयामि त्वया दत्तं पुत्राणां शतमौरसम् ।  
अनपत्यस्य लोकेषु गतिः किल न विद्यते ॥ २९

यम उवाच

कृतेन कामेन निवर्त भद्रे  
भविष्यतीदं सफलं यथोक्तम् ।  
ममोपरोधस्तत्व च क्लमः स्यात्  
तथाधुना तेन तव ब्रवीमि ॥ ३०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने तृतीयवरलाभो नाम द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१२ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सावित्री-उपाख्यानमें तृतीय वर-लाभ नामक दो सौ बारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २१२ ॥

इतनेपर भी जो मृत्युसे रक्षाके उपाय सोचते हैं, उनकी क्या गति होगी ? प्राणधारियोंको इस जगत्में केवल मृत्युसे भय ही नहीं है, उनके लिये कहीं अभयस्थान भी नहीं है। तथापि पुण्यवान् सत्पुरुष सर्वदा निर्भय होकर संसारमें जीवित रहते हैं ॥ ११—२७ ॥

यमराज बोले—विशालाक्षि ! तुम्हारी इन धर्मयुक्त बातोंसे मैं विशेष संतुष्ट हूँ, अतः तुम सत्यवान्‌के प्राणोंके अतिरिक्त अन्य वर माँग लो, देर मत करो ॥ २८ ॥

सावित्रीने कहा—देव ! मैं आपसे अपनी कोखसे उत्पन्न होनेवाले सौ पुत्रोंका वरदान माँगती हूँ; क्योंकि लोकोंमें पुत्रहीनकी सद्गति नहीं होती ॥ २९ ॥

यमराज बोले—भद्रे ! अब तुम शेष अभीष्ट कामनाको छोड़कर लौट जाओ, तुम्हारी यह याचना भी सफल होगी। इस प्रकार तुम्हारे अनुगमनसे मेरे कार्योंमें विघ्न होगा और तुम्हें भी कष्ट होगा, इसीलिये मैं तुमसे इस समय ऐसा कह रहा हूँ ॥ ३० ॥

## दो सौ तेरहवाँ अध्याय

### सावित्रीकी विजय और सत्यवान्‌की बन्धन-मुक्ति

सावित्र्युवाच

धर्माधर्मविधानज्ञ सर्वधर्मप्रवर्तक ।  
त्वमेव जगतो नाथः प्रजासंयमनो यमः ॥ १  
कर्मणामनुरूपेण यस्माद् यमयसे प्रजाः ।  
तस्माद् वै प्रोच्यसे देव यम इत्येव नामतः ॥ २  
धर्मेणोमाः प्रजाः सर्वा यस्माद् रञ्जयसे प्रभो ।  
तस्मात् ते धर्मराजेति नाम सद्भिर्निगद्यते ॥ ३  
सुकृतं दुष्कृतं चोभे पुरोधाय यदा जनाः ।  
त्वत्सकाशं मृता यान्ति तस्मात् त्वं मृत्युरुच्यते ॥ ४  
कालं कलार्धं कलयन् सर्वेषां त्वं हि तिष्ठसि ।  
तस्मात् कालेति ते नाम प्रोच्यते तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५  
सर्वेषामेव भूतानां यस्मादन्तकरो महान् ।  
तस्मात् त्वमन्तकः प्रोक्तः सर्वदेवैर्महाद्युते ॥ ६

सावित्रीने कहा—धर्म-अधर्मके विधानको जानेवाले एवं सभी धर्मोंके प्रवर्तक देव ! आप ही जगत्के स्वामी तथा प्रजाओंका नियमन करनेवाले यम हैं। देव ! चूँकि आप कर्मोंके अनुरूप प्रजाओंका नियमन करते हैं, इसलिये 'यम' नामसे पुकारे जाते हैं। प्रभो ! चूँकि आप धर्मपूर्वक इस सारी प्रजाको आनन्दित करते हैं, इसीलिये सत्पुरुष आपको धर्मराज नामसे पुकारते हैं। लोग मरनेपर अपने सत्-असत्—दोनों प्रकारके कर्मोंको अपने आगे रखकर आपके समीप जाते हैं, इसलिये आप मृत्यु कहलाते हैं। आप सभी प्राणियोंके क्षण, कला आदिसे कालकी गणना करते रहते हैं, इसीलिये तत्त्वदर्शी लोग आपको 'काल' नामसे पुकारते हैं। महादीसिसम्पन्न ! चूँकि आप संसारके सभी चराचर जीवोंके महान् अन्तकर्ता हैं, इसीलिये आप सभी देवताओंद्वारा 'अन्तक' कहे जाते हैं।

विवस्वतस्त्वं तनयः प्रथमं परिकीर्तिः ।  
तस्माद् वैवस्वतो नामा सर्वलोकेषु कथ्यसे ॥ ७  
आयुष्ये कर्मणि क्षीणे गृह्णासि प्रसभं जनम् ।  
तदा त्वं कथ्यसे लोके सर्वप्राणहरेति वै ॥ ८  
तव प्रसादाद् देवेश त्रयीधर्मो न नश्यति ।  
तव प्रसादाद् देवेश धर्मे तिष्ठन्ति जन्तवः ।  
तव प्रसादाद् देवेश संकरो न प्रजायते ॥ ९  
सतां सदा गतिर्देव त्वमेव परिकीर्तिः ।  
जगतोऽस्य जगन्नाथ मर्यादापरिपालकः ॥ १०  
पाहि मां त्रिदशश्रेष्ठ दुःखितां शरणागताम् ।  
पितरौ च तथैवास्य राजपुत्रस्य दुःखितौ ॥ ११

यम उवाच

स्तवेन भक्त्या धर्मज्ञे मया तुष्टेन सत्यवान् ।  
तव भर्ता विमुक्तोऽयं लब्धकामा व्रजाबले ॥ १२  
राज्यं कृत्वा त्वया सार्थं वर्षाणां शतपञ्चकम् ।  
नाकपृष्ठमथारुह्य त्रिदशैः सह रंस्यते ॥ १३  
त्वयि पुत्रशतं चापि सत्यवान् जनयिष्यति ।  
ते चापि सर्वे राजानः क्षत्रियास्त्रिदशोपमाः ॥ १४  
मुख्यास्त्वन्नाम पुत्रस्ते भविष्यन्ति हि शाश्वताः ।  
पितुश्च ते पुत्रशतं भविता तव मातरि ॥ १५  
मालव्यां मालवा नाम शाश्वताः पुत्रपौत्रिणः ।  
भ्रातरस्ते भविष्यन्ति क्षत्रियास्त्रिदशोपमाः ॥ १६  
स्तोत्रेणानेन धर्मज्ञे कल्यमुत्थाय यस्तु माम् ।  
कीर्तयिष्यति तस्यापि दीर्घमायुर्भविष्यति ॥ १७

मत्य उवाच

एतावदुक्त्वा भगवान् यमस्तु  
प्रमुच्य तं राजसुतं महात्मा ।  
अदर्शनं तत्र यमो जगाम  
कालेन सार्थं सह मृत्युना च ॥ १८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्यपाख्याने यमस्तुतिसत्यवज्जीवितलाभो नाम त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१३ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके सावित्री-उपाख्यानमें यमस्तुति और सत्यवान्का जीवन-लाभ  
नामक दो सौ तेरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २१३ ॥

आप विवस्वान्के प्रथम पुत्र कहे गये हैं, अतः सम्पूर्ण विश्वमें वैवस्वत नामसे कहे जाते हैं। आयुकर्मके क्षीण हो जानेपर आप लोगोंको हठात् पकड़ लेते हैं, इसी कारण लोकमें सर्वप्राणहर नामसे कहे जाते हैं। देवेश! आपकी कृपासे ऋक्, साम और यजुः—इन तीनों वेदोंद्वारा प्रतिपादित धर्मका विनाश नहीं होता। देवेश! आपकी महिमासे सभी प्राणी अपने-अपने धर्मोंमें स्थित रहते हैं। देवेश! आपकी सत्कृपासे वर्णसंकर संततिकी उत्पत्ति नहीं होती। देव! आप ही सदा सत्पुरुषोंकी गति बतलाये गये हैं। जगन्नाथ! आप इस जगत्की मर्यादाका पालन करनेवाले हैं। देवताओंमें श्रेष्ठ! अपनी शरणमें आयी हुई मुझ दुखियाकी रक्षा कीजिये। इस राजपुत्रके माता-पिता भी दुःखी हैं ॥१—११॥

यमराज बोले—धर्मज्ञे! तुम्हारी स्तुति तथा भक्तिसे संतुष्ट होकर मैंने तुम्हारे पति इस सत्यवान्को विमुक्त कर दिया है। अबले! अब तुम सफलमनोरथ होकर लौट जाओ। यह सत्यवान् तुम्हारे साथ पाँच सौ वर्षोंतक राज्यसुख भोगकर अन्तकालमें स्वर्गलोकमें जायगा और देवताओंके साथ विहार करेगा। सत्यवान् तुम्हारे गर्भसे सौ पुत्रोंको भी उत्पन्न करेगा, वे सब-के-सब देवताओंके समान तेजस्वी तथा क्षत्रिय राजा होंगे। वे चिरकालतक जीवित रहते हुए तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होंगे। तुम्हारे पिताको भी तुम्हारी माताके गर्भसे सौ पुत्र उत्पन्न होंगे। वे तुम्हारे भाई मालवा (मध्यदेश)-में उत्पन्न होनेके कारण मालव नामसे विख्यात होंगे और चिरकालतक जीवित रहते हुए पुत्र-पौत्रादिसे युक्त होंगे तथा देवताओंके समान ऐश्वर्यसम्पन्न एवं क्षत्रियोचित गुणोंका पालन करेंगे। धर्मज्ञे! जो कोई पुरुष प्रातःकाल उठकर इस स्तोत्रद्वारा मेरा स्तवन करेगा, उसकी भी आयु दीर्घ होगी ॥१२—१७॥

मत्यभगवान्ने कहा—राजन्! इतनी बातें कहकर ऐश्वर्यशाली महात्मा यमराज उस राजपुत्र सत्यवान्को छोड़कर काल तथा मृत्युके साथ वहीं अदृश्य हो गये ॥१८॥

## दो सौ चौदहवाँ अध्याय

सत्यवान्‌को जीवनलाभ तथा पत्नीसहित राजाको नेत्रज्योति एवं राज्यकी प्राप्ति

मत्स्य उक्ताच

सावित्री तु ततः साध्वी जगाम् वरवर्णिनी ।  
पथा यथागतेनैव यत्रासीत् सत्यवान् मृतः ॥ १  
सा समासाद्य भर्तारं तस्योत्सङ्घगतं शिरः ।  
कृत्वा विवेश तन्वङ्गी लम्बमाने दिवाकरे ॥ २  
सत्यवानपि निरुक्तो धर्मराजाच्छनैः शनैः ।  
उन्मीलयत नेत्राभ्यां प्रास्फुरच्च नराधिप ॥ ३  
ततः प्रत्यागतप्राणः प्रियां वचनमब्रवीत् ।  
क्वासौ प्रयातः पुरुषो यो मामप्यपकर्षति ॥ ४  
न जानामि वरारोहे कश्चासौ पुरुषः शुभे ।  
वनेऽस्मिंश्चारुसर्वाङ्गि सुमस्य च दिनं गतम् ॥ ५  
उपवासपरिश्रान्ता दुःखिता भवती मया ।  
अस्महुर्ददयेनाद्य पितरौ दुःखितौ तथा ।  
द्रष्टुमिच्छाम्यहं सुभू गमने त्वरिता भव ॥ ६

सावित्र्युक्ताच

आदित्योऽस्तमनुप्रासो यदि ते रुचितं प्रभो ।  
आश्रम तु प्रयास्यावः श्वशुरौ हीनचक्षुषौ ॥ ७  
यथावृत्तं च तत्रैव तव वक्ष्ये यथाश्रमे ।  
एतावदुक्त्वा भर्तारं सह भर्ता तदा ययौ ॥ ८  
आससादाश्रमं चैव सह भर्ता नृपात्मजा ।  
एतस्मिन्नेव काले तु लब्धचक्षुर्महीपतिः ॥ ९  
द्युमत्सेनः सभार्यस्तु पर्यतप्यत भार्गव ।  
प्रियं पुत्रमपश्यन् वै स्नुषां चैवाथ कर्शिताम् ॥ १०  
आश्वास्यमानस्तु तथा स तु राजा तपोधनैः ।  
ददर्श पुत्रमायानं स्नुषया सह काननात् ॥ ११  
सावित्री तु वरारोहा सह सत्यवता तदा ।  
ववन्दे तत्र राजानं सभार्य क्षत्रपुङ्गवम् ॥ १२  
परिष्वक्तस्तदा पित्रा सत्यवान् राजनन्दनः ।  
अभिवाद्य ततः सर्वान् वने तस्मिंस्तपोधनान् ॥ १३  
उक्तास तत्र तां रात्रिमृषिभिः सर्वधर्मवित् ।  
सावित्र्यपि जगादाथ यथावृत्तमनिन्दिता ॥ १४

मत्स्यभगवान् ने कहा—तदनन्तर पतिव्रता सुन्दरी सावित्री वहाँसे जिस मार्गसे गयी थी, उसी मार्गसे लौटकर उस स्थानपर आयी, जहाँ सत्यवान् का मृत शरीर पड़ा हुआ था। तब कृशाङ्गी सावित्री पतिके निकट जाकर उसके सिरको अपनी गोदमें रखकर पूर्ववत् बैठ गयी। उस समय भगवान् भास्कर अस्ताचलको जा रहे थे। नरेश्वर! धर्मराजसे मुक्त हुए सत्यवान् ने भी धीरे-धीरे आँखें खोली और अँगड़ाई ली। तत्पश्चात् प्राणोंके लौट आनेपर उसने अपनी स्त्री सावित्रीसे इस प्रकार कहा—वह पुरुष कहाँ चला गया, जो मुझे खींचकर लिये जा रहा था। सुन्दरि! मैं नहीं जानता कि वह पुरुष कौन था! सर्वाङ्गसुन्दरि! इस वनमें सोते हुए मेरा पूरा दिन बीत गया और शुभे! तुम भी उपवाससे परिश्रान्त एवं दुःखी हुई तथा मुझ-जैसे दुष्टसे आज माता-पिताको भी दुःख भोगना पड़ा। सुन्दर भौंहोंवाली! मैं उन्हें देखना चाहता हूँ, चलो, जल्दी चलो' ॥ १—६ ॥

सावित्री बोली—प्रभो! सूर्य तो अस्त हो गये। पर यदि आपको पसंद हो तो हमलोग आश्रमको लौट चलें; क्योंकि मेरे सास-श्वशुर अंधे हैं। मैं वहीं आश्रममें यह सब घटित हुआ वृत्तान्त आपको बतलाऊँगी। सावित्री उस समय पतिसे ऐसा कहकर पतिके साथ ही चल पड़ी और वह राजकुमारी पतिके साथ आश्रमपर आ पहुँची। भार्गव! इसी समय पत्नीसहित द्युमत्सेनको नेत्रज्योति प्राप्त हो गयी। वे अपने प्रिय पुत्र और दुबली-पतली पुत्रवधूको न देखकर दुःखी हो रहे थे। उस समय तपस्वी ऋषि राजाको सान्त्वना दे रहे थे। इतनेमें ही उन्होंने पुत्रवधूके साथ पुत्रको वनसे आते हुए देखा। उस समय सुन्दरी सावित्रीने सत्यवान् के साथ सपलीक क्षत्रियश्रेष्ठ राजा द्युमत्सेनको प्रणाम किया। पिताने राजकुमार सत्यवान् को गले लगाया। तब सभी धर्मोंको जानेवाले सत्यवान् ने उस वनमें निवास करनेवाले तपस्वियोंको अभिवादनकर रातमें ऋषियोंके साथ वहीं निवास किया। उस समय अनिन्दितचरित्रा सावित्रीने जैसी घटना घटित हुई थी,

व्रतं समापयामास तस्यामेव तदा निशि ।  
ततस्तूर्यैस्त्रियामान्ते ससैन्यस्तस्य भूपतेः ॥ १५  
आजगाम जनः सर्वो राज्यार्थाय निमन्त्रणे ।  
विज्ञापयामास तदा तत्र प्रकृतिशासनम् ॥ १६  
विचक्षुषस्ते नृपते येन राज्यं पुरा हतम् ।  
अमात्यैः स हतो राजा भवांस्तस्मिन् पुरे नृपः ॥ १७  
एतच्छुत्वा ययौ राजा बलेन चतुरङ्गिणा ।  
लेभे च सकलं राज्यं धर्मराजान्महात्मनः ॥ १८  
भ्रातृणां तु शतं लेभे सावित्र्यपि वराङ्गना ।  
एवं पतिव्रता साध्वी पितृपक्षं नृपात्मजा ॥ १९  
उज्जहार वरारोहा भर्तृपक्षं तथैव च ।  
मोक्षयामास भर्तर्ह मृत्युपाशवशं गतम् ॥ २०  
तस्मात् साध्व्यः स्त्रियः पूज्या: सततं देववन्नरैः ।  
तासां राजन् प्रसादेन धार्यते वै जगत्रयम् ॥ २१  
तासां तु वाक्यं भवतीह मिथ्या  
न जातु लोकेषु चराचरेषु ।  
तस्मात् सदा ताः परिपूजनीयाः  
कामान् समग्रानभिकामयानैः ॥ २२  
यश्वेदं शृणुयान्नित्यं सावित्राख्यानमुत्तमम् ।  
स सुखी सर्वसिद्धार्थो न दुःखं प्राप्नुयान्नरः ॥ २३

इति श्रीमात्ये महापुराणे सावित्रुपाख्यानसमाप्तिर्नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१४ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणमें सावित्री-उपाख्यान-समाप्ति नामक दो सौ चौदहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २१४ ॥

उसका वर्णन किया और उसी रातमें अपने व्रतको भी समाप्त किया । तदनन्तर तीन पहर बीत चुकनेपर राजाकी सारी प्रजा सेनासहित तुरुही आदि बाजोंको बजाते हुए राजाको पुनः राज्य करनेके लिये निमन्त्रण देने आयी और यह सूचना दी कि राज्यमें आपका शासन अब पूर्वकृत हो । राजन् ! नेत्रहीन होनेके कारण जिस राजाने आपके राज्यको छीन लिया था, वह राजा मन्त्रियोंद्वारा मार डाला गया । अब उस नगरमें आप ही राजा हैं । यह सुनकर राजा चतुरंगिणी सेनाके साथ वहाँ गये और महात्मा धर्मराजकी कृपासे पुनः अपने सम्पूर्ण राज्यको प्राप्त किये । सुन्दरी सावित्रीने भी सौ भाइयोंको प्राप्त किया । इस प्रकार साध्वी पतिव्रता सुन्दरी राजकुमारी सावित्रीने अपने पितृपक्ष तथा पतिपक्ष—दोनोंका उद्धार किया और मृत्युके पाशमें बँधे हुए अपने पतिको मुक्त किया ॥ ७—२० ॥

राजन् ! इसलिये मनुष्योंको सदा साध्वी स्त्रियोंकी देवताओंके समान पूजा करनी चाहिये; क्योंकि उनकी कृपासे ये तीनों लोक स्थित हैं । उन पतिव्रता स्त्रियोंके वाक्य इस चराचर जगत्में कभी भी मिथ्या नहीं होते, इसलिये सभी मनोरथोंकी कामना करनेवालोंको सर्वदा इनकी पूजा करनी चाहिये । जो मनुष्य सावित्रीके इस सर्वोत्तम आख्यानको नित्य सुनता है, वह सभी प्रयोजनोंमें सफलता प्राप्तकर सुखका अनुभव करता है और कभी भी दुःखका भागी नहीं होता ॥ २१—२३ ॥

## दो सौ पंद्रहवाँ अध्याय \*

राजाका कर्तव्य, राजकर्मचारियोंके लक्षण तथा राजधर्मका निरूपण

मनुरुक्तव्य

राज्ञोऽभिषिक्तमात्रस्य किं नु कृत्यतमं भवेत् ।  
एतन्मे सर्वमाचक्षव सम्यग्वेत्ति यतो भवान् ॥ १

मत्स्य उवाच

अभिषेकाद्रृशिरसा राजा राज्यावलोकिना ।  
सहायवरणं कार्यं तत्र राज्यं प्रतिष्ठितम् ॥ २

मनुने पूछा—भगवन् ! अभिषेक होनेके बाद राजाको तुरंत कौन-सा कर्म करना आवश्यक है ? वह सब मुझे बतलाइये; क्योंकि आप इसे अच्छी तरह जानते हैं ॥ १ ॥

मत्स्यभगवान् ने कहा—राजन् ! राज्यकी रक्षा करनेवाले राजाको चाहिये कि वह अभिषेकके जलसे सिरके भीगते ही सहायकों (मन्त्रियों)-की नियुक्ति करे; क्योंकि राज्य उन्हींपर प्रतिष्ठित रहता है ।

\* चण्डेश्वरादिके 'राजनीतिरलाकर' आदि संग्रह बड़े श्रेष्ठ हैं । वे रामायण, महाभारत तथा पुराणादिसे ही संगृहीत हैं । उनमें भी मत्स्यपुराणके इस राजनीतिप्रकरणका स्थान श्रेष्ठतर है, अतः यह अंश आजके राजनेताओंके लिये विशेष मननीय है ।

यदप्यल्पतरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्।  
 पुरुषेणासहायेन किमु राज्यं महोदयम्॥ ३  
 तस्मात् सहायान् वरयेत् कुलीनान् नृपतिः स्वयम्।  
 शूरान् कुलीनजातीयान् बलयुक्ताञ्छ्रयान्वितान्॥ ४  
 रूपसत्त्वगुणोपेतान् सज्जनान् क्षमयान्वितान्।  
 क्लेशक्षमान् महोत्साहान् धर्मज्ञांश्च प्रियंवदान्॥ ५  
 हितोपदेशकालज्ञान् स्वामिभक्तान् यशोऽर्थिनः।  
 एवंविधान् सहायांश्च शुभकर्मसु योजयेत्॥ ६  
 गुणहीनानपि तथा विज्ञाय नृपतिः स्वयम्।  
 कर्मस्वेव नियुज्ञीत यथायोगयेषु भागशः॥ ७  
 कुलीनः शीलसम्पन्नो धनुर्वेदविशारदः।  
 हस्तिशिक्षाश्वशिक्षासु कुशलः इलक्षणभाषितः॥ ८  
 निमित्ते शकुनज्ञाने वेत्ता चैव चिकित्सिते।  
 कृतज्ञः कर्मणां शूरस्तथा क्लेशसहस्त्वज्जुः॥ ९  
 व्यूहतत्त्वविधानज्ञः फल्गुसारविशेषवित्।  
 राजा सेनापतिः कार्यो ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथवा॥ १०  
 प्रांशुः सुरुपो दक्षश्च प्रियवादी न चोद्धतः।  
 चित्तग्राहश्च सर्वेषां प्रतीहारो विधीयते॥ ११  
 यथोक्तवादी दूतः स्याद् देशभाषाविशारदः।  
 शक्तः क्लेशसहो वाग्मी देशकालविभागवित्॥ १२  
 विज्ञातदेशकालश्च दूतः स स्यान्महीक्षितः।  
 वक्ता नयस्य यः काले स दूतो नृपतेर्भवेत्॥ १३  
 प्रांशवो व्यायताः शूरा दृढभक्ता निराकुलाः।  
 राजा तु रक्षिणः कार्याः सदा क्लेशसहा हिताः॥ १४  
 अनाहार्योऽनृशंसश्च दृढभक्तिश्च पार्थिवे।  
 ताम्बूलधारी भवति नारी वाप्यथ तदगुणा॥ १५  
 षाढगुणविधितत्त्वज्ञो देशभाषाविशारदः।  
 सांधिविग्रहिकः कार्यो राजा नयविशारदः॥ १६  
 कृताकृतज्ञो भृत्यानां ज्ञेयः स्याद् देशरक्षिता।  
 आयव्यव्यज्ञो लोकज्ञो देशोत्पत्तिविशारदः॥ १७

जो छोटे-से-छोटा भी कार्य होता है, वह भी सहायकरहित अकेले व्यक्तिके लिये दुष्कर होता है, फिर राज्य-जैसे महान् उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यके लिये तो कहना ही क्या है? इसलिये राजाको चाहिये कि जो उत्तम कुलमें उत्पन्न, शूर, उच्च जातिमें उत्पन्न, बलवान्, श्रीसम्पन्न, रूपवान्, सत्त्वगुणसे युक्त, सज्जन, क्षमाशील, कष्टसहिष्णु, महोत्साही, धर्मज्ञ, प्रियभाषी, हितोपदेशके कालका ज्ञाता, स्वामिभक्त तथा यशके अभिलाषी हों, ऐसे सहायकोंका स्वयं वरण करके उन्हें माङ्गलिक कर्मोंमें नियुक्त करे। उसी प्रकार स्वयं राजाको कुछ गुणहीन सहायकोंको भी जान-बूझकर उन्हें यथायोग्य कार्योंमें विभागपूर्वक नियुक्त करना चाहिये। राजाको उत्तम कुलोत्पन्न, शीलवान्, धनुर्वेदमें प्रवीण, हाथी और अश्वकी शिक्षामें कुशल, मृदुभाषी, शकुन और अन्यान्य शुभाशुभ कारणों तथा ओषधियोंको जाननेवाला, कृतज्ञ, शूरतामें प्रवीण, कष्टसहिष्णु, सरल, व्यूह-रचनाके विधानको जाननेवाला, निस्तत्त्व एवं सारतत्त्वका विशेषज्ञ, ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय पुरुषको सेनापति-पदपर नियुक्त करना चाहिये॥ २—१०॥

ऊँचे कदवाला, सौन्दर्यशाली, कार्यकुशल, प्रियवक्ता, गम्भीर तथा सबके चित्तको आकर्षित करनेवालेको प्रतिहारी बनानेका विधान है। जो सत्यवादी, देशी भाषामें प्रवीण, सामर्थ्यशाली, सहिष्णु, वक्ता, देश-कालके विभागको जाननेवाला, देश-कालका जानकार तथा मौकेपर नीतिकी बातें कहनेवाला हो, वह राजाका दूत हो सकता है। जो लम्बे कदवाले, कम सोनेवाले, शूर, दृढ़ भक्ति रखनेवाले, धैर्यवान्, कष्टसहिष्णु और हितैषी हों, ऐसे पुरुषोंको राजाद्वारा अङ्गरक्षाके कार्यमें नियुक्त किया जाना चाहिये। जो दूसरोंद्वारा बहकाया न जा सके, दुष्ट स्वभावका न हो, राजामें अगाध भक्ति रखता हो—ऐसा पुरुष ताम्बूलधारी हो सकता है, अथवा ऐसे गुणवाली स्त्री भी नियुक्त की जा सकती है। राजाको नीति शास्त्रके छः गुणोंके तत्त्वोंको जाननेवाले, देशी भाषामें प्रवीण एवं नीतिनिपुणको सन्धि-विग्राहिक बनाना चाहिये। भृत्योंके कृत-अकृत कार्योंको जाननेवाले, आय-व्ययके ज्ञाता, लोकका जानकार और देशोत्पत्तिमें निपुण पुरुषको देशरक्षक बनाना चाहिये।

सुरूपस्तरुणः प्रांशुरुद्घभक्तिः कुलोचितः ।  
शूरः क्लेशसहश्रैव खडगधारी प्रकीर्तिः ॥ १८  
शूरश्च बलयुक्तश्च गजाश्वरथकोविदः ।  
धनुर्धारी भवेद् राजः सर्वक्लेशसहः शुचिः ॥ १९  
निमित्तशकुनज्ञानी हयशिक्षाविशारदः ।  
हयायुर्वेदतत्त्वज्ञो भुवो भागविचक्षणः ॥ २०  
बलाबलज्ञो रथिनः स्थिरदृष्टिः प्रियंवदः ।  
शूरश्च कृतविद्यश्च सारथिः परिकीर्तिः ॥ २१  
अनाहार्यः शुचिर्दक्षश्चिकित्सतविदां वरः ।  
सूपशास्त्रविशेषज्ञः सूदाध्यक्षः प्रशस्यते ॥ २२  
सूदशास्त्रविधानज्ञाः पराभेद्याः कुलोदगताः ।  
सर्वे महानसे धार्याः कृत्तकेशनखा नराः ॥ २३  
समः शत्रौ च मित्रे च धर्मशास्त्रविशारदः ।  
विप्रमुख्यः कुलीनश्च धर्माधिकरणो भवेत् ॥ २४  
कार्यस्तथाविधास्तत्र द्विजमुख्याः सभासदः ।  
सर्वदेशाक्षराभिज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ २५  
लेखकः कथितो राजः सर्वाधिकरणेषु वै ।  
शीर्षोपेतान् सुसम्पूर्णान् समश्रेणिगतान् समान् ॥ २६  
अक्षरान् वै लिखेद् यस्तु लेखकः स वरः स्मृतः ।  
उपायवाक्यकुशलः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ २७  
बहूर्थवक्ता चाल्पेन लेखकः स्यान्नपोत्तम ।  
वाक्याभिप्रायतत्त्वज्ञो देशकालविभागवित् ॥ २८  
अनाहार्ये भवेत्सक्तो लेखकः स्यान्नपोत्तम ।  
पुरुषान्तरतत्त्वज्ञाः प्रांशवश्चाप्यलोलुपाः ॥ २९  
धर्माधिकारिणः कार्या जना दानकरा नराः ।  
एवंविधास्तथा कार्या राजा दौवारिका जनाः ॥ ३०  
लोहवस्त्राजिनादीनां रत्नानां च विधानवित् ।  
विज्ञाता फल्मुसाराणामनाहार्यः शुचिः सदा ॥ ३१  
निपुणश्चाप्रमत्तश्च धनाध्यक्षः प्रकीर्तिः ॥ ३२  
आयद्वारेषु सर्वेषु धनाध्यक्षसमा नराः ।  
व्ययद्वारेषु च तथा कर्तव्याः पृथिवीक्षिता ॥ ३३

सुन्दर आकृतिवाले, लम्बे कदवाले, राज्यभक्त, कुलीन, शूर-वीर तथा कष्टसहिष्णुको खडगधारी बनाना चाहिये । शूर, बलवान्, हाथी, घोड़े और रथकी विशेषताको जाननेवाला, सभी प्रकारके क्लेशोंको सहन करनेमें समर्थ तथा पवित्र व्यक्ति राजाका धनुर्धारी हो सकता है । शुभाशुभ शकुनको जाननेवाला, अश्वशिक्षामें विशारद, अश्वोंके आयुर्वेदविज्ञानको जाननेवाला, पृथ्वीके समस्त भागोंका ज्ञाता, रथियोंके बलाबलका पारखी, स्थिरदृष्टि, प्रियभाषी, शूर-वीर तथा विद्वान् पुरुष सारथिके योग्य कहा गया है ॥ ११—२१ ॥

दूसरोंके बहकावेमें न आनेवाले, पवित्र, प्रवीण, ओषधियोंके गुण-दोषोंको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ, भोजनकी विशेषताओंके जानकारको उत्तम भोजनाध्यक्ष कहा जाता है । जो भोजनशास्त्रके विधानोंमें कुशल, वंश-परम्परासे चले आनेवाले, दूसरोंद्वारा अभेद्य तथा कटे हुए नख-केशवाले हों, ऐसे सभी पुरुषोंको चौकेमें नियुक्त करना चाहिये । शत्रु और मित्रमें समताका व्यवहार करनेवाले, धर्मशास्त्रमें विशारद, कुलीन श्रेष्ठ ब्राह्मणको धर्माध्यक्षका पद सौंपना चाहिये । ऊपर कही हुई विशेषताओंसे युक्त ब्राह्मणोंको सभासद् नियुक्त करना चाहिये । जो सभी देशोंकी भाषाओंका ज्ञाता तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पटु हो, ऐसा व्यक्ति सभी विभागोंमें राजाका लेखक कहा गया है । जो ऊपरकी शिरोरेखासे पूर्ण, पूर्ण अवयववाले, समश्रेणीमें प्राप्त एवं समान आकृतिवाले अक्षरोंको लिखता है, वह अच्छा लेखक कहा जाता है । नृपत्रेष्ठ ! जो उपाययुक्त वाक्योंमें प्रवीण, सम्पूर्ण शास्त्रोंमें विशारद तथा थोड़े शब्दोंमें अधिक प्रयोजनकी बात कहनेकी क्षमता रखता हो, उसे लेखक बनाना चाहिये । नृपोत्तम ! जो वाक्योंके अभिप्रायको जाननेवाला, देश-कालके विभागका ज्ञाता तथा अभेदज्ञ यानी भेद न करनेवाला हो, उसे लेखक बनाना चाहिये । मनुष्योंके हृदयकी बातों तथा भावोंको परखनेवाले, दीर्घकाय, निर्लोभ एवं दानशील व्यक्तियोंको धर्माधिकारी बनाना चाहिये तथा राजाद्वारा इसी प्रकारके लोगोंको द्वारपालका पद भी सौंपा जाना चाहिये । लोह, वस्त्र, मृग-चर्मादि तथा रत्नोंकी परख करनेवाला, अच्छी-बुरी वस्तुओंका जानकार, दूसरोंके बहकावेमें न आनेवाला, पवित्र, निपुण एवं सावधान व्यक्तिको धनाध्यक्ष बनाना चाहिये ॥ २२—३२ ॥

राजाद्वारा आय तथा व्ययके सभी स्थानोंपर धनाध्यक्षके समान गुणवाले पुरुषोंको नियुक्त करना चाहिये । जो

परम्परागतो यः स्यादष्टाङ्गे सुचिकित्सिते ।  
 अनाहार्यः स वैद्यः स्याद् धर्मात्मा च कुलोदगतः ॥ ३४  
 प्राणाचार्यः स विज्ञेयो वचनं तस्य भूभुजा ।  
 राजन् राजा सदा कार्यं यथा कार्यं पृथग्जनैः ॥ ३५  
 हस्तिशिक्षाविधानज्ञो वनजातिविशारदः ।  
 व्लेशक्षमस्तथा राज्ञो गजाध्यक्षः प्रशस्यते ॥ ३६  
 एतैरेव गुणैर्युक्तः स्थविरश्च विशेषतः ।  
 गजारोही नरेन्द्रस्य सर्वकर्मसु शस्यते ॥ ३७  
 हयशिक्षाविधानज्ञश्चिकित्सितविशारदः ।  
 अश्वाध्यक्षो महीभर्तुः स्वासनश्च प्रशस्यते ॥ ३८  
 अनाहार्यश्च शूरश्च तथा प्राज्ञः कुलोदगतः ।  
 दुर्गाध्यक्षः स्मृतो राज्ञ उद्युक्तः सर्वकर्मसु ॥ ३९  
 वास्तुविद्याविधानज्ञो लघुहस्तो जितश्रमः ।  
 दीर्घदर्शी च शूरश्च स्थपतिः परिकीर्तिः ॥ ४०  
 यन्त्रमुक्ते पाणिमुक्ते विमुक्ते मुक्तधारिते ।  
 अस्त्राचार्यो निरुद्घेगः कुशलश्च विशिष्यते ॥ ४१  
 वृद्धः कुलोदगतः सूक्तः पितृपैतामहः शुचिः ।  
 राज्ञामन्तःपुराध्यक्षो विनीतश्च तथेष्यते ॥ ४२  
 एवं सप्ताधिकारेषु पुरुषाः सप्त ते पुरे ।  
 परीक्ष्य चाधिकार्याः स्यू राज्ञा सर्वेषु कर्मसु ।  
 स्थापनाजातितत्त्वज्ञाः सततं प्रतिजागृताः ॥ ४३  
 राज्ञः स्यादायुधागारे दक्षः कर्मसु चोद्यतः ।  
 कर्माण्यपरिमेयानि राज्ञो नृपकुलोद्धवः ॥ ४४  
 उत्तमाधममध्यानि बुद्ध्वा कर्माणि पार्थिवः ।  
 उत्तमाधममध्येषु पुरुषेषु नियोजयेत् ॥ ४५  
 नरकर्मविपर्यासाद्राजा नाशमवान्युयात् ।  
 नियोगं पौरुषं भक्तिं श्रुतं शौर्यं कुलं नयम् ॥ ४६  
 ज्ञात्वा वृत्तिर्विधातव्या पुरुषाणां महीक्षिता ।  
 पुरुषान्तरविज्ञानतत्त्वसारनिबन्धनात् ॥ ४७

वंशपरम्परासे आनेवाला, आठों अङ्गोंकी चिकित्साको अच्छी तरह जाननेवाला, स्वामिभक्त, धर्मात्मा एवं सत्कुलोत्पन्न हो, ऐसे व्यक्तिको वैद्य बनाना चाहिये । राजन् ! उसे प्राणाचार्य जानना चाहिये और सर्वसाधारणकी भाँति उसके वचनोंका सदा पालन करना चाहिये । जो जंगली जातिवालोंके रीति-रस्मोंका ज्ञाता, हस्तिशिक्षाका विशेषज्ञ, सहिष्णुतामें समर्थ हो, ऐसा व्यक्ति राजाका श्रेष्ठ गजाध्यक्ष हो सकता है । उपर्युक्त गुणोंसे युक्त तथा अवस्थामें वृद्ध व्यक्ति राजाका गजारोही होकर सभी कार्योंमें श्रेष्ठ कहा गया है । अश्व-शिक्षाके विधानमें प्रवीण, उनकी चिकित्सामें विशारद तथा स्थिर आसनसे बैठनेवाला व्यक्ति राजाका श्रेष्ठ अश्वाध्यक्ष कहा गया है । जो स्वामि-भक्त, शूर-वीर, बुद्धिमान्, कुलीन, सभी कार्योंमें उद्यत हो, वह राजाका दुर्गाध्यक्ष कहा गया है । वास्तुविद्याके विधानमें प्रवीण, फुर्तीला, परिश्रमी, दीर्घदर्शी एवं शूर व्यक्तिको श्रेष्ठ कारीगर कहा गया है । यन्त्रमुक्त (तोप-बन्दूक) आदि, पाणिमुक्त (शक्ति आदि), विमुक्त, मुक्तधारित आदि अस्त्रोंके परिचालनकी विशेषताओंमें सुनिपुण, उद्गेगरहित व्यक्ति श्रेष्ठ अस्त्राचार्य कहा गया है । वृद्ध, सत्कुलोत्पन्न, मधुरभाषी, पिता-पितामहके समयसे उसी कार्यपर नियुक्त होनेवाले, पवित्र एवं विनीत व्यक्तिको राजाओंके अन्तःपुरके अध्यक्ष-पदपर नियुक्त करना उचित है ॥ ३३—४२ ॥

इस प्रकार राजाको इन सात अधिकार-पदोंपर सभी कार्योंमें भलीभाँति परीक्षा कर सातों व्यक्तियोंको अधिकारी बनाना चाहिये । कार्योंमें नियुक्त किये गये व्यक्तियोंको उद्योगशील, जागरूक तथा पटु होना चाहिये । राजकुलोत्पन्न ! राजाओंके अस्त्रागारमें दक्ष तथा उद्यमशील व्यक्ति होना चाहिये । राजाके कार्योंकी गणना नहीं की जा सकती, अतः राजाको उत्तम, मध्यम तथा अधम कार्योंको भलीभाँति समझ-बूझकर वैसे ही उत्तम, मध्यम एवं अधम पुरुषोंको सौंपना चाहिये । सौंपे गये कार्योंमें परिवर्तन अर्थात् अधमको उत्तम और उत्तमको अधम कार्य सौंप देनेसे राजाका विनाश हो जाता है । राजाको चाहिये कि अपने पुरुषोंके निश्चय, पौरुष, भक्ति, शास्त्रज्ञान, शूरता, कुल और नीतिको जानकर उनका वेतन निश्चित करे । कोई दूसरा व्यक्ति न जान सके—इस अभिप्रायसे

बहुभिर्मन्त्रयेत् कामं राजा मन्त्रं पृथक्-पृथक् ।  
मन्त्रिणामपि नो कुर्यान्मन्त्रिमन्त्रप्रकाशनम् ॥ ४८  
क्वचिन्न कस्य विश्वासो भवतीह सदा नृणाम् ।  
निश्चयस्तु सदा मन्त्रे कार्यो ऐकेन सूरिणा ॥ ४९  
भवेद् वा निश्चयावासिः परबुद्ध्युपजीवनात् ।  
एकस्यैव महीभर्तुर्भूयः कार्यो विनिश्चयः ॥ ५०  
ब्राह्मणान् पर्युपासीत त्रयीशास्त्रसुनिश्चितान् ।  
नासच्छास्त्रवतो मूढांस्ते हि लोकस्य कण्टकाः ॥ ५१  
वृद्धान् हि नित्यं सेवेत विप्रान् वेदविदः शुचीन् ।  
तेभ्यः शिक्षेत विनयं विनीतात्मा च नित्यशः ।  
समग्रां वशगां कुर्यात् पृथिवीं नात्र संशयः ॥ ५२  
बहवोऽविनयाद् भ्रष्टा राजानः सपरिच्छदाः ।  
वनस्थाश्वैव राज्यानि विनयात् प्रतिपेदिरे ॥ ५३  
त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ।  
आन्वीक्षिकीं त्वात्मविद्यां वार्तारम्भाश्च लोकतः ॥ ५४  
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद् दिवानिशम् ।  
जितेन्द्रियो हि शक्वनोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ॥ ५५  
यजेत राजा बहुभिः क्रतुभिश्च सदक्षिणैः ।  
धर्मार्थं चैव विग्रेभ्यो दद्याद् भोगान् धनानि च ॥ ५६  
सांवत्सरिकमासैश्च राष्ट्रादाहारयेद् बलिम् ।  
स्यात् स्वाध्यायपरो लोके वर्तेत पितृबन्धुवत् ॥ ५७  
आवृत्तानां गुरुकुलाद् द्विजानां पूजको भवेत् ।  
नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते ॥ ५८  
तं च स्तेना नवामित्रा हरन्ति न विनश्यति ।  
तस्माद् राजा विधातव्यो ब्राह्मो वै हाक्षयो निधिः \* ॥ ५९  
समोत्तमाधैर् राजा ह्याहूय पालयेत् प्रजाः ।  
न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं व्रतमनुस्मरन् ॥ ६०

राजा अनेकों मन्त्रियोंके साथ अलग-अलग मन्त्रणा करे, परंतु एक मन्त्रीकी मन्त्रणाको दूसरे मन्त्रियोंपर प्रकट न होने दे। इस संसारमें मनुष्योंको सदा कहीं भी किसीका विश्वास नहीं होता, अतः राजाको एक ही विद्वान् मन्त्रीकी मन्त्रणाका निश्चय नहीं करना चाहिये। अन्यथा दूसरेकी बुद्धिके सहरे निश्चयकी प्राप्ति हो जाती है। उस अकेले किये गये निश्चयमें भी राजाको चाहिये कि फिरसे विचार कर ले। उसे त्रयीधर्ममें अटल निश्चय रखनेवाले ब्राह्मणोंकी सेवा करनी चाहिये। जो शास्त्रज्ञ नहीं हैं, उन मूर्खोंकी पूजा न करे; क्योंकि वे लोकके लिये कण्टकस्वरूप हैं। पवित्र आचरणवाले, वेदवेत्ता, वृद्ध ब्राह्मणोंकी नित्य सेवा करनी चाहिये और उन्हींसे सदा विनम्र होकर विनयकी शिक्षा लेनी चाहिये। ऐसा करनेसे वह (राजा) निःसंदेह सम्पूर्ण वसुन्धराको वशमें कर सकता है। बहुत-से राजा उद्दण्डताके कारण अपने परिजन एवं अनुचरोंके साथ नष्ट हो गये और अनेकों वनस्थ राजाओंने विनयसे पुनः राज्यश्रीको प्राप्त किया है। राजाओंको वेदवेत्ताओंसे तीनों वेद, शाश्वती दण्डनीति, आन्वीक्षिकी (तर्कशास्त्र) तथा आत्मविद्या ग्रहण करनी चाहिये और सर्वसाधारणसे लौकिक वार्ताओंकी सूचना प्राप्त करनी चाहिये। राजाको दिन-रात इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करनेकी युक्ति करते रहना चाहिये; क्योंकि जितेन्द्रिय राजा ही प्रजाओंको वशमें रखनेमें समर्थ हो सकता है। राजाको दक्षिणायुक्त बहुत-से यज्ञोंका अनुष्ठान करना चाहिये तथा ब्राह्मणोंको धर्मकी प्राप्तिके लिये भोग्य सामग्रियाँ और धन देना चाहिये ॥ ५३—५६ ॥

बुद्धिमान् कर्मचारियोंद्वारा राज्यसे वार्षिक कर वसूल कराये। उसे सर्वदा स्वाध्यायमें लीन तथा लोगोंके साथ पिता और भाईका-सा व्यवहार करना चाहिये। राजाको गुरुकुलसे लौटे हुए ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। राजाओंके लिये यह अक्षय ब्राह्म-निधि (कोश-खजाना) कही गयी है। चोर अथवा शत्रुगण उसका हरण नहीं कर सकते और न उसका विनाश ही होता है। इसलिये राजाको इस अक्षय ब्राह्म-निधि (खजाने)-का संचय अवश्य करना चाहिये। राजाको चाहिये कि वह अपने उत्तम, मध्यम तथा अधम अनुचरोंद्वारा प्रजाको बुलाकर उनका पालन करे और अपने क्षात्रधर्मका स्मरण कर संग्रामसे कभी विचलित न हो।

\* ये सभी प्रायः २० श्लोक मनुयाज्ञवल्क्य-स्मृतिमें भी हैं। तदनुसार शुद्ध किये गये हैं।

संग्रामेष्वनिर्त्तिं प्रजानां परिपालनम्।  
 शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां निःश्रेयस परम्॥ ६१  
 कृपणानाथवृद्धानां विधवानां च पालनम्।  
 योगक्षेमं च वृत्तिं च तथैव परिकल्पयेत्॥ ६२  
 वर्णाश्रमव्यवस्थानं तथा कार्यं विशेषतः।  
 स्वर्धर्मप्रच्युतान् राजा स्वधर्मे स्थापयेत् तथा॥ ६३  
 आश्रमेषु तथा कार्यमन्नं तैलं च भाजनम्।  
 स्वयमेवानयेद् राजा सत्कृतान् नावमानयेत्॥ ६४  
 तापसे सर्वकार्याणि राज्यमात्मानमेव च।  
 निवेदयेत् प्रयत्नेन देववच्चिरमर्चयेत्॥ ६५  
 द्वे प्रज्ञे वेदितव्ये च ऋच्ची वक्रा च मानवैः।  
 वक्रां ज्ञात्वा न सेवेत प्रतिबाधेत चागताम्॥ ६६  
 नास्य छिद्रं परो विन्द्याद् विन्द्याच्छिद्रं परस्य तु।  
 गौहेत् कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद् विवरमात्मनः॥ ६७  
 न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।  
 विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलादपि निकृत्तति॥ ६८  
 विश्वासयेच्चाप्यपरं तत्त्वभूतेन हेतुना।  
 बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत्॥ ६९  
 वृकवच्चाविलुप्येत शशवच्च विनिक्षिपेत्।  
 दृढप्रहारी च भवेत् तथा शूकरवन्नपः॥ ७०  
 चित्राकारश्च शिखिवद् दृढभक्तस्तथा श्ववत्।  
 तथा च मधुराभाषी भवेत् कोकिलवन्नपः॥ ७१  
 काकशङ्की भवेत्रित्यमजातवसतिं वसेत्।  
 नापरीक्षितपूर्वं च भोजनं शयनं व्रजेत्।  
 वस्त्रं पुष्पमलंकारं यच्चान्यन्मनुजोत्तम॥ ७२  
 न गाहेजनसम्बाधं न चाज्ञातजलाशयम्।  
 अपरीक्षितपूर्वं च पुरुषैरासकारिभिः॥ ७३  
 नारोहेत् कुञ्जं व्यालं नादान्तं तुरगं तथा।  
 नाविज्ञातां स्त्रियं गच्छेत्रैव देवोत्सवे वसेत्॥ ७४  
 नरेन्द्रलक्ष्म्या धर्मज्ञं त्राता यत्तो भवेत्रृपः।  
 सद्गूत्याश्रुं तथा पुष्टाः सततं प्रतिमानिताः॥ ७५

युद्धविमुख न होना, प्रजाओंका परिपालन तथा ब्राह्मणोंकी शुश्रूषा—ये तीनों धर्म राजाओंके लिये परम कल्याणकारी हैं। उसी प्रकार दुर्दशाग्रस्त, असहाय और वृद्धोंके तथा विधवा स्त्रियोंके योगक्षेम एवं जीविकाका प्रबन्ध करना चाहिये। राजाको वर्णाश्रमकी व्यवस्था विशेषरूपसे करनी चाहिये तथा अपने धर्मसे भ्रष्ट हुए लोगोंको पुनः अपने-अपने धर्मोंमें स्थापित करना चाहिये। चारों आश्रमोंपर भी उसी प्रकारकी देख-रेख रखनी चाहिये। राजाके लिये उचित है कि वह अतिथिके लिये अन्न, तैल और पात्रोंकी व्यवस्था स्वयं करे एवं सम्माननीय व्यक्तियोंका अपमान न करे तथा तपस्वीके लिये अपने सभी कर्मोंको तथा राज्य एवं अपने-आपको समर्पित कर दे और देवताके समान चिरकालतक उनकी पूजा करे। मनुष्यके द्वारा सरल (सुमति) और कुटिल (कुमति) दो प्रकारकी बुद्धियोंको जानना चाहिये। उनमें कुटिल बुद्धिको जान लेनेपर उसका सेवन न करे, किंतु यदि आ गयी हो तो उसे दूर हटा दे। राजाके छिद्रको शत्रु न जान सके, किंतु वह शत्रुके छिद्रको जान ले। वह कछुएकी भाँति अपने अङ्गोंको छिपाये रखे और अपने छिद्रकी रक्षा करे। अविश्वसनीय व्यक्तिका विश्वास न करे और विश्वसनीयका भी बहुत विश्वास न करे; क्योंकि विश्वाससे उत्पन्न हुआ भय मूलको भी काट डालता है॥ ५७—६८॥

राजाको चाहिये कि वह यथार्थ कारणको प्रकाशित करके दूसरोंको अपनेपर विश्वस्त करे। वह बगुलेकी भाँति अर्थका चिन्तन करे, सिंहकी तरह पराक्रम करे, भेड़ियेके समान लूट-पाट कर ले, खरणोशकी तरह छिपा रहे तथा शूकरके सदृश दृढ़ प्रहार करनेवाला हो। राजा मोरकी भाँति विचित्र आकारवाला, कुत्तेकी तरह अनन्यभक्त तथा कोकिलकी भाँति मृदुभाषी हो। नरश्रेष्ठ! राजाको चाहिये कि वह सर्वदा कौएकी भाँति सशङ्कित रहे। वह गुप्त स्थानपर निवास करे, पहले बिना परीक्षा किये भोजन, शय्या, वस्त्र, पुष्प, अलंकार एवं अन्यान्य सामग्रियोंको न ग्रहण करे। विश्वस्त पुरुषोंद्वारा पहले बिना परीक्षा किये हुए मनुष्योंकी भीड़ तथा अज्ञात जलाशयमें प्रवेश न करे। दुष्ट हाथी एवं बिना सिखाये घोड़ेपर न चढ़े, न बिना जानी हुई स्त्रीके साथ समागम करे और न देवोत्सवमें निवास करे। धर्मज्ञ! राजाको सर्वदा राजलक्ष्मी (चिह्न)-से सुसम्पन्न, दीनरक्षक और

राजा सहाया: कर्तव्या: पृथिवीं जेतुमिच्छता ।  
यथार्हं चाप्यसुभूतो राजा कर्मसु योजयेत् ॥ ७६  
धर्मिष्ठान् धर्मकार्येषु शूरान् संग्रामकर्मसु ।  
निपुणानर्थकृत्येषु सर्वत्रैव तथा शुचीन् ॥ ७७  
स्त्रीषु षण्डं नियुज्जीत तीक्ष्णं दारुणकर्मसु ।  
धर्मे चार्थे च कामे च नये च रविनन्दन ॥ ७८  
राजा यथार्हं कुर्याच्च उपधामिः परीक्षणम् ।  
समतीतोपदान् भृत्यान् कुर्याच्छस्तवनेचरान् ॥ ७९  
तत्पादान्वेषिणो यत्तांस्तदध्यक्षांस्तु कारयेत् ।  
एवमादीनि कर्माणि नृपैः कार्याणि पार्थिव ॥ ८०  
सर्वथा नेष्वते राज्ञस्तीक्ष्णोपकरणक्रमः ।  
कर्माणि पापसाध्यानि यानि राज्ञो नराधिप ॥ ८१  
संतस्तानि न कुर्वन्ति तस्मात्तानि त्यजेन्नृपः ।  
नेष्वते पृथिवीशानां तीक्ष्णोपकरणक्रिया ॥ ८२  
यस्मिन् कर्मणि यस्य स्याद् विशेषेण च कौशलम् ।  
तस्मिन् कर्मणि तं राजा परीक्ष्य विनियोजयेत् ।  
पितृपैतामहान् भृत्यान् सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ ८३  
विना दायादकृत्येषु तत्र ते हि समागताः ।  
राजा दायादकृत्येषु परीक्ष्य तु कृतान् नरान् ।  
नियुज्जीत महाभाग तस्य ते हितकारिणः ॥ ८४  
परराजगृहात् प्रासाद्यनसंग्रहकाम्यया ।  
दुष्टान् वाप्यथवादुष्टानाश्रयीत प्रयत्नतः ॥ ८५  
दुष्टं विज्ञाय विश्वासं न कुर्यात्तत्र भूमिपः ।  
वृत्तिं तस्यापि वर्तेत जनसंग्रहकाम्यया ॥ ८६  
राजा देशान्तरप्राप्तं पुरुषं पूजयेद् भृशम् ।  
ममायं देशसम्प्राप्तो बहुमानेन चिन्तयेत् ॥ ८७  
कामं भृत्यार्जनं राजा नैव कुर्यात्राधिप ।  
न च वाऽसंविभक्तांस्तान् भृत्यान् कुर्यात् कथञ्चन ॥ ८८  
शत्रवोऽग्निर्विषं सर्पो निक्षिंश इति चैकतः ।  
भृत्या मनुजशार्दूल रुषिताश्च तथैकतः ॥ ८९  
तेषां चारेण चारित्रं राजा विज्ञाय नित्यशः ।  
गुणिनां पूजनं कुर्यान्निर्गुणानां च शासनम् ।  
कथिताः सततं राजन् राजानश्चारचक्षुषः ॥ ९०

उद्यमी होना चाहिये । पृथिवीको जीतनेकी इच्छा रखनेवाले राजाको सर्वदा सम्मानित एवं पालित उत्तम अनुचरोंको सहायक बनाना चाहिये । वह प्राणियोंको यथायोग्य कर्मोंमें नियुक्त करे । उसे धर्म-कार्योंमें धर्मात्माओंको, युद्धकर्मोंमें शूर-वीरोंको, अर्थ-कार्योंमें उसके विशेषज्ञोंको, सच्चित्रियोंको सर्वत्र, स्त्रियोंके मध्यमें नपुंसकको और भीषण कर्मोंमें निर्दयको नियुक्त करना चाहिये । रविनन्दन ! राजाको धर्म, अर्थ, काम और नीतिके कार्योंमें गुप्त परिश्रमिक देकर अनुचरोंकी परीक्षा करनी चाहिये । उत्तीर्ण होनेवालेको श्रेष्ठ गुप्तचर बनाये और उनके कार्योंकी देखरेख करनेवालोंको उनका अध्यक्ष बनाये । राजन् ! इस प्रकार राजाको राज्यके कार्योंका संचालन करना चाहिये । राजाको सर्वथा उग्र कर्मोंवाला नहीं होना चाहिये । नरेश्वर ! राजाके जो पापाचरणद्वारा सिद्ध होनेवाले कर्म हैं, उन्हें सत्पुरुष नहीं करते, अतः राजाको भी उनका परित्याग कर देना चाहिये; क्योंकि राजाओंके लिये क्रूर कर्माचरण उचित नहीं हैं । राजाको चाहिये कि जिस कार्यमें जिसकी विशेष कुशलता है, उसे उसी कार्यमें परीक्षा लेकर नियुक्त करे; किंतु पिता-पितामहसे चले आते हुए नौकरोंको सभी कर्मोंमें नियुक्त करे, परंतु अपने जातीय कार्योंमें उन्हें न रखे ॥ ६९—८३ ३ ॥

महाभाग ! राजाको पारिवारिक कार्योंमें परीक्षा करके मनुष्योंको नियुक्त करना चाहिये; क्योंकि वे उसके कल्याण करनेवाले होते हैं । अनुचरोंका संग्रह करनेकी भावनासे राजाको चाहिये कि जो अनुचर दूसरे राजाकी ओरसे उनके यहाँ आये—चाहे वे दुष्ट हों अथवा सज्जन, उन्हें प्रयत्नपूर्वक अपने यहाँ आश्रय दे; किंतु दुष्टको समझकर राजा उसका विश्वास न करे, परंतु जनसंग्रहकी इच्छासे उसे भी जीविका देनी चाहिये । राजाको चाहिये कि दूसरे देशसे आये हुए व्यक्तिका विशेष स्वागत करे और 'यह मेरे देशमें आया है' ऐसा समझकर उसका अधिक सम्मान करे । नराधिप ! राजाको अधिक नौकर नहीं रखना चाहिये । साथ ही जो पहले अपने पदसे पृथक् कर दिये गये हों, ऐसे नौकरोंको किसी प्रकार भी नियुक्त न करे । नरशार्दूल ! शत्रु, अग्नि, विष, सर्प तथा नंगी तलवार—ये सब एक ओर हैं तथा क्रुद्ध अनुचर एक ओर हैं । (अर्थात् दोनों समान हैं) राजाको चाहिये कि गुप्तचरद्वारा नित्य उन अनुचरोंके चरित्रकी जानकारी प्राप्त कर उनमें गुणवानोंका सत्कार और निर्गुणोंका अनुशासन करता रहे । राजन् ! इसी कारण राजालोग सर्वदा चारचक्षु (अर्थात् गुप्तचर ही जिनकी आँखें हैं ऐसा)

स्वके देशे परे देशे ज्ञानशीलान् विचक्षणान्।  
 अनाहार्यान् क्लेशसहान् नियुज्ञीत तथा चरान्॥ ११  
 जनस्याविदितान् सौम्यांस्तथाज्ञातान् परस्परम्।  
 वणिजो मन्त्रकुशलान् सांवत्सरचिकित्सकान्।  
 तथा प्रवाजिताकारांश्चारान् राजा नियोजयेत्॥ १२  
 नैकस्य राजा श्रद्ध्याच्चारस्यापि सुभाषितम्।  
 द्वयोः सम्बन्धमाज्ञाय श्रद्ध्यान्नपतिस्तदा॥ १३  
 परस्परस्याविदितौ यदि स्यातां च तावुभौ।  
 तस्माद् राजा प्रयत्नेन गूढांश्चारान् नियोजयेत्॥ १४  
 राज्यस्य मूलमेतावद् या राजश्चारदर्शिता।  
 चाराणामपि यत्नेन राजा कार्यं परीक्षणम्॥ १५  
 रागापरागौ भृत्यानां जनस्य च गुणागुणान्।  
 सर्वं राजां चरायत्तं तेषु यत्नपरो भवेत्॥ १६  
 कर्मणा केन मे लोके जनः सर्वोऽनुराज्यते।  
 विरज्यते केन तथा विज्ञेयं तन्महीक्षिता॥ १७  
 अनुरागकरं लोके कर्म कार्यं महीक्षिता।  
 विरागजनकं लोके वर्जनीयं विशेषतः॥ १८  
 जनानुरागप्रभवा हि लक्ष्मी  
     राजां यतो भास्करवंशचन्द्र।  
 तस्मात् प्रयत्नेन नरेन्द्रमुख्यैः  
     कार्योऽतिरागो भुवि मानवेषु॥ १९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजां सहायसम्पत्तिर्नाम पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१५॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें राजाकी सहायक-सम्पत्ति नामक दो सौ पंद्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २१५॥

कहलाते हैं। अपने देशमें या पराये देशमें ज्ञानी, निपुण, निर्लोभी और कष्टसहिष्णु गुस्चरोंको नियुक्त करना चाहिये। जिन्हें साधारण जनता न पहचानती हो, जो सरल दिखायी पड़ते हों, जो एक-दूसरेसे परिचित न हों तथा वणिक, मन्त्री, ज्योतिषी, वैद्य और संन्यासीके वेशमें भ्रमण करनेवाले हों, राजा ऐसे गुस्चरोंको नियुक्त करे। राजा एक गुस्चरकी बातपर, यदि वह अच्छी लगनेवाली भी हो तो भी विश्वास न करे। उस समय उसे दो गुस्चरोंकी बातोंपर उनके आपसी सम्बन्धको जानकर ही विश्वास करना चाहिये। यदि वे दोनों आपसमें अपरिचित हों तो विश्वास करना चाहिये। इसीलिये राजाको गुस्चर रहनेवाले चरोंको नियुक्त करना चाहिये॥ ८४—९४॥

राज्यके मूलाधार गुस्चर ही हैं, क्योंकि गुस्चर ही राजाके नेत्र हैं। अतः राजाको गुस्चरोंकी भी यत्नपूर्वक परीक्षा करनी चाहिये। राज्यमें अनुचरोंका अनुराग एवं वैर तथा प्रजाके गुण और अवगुण—राजाओंके ये सभी कार्य गुस्चरोंपर ही निर्भर हैं, अतः उनके प्रति यत्नशील रहना चाहिये। राजाको यह बात सर्वदा ध्यानमें रखनी चाहिये कि लोकमें मेरे किस कामसे सभी लोग अनुरक्त रहेंगे और किस कामसे विरक्त हो जायेंगे। इसे समझकर राजाको लोकमें अनुरागजनक कार्यका सम्पादन और विरागोत्पादक कर्मका विशेषरूपसे त्याग करना चाहिये। सूर्यकुलचन्द्र! चूँकि राजाओंकी लक्ष्मी उनकी प्रजाओंके अनुरागसे उत्पन्न होनेवाली होती है, इसलिये श्रेष्ठ राजाओंको पृथ्वीपर मानवोंके प्रति प्रयत्नपूर्वक अत्यन्त अनुराग करना चाहिये॥ ९५—९९॥

## दो सौ सोलहवाँ अध्याय

### राजकर्मचारियोंके धर्मका वर्णन

मत्स्य उवाच  
 यथा च वर्तितव्यं स्यान्मनो राजोऽनुजीविभिः।  
 तथा ते कथयिष्यामि निबोध गदतो मम॥ १

मत्स्यभगवान् कहा—मनु महाराज! अब मैं आपसे राजाके अनुचरोंको उनके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, यह बतला रहा हूँ, आप इसे सुनिये।

ज्ञात्वा सर्वात्मना कार्यं स्वशक्त्या रविनन्दन।  
 राजा यत्तु वदेद् वाक्यं श्रोतव्यं तत् प्रयत्नः।  
 आक्षिप्य वचनं तस्य न वक्तव्यं तथा वचः॥ २  
 अनुकूलं प्रियं तस्य वक्तव्यं जनसंसदि।  
 रहोगतस्य वक्तव्यमप्रियं यद्धितं भवेत्॥ ३  
 परार्थमस्य वक्तव्यं स्वस्थे चेतसि पार्थिव।  
 स्वार्थः सुहृदभिर्वक्तव्यो न स्वयं तु कथञ्चन॥ ४  
 कार्यातिपातः सर्वेषु रक्षितव्यः प्रयत्नः।  
 न च हिंस्य धनं किञ्चिन्नियुक्तेन च कर्मणि॥ ५  
 नोपेक्ष्यस्तस्य मानश्च तथा राज्ञः प्रियो भवेत्।  
 राजश्च न तथा कार्यं वेशभाषितचेष्टितम्॥ ६  
 राजलीला न कर्तव्या तद्विद्विष्टं च वर्जयेत्।  
 राज्ञः समोऽधिको वा न कार्यो वेशो विजानता॥ ७  
 द्यूतादिषु तथैवान्यत् कौशलं तु प्रदर्शयेत्।  
 प्रदर्श्य कौशलं चास्य राजानं तु विशेषयेत्॥ ८  
 अन्तःपुरजनाध्यक्षैर्विदौर्निराकृतैः ।  
 संसर्गं न व्रजेद् राजन् विना पार्थिवशासनात्॥ ९  
 निःस्वेहतां चावमानं प्रयत्नेन तु गोपयेत्।  
 यच्च गुह्यं भवेद् राज्ञो न तल्लोके प्रकाशयेत्॥ १०  
 नृपेण श्रावितं यत् स्याद् वाच्यावाच्यं नृपोत्तम।  
 न तत् संश्रावयेल्लोके तथा राज्ञोऽप्रियो भवेत्॥ ११  
 आज्ञाप्यमाने वान्यस्मिन् समुद्धाय त्वरान्वितः।  
 किमहं करवाणीति वाच्यो राजा विजानता॥ १२  
 कार्यावस्थां च विज्ञाय कार्यमेव यथा भवेत्।  
 सततं क्रियमाणेऽस्मिँलाघवं तु व्रजेद् धूवम्॥ १३  
 राज्ञः प्रियाणि वाक्यानि न चात्यर्थं पुनः पुनः।  
 न हास्यशीलस्तु भवेत् चापि भृकुटीमुखः॥ १४  
 नातिवक्ता न निर्वक्ता न च मात्सरिकस्तथा।  
 आत्मसम्भावितश्चैव न भवेत् तु कथञ्चन॥ १५

रविनन्दन! राजाद्वारा राजकार्यमें नियुक्त व्यक्तिको चाहिये कि वह कार्यको सब तरहसे जानकर यथाशक्ति उसका पालन करे। राजा जो बात कह रहे हों, उसे वह प्रयत्नपूर्वक सुने, बीचमें उनकी बात काटकर अपनी बात न कहे। जनसमाजमें राजाके अनुकूल एवं प्रिय बातें कहनी चाहिये, किंतु एकान्तमें बैठे हुए राजासे अप्रिय बात भी कही जा सकती है, यदि वह हितकारी हो। राजन्! जिस समय राजाका चित्त स्वस्थ हो, उस समय दूसरोंके हितकी बातें उससे कहनी चाहिये। अपने स्वार्थकी बात राजासे स्वयं कभी भी न कहे, अपने मित्रोंसे कहलाये। सभी कार्योंमें कार्यका दुष्टयोग न हो, इसकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये तथा नियुक्त होनेपर धनका थोड़ा भी अपव्यय न होने दे। राजाके सम्मानकी उपेक्षा न करे, सर्वदा राजाके प्रियकी चिन्ता करे, राजाकी वेश-भूषा, बात-चीत एवं आकार-प्रकारकी नकल न करे। राजाके लीला-कलापोंका भी अनुकरण न करे, वह राजाके अभीष्ट विषयोंको सर्वथा छोड़ दे। ज्ञानवान् पुरुषको राजाके समान अथवा उससे बढ़कर भी अपनी वेशभूषा नहीं बनानी चाहिये। द्यूतकीड़ा आदिमें तथा अन्यत्र भी राजाकी अपेक्षा अपने कौशलका प्रदर्शन करे और उसी प्रसङ्गमें अपनी कुशलता दिखाकर राजाकी विशेषता प्रकट करे। राजन्! राजाकी आज्ञाके बिना अन्तःपुरके अध्यक्षों, शत्रुओंके दूतों तथा निकाले हुए अनुचरोंके निकट न जाय। अपने प्रति राजाकी स्नेहहीनता तथा अपमानको प्रयत्नपूर्वक गुस रखे और राजाकी जो गोपनीय बात हो, उसे सर्वसाधारणके सम्मुख प्रकट न करे॥ १—१०॥

नृपोत्तम! राजपुरुष राजाद्वारा कही गयी गुस या प्रकट बातको सर्वसाधारणके समक्ष कभी न सुनाये। ऐसा करनेसे वह राजाका विरोधी हो जाता है। जिस समय राजा दूसरे व्यक्तिसे किसी कामके लिये कहें, उस समय बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि शीघ्रतापूर्वक स्वयं उठकर राजासे कहे कि 'मैं क्या करूँ?' कार्यकी अवस्थाको देखकर जैसा करना उपयुक्त हो, वैसा ही करना चाहिये; क्योंकि सदा एक-सा करते रहनेपर निश्चित ही वह राजाकी दृष्टिमें हेय हो जाता है। राजाको प्रिय लगनेवाली बातोंको भी उनके सामने बार-बार न कहे, न ठाकर हँसे और न भृकुटी ही ताने। न बहुत बोले, न एकदम चुप ही रहे, न असावधानी प्रकट करे और न कभी आत्मसम्मानी होनेका भाव ही प्रदर्शित करे।

दुष्कृतानि नरेन्द्रस्य न तु सङ्कीर्तयेत् क्वचित् ।  
 वस्त्रमस्त्रमलंकारं राजा दत्तं तु धारयेत् ॥ १६  
 औदार्येण न तद् देयमन्यस्मै भूतिमिच्छता ।  
 न चैवात्यशनं कार्यं दिवा स्वप्नं न कारयेत् ॥ १७  
 नानिर्दिष्टे तथा द्वारे प्रविशेत् तु कथञ्चन ।  
 न च पश्येत् तु राजानमयोग्यासु च भूमिषु ॥ १८  
 राजस्तु दक्षिणे पार्श्वे वामे चोपविशेत् तदा ।  
 पुरस्ताच्च तथा पश्चादासनं तु विगर्हितम् ॥ १९  
 जृम्भां निष्ठीवनं कासं कोपं पर्यस्तिकाश्रयम् ।  
 भृकुटिं वान्तमुद्गारं तत्समीपे विवर्जयेत् ॥ २०  
 स्वयं तत्र न कुर्वीत स्वगुणाख्यापनं बुधः ।  
 स्वगुणाख्यापने युक्त्या परमेव प्रयोजयेत् ॥ २१  
 हृदयं निर्मलं कृत्वा परां भक्तिमुपाश्रितैः ।  
 अनुजीविगणैर्भाव्यं नित्यं राजामतन्द्रितैः ॥ २२  
 शाश्वं लौल्यं च पैशुन्यं नास्तिक्यं क्षुद्रता तथा ।  
 चापल्यं च परित्याज्यं नित्यं राजोऽनुजीविभिः ॥ २३  
 श्रुतिविद्यासुशीलैश्च संयोज्यात्मानमात्मना ।  
 राजसेवां ततः कुर्याद् भूतये भूतिवर्धनीम् ॥ २४  
 नमस्कार्याः सदा चास्य पुत्रवल्लभमन्त्रिणः ।  
 सचिवैश्वास्य विश्वासो न तु कार्यः कथञ्चन ॥ २५  
 अपृष्टश्वास्य न ब्रूयात् कामं ब्रूयात्तथा यदि ।  
 हितं तथ्यं च वचनं हितैः सह सुनिश्चितम् ॥ २६  
 चित्तं चैवास्य विज्ञेयं नित्यमेवानुजीविभिः ।  
 भर्तुराराधनं कुर्याच्चित्तज्ञो मानवः सुखम् ॥ २७  
 रागापरागौ चैवास्य विज्ञेयौ भूतिमिच्छता ।  
 त्यजेद् विरक्तं नृपतिं रक्ताद् वृत्तिं तु कारयेत् ॥ २८  
 विरक्तः कारयेन्नाशं विपक्षाभ्युदयं तथा ।  
 आशावर्धनकं कृत्वा फलनाशं करोति च ॥ २९  
 अकोपोऽपि सकोपाभः प्रसन्नोऽपि च निष्फलः ।  
 वाक्यं च समदं वक्ति वृत्तिच्छेदं करोति वै ॥ ३०

राजाके दुष्कर्मकी चर्चा कभी नहीं करनी चाहिये। राजाद्वारा दिये गये वस्त्र, अस्त्र और अलंकारको धारण करे। ऐश्वर्यकी कामना करनेवाले भूत्यको उन वस्त्रादि सामग्रियोंको उदारतावश दूसरेको नहीं देना चाहिये। (राजाके सम्मुख यदि कभी भोजन करनेका अवसर आये तो) न अधिक भोजन करे और न दिनमें शयन करे। जिससे प्रवेश करनेका निर्देश नहीं है, उस द्वारसे कभी प्रवेश न करे और अयोग्य स्थानपर स्थित राजाकी ओर न देखे। राजाके दाहिने या बायें पार्श्वमें बैठना चाहिये। सम्मुख या पीछेकी ओर बैठना निन्दित है। राजाके समीप जमुआई लेना, थूकना, खखारना, खाँसना, क्रोधित होना, आसनपर तकिया लगाकर बैठना, भृकुटी चढ़ाना, वमन करना या उद्गार निकालना—ये सभी कार्य नहीं करने चाहिये। बुद्धिमान् भूत्य राजाके सम्मुख अपने गुणोंकी शलाघा न करे। अपने गुणको सूचित करनेके लिये युक्तिपूर्वक दूसरेको ही प्रयुक्त करना चाहिये। अनुचरोंको हृदय निर्मल करके परम भक्तिके साथ राजाओंके प्रति नित्य सावधान रहना चाहिये। राजाके अनुचरोंको शठता, लोभ, छल, नास्तिकता, क्षुद्रता, चञ्चलता आदिका नित्य परित्याग कर देना चाहिये। शास्त्रज्ञ एवं विद्याभ्यासियोंसे स्वयं अपना सम्पर्क स्थापित करके ऐश्वर्य बढ़ानेवाली राजसेवाको अपनी समृद्धिके लिये करनी चाहिये। राजाके पुत्र, प्रिय परिजन और मन्त्रियोंको नमस्कार करना चाहिये, किंतु उनके मन्त्रियोंका कभी विश्वास न करे ॥ ११—२५ ॥

बिना पूछे राजासे कुछ न कहे, यदि कहे भी तो जो राजाके हितके रूपमें सुनिश्चित हितकर और यथार्थ बात हो वह कहे। अनुचरोंको नित्य राजाकी मनोदशाका पता लगाते रहना चाहिये। मनोभावोंको समझनेवाला अनुचर ही अपने स्वामीकी सुखपूर्वक सेवा कर सकता है। अपने कल्याणकी कामना करनेवाले अनुचरको राजाके अनुराग और विरागका पता लगाते रहना चाहिये। विरक्त राजाको छोड़ दे और अनुरक्तकी सेवामें सदा तत्पर रहना चाहिये; क्योंकि विरक्त राजा उसका नाश कर विपक्षियोंको उत्तर बनाता है, आशाको बढ़ाकर उसके फलका नाश कर देता है, क्रोधका अवसर न रहनेपर भी वह क्रुद्ध ही दिखायी पड़ता है तथा प्रसन्न होकर भी कुछ फल नहीं देता, हर्षयुक्त बातें करता है और जीविकाका

प्रदेशवाक्यमुदितोऽन्यथा। न सम्भावयते ॥ ३१  
 आराधनासु सर्वासु सुसवच्च विचेष्टते ॥ ३१  
 कथासु दोषं क्षिपति वाक्यभङ्गं करोति च ।  
 लक्ष्यते विमुखश्चैव गुणसंकीर्तनेऽपि च ॥ ३२  
 दृष्टिं क्षिपति चान्यत्र क्रियमाणे च कर्मणि ।  
 विरक्तलक्षणं चैतच्छृणु रक्तस्य लक्षणम् ॥ ३३  
 दृष्ट्वा प्रसन्नो भवति वाक्यं गृह्णाति चादरात् ।  
 कुशलादिपरिप्रश्नं सम्प्रयच्छति चासनम् ॥ ३४  
 विविक्तदर्शने चास्य रहस्येन न शङ्कते ।  
 जायते हृष्टवदनः श्रुत्वा तस्य तु तत्कथाम् ॥ ३५  
 अप्रियाण्यपि वाक्यानि तदुक्तान्यभिनन्दते ।  
 उपायनं च गृह्णाति स्तोकमप्यादरात्तथा ॥ ३६  
 कथान्तरेषु स्मरति प्रहृष्टवदनस्तथा ।  
 इति रक्तस्य कर्तव्या सेवा रविकुलोद्ध्रह ।  
 आपत्सु न त्यजेत् पूर्वं विरक्तमपि सेवितम् ॥ ३७  
 मित्रं न चापत्सु तथा च भृत्यं  
     त्यजन्ति ये निर्गुणमप्रमेयम् ।  
 विभुं विशेषेण च ते व्रजन्ति  
     सुरेन्द्रधामामरवृन्दजुष्टम् ॥ ३८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मेऽनुजीविवृत्तं नाम षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके राजधर्म-प्रसंगमें भृत्य-व्यवहार नामक दो सौ सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २१६ ॥

## दो सौ सतरहवाँ अध्याय

दुर्ग-निर्माणकी विधि तथा राजाद्वारा दुर्गमें संग्रहणीय उपकरणोंका विवरण

### मत्स्य उवाच

राजा सहायसंयुक्तः प्रभूतयवसेन्थनम् ।  
 रम्यमानतसामन्तं मध्यमं देशमावसेत् ॥ १  
 वैश्यशूद्रजनप्रायमनाहार्ये तथा पैरः ।  
 किञ्चिद् ब्राह्मणसंयुक्तं बहुकर्मकरं तथा ॥ २

मत्स्यभगवान् कहा—राजन्! जहाँ प्रचुर मात्रामें  
 घास-भूसा और लकड़ी वर्तमान हो, स्थान रमणीय हो,  
 पड़ोसी राजा विनम्र हो, वैश्य और शूद्रलोग अधिक  
 मात्रामें रहते हों, जो शत्रुओंद्वारा हरण किये जाने योग्य न  
 हो एवं कुछ विग्रों तथा अधिकांश कर्मकरोंसे संयुक्त हो,

अदेवमातृकं रम्यमनुरक्तजनान्वितम् ।  
 कैररपीडितं चापि बहुपुष्पफलं तथा ॥ ३  
 अगम्यं परचक्राणां तद्वासगृहमापदि ।  
 समदुःखसुखं राज्ञः सततं प्रियमास्थितम् ॥ ४  
 सरीसृपविहीनं च व्याघ्रतस्करवर्जितम् ।  
 एवंविधं यथालाभं राजा विषयमावसेत् ॥ ५  
 तत्र दुर्गं नृपः कुर्यात् षण्णामेकतमं बुधः ।  
 धन्वदुर्गं महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च ॥ ६  
 वाक्ष चैवाम्बुदुर्गं च गिरिदुर्गं च पार्थिव ।  
 सर्वेषामेव दुर्गाणां गिरिदुर्गं प्रशस्यते ॥ ७  
 दुर्गं च परिखोपेतं वप्राद्वालकसंयुतम् ।  
 शतघ्नीयन्त्रमुख्यैश्च शतशश्च समावृतम् ॥ ८  
 गोपुं सकपाटं च तत्र स्यात् सुमनोहरम् ।  
 सप्ताकं गजारूढो येन राजा विशेषं पुरम् ॥ ९  
 चतस्रश्च तथा तत्र कार्यास्त्वायतवीथयः ।  
 एकस्मिस्तत्र वीथ्यग्रे देववेशम् भवेद् दृढम् ॥ १०  
 वीथ्यग्रे च द्वितीये च राजवेशम् विधीयते ।  
 धर्माधिकरणं कार्यं वीथ्यग्रे च तृतीयके ॥ ११  
 चतुर्थं त्वथ वीथ्यग्रे गोपुं च विधीयते ।  
 आयतं चतुरग्रं वा वृत्तं वा कारयेत् पुरम् ॥ १२  
 मुक्तिहीनं त्रिकोणं च यवमध्यं तथैव च ।  
 अर्धचन्द्रप्रकारं च वज्राकारं च कारयेत् ॥ १३  
 अर्धचन्द्रं प्रशंसन्ति नदीतीरेषु तद्वसन् ।  
 अन्यत्र तत्र कर्तव्यं प्रयत्नेन विजानता ॥ १४  
 राजा कोशगृहं कार्यं दक्षिणे राजवेशमनः ।  
 तस्यापि दक्षिणे भागे गजस्थानं विधीयते ॥ १५  
 गजानां प्राङ्मुखी शाला कर्तव्या वाष्पुदङ्मुखी ।  
 आग्नेये च तथा भागे आयुधागारमिष्यते ॥ १६  
 महानसं च धर्मज्ञं कर्मशालास्तथापराः ।  
 गृहं पुरोधसः कार्यं वामतो राजवेशमनः ॥ १७

देवस्थान रहित सुन्दर हो, अनुरक्तजनोंसे समन्वित हो, जहाँके निवासी करके भारसे पीड़ित न हों, पुष्प और फलकी बहुतायत हो, आपत्तिके समय वह वासस्थान शत्रुओंके लिये अगम्य हो, जहाँ निरन्तर समानरूपसे राजाके सुख-दुःखके भागी एवं प्रेमीजन निवास करते हों, जो सर्प, बाघ और चोरसे रहित हो तथा सरलतासे उपलब्ध हो, इस प्रकारके देशमें राजाको अपने सहायकोंसहित निवास करना चाहिये। वहाँ बुद्धिमान् राजाको धन्व या धनुदुर्ग (जहाँ चारों ओरसे मरुभूमि हो), महीदुर्ग नरदुर्ग, वृक्षदुर्ग, जलदुर्ग तथा पर्वतदुर्ग—इन छः दुर्गोंमेंसे किसी एककी रचना करनी चाहिये। राजन्! इन सभी दुर्गोंमें गिरि (पर्वत) दुर्ग श्रेष्ठ माना गया है\*। वह गिरिदुर्ग खाई, चहारदीवारी तथा ऊँची अद्वालिकाओंसे युक्त एवं तोप आदि सैकड़ों प्रधान यन्त्रोंसे घिरा होना चाहिये। उसमें किंवाडःसहित मनोहर फाटक लगा हो, जिससे हाथीपर बैठा हुआ पताकासमेत राजा नगरमें प्रविष्ट हो सके ॥ १—९ ॥

वहाँ चार लम्बी-चौड़ी गलियाँ बनवानी चाहिये। जिनमें एक गलीके अग्रभागमें सुदृढ़ देव-मन्दिरका निर्माण कराये। दूसरी गलीके आगे राजमहल बनानेका विधान है। तीसरी गलीके अग्रभागमें धर्माधिकारीका आवासस्थान हो। चौथी गलीके अग्रभागमें दुर्गका मुख्य प्रवेशद्वार हो। उस दुर्गको चौकोना, आयताकार, गोलाकार, मुक्तिहीन, त्रिकोण, यवमध्य, अर्धचन्द्राकार अथवा वज्राकार बनवाना चाहिये। नदी-तटपर बनाये गये अर्धचन्द्राकार दुर्गको उत्तम माना जाता है। विद्वान् राजाको अन्य स्थानोंपर ऐसे दुर्गका निर्माण नहीं करना चाहिये। राजाको राजमहलके दाहिने भागमें कोशगृह बनवाना चाहिये। उसके भी दाहिने भागमें गजशाला बनवानेका विधान है। गजोंकी शाला पूर्व अथवा उत्तराभिमुखी होनी चाहिये। अग्निकोणमें आयुधागार बनवाना उचित है। धर्मज्ञ! उसी दिशामें रसोईघर तथा अन्यान्य कर्मशालाओंकी भी रचना करे। राजभवनकी बार्यों ओर पुरोहितका भवन होना चाहिये

\* गिरिदुर्ग चारों ओरसे पर्वतोंसे घिरे हुए पर्वतोंके मध्य किसी चौरस पर्वतपर ही स्थित होता है। इसके भी चारों ओर मरुभूमि, जलरशि, खाई, वृक्षादिके दुर्ग होते हैं। मनुनिर्मित रोहिताश्वदुर्ग तथा कलिंजर, चरणद्विके दुर्ग ऐसे ही हैं। मनु० ७। ७०—७७ आदिमें इनका विस्तृत उल्लेख है।

मन्त्रिवेदविदां चैव चिकित्साकर्तुरेव च ।  
तत्रैव च तथा भागे कोष्ठागारं विधीयते ॥ १८  
गवां स्थानं तथैवात्र तुरगाणां तथैव च ।  
उत्तराभिमुखा श्रेणी तुरगाणां विधीयते ॥ १९  
दक्षिणाभिमुखा वाथ परिशिष्टास्तु गर्हिताः ।  
तुरगास्ते तथा धार्याः प्रदीपैः सार्वरात्रिकैः ॥ २०  
कुकुटान् वानरांश्चैव मर्कटांश्च विशेषतः ।  
धारयेदश्वशालासु सवत्सां धेनुमेव च ॥ २१  
अजाश्च धार्या यत्नेन तुरगाणां हितैषिणा ।  
गोगजाश्वादिशालासु तत्पुरीषस्य निर्गमः ॥ २२  
अस्तं गते न कर्तव्यो देवदेवे दिवाकरे ।  
तत्र तत्र यथास्थानं राजा विज्ञाय सारथीन् ॥ २३  
दद्यादावसथस्थानं सर्वेषामनुपूर्वशः ।  
योधानां शिल्पिनां चैव सर्वेषामविशेषतः ॥ २४  
दद्यादावसथान् दुर्गे कालमन्त्रविदां शुभान् ।  
गोवैद्यानश्वैद्यांश्च गजवैद्यांस्तथैव च ॥ २५  
आहरेत भृशं राजा दुर्गे हि प्रबला रुजः ।  
कुशीलवानां विप्राणां दुर्गे स्थानं विधीयते ॥ २६  
न बहूनामतो दुर्गे विना कार्ये तथा भवेत् ।  
दुर्गे च तत्र कर्तव्या नानाप्रहरणान्विताः ॥ २७  
सहस्रधातिनो राजंस्तैस्तु रक्षा विधीयते ।  
दुर्गे द्वाराणि गुप्तानि कार्याण्यपि च भूभुजा ॥ २८  
संचयश्वात्र सर्वेषामायुधानां प्रशस्यते ।  
धनुषां क्षेपणीयानां तोमराणां च पार्थिव ॥ २९  
शराणामथ खड्डानां कवचानां तथैव च ।  
लगुडानां गुडानां च हुडानां परिधैः सह ॥ ३०  
अश्मनां च प्रभूतानां मुद्धराणां तथैव च ।  
त्रिशूलानां पट्टिशानां कुठाराणां च पार्थिव ॥ ३१  
प्रासानां च सशूलानां शक्तीनां च नरोत्तम ।  
परश्वधानां चक्राणां वर्षणां चर्मभिः सह ॥ ३२  
कुद्दालरज्जुवेत्राणां पीठकानां तथैव च ।  
तुषणां चैव दात्राणामङ्गाराणां च संचयः ॥ ३३  
सर्वेषां शिल्पिभाण्डानां संचयश्वात्र चेष्यते ।  
वादित्राणां च सर्वेषामोषधीनां तथैव च ॥ ३४

तथा उसी स्थलपर एवं उसी दिशामें मन्त्रियों और वैद्यका निवासस्थान एवं कोष्ठागार बनानेका विधान है । उसी स्थानके समीप गौओं तथा अश्वोंके निवासकी व्यवस्था करनी चाहिये । अश्वोंकी पंक्ति उत्तराभिमुखी अथवा दक्षिणाभिमुखी हो सकती है, अन्य दिशाभिमुखी निन्दित मानी गयी है । जहाँ अश्व रखे जायें वहाँ रातभर दीपक जलते रहना चाहिये । अश्वशालामें मुर्गा, बंदर, मर्कट तथा बछड़ेसहित गौ भी रखनेका विधान है । अश्वोंका कल्याण चाहनेवाला अश्वशालामें बकरियोंको भी रखे । गौ, हाथी और अश्वादि शालाओंमें उनके गोबर निकालनेकी व्यवस्था सूर्य अस्त हो जानेपर नहीं करनी चाहिये । राजा उन-उन स्थानोंमें यथायोग्य समझकर क्रमशः सभी सारथियोंको आवासस्थान प्रदान करे । इसी प्रकार सबसे बढ़कर योद्धाओं, शिल्पियों और कालमन्त्रके वेत्ताओंको दुर्गमें उत्तम निवास-स्थान दे । इसी प्रकार राजाको गौ-वैद्य, अश्व-वैद्य तथा गज-वैद्यको भी रखना चाहिये; क्योंकि दुर्गमें कभी रोगोंकी प्रबलता हो सकती है । दुर्गमें चारणों, संगीतज्ञों और ब्राह्मणोंके स्थानका विधान है ॥ १०—२६ ॥

इनके अतिरिक्त दुर्गमें निरर्थक बहुत-से व्यक्तियोंको नहीं रखना चाहिये । राजन्! दुर्गमें विविध प्रकारके शस्त्राखसे युक्त एवं हजारोंको मारनेमें समर्थ योद्धाओंको रखना चाहिये; क्योंकि उन्होंसे रक्षा होती है । राजाको दुर्गमें गुप्तद्वार भी बनवाना चाहिये । राजन्! दुर्गमें सभी प्रकारके अख-शखोंके संग्रहकी विशेष प्रशंसा की गयी है । नृपत्रेष्ठ राजन्! राजाको दुर्गमें धनुष, ढेलवाँस, तोमर, बाण, तलवार, कवच, लाठी, गुड (हाथीको फँसानेका एक फंदा), हुड (चोरोंको फँसानेका खूंटा), परिघ, पत्थर, बहुसंख्यक मुद्धर, त्रिशूल, पट्टिश, कुठार, प्रास (भाला), शूल, शक्ति, फरसा, चक्र, चर्मके साथ ढाल, कुदाल, रस्सी, बेंत, पीठक, भूसी, हँसिया, कोयला—इन सबका संचय करना चाहिये । दुर्गमें सभी प्रकारके शिल्पीय पात्रोंका भी संचय रहना चाहिये । वह सभी प्रकारके वाद्यों तथा ओषधियोंका भी संचय करे ।

यवसानां प्रभूतानामिन्धनस्य च संचयः ।  
 गुडस्य सर्वतैलानां गोरसानां तथैव च ॥ ३५  
 वसानामथ मज्जानां स्नायूनामस्थिभिः सह ।  
 गोचर्मपटहानां च धान्यानां सर्वतस्तथा ॥ ३६  
 तथैवाभ्रपटानां च यवगोधूमयोरपि ।  
 रत्नानां सर्ववस्त्राणां लौहानामप्यशेषतः ॥ ३७  
 कलायमुद्गमाषाणां चणकानां तिलैः सह ।  
 तथा च सर्वसस्यानां पांसुगोमययोरपि ॥ ३८  
 शणसर्जरसं भूर्ज जतु लाक्षा च टङ्कणम् ।  
 राजा संचिनुयाद् दुर्गे यच्चान्यदपि किञ्चन ॥ ३९  
 कुम्भाश्वाशीविषैः कार्या व्यालसिंहादयस्तथा ।  
 मृगाश्व पक्षिणश्वैव रक्ष्यास्ते च परस्परम् ॥ ४०  
 स्थानानि च विरुद्धानां सुगुप्तानि पृथक् पृथक् ।  
 कर्तव्यानि महाभाग यत्नेन पृथिवीक्षिता ॥ ४१  
 उक्तानि चाप्यनुक्तानि राजद्रव्याण्यशेषतः ।  
 सुगुप्तानि पुरे कुर्याज्जनानां हितकाम्यया ॥ ४२  
 जीवकर्षभकाकोलमामलव्याटरूषकान् ।  
 शालपर्णी पृश्निपर्णी मुद्गपर्णी तथैव च ॥ ४३  
 माषपर्णी च मेदे द्वे शारिवे द्वे बलात्रयम् ।  
 वीरा श्वसन्ती वृष्णा च बृहती कण्टकारिका ॥ ४४  
 शृङ्गी शृङ्गाटकी द्रोणी वर्षाभूर्दर्भ रेणुका ।  
 मधुपर्णी विदार्ये द्वे महाक्षीरा महातपा: ॥ ४५  
 धन्वनः सहदेवाह्वा कटुकैरण्डकं विषः ।  
 पर्णी शताह्वा मृद्वीका फलुखर्जूरयष्टिका: ॥ ४६  
 शुक्रातिशुक्रकाशमर्यश्छत्रातिच्छत्रवीरणा: ।  
 इक्षुरिक्षुविकाराश्व फाणिताद्याश्व सत्तम ॥ ४७  
 सिंही च सहदेवी च विश्वेदेवाश्वरोधकम् ।  
 मधुकं पुष्पहंसाख्या शतपुष्पा मधूलिका ॥ ४८  
 शतावरीमधूके च पिप्पलं तालमेव च ।  
 आत्मगुप्ता कटफलाख्या दार्विका राजशीर्षकी ॥ ४९  
 राजसर्वपथान्याकमृष्यप्रोक्ता तथोत्कटा ।  
 कालशाकं पदमबीजं गोवल्ली मधुवल्लिका ॥ ५०  
 शीतपाकी कुलिङ्गाक्षी काकजिह्वोरुपुष्पिका ।  
 पर्वतत्रपुसौ चोभौ गुज्जातकपुनर्नवे ॥ ५१

वहाँ प्रचुरमात्रामें घास-भूसा, ईंधन, गुड, सभी प्रकारके तेल तथा गोरसका भी संचय हो । राजाको दुर्गमें वसा, मज्जा, हड्डियोंसहित स्नायु, गोचर्मसे बने नगाड़े, धान्य, तम्बू, जौ, गेहूँ, रक्त, सभी प्रकारके वस्त्र, लौह, कुलथी, मूँग, उड्ढ, चना, तिल, सभी प्रकारके अन्न, धूल, गोबर, सन, भोजपत्र, जस्ता, लाह, पत्थर तोड़नेकी छेनी तथा अन्य भी जो कुछ पदार्थ हों, उनका संचय करना चाहिये । सर्पोंके विषसे भरे घड़े, साँप, सिंह आदि हिंसक जन्तु, मृग तथा पक्षी रखे जाने चाहिये, किंतु वे एक-दूसरेसे सुरक्षित रहें । महाभाग ! राजाको विरोधी जीवोंकी रक्षाके लिये यत्नपूर्वक पृथक्-पृथक् स्थान बनवाना चाहिये । राजाको प्रजाकी कल्याण-भावनासे कही गयी अथवा न कही गयी सम्पूर्ण राजवस्तुओंको दुर्गमें गुसरूपसे संग्रहीत करना चाहिये ॥२७—४२ ॥

जीवक, ऋषभक, काकोल, इमली, आटरूष, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, दोनों प्रकारकी मेदा, दोनों प्रकारकी शारिवा, तीनों बलाएँ (एक ओषधि), वीरा, श्वसन्ती, वृष्णा, बृहती, कण्टकारिका, शृङ्गी, शृङ्गाटकी, द्रोणी, वर्षाभू, कुश, रेणुका, मधुपर्णी, दोनों विदारी, महाक्षीरा, महातपा, धन्वन, सहदेवी, कटुक, रेड़, विष, शतपर्णी, मृद्वीका, फलु, खजूर, यष्टिका, शुक्र, अतिशुक्र, काशमरी, छत्र, अतिछत्र, वीरण, ईख और ईखसे होनेवाली अन्य वस्तुएँ, फाणित आदि, सिंही, सहदेवी, विश्वदेव, अश्वरोधक, महुआ, पुष्पहंसा, शतपुष्पा, मधूलिका, शतावरी, महुआ, (दाख) पिप्पल, ताल, आत्मगुप्ता, कटफल, दार्विका, राजशीर्षकी, श्वेत सरसों, धनिया, ऋष्यप्रोक्ता, उत्कटा, कालशाक, पद्मबीज, गोवल्ली, मधुवल्लिका, शीतपाकी, कुलिंगाक्षी, काकजिह्वा, उरुपुष्पिका, दोनों पर्वत और त्रिपुष, गुंजातक, पुनर्नवा,

कसेरुका तु काश्मीरी बिल्वशालूककेसरम्।  
 तुषधान्यानि सर्वाणि शमी धान्यानि चैव हि ॥ ५२  
 क्षीरं क्षौद्रं तथा तक्रं तैलं मज्जा वसा घृतम्।  
 नीपश्चारिष्टकक्षोडवातामसोमबाणकम् ॥ ५३  
 एवमादीनि चान्यानि विज्ञेयो मधुरो गणः।  
 राजा संचिनुयात् सर्वं पुरे निरवशेषतः ॥ ५४  
 दाढिमाप्रातकौ चैव तिन्तिडीकाम्लवेतसम्।  
 भव्यकर्कन्धुलकुचकरमर्दकरूषकम् ॥ ५५  
 बीजपूरककण्डूरे मालती राजबन्धुकम्।  
 कोलकद्वयपर्णानि द्वयोराप्रातयोरपि ॥ ५६  
 पारावतं नागरकं प्राचीनारुकमेव च।  
 कपितथामलकं चुक्रफलं दन्तशठस्य च ॥ ५७  
 जाम्बवं नवनीतं च सौवीरकरुषोदके।  
 सुरासवं च मद्यानि मण्डतक्रदधीनि च ॥ ५८  
 शुक्लानि चैव सर्वाणि ज्ञेयमाम्लगणं द्विज।  
 एवमादीनि चान्यानि राजा संचिनुयात् पुरे ॥ ५९  
 सैन्धवोदभिदपाठेयपाक्यसामुद्रलोमकम्।  
 कुप्यसौवर्चलाविल्वं बालकेयं यवाहृकम् ॥ ६०  
 औवं क्षारं कालभस्म विज्ञेयो लवणो गणः।  
 एवमादीनि चान्यानि राजा संचिनुयात् पुरे ॥ ६१  
 पिप्पली पिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम्।  
 कुबेरकं च मरिचं शिग्रुभल्लातसर्षपाः ॥ ६२  
 कुष्ठाजमोदा किणिही हिङ्गमूलकधान्यकम्।  
 कारवी कुञ्जिका याज्या सुमुखा कालमालिका ॥ ६३  
 फणिज्ञकोऽथ लशुनं भूस्तृणं सुरसं तथा।  
 कायस्था च वयःस्था च हरितालं मनःशिला ॥ ६४  
 अमृता च रुदन्ती च रोहिषं कुङ्कुमं तथा।  
 जया एरण्डकाण्डीरं शल्लकी हञ्जिका तथा ॥ ६५  
 सर्वपित्तानि मूत्राणि प्रायो हरितकानि च।  
 संगतानि च मूलानि यटिश्चातिविषाणि च।  
 फलानि चैव हि तथा सूक्ष्मैला हिङ्गपत्रिका ॥ ६६  
 एवमादीनि चान्यानि गणः कटुकसंज्ञितः।  
 राजा संचिनुयाद् दुर्गे प्रयत्नेन नृपोत्तम ॥ ६७

कसेरुका, काश्मीरी, बिल्व, शालूक, केसर, सभी प्रकारकी भूसियाँ, शमी, अन्न, दुग्ध, शहद, मट्ठा, तेल, मज्जा, वसा, घी, कदम्ब, अरिष्टक, अक्षोट, बादाम, सोम और बाणक—इन सबको तथा इसी प्रकार अन्य पदार्थोंको मधुर जानना चाहिये। राजा इन सबका पूर्णरूपसे दुर्गमें संग्रह करे ॥ ४३—५४ ॥

अनार, आम्रातक, इमली, अम्लवेतस, सुन्दर बेर, बड़हर, करमर्द, करूषक, विजौरा, कण्डूर, मालती, राज-बन्धुक, दोनों कोलकों और अमड़ोंके पते, पारावत, नागरक, प्राचीन अरुक, कैथ, आँवला, चुक्रफल, दन्तशठ, जामुन, मक्खन, सौवीरक, रुषोदक, सुरा, आसव आदि मद्य, माँड, मट्ठा, दही एवं ऐसे सभी प्रकारके श्वेत पदार्थोंको खट्टा समझना चाहिये। राजा इनका तथा ऐसे अन्यान्य पदार्थोंका अपने दुर्गमें संचय करे। सैन्धव, उद्धिद, पाठेय, पाक्य, सामुद्र (साँभर), लोमक, कुप्य, सौवर्चल, अविल्व, बालकेय, यव, भौम, क्षार, कालभस्म—ये सभी लवणके भेदोपभेद हैं। राजा इन सबका तथा अन्य लवणोंका दुर्गमें संग्रह करे। पीपर, पीपरका मूल, चव्य, शीता, सौंठ, कुबेरक, मिर्च, सहजना, भिलावा, सरसों, कुष्ठ, अजमोदा, ओंगा, हींग, मूली, धनियाँ, सौंफ, अजवाइन, मंजीठ, जवीर, कलमालिका, कणिज्ञक, लहसुन, पालाके आकारवाला जलीय तृण, हरड़, कायस्था, वयःस्था, हरताल, मैनसिल, गिलोय, रुदंती, रोहिष, केशर, जया, रेडी, नरकट, शल्लकी, भारंगी, सभी प्रकारके पित्त और मूत्र, हर्दे, आवश्यक मूल, मुलहठी, अतिविष, छोटी इलायची, तेजपात आदि कटु ओषधियाँ हैं। राजश्रेष्ठ! राजा दुर्गमें प्रयत्नपूर्वक इनका संग्रह करे।

मुस्तं चन्दनहीबेरकृतमालकदारवः ।  
 हरिद्रानलदोशीरनक्तमालकदम्बकम् ॥ ६८  
 दूर्वा पटोलकटुका दन्तीत्वक् पत्रकं वचा ।  
 किराततिक्तभूतुम्बी विषा चातिविषा तथा ॥ ६९  
 तालीसपत्रतगरं सप्तपर्णविकङ्क्राताः ।  
 काकोदुम्बरिका दिव्यास्तथा चैव सुरोद्भवा ॥ ७०  
 षड्ग्रन्था रोहिणी मांसी पर्पटश्चाथ दन्तिका ।  
 रसाञ्जनं भृङ्गराजं पतझी परिपेलवम् ॥ ७१  
 दुःस्पर्शा गुरुणी कामा श्यामाकं गन्धनाकुली ।  
 रूपपर्णी व्याघ्रनखं मञ्जिष्ठा चतुरङ्गुला ॥ ७२  
 रम्भा चैवाङ्गुरास्फीता तालास्फीता हरेणुका ।  
 वेत्राग्रवेतसस्तुम्बी विषाणी लोधपुष्पिणी ॥ ७३  
 मालती करकृष्णाख्या वृश्चिका जीविता तथा ।  
 पर्णिका च गुडूची च स गणस्तिक्तसंज्ञकः ॥ ७४  
 एवमादीनि चान्यानि राजा संचिनुयात् पुरे ।  
 अभयामलके चोभे तथैव च बिभीतकम् ॥ ७५  
 प्रियङ्गुधातकीपुष्यं मोचाख्या चार्जुनासनाः ।  
 अनन्ता स्त्री तुवरिका श्योणाकं कटफलं तथा ॥ ७६  
 भूर्जपत्रं शिलापत्रं पाटलापत्रलोमकम् ।  
 समङ्गात्रिवृतामूलकार्पासगैरिकाञ्जनम् ॥ ७७  
 विद्वुमं समधूच्छिष्टं कुम्भिका कुमुदोत्पलम् ।  
 न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थकिंशुकाः शिंशपा शमी ॥ ७८  
 प्रियालपीलुकासारिशिरीषाः पद्मकं तथा ।  
 बिल्वोऽग्निमन्थः प्लक्षश्च श्यामाकं च बको धनम् ॥ ७९  
 राजादनं करीरं च धान्यकं प्रियकस्तथा ।  
 कङ्गोलाशोकबदराः कदम्बखदिरद्वयम् ॥ ८०  
 एषां पत्राणि साराणि मूलानि कुसुमानि च ।  
 एवमादीनि चान्यानि कषायाख्यो गणो मतः ॥ ८१  
 प्रयत्नेन नृपश्रेष्ठ राजा संचिनुयात् पुरे ।  
 कीटाश्च मारणे योग्या व्यङ्गतायां तथैव च ॥ ८२  
 वातधूमाम्बुमार्गाणां दूषणानि तथैव च ।  
 धार्याणि पार्थिवैर्दुर्गं तानि वक्ष्यामि पार्थिव ॥ ८३

नागरमोथा, चन्दन, हीबेर, कृतहारक, दारुहल्दी, हल्दी, नलद, खश, नक्तमाल, कदम्ब, दूर्वा, परवल, तेजपात, वच, चिरायता, भूतुम्बी, विषा, अतिविषा, तालीसपत्र, तगर, छितवन, खैर, काली गूलर, दिव्या, सुरोद्भवा, षड्ग्रन्थी, रोहिणी, जटामासी, पर्पट, दन्ती, रसांजन, भृंगराज, पतंगी, परिपेलव, दुःस्पर्शा, अगुरुद्वय, कामा, श्यामाक, गंधनाकुली, तुषपर्णी, व्याघ्रनख, मंजीठ, चतुरङ्गुला, केला, अंकुरास्फीता, तालास्फीता, रेणुकबीज, बेतका अग्रभाग, बेत, तुम्बी, कैंकरासींगी, लोध्रपुष्पिणी, मालती, करकृष्णा, वृश्चिका, जीविता, पर्णिका तथा गुडुच—यह तिक्त ओषधियोंका समूह है। राजा इनका तथा इसी प्रकारके अन्य तिक्त पदार्थोंका दुर्गमें संग्रह रखे ॥ ५५—७४ १/२ ॥

हर्दे, बहेड़ा, आँवला, मालकागुन, धायके फूल, मोचरस, अर्जुन, असन, अनन्ता, कामिनी, तुबरिका, श्योणाक, जायफल, भोजपत्र, शिलाजीत, पाटलवृक्ष, लोहबान, समंगा, त्रिवृता, मूल, कपास, गेरु, अंजन, विद्वुम, शहद, जलकुम्भी, कुमुदिनी, कमल, बरगद, गूलर, पीपल, पालाश, शीशम, शमी, प्रियाल, पीलु, कासारि, शिरीष, पद्म, बेल, अरणी, पाकड़, श्यामाक, बक, धन, राजादन, करीर, धनिया, प्रियक, कंकोल, अशोक, बेर, कदंब, दोनों प्रकारके खैर—इन वृक्षोंके पत्ते, सारभाग (सत्त्व), मूल तथा पुष्य काषाय माने गये हैं। राजश्रेष्ठ! राजाको ये काषाय ओषधियाँ दुर्गमें रखनी चाहिये। राजन्! मारने एवं धायल करनेवाले कीट-पतंग तथा वायु, धूम, जल तथा मार्गको दूषित करनेवाली ओषधियोंको, जिन्हें मैं आगे बतलाऊँगा, राजाको दुर्गमें रखनी चाहिये।

विषाणां धारणं कार्यं प्रयत्नेन महीभुजा ।  
विचित्राश्वागदा धार्या विषस्य शमनास्तथा ॥ ८४  
रक्षोभूतपिशाचघ्नाः पापघ्नाः पुष्टिवर्धनाः ।  
कलाविदश्च पुरुषाः पुरे धार्याः प्रयत्नतः ॥ ८५  
भीतान् प्रमत्तान् कुपितांस्तथैव च विमानितान् ।  
कुभृत्यान् पापशीलांश्च न राजा वासयेत् पुरे ॥ ८६  
यन्त्रायुधाद्वालचयोपपत्रं  
समग्रधान्यौषधिसम्प्रयुक्तम् ।  
वणिगजनैश्चावृतमावसेत  
दुर्गे सुषुप्तं नृपतिः सदैव ॥ ८७

इति श्रीमत्स्ये महापुराणे राजधर्मे दुर्गनिर्माणौषध्यादिसंचयकथनं नाम समदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें राजाओंके लिये दुर्गनिर्माण और ओषधि आदिके संचयका वर्णन नामक दो सौ सतरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २१७ ॥

राजाको प्रयत्नपूर्वक सभी विषेंका संग्रह करना चाहिये तथा विष-प्रभावको शान्त करनेवाली विचित्र ओषधियोंको भी धारण करना उचित है । राक्षस, भूत तथा पिशाचोंके प्रभावको नष्ट करनेवाले, पापनाशक, पुष्टिकारक पदार्थों तथा कलाविज्ञ पुरुषोंको भी दुर्गमें प्रयत्नपूर्वक स्थापित करना चाहिये । राजाको चाहिये कि उस दुर्गमें डरकर भागे हुए उन्मत्त, कुद्ध, अपमानित तथा पापी दुष्ट अनुचरोंको न ठहरने दे । सभी प्रकारके यन्त्र, अस्त्र तथा अट्टालिकाओंके समूहसे संयुक्त, सभी प्रकारके अन्त्र तथा ओषधियोंसे सुसम्पन्न और व्यवसायी जनोंसे परिपूर्ण दुर्गमें राजाको सदैव सुखपूर्वक निवास करना चाहिये ॥ ७५—८७ ॥

## दो सौ अठारहवाँ अध्याय

### दुर्गमें संग्राहा ओषधियोंका वर्णन

मनुरुवाच

रक्षोघ्नानि विषघ्नानि यानि धार्याणि भूभुजा ।  
अगदानि समाचक्ष्व तानि धर्मभृतां वर ॥ १

मत्स्य उवाच

बिल्वाटकी यवक्षारं पाटला बाह्लिकोषणा ।  
श्रीपर्णी शल्लकीयुक्तो निक्राथः प्रोक्षणं परम् ॥ २  
सविषं प्रोक्षितं तेन सद्यो भवति निर्विषम् ।  
यवसैन्धवपानीयवस्त्रशय्यासनोदकम् ॥ ३  
कवचाभरणं क्षत्रं वालव्यजनवेशमनाम् ।  
शेलुः पाटलातिविषा शिग्नु मूर्वा पुनर्नवा ॥ ४  
समझा वृषमूलं च कपित्थवृषशोषितम् ।  
महादन्तशठं तद्वत् प्रोक्षणं विषनाशनम् ॥ ५  
लाक्षाप्रियद्रुमञ्जिष्ठा सममेला हरेणुका ।  
यष्ट्याह्वा मधुरा चैव बभ्रुपित्तेन कल्पिताः ॥ ६  
निखनेद् गोविषाणस्थं समरात्रं महीतले ।  
ततः कृत्वा मणिं हेमा बद्धं हस्तेन धारयेत् ॥ ७

मनुने पूछा—धार्मिकश्रेष्ठ ! राजाको राक्षस, विष और रोगको दूरकर स्वस्थ करनेवाली जिन ओषधियोंका दुर्गमें संग्रह करना चाहिये, उनका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

मत्स्यभगवान् ने कहा—बिल्वाटकी, जवाखार, पाटला, बाह्लिक, ऊषणा, श्रीपर्णी और शल्लकी—इन ओषधियोंका काढ़ा उत्तम प्रोक्षण है । विषग्रस्त प्राणीद्वारा उसका सेवन करनेसे वह तुरंत ही विषरहित हो जाता है । उसी प्रकार इनके द्वारा सेवन करनेसे यव, सैन्धव, पानीय, वस्त्र, शय्या, आसन, जल, कवच, आभरण, छत्र, चामर और गृह आदि विषरहित हो जाते हैं । शेलु, पाटली, अतिविषा, शिग्नु, मूर्वा, पुनर्नवा, समंगा, वृषमूल, कपित्थ, वृषशोषित तथा महादन्तशठ—इन ओषधियोंके काढ़ेका सेवन भी उसी प्रकार विषनाशक होता है । लाह, प्रियंगु, मंजीठ, समान भागमें इलायची, हरें, जेठीमधु और मधुरा—इन्हें नकुल-पित्तसे संयुक्त करके गायके सींगमें रखकर सात रातक पृथ्वीमें गाड़ दे । इसके बाद उसे सुवर्णजटित मणिकी अंगूठीमें रखकर हाथमें धारण कर

संसृष्टं सविषं तेन सद्यो भवति निर्विषम् ।  
 मनोह्रया शमीपत्रं तुम्बिका श्वेतसर्षपाः ॥ ८  
 कपित्थकुष्ठमञ्जिष्ठाः पित्तेन श्लक्षणकल्पिताः ।  
 शुनो गोः कपिलायाश्च सौम्याक्षिसोऽपरो गदः ॥ ९  
 विषजित्परमं कार्यं मणिरत्नं च पूर्ववत् ।  
 मूषिका जतुका चापि हस्ते बध्वा विषापहा ॥ १०  
 हरेणुमांसी मञ्जिष्ठा रजनी मधुका मधु ।  
 अक्षत्वक् सुरसं लाक्षा श्वपितं पूर्ववद् भुवि ॥ ११  
 वादित्राणि पताकाश्च पिष्टैरतैः प्रलेपिताः ।  
 श्रुत्वा दृष्ट्वा समाद्वाय सद्यो भवति निर्विषः ॥ १२  
 त्र्यूषणं पञ्चलवणं मञ्जिष्ठा रजनीद्वयम् ।  
 सूक्ष्मैला त्रिवृतापत्रं विडङ्गानीन्द्रवारुणी ॥ १३  
 मधूकं वेतसं क्षौद्रं विषाणे च निधापयेत् ।  
 तस्मादुष्णाम्बुना मात्रं प्रामुक्तं योजयेत् ततः ॥ १४  
 विषभुक्तं ज्वरं याति निर्विषं पित्तदोषकृत् ।  
 शुक्लं सर्जरसोपेतं सर्वपा एलवालुकैः ॥ १५  
 सुवेगा तस्करसुरौ कुसुमैर्जुनस्य तु ।  
 धूपो वासगृहे हन्ति विषं स्थावरजङ्घमम् ॥ १६  
 न तत्र कीटा न विषं दर्दुरा न सरीसुपाः ।  
 न कृत्या कर्मणां चापि धूपोऽयं यत्र दह्यते ॥ १७  
 कल्पितैश्चनक्षीरपलाशद्रुमवल्कलैः ।  
 मूर्वैलावालुसरसानाकुलीतण्डुलीयकैः ॥ १८  
 क्राथः सर्वोदकार्येषु काकमाचीयुतो हितः ।  
 रोचनापत्रनेपालीकुङ्कुमैस्तिलकान् वहन् ॥ १९  
 विषैर्न बाध्यतेऽस्माच्च नरनारीनृपप्रियः ।  
 चूर्णैर्हरिद्रामञ्जिष्ठाकिणिहीकणनिम्बजैः ॥ २०  
 दिग्धं निर्विषतामेति गात्रं सर्वविषार्दितम् ।  
 शिरीषस्य फलं पत्रं पुष्पं त्वड़मूलमेव च ॥ २१  
 गोमूत्रघृष्टो ह्यगदः सर्वकर्मकरः स्मृतः ।  
 एकवीर महौषध्यः शृणु चातः परं नृप ॥ २२  
 वन्ध्या ककोटकी राजन् विष्णुक्रान्ता तथोत्कटा ।  
 शतमूली सितानन्दा बला मोचा पटोलिका ॥ २३

ले । उसका स्पर्श करनेसे विषयुक्त प्राणी तुरंत ही निर्विष हो जाता है । जटामांसी, शमीके पत्ते, तुम्बी, श्वेत सरसों, कपित्थ, कुष्ठ और मंजीठ—इन ओषधियोंको कुत्ते अथवा कपिला गौके पित्तके साथ भावना दे । यह सौम्याक्षिस नामक दूसरी विषनाशक ओषधि है । इसे भी पूर्ववत् मणि एवं रत्ननिर्मित अंगूठीमें रखकर धारण करना चाहिये । इसी प्रकार मूषिका और लाहको भी हाथमें बाँधनेसे विषका शमन होता है ॥१—१० ॥

हरें, जटामांसी, मंजीष्ठा, हरिद्रा, महुआ, मधु, अक्षत्वक्, सुरसा और लाह—इन्हें भी पूर्ववत् कुत्ते पित्तसे संयुक्त करके पृथ्वीमें गाड़ दे । फिर इनके लेपसे वाजों तथा पताकाओंपर लेप कर दे तो (विषाक्त प्राणी) उन्हें सुनकर, देखकर और सूँघकर तुरंत विषरहित हो जाता है । तीनों कटु (आँवला, हरें, बहेरा), पाँचों नमक, मंजीठ, दोनों रजनी, छोटी इलायची, त्रिवृताका पत्ता, बिंग, इन्द्रवारुणि, मधूक, वेतस तथा मधु—इन सबको सींगमें स्थापित कर दे, फिर वहाँसे निकालकर गर्म जलमें मिला दे । इसके द्वारा विष-भक्षणसे उद्धूत पित्तदोष उत्पन्न करनेवाला ज्वर शान्त हो जाता है । श्वेत धूप, सरसों, एलबालुक, सुवेगा, तस्कर, सुर और अर्जुनके पुष्प—इन ओषधियोंका धूपवास करनेवाले घरमें स्थित स्थावर-जङ्घम सभी विषको नष्ट कर देता है । जहाँ वह धूप जलाया जाता है, वहाँ कीट, विष, मेढ़क, रेंगनेवाले सर्पादि जीव तथा कर्मोंकी कृत्या—ये कोई भी नहीं रह सकते । चन्दन, दुध, पलाश-वृक्षकी छाल, मूर्वा, एलावालुक, सरसों, नाकुली, तण्डुलीयक एवं काकमाचीका काढ़ा सभी प्रकारके विषयुक्त जलमें कल्याणकारी होता है । रोचनापत्र, नेपाली, केसरतिलक—इन ओषधियोंको धारण करनेसे मनुष्यको विषका कष्ट नहीं होता, विषदोष नष्ट हो जाता है और वह इसके प्रभावसे स्त्री, पुरुष और राजाका प्रिय हो जाता है ॥ ११—१९ ॥

हल्दी, मंजीठ, किणिही, पिप्पली और नीमके चूर्णका लेप करनेसे सभी प्रकारके विषसे पीड़ित शरीर विषरहित हो जाता है । शिरीष-वृक्षका फल, पत्ता, पुष्प, छाल और जड़—इन सबको गो-मूत्रमें घिसकर तैयार की गयी ओषधि सभी प्रकारके विषकर्ममें हितकारी कही गयी है । सर्वोत्कृष्ट शूरवीर राजन्! इसके उपरान्त सर्वश्रेष्ठ ओषधियोंका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये । राजन्! वन्ध्या, ककोटकी, विष्णुक्रान्ता, उत्कटा, शतमूली, सिता, आनन्दा,

सोमा पिण्डा निशा चैव तथा दग्धरुहा च या ।  
 स्थले कमलिनी या च विशाली शङ्खमूलिका ॥ २४  
 चाण्डाली हस्तिमगधा गोऽजापर्णी करभिका ।  
 रक्ता चैव महारक्ता तथा बर्हिशिखा च या ॥ २५  
 कौशातकी नक्तमालं प्रियालं च सुलोचनी ।  
 वारुणी वसुगन्धा च तथा वै गन्धनाकुली ॥ २६  
 ईश्वरी शिवगन्धा च श्यामला वंशनालिका ।  
 जतुकाली महाश्वेता श्वेता च मधुयष्टिका ॥ २७  
 वत्रकः पारिभद्रश्च तथा वै सिन्धवारका ।  
 जीवानन्दा वसुच्छिद्रा नतनागरकण्टका ॥ २८  
 नालं जाली च जाती च तथा च वटपत्रिका ।  
 कार्तस्वरं महानीला कुन्दुरुर्हसपादिका ॥ २९  
 मण्डूकपर्णी वाराही द्वे तथा तण्डुलीयके ।  
 सर्पाक्षी लवली ब्राह्मी विश्वरूपा सुखाकरा ॥ ३०  
 रुजापहा वृद्धितरी तथा चैव तु शल्यदा ।  
 पत्रिका रोहिणी चैव रक्तमाला महौषधी ॥ ३१  
 तथामलकवृन्दाकं श्यामचित्रफला च या ।  
 काकोली क्षीरकाकोली पीलुपर्णी तथैव च ॥ ३२  
 केशिनी वृश्चिकाली च महानागा शतावरी ।  
 गरुडी च तथा वेगा जले कुमुदिनी तथा ॥ ३३  
 स्थले चोत्पलिनी या च महाभूमिलता च या ।  
 उन्मादिनी सोमराजी सर्वरत्नानि पार्थिव ॥ ३४  
 विशेषान्मरकतादीनि कीटपक्षं विशेषतः ।  
 जीवजाताश्च मणयः सर्वे धार्याः प्रयत्नतः ॥ ३५  
 रक्षोद्घाश्च विषद्घाश्च कृत्या वेतालनाशनाः ।  
 विशेषान्नरनागाश्च गोखरोष्टसमुद्धवाः ॥ ३६  
 सर्पतित्तिरगोमायुबभ्रुमण्डुकजाश्च ये ।  
 सिंहव्याघ्रक्षमार्जारद्विपिवानरसम्भवाः ।  
 कपिञ्जला गजा वाजिमहिषैणभवाश्च ये ॥ ३७  
 इत्येवमेते: सकलैरुपेतै-  
 द्रव्यैः पराध्यैः परिरक्षितः स्यात् ।  
 राजा वसेत् तत्र गृहं सुशुभ्रं  
 गुणान्वितं लक्षणसम्प्रयुक्तम् ॥ ३८

बला, मोचा, पटेलिका, सोमा, पिण्डा, निशा, दग्धरुहा, स्थलपदा, विशाली, शंखमूलिका, चाण्डाली, हस्तिमगधा, गोपर्णी, अजापर्णी, करभिका, रक्ता, महारक्ता, बर्हिशिखा, कौशातकी, नक्तमाल, प्रियाल, सुलोचनी, वारुणी, वसुगन्धा, गन्धनाकुली, ईश्वरी, शिवगन्धा, श्यामला, वंशनालिका, जतुकाली, महाश्वेता, श्वेता, मधुयष्टिका, वत्रक, पारिभद्र, सिन्दुवारक, जीवानन्दा, वसुच्छिद्रा, नतनागर, कण्टकारि, नाल, जाली, जाती, वटपत्रिका, सुवर्ण, महानीला, कुन्दुरु, हंसपादिका, मण्डूकपर्णी, दोनों प्रकारकी वाराही, तण्डुलीयक, सर्पाक्षी (नकुलकंद), लवली, ब्राह्मी, विश्वरूपा, सुखाकरा, रुजापहा, वृद्धिकरी, शल्यदा, पत्रिका, रोहिणी, रक्तमाला, आमलक, वृन्दाक, श्यामा, चित्रफला, काकोली, क्षीरकाकोली, पीलुपर्णी, केशिनी, वृश्चिकाली, महानागा, शतावरी, गरुडी, वेगा, जलकुमुदिनी, स्थलोत्पल, महाभूमिलता, उन्मादिनी, सोमराजी, सभी प्रकारके रत्न—विशेषकर मरकत आदि बहुमूल्य रत्न, अनेक प्रकारकी कीटज मणियाँ, जीवोंसे उत्पन्न होनेवाली मणियाँ—इन सभीको प्रयत्नपूर्वक दुर्गमें संचित करे। इसी प्रकार राक्षस, विष, कृत्या, वैताल आदिकी नाशक—विशेषकर मनुष्य, सर्प, गौ, गर्दभ, ऊँट, साँप, तीतर, शृगाल, नेवला, मेढक, सिंह, बाघ, रीछ, बिलाव, गैँड़ा, वानर, कपिंजल, हस्ती, अश्व, महिष और हरिण आदि जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाली उपयोगी वस्तुओंका भी राजा संचय करे। इस प्रकार इन सभी बहुमूल्य पदार्थोंसे युक्त रहनेपर वह सुरक्षित रहता है। तब राजा उनमें बने हुए अत्यन्त निर्मल, उपर्युक्त लक्षणोंसे सम्पन्न तथा गुणयुक्त भवनमें निवास करे ॥ २०—३८ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽगदाध्यायो नामाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अगदाध्याय नामक दो सौ अठारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २१८ ॥

## दो सौ उन्नीसवाँ अध्याय

विषयुक्त पदार्थोंके लक्षण एवं उससे राजाके बचनेके उपाय

मनुरुचाच

राजरक्षारहस्यानि यानि दुर्गे निधापयेत्।  
कारयेद् वा महीभर्ता ब्रूहि तत्त्वानि तानि मे॥ १

मत्स्य उचाच

शिरीषोदुम्बरशमीबीजपूरं घृतप्लुतम्।  
क्षुद्योगः कथितो राजन् मासार्धस्य पुरातनैः॥ २  
कशेरुफलमूलानि इक्षुमूलं तथा विषम्।  
दूर्वांक्षीरघृतैर्मण्डः सिद्धोऽयं मासिकः परः॥ ३  
नरं शस्त्रहतं प्राप्तो न तस्य मरणं भवेत्।  
कल्माषवेणुना तत्र जनयेत् विभावसुम्॥ ४  
गृहे त्रिरपसव्यं तु क्रियते यत्र पार्थिव।  
नान्योऽग्निर्ज्वलते तत्र नात्र कार्या विचारणा॥ ५  
कार्पासास्थना भुजङ्गस्य तेन निर्मोचनं भवेत्।  
सर्पनिर्वासने धूपः प्रशस्तः सततं गृहे॥ ६  
सामुद्रसैन्धवयवा विद्युदग्धा च मृत्तिका।  
तयानुलिंसं यद्वेशम् नागिना दह्यते नृप॥ ७  
दिवा च दुर्गे रक्ष्योऽग्निर्वाति वाते विशेषतः।  
विषाच्च रक्ष्यो नृपतिस्तत्र युक्तिं निबोध मे॥ ८  
क्रीडानिमित्तं नृपतिर्धारयेन्मृगपक्षिणः।  
अन्तं वै प्राक् परीक्षेत वहौ चान्यतरेषु च॥ ९  
वस्त्रं पुष्पमलङ्कारं भोजनाच्छादनं तथा।  
नापरीक्षितपूर्वं तु स्पृशेदपि महीपतिः॥ १०  
स्याच्चासौ वक्त्रसंतमः सोद्वेगं च निरीक्षते।  
विषदोऽथ विषं दत्तं यच्च तत्र परीक्षते॥ ११  
स्वस्तोत्तरीयो विमनाः स्तम्भकुड्यादिभिस्तथा।  
प्रच्छादयति चात्मानं लज्जते त्वरते तथा॥ १२

मनुने पूछा—भगवन्! राजाको राज्यकी रक्षाके लिये जिन रहस्यपूर्ण साधनोंको दुर्गमें संगृहीत या प्रस्तुत करना चाहिये, उन तत्त्वोंका मुझसे वर्णन कीजिये॥ १॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन्! शिरीष, गूलर, शमी और बिजौरा नीबू—इनको घृतमें परिप्लुतकर पंद्रह दिनों बाद सेवन करे, प्राचीन लोग इसे 'क्षुद्योग' कहते हैं। कशेरुके मूल भाग तथा फल, ईखके मूल भाग और विषको दूब, दूध और धीके साथ सिद्ध करनेसे बना हुआ पदार्थ मण्ड कहलाता है। एक मास बाद इसका सेवन करना चाहिये। इनके सेवनसे हथियारोंसे घायल हुआ मनुष्य मर नहीं सकता। वहाँ चितकबरे रंगवाले बाँसके टुकड़ेसे अग्नि उत्पन्न करे। राजन्! उस अग्निको जिस घरमें अपसव्य होकर तीन बार प्रदक्षिणा करे, वहाँ कोई अन्य अग्नि नहीं जल सकती—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। कपासके साथ सर्पकी हड्डी जलानेसे घरमेंसे सर्पोंका निष्कासन होता है। घरमें निरन्तर इस वस्तुकी धूप करना साँपको निकालनेके लिये विशेष प्रसिद्ध है। राजन्! सामुद्री नमक, सेन्ध्या नमक और यवा—ये तीन प्रकारके लवण तथा विद्युत्से जली हुई मिट्टी—इन वस्तुओंसे जिस भवनकी लिपाई होती है, उसे अग्नि नहीं जला सकती। दुर्गमें दिनके समय विशेषकर जब वायुका प्रकोप हो, अग्निकी रक्षा करनी चाहिये। विषसे राजाकी रक्षा करनी चाहिये। उस विषयमें युक्ति बतलाता हूँ, सुनिये। राजाको चाहिये कि दुर्गमें क्रीड़ाके लिये कुछ पशु तथा पक्षियोंको रखे। सर्वप्रथम उसे अग्निमें डालकर अथवा अन्य किन्हीं उपायोंसे अन्तर्की परीक्षा कर लेनी चाहिये। वस्त्र, पुष्प, आभरण, भोजन तथा आच्छादन (वस्त्र)-को राजा पहले परीक्षा किये बिना स्पर्श भी न करे। विष देनेवाले मनुष्यने यदि विष दे दिया है तो उसकी परीक्षाके ये निम्नकथित लक्षण होते हैं—वह मलिनमुख, उद्वेगपूर्वक देखनेवाला, खिसकती हुई चादरवाला, उदास, खम्भे और भीतकी आड़में अपनेको छिपानेकी चेष्टा करनेवाला, लज्जित तथा शीघ्रता

भुवं विलिखति ग्रीवां तथा चालयते नृप।  
कण्डूयति च मूर्धनं परिलोङ्ग्यानन् तथा॥ १३  
क्रियासु त्वरितो राजन् विपरीतास्वपि ध्रुवम्।  
एवमादीनि चिह्नानि विषदस्य परीक्षयेत्॥ १४  
समीपैर्विक्षिपेद् वहौ तदत्रं त्वरयान्वितः।  
इन्द्रायुधसवर्णं तु रूक्षं स्फोटसमन्वितम्॥ १५  
एकावर्तं तु दुर्गन्धिं भृशं चटचटायते।  
तद्बूमसेवनाज्ञनोः शिरोरोगश्च जायते॥ १६  
सविषेऽन्ने निलीयन्ते न च पार्थिव मक्षिकाः।  
निलीनाश्च विपद्यन्ते संस्पृष्टे सविषे तथा॥ १७  
विरञ्यति चकोरस्य दृष्टिः पार्थिवसत्तम्।  
विकृतिं च स्वरो याति कोकिलस्य तथा नृप॥ १८  
गतिः सखलति हंसस्य भृङ्गराजश्च कूजति।  
क्रौञ्छो मदमथाभ्येति कृकवाकुर्विरौति च॥ १९  
विक्रोशति शुको राजन् सारिका वमते ततः।  
चामीकरोऽन्यतो याति मृत्युं कारण्डवस्तथा॥ २०  
मेहते वानरो राजन् ग्लायते जीवजीवकः।  
हष्ट्रोमा भवेद् बध्नुः पृष्ठतश्चैव रोदिति॥ २१  
हर्षमायाति च शिखी विषसंदर्शनान्नृप।  
अन्नं च सविषं राजंश्चिरेण च विपद्यते॥ २२  
तदा भवति निःश्राव्यं पक्षपर्युषितोपमम्।  
व्यापन्नरसगन्धं च चन्द्रिकाभिस्तथा युतम्॥ २३  
व्यञ्जनानां तु शुष्कत्वं द्रवाणां बुद्बुदोद्घवः।  
ससैन्धवानां द्रव्याणां जायते फेनमालिता॥ २४  
शस्यराजिश्च ताम्रा स्यानीला च पयसस्तथा।  
कोकिलाभा च मद्यस्य तोयस्य च नृपोत्तम्॥ २५  
धान्याम्लस्य तथा कृष्णा कपिला कोद्रवस्य च।  
मधुश्यामा च तक्रस्य नीला पीता तथैव च॥ २६  
घृतस्योदकसंकाशा कपोताभा च मस्तुनः।  
हरिता माक्षिकस्यापि तैलस्य च तथारुणा॥ २७

करनेवाला होता है। राजन्! वह पृथ्वीपर रेखा खींचने लगता है, गर्दन हिलाने लगता है तथा मुखको मलकर सिर खुजलाने लगता है। राजन्! निश्चय ही वह विपरीत कार्योंमें भी शीघ्रता करनेकी चेष्टा करता है। विषदाताके ऐसे ही लक्षण होते हैं। राजाको उसकी परीक्षा कर लेनी चाहिये। उसके द्वारा दिये गये अन्नको शीघ्रतापूर्वक समीपस्थ अग्रिमें डाल देना चाहिये। विषैला अन्न अग्रिमें पड़ते ही इन्द्रधनुष-जैसे रंगवाला हो जाता है तथा तुरंत ही सूख जाता है। उसमें स्फोट होने लगता है। वह एक ही ओरसे निकलता है, दुर्गन्धयुक्त होता है और अत्यन्त चटचटाने लगता है। उसके धुँएका सेवन करनेसे जीवके सिरमें रोग उत्पन्न हो जाता है॥ २—१६॥

राजन्! विषयुक्त अन्नके ऊपर मक्षियाँ नहीं बैठतीं, यदि बैठ गयीं तो विषसंयुक्त अन्नका स्पर्श होनेके कारण तुरंत ही मर जाती हैं। पार्थिवश्रेष्ठ! विषयुक्त अन्नको देखते ही चकोरकी दृष्टि विरक्त हो जाती है अर्थात् वह अपनी आँखें फेर लेता है, कोकिलका स्वर विकृत हो जाता है, हंसकी गति लड़खड़ाने लगती है, भौंर जोरसे गूँजने लगते हैं, क्रौंच (कुरर) मदमत हो जाता है और मुर्गा जोर-जोरसे बोलने लगता है। राजन्! शुक चें-चें करने लगता है, सारिका वमन करने लगती है, चामीकर भाग खड़ा होता है और कारण्डव मर जाता है। राजन्! वानर मूत्र-त्याग करने लगता है, जीवजीवक ग्लानियुक्त हो जाता है, नेवलेके रोएँ खड़े हो जाते हैं, पृष्ठत् मृग रोने लगता है। राजन्! विषको देखते ही मयूर हर्षित हो जाता है; क्योंकि वह चिरकालसे विषयुक्त अन्नका भोजन करनेवाला है। राजन्! वह विषयुक्त अन्न कहने योग्य नहीं रह जाता, पंद्रह दिनके बासी अन्नकी तरह दीख पड़ता है। उसका रस तथा गन्ध नष्ट हो जाती है तथा ऊपरसे वह चन्द्रिकाओंसे युक्त रहता है। नृपोत्तम! विषके मिलनेसे बना हुआ व्यञ्जन सूख जाता है, द्रव वस्तुओंमें बुल्ले उठने लगते हैं, लवणसहित पदार्थोंमें फेन उठने लगते हैं। अन्नोंसे बना हुआ विषैला भोजन ताप्रवर्णका, दूधवाला नीले रंगका, मदिरा तथा जलयुक्त कोकिलके समान काला, अम्ल अन्नवाला काला, कोदोका कपिल तथा मट्टायुक्त भोजन मधुके समान श्यामल, नीला और पीला हो जाता है॥ १७—२६॥

विषयुक्तघृतका वर्ण जलकी भाँति, विषमिश्रित छाछका कबूतरकी तरह, मधुयुक्तका हरा और तेलमिश्रित विषका

फलानामप्यपक्षानां पाकः क्षिप्रं प्रजायते ।  
 प्रकोपश्चैव पक्वानां माल्यानां म्लानता तथा ॥ २८  
 मृदुता कठिनानां स्यामृदूनां च विपर्ययः ।  
 सूक्ष्माणां रूपदलनं तथा चैवातिरङ्गता ॥ २९  
 श्याममण्डलता चैव वस्त्राणां वै तथैव च ।  
 लौहानां च मणीनां च मलपङ्कोपदिग्धता ॥ ३०  
 अनुलेपनगन्धानां माल्यानां च नृपोत्तम ।  
 विगन्धता च विज्ञेया वर्णानां म्लानता तथा ।  
 पीतावभासता ज्ञेया तथा राजन् जलस्य तु ॥ ३१  
 दन्ता ओष्ठौ त्वचः श्यामास्तनुसत्त्वास्तथैव च ।  
 एवमादीनि चिह्नानि विज्ञेयानि नृपोत्तम ॥ ३२  
 तस्माद् राजा सदा तिष्ठेन् मणिमन्त्रौषधागदैः ।  
 उक्तैः संरक्षितो राजा प्रमादपरिवर्जकः ॥ ३३  
 प्रजातरोर्मूलमिहावनीश-

स्तद्रक्षणाद् राष्ट्रमुपैति वृद्धिम् ।  
 तस्मात् प्रयत्नेन नृपस्य रक्षा  
 सर्वेण कार्या रविवंशचन्द्र ॥ ३४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे राजरक्षा नामैकोनविंशत्यधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥ २१९ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके राजधर्म-प्रकरणमें राजरक्षा नामक दो सौ उन्नीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २१९ ॥

लाल रंग हो जाता है । विषके संसर्गसे न पके हुए फल शीघ्र ही पक जाते हैं और पका हुआ फल विकृत हो जाता है । पुष्प-मालाएँ मलिन हो जाती हैं । कठोर वस्तु कोमल तथा कोमल वस्तु कठोर हो जाती है । सूक्ष्म वस्तुओंका रूप नष्ट हो जाता है और रंग बदल जाता है । वस्त्रोंमें विशेषकर काले धब्बे पड़ जाते हैं । लोहे और मणियोंपर मैल जम जाती है । नृपश्रेष्ठ ! शरीरमें लेपन किये जानेवाले द्रव्यों एवं उपयोगमें आनेवाली पुष्प-मालाओंमें दुर्गम्भि तथा रंगकी मलिनता समझनी चाहिये । राजन् ! उसी प्रकार जलमें भी पीलेपनका आभास आने लगता है । नृपोत्तम ! विषके सेवनसे दाँत, होंठ और चमड़े श्यामल वर्णके हो जाते हैं और शरीरमें क्षीणताका अनुभव होने लगता है—इस प्रकार ये लक्षण जानने चाहिये । इसलिये राजाको सर्वदा मणि, मन्त्र और उपर्युक्त ओषधियोंसे सुरक्षित तथा सावधान रहना चाहिये । सूर्यवंशके चन्द्र ! इस पृथ्वीपर प्रजारूपी वृक्षकी जड़ राजा है, अतः उसीकी रक्षासे राष्ट्रकी वृद्धि होती है । इसलिये सभीको प्रयत्नपूर्वक राजाकी रक्षा करनी चाहिये ॥ २७—३४ ॥

## दो सौ बीसवाँ अध्याय

### राजधर्म एवं सामान्य नीतिका वर्णन

#### मत्स्य उवाच

राजन् पुत्रस्य रक्षा च कर्तव्या पृथिवीक्षिता ।  
 आचार्यश्चात्र कर्तव्यो नित्ययुक्तश्च रक्षिभिः ॥ १  
 धर्मकामार्थशास्त्राणि धनुर्वेदं च शिक्षयेत् ।  
 रथे च कुञ्जे चैनं व्यायामं कारयेत् सदा ॥ २  
 शिल्पानि शिक्षयेच्चैनं नासैर्मिथ्याप्रियं वदेत् ।  
 शरीररक्षाव्याजेन रक्षिणोऽस्य नियोजयेत् ॥ ३  
 न चास्य सङ्गो दातव्यः कुञ्जलुब्धावमानितैः ।  
 तथा च विनयेदेन यथा यौवनगोचरे ॥ ४

मत्स्यभगवान् कहा—राजन् ! राजाको अपने पुत्रकी रक्षा करनी चाहिये । उसकी शिक्षाके लिये पहरेदारोंकी देख-रेखमें एक ऐसे आचार्यकी नियुक्ति करनी चाहिये, जो उसे धर्म, काम एवं अर्थशास्त्र, धनुर्वेद तथा रथ एवं हाथीकी सवारीकी शिक्षा दे और सदा व्यायाम कराये । साथ ही उसे शिल्पकलाएँ भी सिखालाये । उसपर ऐसा प्रभाव पड़े कि वह गुरुजनोंके सम्मुख असत्य एवं अप्रिय बात न बोले । उसके शरीरकी रक्षाके व्याजसे रक्षक नियुक्त कर दे । इसे क्रोधी, लोभी और तिरस्कृत व्यक्तियोंकी संगतिमें नहीं जाने देना चाहिये । उसे इस प्रकार जितेन्द्रिय बनाना चाहिये कि जिससे वह युवावस्था आनेपर

इन्द्रियैर्नापकृष्टेत् सतां मार्गात् सुदुर्गमात्।  
गुणाधानमशक्यं तु यस्य कर्तुं स्वभावतः॥ ५  
बन्धनं तस्य कर्तव्यं गुपदेशो सुखान्वितम्।  
अविनीतं कुमारं हि कुलमाशु विशीर्यते॥ ६  
अधिकारेषु सर्वेषु विनीतं विनियोजयेत्।  
आदौ स्वल्पे ततः पश्चात् क्रमेणाथ महत्स्वपि॥ ७  
मृग्यापानमक्षांश्च वर्जयेत् पृथिवीपतिः।  
एतांस्तु सेवमानास्तु विनष्टाः पृथिवीक्षितः॥ ८  
बहवो नृपशार्दूलं तेषां संख्या न विद्यते।  
वृथाटनं दिवास्वर्जं विशेषेण विवर्जयेत्॥ ९  
वाक्पारुष्यं न कर्तव्यं दण्डपारुष्यमेव च।  
परोक्षनिन्दा च तथा वर्जनीया महीक्षिता॥ १०  
अर्थस्य दूषणं राजा द्विप्रकारं विवर्जयेत्।  
अर्थानां दूषणं चैकं तथार्थेषु च दूषणम्॥ ११  
प्राकाराणां समुच्छेदो दुर्गादीनामसत्क्रिया।  
अर्थानां दूषणं प्रोक्तं विप्रकीर्णत्वमेव च॥ १२  
अदेशकाले यद्वानमपात्रे दानमेव च।  
अर्थेषु दूषणं प्रोक्तमसत्कर्मप्रवर्तनम्॥ १३  
कामः क्रोधो मदो मानो लोभो हर्षस्तथैव च।  
एते वर्ज्याः प्रयत्नेन सादरं पृथिवीक्षिता॥ १४  
एतेषां विजयं कृत्वा कार्यो भृत्यजयस्ततः।  
कृत्वा भृत्यजयं राजा पौरान् जानपदान् जयेत्॥ १५  
कृत्वा च विजयं तेषां शत्रून् बाह्यांस्ततो जयेत्।  
बाह्याश्च विविधा ज्ञेयास्तुल्याभ्यन्तरकृत्रिमाः॥ १६  
गुरवस्ते यथापूर्वं तेषु यत्परो भवेत्।  
पितृपैतामहं मित्रमित्रिं च तथा रिपोः॥ १७  
कृत्रिमं च महाभाग मित्रं त्रिविधमुच्यते।  
तथापि च गुरुः पूर्वं भवेत् तत्रापि चादृतः॥ १८  
स्वाम्यमात्यौ जनपदो दुर्गं दण्डस्तथैव च।  
कोशो मित्रं च धर्मज्ञं सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते॥ १९  
सप्ताङ्गस्यापि राज्यस्य मूलं स्वामी प्रकीर्तिः।  
तन्मूलत्वात् तथाङ्गानां स तु रक्ष्यः प्रयत्नतः॥ २०

इन्द्रियोंद्वारा अत्यन्त दुर्गम सत्पुरुषोंके मार्गसे अपकृष्ट न किया जा सके। जिस राजकुमारमें स्वभाववश गुणाधान करना अशक्य हो उसे गुपस्थानमें सुखपूर्वक अवरुद्ध कर देना चाहिये, क्योंकि उद्दण्ड राजकुमारसे युक्त कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। राजाको सभी अधिकारोंपर सुशिक्षित व्यक्तिको नियुक्त करना चाहिये। प्रथमतः उसे छोटे पदपर नियुक्त करे, तत्पश्चात् क्रमशः अधिक शिक्षितकर ऊँचे पदोंपर भी पहुँचा दे। राजसिंह! राजाको शिकार, मद्यापन तथा घूतक्रीड़ाका परित्याग कर देना चाहिये; क्योंकि पूर्वकालमें इनके सेवनसे बहुत-से राजा नष्ट हो चुके हैं, जिनकी गणना नहीं कही जा सकती। राजाके लिये व्यर्थ धूमना तथा विशेषकर दिनमें शयन करना वर्जित है। राजाको कटुबचन बोलना और कठोर दण्ड देना—ये दोनों कर्म नहीं करना चाहिये। राजाको परोक्षमें किसीकी निन्दा करना उचित नहीं है॥ १—१०॥

राजाको दो प्रकारके अर्थदोषोंसे बचना चाहिये—एक अर्थका दोष और दूसरा अर्थ-सम्बन्धी दोष। अपने दुर्गके परकोटोंका तथा मूलदुर्ग आदिकी उपेक्षा और अस्तव्यस्तता—ये अर्थके दोष कहे गये हैं। उसी प्रकार कुदेश और कुसमयमें दिया गया दान, कुपात्रको दिया गया दान और असत्कर्मका प्रचार—ये अर्थ-सम्बन्धी दोष कहे गये हैं। राजाको आदरसहित काम, क्रोध, मद, मान, लोभ तथा हर्षका प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये। राजाको इनपर विजय प्राप्त करनेके पश्चात् अनुचरोंको जीतना चाहिये। इस प्रकार अनुचरोंको जीतनेके बाद पुरवासियों और देशवासियोंको अपने अधिकारमें करे। उनको जीतनेके पश्चात् बाहरी शत्रुओंको परास्त करे। तुल्य, आभ्यन्तर और कृत्रिम-भेदसे बाह्य शत्रुओंको अनेकों प्रकारका समझना चाहिये। उनमेंसे क्रमशः एक-एकको बढ़कर समझना चाहिये और उनको जीतनेमें यत्नशील रहे। महाभाग! मित्र तीन प्रकारके होते हैं—प्रथम वे हैं जो पिता-पितामह आदिके कालसे मित्रताका व्यवहार करते चले आ रहे हैं। दूसरे वे हैं, जो शत्रुके शत्रु हैं तथा तीसरे वे हैं, जो किन्हीं कारणोंसे पीछे मित्र बनते हैं। इन तीनों मित्रोंमें प्रथम मित्र उत्तम होता है, उसका आदर करना चाहिये। धर्मज्ञ! स्वामी, मन्त्री, राष्ट्र, दुर्ग, सेना, कोश तथा मित्र—ये राज्यके सात अङ्ग कहे गये हैं। इस सप्ताङ्गयुक्त राज्यका भी मूल स्वयं राजा कहा गया है। राज्यका तथा राज्याङ्गोंका मूल होनेके कारण वह प्रयत्नपूर्वक रक्षणीय है॥ ११—२०॥

षडङ्गरक्षा कर्तव्या तथा तेन प्रयत्नतः ।  
 अङ्गेभ्यो यस्तथैकस्य द्रोहमाचरतेऽल्पधीः ॥ २१  
 वधस्तस्य तु कर्तव्यः शीघ्रमेव महीक्षिता ।  
 न राजा मृदुना भाव्यं मृदुर्हि परिभूयते ॥ २२  
 न भाव्यं दारुणेनातितीक्षणादुद्विजते जनः ।  
 काले मृदुर्यो भवति काले भवति दारुणः ॥ २३  
 राजा लोकद्वयापेक्षी तस्य लोकद्वयं भवेत् ।  
 भृत्यैः सह महीपालः परिहासं विवर्जयेत् ॥ २४  
 भृत्याः परिभवन्तीह नृपं हर्षवशं गतम् ।  
 व्यसनानि च सर्वाणि भूपतिः परिवर्जयेत् ॥ २५  
 लोकसंग्रहणार्थाय कृतकव्यसनी भवेत् ।  
 शौण्डीरस्य नरेन्द्रस्य नित्यमुद्रिक्तचेतसः ॥ २६  
 जना विरागमायान्ति सदा दुःसेव्यभावतः ।  
 स्मितपूर्वाभिभाषी स्यात् सर्वस्यैव महीपतिः ॥ २७  
 वध्येष्वपि महाभाग भृकुटिं न समाचरेत् ।  
 भाव्यं धर्मभृतां श्रेष्ठ स्थूललक्ष्येण भूभुजा ॥ २८  
 स्थूललक्ष्यस्य वशगा सर्वा भवति मेदिनी ।  
 अदीर्घसूत्रश्च भवेत् सर्वकर्मसु पार्थिवः ॥ २९  
 दीर्घसूत्रस्य नृपतेः कर्महनिर्धुवं भवेत् ।  
 रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि ॥ ३०  
 अप्रिये चैव कर्तव्ये दीर्घसूत्रः प्रशस्यते ।  
 राजा संवृतमन्त्रेण सदा भाव्यं नृपोत्तम ॥ ३१  
 तस्यासंवृतमन्त्रस्य राज्ञः सर्वापदो ध्रुवम् ।  
 कृतान्येव तु कार्याणि ज्ञायन्ते यस्य भूपतेः ॥ ३२  
 नारब्धानि महाभाग तस्य स्याद् वसुधा वशे ।  
 मन्त्रमूलं सदा राज्यं तस्मान्मन्त्रः सुरक्षितः ॥ ३३  
 कर्तव्यः पृथिवीपालैर्मन्त्रभेदभयात् सदा ।  
 मन्त्रवित्साधितो मन्त्रः सम्पत्तीनां सुखावहः ॥ ३४  
 मन्त्रच्छलेन बहवो विनष्टाः पृथिवीक्षितः ।  
 आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ॥ ३५  
 नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ।  
 न यस्य कुशलैस्तस्य वशे सर्वा वसुंधरा ॥ ३६  
 भवतीह महीभर्तुः सदा पार्थिवनन्दन ।

फिर राजाके द्वारा राज्यके शेष छः अङ्गोंकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा की जानी चाहिये । जो मूर्ख इन छः अङ्गोंमेंसे किसी एकके साथ द्रोह करता है उसे राजाको शीघ्र ही मार डालना चाहिये । राजाको कोमल वृत्तिवाला नहीं होना चाहिये; क्योंकि कोमल वृत्तिवाला राजा पराजयका भागी होता है । साथ ही अधिक कठोर भी नहीं होना चाहिये; क्योंकि अधिक कठोर शासकसे लोग उद्विग्न हो जाते हैं । जो लोकद्वयापेक्षी राजा समयपर मृदु तथा समयपर कठोर हो जाता है, वह दोनों लोकोंपर विजयी हो जाता है । राजाको अपने अनुचरोंके साथ परिहास नहीं करना चाहिये; क्योंकि उस समय आनन्दमें निमग्न हुए राजाका अनुचरण अपमान कर बैठते हैं । राजाको सभी प्रकारके व्यसनोंसे दूर रहना चाहिये, किंतु लोकसंग्रहके लिये उसे कुछ ऊपरसे अच्छी बातोंका व्यसन करना उचित है । गर्वीले एवं नित्य ही उद्धत स्वभाववाले राजासे लोग कठिनतासे अनुकूल होनेके कारण विरक्त हो जाते हैं, अतः राजाको सभीसे मुसकानपूर्वक बातें करनी चाहिये । महाभाग ! यहाँतक कि प्राणदण्डके अपराधीको भी वह भृकुटि न दिखलाये । धार्मिकश्रेष्ठ ! राजाको महान् लक्ष्ययुक्त होना चाहिये; क्योंकि सारी पृथ्वी स्थूललक्ष्य रखनेवाले राजाके अधीन हो जाती है । राजाको सभी कार्योंके निर्वाहमें विलम्ब नहीं करना चाहिये; क्योंकि विलम्ब करनेवाले राजाके कार्य निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं । केवल अनुराग, दर्प, आत्मसम्मान, द्रोह, पापकर्म तथा अप्रिय कार्योंमें दीर्घसूत्री प्रशंसित माना गया है ॥ २१—३० १ ॥

नृपोत्तम ! राजाको सदा अपनी मन्त्रणा गुप्त रखनी चाहिये; क्योंकि प्रकट मन्त्रणावाले राजाको निश्चय ही सभी आपत्तियाँ प्राप्त होती हैं । महाभाग ! जिस राजाके कार्योंको आरम्भके समय नहीं, अपितु पूरा होनेपर ही लोग जान पाते हैं उसके वशमें वसुंधरा हो जाती है । मन्त्र ही सर्वदा राज्यका मूल है, अतः मन्त्रभेदके भयसे राजाओंको उसे सदा सुरक्षित रखना चाहिये । मन्त्रज्ञ मन्त्रीद्वारा दिया गया मन्त्र सभी सम्पत्तियों तथा सुखोंको देनेवाला होता है । मन्त्रके छलसे बहुत-से राजा विनष्ट हो चुके हैं । आकृति, संकेत, गति, चेष्टा, वचन, नेत्र तथा मुखके विकारोंसे अन्तःस्थित मनोभावोंका पता लगता है । राजपुत्र ! जिस राजाके मनका इन उपर्युक्त उपायोंद्वारा कुशल लोग भी पता न लगा सकें, वसुंधरा उसके वशमें सदा बनी रहती है ॥ ३१—३६ १ ॥

नैकस्तु मन्त्रयेन्मन्त्रं राजा न बहुभिः सह ॥ ३७  
 नारोहेद् विषमां नावमपरीक्षितनाविकाम् ।  
 ये चास्य भूमिजयिनो भवेयुः परिपन्थिनः ॥ ३८  
 तानानयेद् वशे सर्वान् सामादिभिरुपक्रमैः ।  
 यथा न स्यात् कृशीभावः प्रजानामनवेक्षया ॥ ३९  
 तथा राजा प्रकर्तव्यं स्वराष्ट्रं परिरक्षता ।  
 मोहाद् राजा स्वराष्ट्रं यः कर्शयत्यनवेक्षया ॥ ४०  
 सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः ।  
 भृतो वत्सो जातबलः कर्मयोगयो यथा भवेत् ॥ ४१  
 तथा राष्ट्रं महाभाग भृतं कर्मसहं भवेत् ।  
 यो राष्ट्रमनुगृह्णाति राज्यं स परिरक्षति ॥ ४२  
 संजातमुपजीवेत् तु विन्दते स महत्फलम् ।  
 राष्ट्राद्विरण्यं धान्यं च महीं राजा सुरक्षिताम् ॥ ४३  
 महता तु प्रयत्नेन स्वराष्ट्रस्य च रक्षिता ।  
 नित्यं स्वेभ्यः परेभ्यश्च यथा माता यथा पिता ॥ ४४  
 गोपितानि सदा कुर्यात् संयतानीन्द्रियाणि च ।  
 अजस्त्वमुपयोक्तव्यं फलं तेभ्यस्तथैव च ॥ ४५  
 सर्वं कर्मेदमायतं विधाने दैवमानुषे ।  
 तयोर्देवमचिन्त्यं च पौरुषे विद्यते क्रिया ॥ ४६  
 एवं महीं पालयतोऽस्य भर्तु-  
 लोकानुरागः परमो भवेत् ।  
 लोकानुरागप्रभवा च लक्ष्मी-  
 लक्ष्मीवतश्चापि परा च कीर्तिः ॥ ४७

राजाको कभी केवल एक व्यक्तिके या एक ही साथ अनेक लोगोंके साथ मन्त्रणा नहीं करनी चाहिये । राजा जिसकी परीक्षा न की गयी हो ऐसी विषम नौकापर सवार न हो । राजाके जो भूमिविजेता शत्रु हों, उन सबको सामादि उपायोंद्वारा वशमें लाना चाहिये । अपने राष्ट्रकी रक्षामें तत्पर राजाका यह कर्तव्य है कि वह उपेक्षाके कारण प्रजाओंको दुर्बल न होने दे । जो अज्ञानवश असावधानीसे अपने राष्ट्रको दुर्बल कर देता है, वह शीघ्र ही भाई-बन्धुओंसहित राज्य एवं जीवनसे छुत हो जाता है । महाभाग ! जिस प्रकार पालतू बछड़ा बलवान् होनेपर कार्य करनेमें समर्थ होता है उसी तरह पालन-पोषणकर समृद्ध किया हुआ राष्ट्र भी भविष्यमें कार्यक्षम हो जाता है । जो अपने राष्ट्रके ऊपर अनुग्रहकी दृष्टि रखता है, वस्तुतः वही राज्यकी रक्षा कर सकता है । जो उत्पन्न हुई प्रजाओंकी रक्षा करता है, वह महान् फलका भागी होता है । राजा राष्ट्रसे सुवर्ण, अन्न और सुरक्षित पृथ्वी प्राप्त करता है । माता और पिताके समान अपने राष्ट्रकी रक्षामें तत्पर रहनेवाला नृपति विशेष प्रयत्नसे नित्यप्रति स्वकीय एवं परकीय दोनों ओरसे होनेवाली बाधाओंसे अपने राष्ट्रकी रक्षा करे । अपनी इन्द्रियोंको संयत तथा गुप रखे और सर्वदा उनका प्रयोग गोपनीय रूपसे करे, तभी उनसे उत्तम फल प्राप्त होता है । जीवनके सभी कार्य दैव और पौरुष—इन दोनोंके अधिकारमें रहते हैं । उन दोनोंमें दैव तो अचिन्त्य है, किंतु पौरुषमें क्रिया विद्यमान रहती है । इस प्रकार पृथ्वीका पालन करनेवाले राजाके प्रति प्रजाका परम अनुराग हो जाता है । प्रजाके अनुरागसे राजाको लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है तथा लक्ष्मीवान् राजाको ही परम यशकी प्राप्ति होती है ॥ ३७—४७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मानुकीर्तने विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२० ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें राजधर्मकीर्तन नामक दो सौ बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२० ॥

## दो सौ इक्कीसवाँ अध्याय

### दैव और पुरुषार्थका वर्णन

मनुरुवाच

दैवे पुरुषकारे च किं ज्यायस्तद् ब्रवीहि मे ।  
अत्र मे संशयो देव छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥ १

मत्स्य उवाच

स्वमेव कर्म दैवाख्यं विद्धि देहान्तरार्जितम् ।  
तस्मात् पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥ २  
प्रतिकूलं तथा दैवं पौरुषेण विहन्यते ।  
मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यमुत्थानशालिनाम् ॥ ३  
येषां पूर्वकृतं कर्म सात्त्विकं मनुजोत्तम ।  
पौरुषेण विना तेषां केषांचिद् दृश्यते फलम् ॥ ४  
कर्मणा प्राप्यते लोके राजसस्य तथा फलम् ।  
कृच्छ्रेण कर्मणा विद्धि तामसस्य तथा फलम् ॥ ५  
पौरुषेणाप्यते राजन् प्रार्थितव्यं फलं नरैः ।  
दैवमेव विजानन्ति नराः पौरुषवर्जिताः ॥ ६  
तस्मात् त्रिकालं संयुक्तं दैवं तु सफलं भवेत् ।  
पौरुषं दैवसम्पत्या काले फलति पार्थिव ॥ ७  
दैवं पुरुषकारश्च कालश्च पुरुषोत्तम ।  
त्रयमेतन्मनुष्यस्य पिण्डितं स्यात् फलावहम् ॥ ८  
कृष्णवृष्टिसमायोगाद् दृश्यन्ते फलसिद्धयः ।  
तास्तु काले प्रदृश्यन्ते नैवाकाले कथञ्चन ॥ ९  
तस्मात् सदैव कर्तव्यं सर्धर्मं पौरुषं नरैः ।  
विपत्तावपि यस्येह परलोके ध्रुवं फलम् ॥ १०  
नालसाः प्राणुवन्त्यर्थात्र च दैवपरायणाः ।  
तस्मात् सर्वप्रयत्ने पौरुषे यत्नमाचरेत् ॥ ११  
त्यक्त्वाऽलसान् दैवपरान् मनुष्या-  
नुत्थानयुक्तान् पुरुषान् हि लक्ष्मीः ।  
अन्विष्य यत्नादवृणुयात्रपेन्द्र  
तस्मात् सदोत्थानवता हि भाव्यम् ॥ १२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे दैवपुरुषकारवर्णनं नामैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२१ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें दैव-पुरुषका वर्णन नामक दो सौ इक्कीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२१ ॥

मनुने पूछा—दैव ! भाग्य और पुरुषार्थ—इन दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है ? यह मुझे बतलाइये । इस विषयमें मुझे संदेह है, अतः आप उसका सम्पूर्णरूपसे निवारण कीजिये ॥ १ ॥

**मत्स्यभगवान्**ने कहा—राजन् ! अन्य जन्ममें अपने द्वारा किया गया पुरुषार्थ (कर्म) ही दैव कहा जाता है, इसी कारण इन दोनोंमें मनीषियोंने पौरुषको ही श्रेष्ठ माना है; क्योंकि माझलिक आचरण करनेवाले एवं नित्य-प्रति अभ्युदयशील पुरुषोंका प्रतिकूल युद्ध भी पुरुषार्थद्वारा नष्ट हो जाता है । मानवश्रेष्ठ ! जिन्होंने पूर्वजन्ममें सात्त्विक कर्म किया है, उन्हींमें किन्हीं-किन्हींको पुरुषार्थके बिना भी अच्छे फलकी प्राप्ति देखी जाती है । लोकमें रजोगुणी पुरुषको कर्म करनेसे फलकी प्राप्ति होती है और तमोगुणी पुरुषको कठिन कर्म करनेसे फलकी प्राप्ति जाननी चाहिये ॥ २—५ ॥

राजन् ! मनुष्योंको पुरुषार्थद्वारा अभिलिष्ट पदार्थकी प्राप्ति होती है, किंतु जो लोग पुरुषार्थसे हीन हैं, वे दैवको ही सब कुछ मानते हैं । अतः तीनों कालोंमें पुरुषार्थयुक्त दैव ही सफल होता है । राजन् ! भाग्ययुक्त मनुष्यका पुरुषार्थ समयपर फल देता है । पुरुषोत्तम ! दैव, पुरुषार्थ और काल—ये तीनों संयुक्त होकर मनुष्यको फल देनेवाले होते हैं । कृष्ण और वृष्टिका संयोग होनेसे फलकी सिद्धियाँ देखी जाती हैं, किंतु वे भी समय आनेपर ही दिखायी पड़ती हैं, बिना समयके किसी प्रकार भी नहीं । इसलिये मनुष्यको सर्वदा धर्मयुक्त पुरुषार्थ करना चाहिये । उसके इस लोकमें आपत्तियोंमें पड़ जानेपर भी परलोकमें उसे निश्चय ही फल प्राप्त होगा । आलसी और भाग्यपर निर्भर रहनेवाले पुरुषोंको अर्थोंकी प्राप्ति नहीं होती । इसलिये सभी प्रयत्नोंसे पुरुषार्थ करनेमें तत्पर रहना चाहिये । राजेन्द्र ! लक्ष्मी भाग्यपर भरोसा रखनेवाले एवं आलसी पुरुषोंको छोड़कर पुरुषार्थ करनेवाले पुरुषोंको यत्नपूर्वक ढूँढ़कर वरण करती है, इसलिये सर्वदा पुरुषार्थशील होना चाहिये ॥ ६—१२ ॥

## दो सौ बाईसवाँ अध्याय

### साम-नीतिका वर्णन

मनुरुक्ताच

उपायांस्त्वं समाचक्ष्व सामपूर्वान् महाद्युते।  
लक्षणं च तथा तेषां प्रयोगं च सुरोत्तम् ॥ १  
मत्स्य उवाच  
साम भेदस्तथा दानं दण्डश्च मनुजेश्वर।  
उपेक्षा च तथा माया इन्द्रजालं च पार्थिव ॥ २  
प्रयोगाः कथिताः सप्त तन्मे निगदतः शृणु।  
द्विविधं कथितं साम तथ्यं चातथ्यमेव च ॥ ३  
तत्राप्यतथ्यं साधूनामाक्रोशायैव जायते।  
तत्र साधुः प्रयत्नेन सामसाध्यो नरोत्तम् ॥ ४  
महाकुलीना ऋज्वो धर्मनित्या जितेन्द्रियाः।  
सामसाध्या न चातथ्यं तेषु साम प्रयोजयेत् ॥ ५  
तथ्यं साम च कर्तव्यं कुलशीलादिवर्णनम्।  
तथा तदुपचाराणां कृतानां चैव वर्णनम् ॥ ६  
अनवैव तथा युक्त्या कृतज्ञाख्यापनं स्वकम्।  
एवं साम्ना च कर्तव्या वशगा धर्मतत्पराः ॥ ७  
साम्ना यद्यपि रक्षांसि गृह्णन्तीति परा श्रुतिः।  
तथाप्येतदसाधूनां प्रयुक्तं नोपकारकम् ॥ ८  
अतिशङ्कितमित्येवं पुरुषं सामवादिनम्।  
असाधवो विजानन्ति तस्मात् तेषु वर्जयेत् ॥ ९  
ये शुद्धवंशा ऋज्वः प्रणीता  
धर्मे स्थिताः सत्यपरा विनीताः।  
ते सामसाध्याः पुरुषाः प्रदिष्टा  
मानोन्नता ये सततं च राजन् ॥ १०

मनुने पूछा—महान् द्युतिशील भगवन्! अब आप साम आदि उपायोंका वर्णन कीजिये। देवश्रेष्ठ! साथ ही उनका लक्षण और प्रयोग भी बतलाइये ॥ १ ॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—मनुजेश्वर! (राजनीतिमें) साम (स्तुति-प्रशंसा), भेद, दान, दण्ड, उपेक्षा, माया तथा इन्द्रजाल—ये सात प्रयोग बतलाये गये हैं। राजन्! उन्हें मैं बतला रहा हूँ सुनिये! साम तथ्य और अतथ्यभेदसे दो प्रकारका कहा गया है। उनमें भी अतथ्य (झूठी प्रशंसा) साधु पुरुषोंकी अप्रसन्नताका ही कारण बन जाती है। नरोत्तम! इसलिये सज्जन व्यक्तिको प्रयत्नपूर्वक तथ्य साम (सच्ची प्रशंसा)-से वशमें करना चाहिये। जो उन्नत कुलमें उत्पन्न, सरलप्रकृति, धर्मपरायण और जितेन्द्रिय हैं, वे (तथ्य) सामसे ही साध्य होते हैं, अतः उनके प्रति अतथ्य सामका प्रयोग नहीं करना चाहिये। उनके प्रति तथ्य सामका प्रयोग, उनके कुल और शील-स्वभावका वर्णन, किये गये उपकारोंकी चर्चा तथा अपनी कृतज्ञताका कथन करना चाहिये। इसी युक्ति तथा इस प्रकारके सामसे धर्ममें तत्पर रहनेवालोंको अपने वशमें करना चाहिये। यद्यपि राक्षस भी साम-नीतिके द्वारा वशमें किये जाते हैं—ऐसी पराश्रुति है, तथापि असत्पुरुषोंके प्रति इसका प्रयोग उपकारी नहीं होता। दुर्जन पुरुष सामकी बातें करनेवालेको अतिशय डरा हुआ समझते हैं, इसलिये उनके प्रति इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। राजन्! जो पुरुष शुद्ध वंशमें उत्पन्न, सरलप्रकृतिवाले, विनप्र, धर्मिष्ठ, सत्यवादी, विनयी एवं सम्मानी हैं, वे ही निरन्तर सामद्वारा साध्य बतलाये गये हैं ॥ २—१० ॥

इति श्रीमात्ये महापुराणे राजधर्मे सामबोधो नाम द्वाविंशत्याधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके राजधर्म-प्रकरणमें सामबोध नामक दो सौ बाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२ ॥

## दो सौ तेर्झसवाँ अध्याय

नीति चतुष्टयीके अन्तर्गत भेद-नीतिका वर्णन

मत्स्य उवाच

परस्परं तु ये दुष्टाः कुद्धा भीतावमानिताः ।  
तेषां भेदं प्रयुज्जीत भेदसाध्या हि ते मताः ॥ १  
ये तु येनैव दोषेण परस्मान्नापि बिभ्यति ।  
ते तु तद्वोषपातेन भेदनीया भृशं ततः ॥ २  
आत्मीयां दर्शयेदाशां परस्माद् दर्शयेद् भयम् ।  
एवं हि भेदयेद् भिन्नान् यथावद् वशमानयेत् ॥ ३  
संहता हि विना भेदं शक्रेणापि सुदुःसहा ।  
भेदमेव प्रशंसन्ति तस्मान्नयविशारदाः ॥ ४  
स्वमुखेनाश्रयेद् भेदं भेदं परमुखेन च ।  
परीक्ष्य साधु मन्येत भेदं परमुखाच्छुतम् ॥ ५  
सद्यः स्वकार्यमुद्दिश्य कुशलैर्ये हि भेदिताः ।  
भेदितास्ते विनिर्दिष्टा नैव राज्ञाऽर्थवादिभिः ॥ ६  
अन्तःकोपो बहिःकोपो यत्र स्यातां महीक्षिताम् ।  
अन्तःकोपो महांस्तत्र नाशकः पृथिवीक्षिताम् ॥ ७  
सामन्तकोपो बाह्यस्तु कोपः प्रोक्तो महीभृतः ।  
महिषीयुवराजाभ्यां तथा सेनापतेर्नृप ॥ ८  
अमात्यमन्त्रिणां चैव राजपुत्रे तथैव च ।  
अन्तःकोपो विनिर्दिष्टो दासुणः पृथिवीक्षिताम् ॥ ९  
बाह्यकोपे समुत्पन्ने सुमहत्यपि पार्थिवः ।  
शुद्धान्तस्तु महाभाग शीघ्रमेव जयी भवेत् ॥ १०  
अपि शक्रसमो राजा अन्तःकोपेन नश्यति ।  
सोऽन्तःकोपः प्रयत्नेन तस्माद् रक्ष्यो महीभृता ॥ ११  
परतः कोपमुत्पाद्य भेदेन विजिगीषुणा ।  
ज्ञातीनां भेदनं कार्यं परेषां विजिगीषुणा ॥ १२

मत्स्यभगवान् कहा—राजन्! जो परस्पर वैर रखनेवाले, क्रोधी, भयभीत तथा अपमानित हैं, उनके प्रति भेद-नीतिका प्रयोग करना चाहिये; क्योंकि वे भेदद्वारा साध्य माने गये हैं। जो लोग जिस दोषके कारण दूसरेसे भयभीत नहीं होते उन्हें उसी दोषके द्वारा भेदन करना चाहिये। उनके प्रति अपनी ओरसे आशा प्रकट करे और दूसरेसे भयकी आशङ्का दिखलाये। इस प्रकार उन्हें फोड़ ले तथा फूट जानेपर उन्हें अपने वशमें कर ले। संगठित लोग भेद-नीतिके बिना इन्द्रद्वारा भी दुःसाध्य होते हैं। इसीलिये नीतिज्ञलोग भेद-नीतिकी ही प्रशंसा करते हैं। इस नीतिको अपने मुखसे तथा दूसरेके मुखसे भेद्य व्यक्तिसे कहे या कहलाये, परंतु अपने विषयमें दूसरेके मुखसे सुनी हुई भेद-नीतिको परीक्षा करके ठीक मानना चाहिये। अपने कार्यके उद्देश्यसे सुनिपुण नीतिज्ञोंद्वारा जो तुरंत भेदित किये जाते हैं, वे ही सच्चे अर्थमें भेदित कहे जाते हैं, अर्थवादियों एवं राजाद्वारा किये गये नहीं। जहाँ राजाओंके सम्मुख आन्तरिक (दुग्कि अन्तर्गत) कोप और बाहरी कोप—दोनों उपस्थित हों, वहाँ आन्तरिक कोप ही महान् है; क्योंकि वह राजाओंके लिये विनाशकारी होता है ॥ १—७ ॥

छोटे राजाओंका क्रोध राजाके लिये बाह्य क्रोध कहा गया है तथा रानी, युवराज, सेनापति, अमात्य, मन्त्री और राजकुमारके द्वारा किया गया क्रोध आन्तरिक कोप कहा गया है। इन सबोंका कोप राजाओंके लिये भयानक बतलाया गया है। महाभाग! अत्यन्त भीषण बाह्य कोपके उत्पन्न होनेपर भी यदि राजाका अन्तःपुर (दुर्गस्थ महारानी, युवराज, मन्त्री आदि प्रकृति) शुद्ध एवं अनुकूल है तो वह शीघ्र ही विजय-लाभ करता है। यदि राजा इन्द्रके समान हो तो भी वह अन्तः (दुर्गस्थ रानी, युवराज, मन्त्री आदिके) कोपसे नष्ट हो जाता है। इसलिये राजाको प्रयत्नपूर्वक उस आन्तरिक कोपकी रक्षा करनी चाहिये। शत्रुओंको जीतनेकी इच्छावाले राजाको चाहिये कि दूसरेसे भेद-नीतिद्वारा क्रोध पैदा कराकर

रक्ष्यश्वैव प्रयत्नेन ज्ञातिभेदस्तथात्मनः ।  
ज्ञातयः परितप्यन्ते सततं परितापिताः ॥ १३  
तथापि तेषां कर्तव्यं सुगम्भीरेण चेतसा ।  
ग्रहणं दानमानाभ्यां भेदस्तेभ्यो भयंकरः ॥ १४  
न ज्ञातिमनुगृह्णन्ति न ज्ञातिं विश्वसन्ति च ।  
ज्ञातिभिर्मेदनीयास्तु रिपवस्तेन पार्थिवैः ॥ १५  
भिन्ना हि शक्या रिपवः प्रभूताः  
स्वल्पेन सैन्येन निहन्तुमाजौ ।  
सुसंहतानां हि तदस्तु भेदः  
कार्यो रिपूणां नयशास्त्रविद्धिः ॥ १६

इति श्रीमात्ये महापुराणे राजधर्मे भेदप्रशंसा नाम त्रयोविंशत्याधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२३ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके राजधर्म-प्रकरणमें भेद-प्रशंसा नामक दो सौ तेर्इसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२३ ॥

उसकी जातिमें भेद उत्पन्न कर दे और प्रयत्नपूर्वक अपने जाति-भेदकी रक्षा करे। यद्यपि संतस भाई-बन्धु राजाकी उन्नति देखकर जलते रहते हैं, तथापि राजाको दान और सम्मानद्वारा उनको मिलाये रखना चाहिये; क्योंकि जातिगत भेद बड़ा भयंकर होता है। जातिवालोंपर प्रायः लोग अनुग्रहका भाव नहीं रखते और न उनका विश्वास ही करते हैं, इसलिये राजाओंको चाहिये कि जातिमें फूट डालकर शत्रुको उनसे अलग कर दें। इस भेद-नीतिद्वारा भिन्न किये गये शत्रुओंके विशाल समूहको भी संग्रामभूमिमें थोड़ी-सी सुसंगठित सेनासे ही नष्ट किया जा सकता है, अतएव नीतिकुशल लोगोंको सुसंगठित शत्रुओंके प्रति भी भेदनीतिका ही प्रयोग करना चाहिये ॥८—१६ ॥

## दो सौ चौबीसवाँ अध्याय

### दान-नीतिकी प्रशंसा

#### मत्स्य उवाच

सर्वेषामप्युपायानां दानं श्रेष्ठतमं मतम् ।  
सुदत्तेनेह भवति दानेनोभयलोकजित् ॥ १  
न सोऽस्ति राजन् दानेन वशगो यो न जायते ।  
दानेन वशगा देवा भवन्तीह सदा नृणाम् ॥ २  
दानमेवोपजीवन्ति प्रजाः सर्वा नृपोत्तम ।  
प्रियो हि दानवाँल्लोके सर्वस्यैवोपजायते ॥ ३  
दानवानचिरेणैव तथा राजा परान् जयेत् ।  
दानवानेव शक्नोति संहतान् भेदितुं परान् ॥ ४  
यद्यप्यलुब्धगम्भीराः पुरुषाः सागरोपमाः ।  
न गृह्णन्ति तथाप्येते जायन्ते पक्षपातिनः ॥ ५  
अन्यत्रापि कृतं दानं करोत्यन्यान् यथा वशे ।  
उपायेभ्यः प्रशंसन्ति दानं श्रेष्ठतमं जनाः ॥ ६

मत्स्यभगवान् ने कहा—दान सभी उपायोंमें सर्वश्रेष्ठ है। प्रचुर दान देनेसे मनुष्य दोनों लोकोंको जीत लेता है। राजन्! ऐसा कोई नहीं है जो दानद्वारा वशमें न किया जा सके। दानसे देवतालोग भी सदाके लिये मनुष्योंके वशमें हो जाते हैं। नृपोत्तम! सारी प्रजाएँ दानके बलसे ही पालित होती हैं। दानी मनुष्य संसारमें सभीका प्रिय हो जाता है। दानशील राजा शीघ्र ही शत्रुओंको जीत लेता है। दानशील ही संगठित शत्रुओंका भेदन करनेमें समर्थ हो सकता है। यद्यपि निर्लोभ तथा समुद्रके समान गम्भीर स्वभाववाले मनुष्य स्वयं दानको अझीकार नहीं करते, तथापि वे (भी दानी व्यक्तिके) पक्षपाती हो जाते हैं। अन्यत्र किया गया दान भी अन्य लोगोंको अपने वशमें कर लेता है, इसलिये लोग सभी उपायोंमें श्रेष्ठतम दानकी प्रशंसा करते हैं।

दानं श्रेयस्करं पुंसां दानं श्रेष्ठतमं परम्।  
दानवानेव लोकेषु पुत्रत्वे धियते सदा ॥ ७  
न केवलं दानपरा जयन्ति  
भूर्लोकमेकं पुरुषप्रवीराः।  
जयन्ति ते राजसुरेन्द्रलोकं  
सुदुर्जयं यो विबुधाधिवासः ॥ ८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मदानप्रशंसा नाम चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२४ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके राजधर्म-प्रकरणमें दान-प्रशंसा नामक दो सौ चौबीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२४ ॥

दान पुरुषोंका कल्याण करनेवाला तथा परम श्रेष्ठ है। लोकमें दानशील व्यक्तिकी सर्वदा पुत्रकी भाँति प्रतिष्ठा होती है। दानपरायण पुरुषश्रेष्ठ केवल एक भूलोकको ही अपने वशमें नहीं करते, प्रत्युत वे अत्यन्त दुर्जय देवराज इन्द्रके लोकको भी, जो देवताओंका निवासस्थान है, जीत लेते हैं ॥ १—८ ॥

## दो सौ पचीसवाँ अध्याय

### दण्डनीतिका वर्णन

#### मत्स्य उवाच

न शक्या ये वशे कर्तुमुपायत्रितयेन तु।  
दण्डेन तान् वशीकुर्याद् दण्डो हि वशकृत्वाणाम् ॥ १  
सम्यक् प्रणयनं तस्य तथा कार्यं महीक्षिता।  
धर्मशास्त्रानुसारेण सुसहायेन धीमता ॥ २  
तस्य सम्यक् प्रणयनं यथा कार्यं महीक्षिता।  
वानप्रस्थांश्च धर्मज्ञान् निर्ममान् निष्परिग्रहान् ॥ ३  
स्वदेशो परदेशो वा धर्मशास्त्रविशारदान्।  
समीक्ष्य प्रणयेद् दण्डं सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम् ॥ ४  
आश्रमी यदि वा वर्णी पूज्यो वाथ गुरुर्महान्।  
नादण्डयो नाम राज्ञोऽस्ति यःस्वधर्मेण तिष्ठति ॥ ५  
अदण्डग्नान् दण्डयन् राजा दण्डयांश्चैवाप्यदण्डयन्।  
इह राज्यात् परिभृष्टो नरकं च प्रपद्यते ॥ ६  
तस्माद् राजा विनीतेन धर्मशास्त्रानुसारतः।  
दण्डप्रणयनं कार्यं लोकानुग्रहकाम्यया ॥ ७  
यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्वरति पापहा।  
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत् साधु पश्यति ॥ ८  
बालवृद्धातुर्यतिद्विजस्त्रीविधवा यतः।  
मात्स्यन्यायेन भक्ष्येरन् यदि दण्डं न पातयेत् ॥ ९  
देवदैत्योरगगणाः सर्वे भूतपतत्रिणः।  
उत्क्रामयेयुर्मर्यादां यदि दण्डं न पातयेत् ॥ १०

मत्स्यभगवान् ने कहा—राजन्! जो (पूर्वोक्त सामादि) तीनों उपायोंके द्वारा वशमें नहीं किये जा सकते, उन्हें दण्डनीतिके द्वारा वशमें करें; क्योंकि दण्ड मनुष्योंको निश्चयरूपसे वशमें करनेवाला है। बुद्धिमान् राजाको सम्यक्-रूपसे उस दण्डनीतिका प्रयोग धर्मशास्त्रके अनुसार पुरोहित आदिकी सहायतासे करना चाहिये। उस दण्डनीतिका सम्यक् प्रयोग जिस प्रकार करना चाहिये, उसे सुनिये। राजाको अपने देशमें अथवा पराये देशमें वानप्रस्थाश्रमी, धर्मशील, ममतारहित, परिग्रहीन और धर्मशास्त्रप्रवीण विद्वान् पुरुषोंकी परिषद्द्वारा भलीभाँति विचार कर दण्डनीतिका प्रयोग करना चाहिये; क्योंकि सब कुछ दण्डपर ही प्रतिष्ठित है। सभी आश्रमधर्मके व्यक्ति, ब्रह्मचारी, पूज्य, गुरु, महापुरुष तथा अपने धर्ममें स्थित रहनेवाला कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है, जो राजाके द्वारा दण्डनीय न हो; किंतु अदण्डनीय पुरुषोंको दण्ड देने तथा दण्डनीय पुरुषोंको दण्ड न देनेसे राजा इस लोकमें राज्यसे च्युत हो जाता है और मरनेपर नरकमें पड़ता है। इसलिये विनयशील राजाको लोकानुग्रहकी कामनासे धर्मशास्त्रके अनुसार ही दण्डनीतिका प्रयोग करना चाहिये। जिस राज्यमें श्यामवर्ण, लाल नेत्रवाला और पापनाशक दण्ड विचरण करता है तथा राजा ठीक-ठीक निर्णय करनेवाला होता है वहाँ प्रजाएँ कष्ट नहीं झेलतीं। यदि राज्यमें दण्डनीतिकी व्यवस्था न रखी जाय तो बालक, वृद्ध, आतुर, संन्यासी, ब्राह्मण, स्त्री और विधवा—ये सभी मात्स्यन्यायके अनुसार आपसमें एक-दूसरेको खा जायें। यदि राजा दण्डकी व्यवस्था न करे तो सभी देवता, दैत्य, सर्पगण, प्राणी तथा पक्षी मर्यादाका उल्लङ्घन कर जायेंगे ॥ १—१० ॥

एष ब्रह्माभिशापेषु सर्वप्रहरणेषु च।  
सर्वविक्रमकोपेषु व्यवसाये च तिष्ठति ॥ ११  
पूज्यन्ते दण्डनो देवैर्न पूज्यन्ते त्वदण्डनः।  
न ब्रह्माणं विधातारं न पूषार्यमणावपि ॥ १२  
यजन्ते मानवाः केचित् प्रशान्ताः सर्वकर्मसु।  
रुद्रमग्निं च शक्रं च सूर्याचन्द्रमसौ तथा ॥ १३  
विष्णुं देवगणांश्चान्यान् दण्डनः पूजयन्ति च।  
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ॥ १४  
दण्डः सुमेषु जागर्ति दण्डं धर्म विदुर्बुधाः।  
राजदण्डभयादेव पापाः पापं न कुर्वते ॥ १५  
यमदण्डभयादेके परस्परभयादपि।  
एवं सांसिद्धिके लोके सर्व दण्डे प्रतिष्ठितम् ॥ १६  
अन्थे तमसि मज्जेयुर्यदि दण्डं न पातयेत्।  
यस्माद् दण्डो दमयति दुर्मदान् दण्डयत्यपि।  
दमनाद् दण्डनाच्चैव तस्माद् दण्डं विदुर्बुधाः ॥ १७  
दण्डस्य भीतैस्त्रिदशैः समेतै-

भागो धृतः शूलधरस्य यज्ञे।

दत्तं कुमारे ध्वजिनीपतित्वं

वरं शिशूनां च भयाद् बलस्थम् ॥ १८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे दण्डप्रशंसा नाम पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२५ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके राजधर्म-प्रकरणमें दण्डप्रशंसा नामक दो सौ पचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२५ ॥

यह दण्ड ब्राह्मणके शाप, सभीके अस्त्र-शस्त्र, सभी प्रकारके पराक्रमपूर्वक क्रोधसे किये गये क्रियाकलाप और व्यवसायमें स्थित रहता है। दण्ड देनेवाले व्यक्ति देवताओंद्वारा पूज्य हैं, किंतु दण्ड न देनेवालोंकी पूजा कहीं भी नहीं होती। ब्रह्मा, पूषा और अर्यमा सभी कार्योंमें शान्त रहते हैं, इसलिये कोई भी मनुष्य उनकी पूजा नहीं करता। साथ ही दण्ड देनेवाले रुद्र, अग्नि, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु एवं अन्य देवगणोंकी सभी लोग पूजा करते हैं। दण्ड सभी प्रजाओंपर शासन करता है तथा दण्ड ही सबकी रक्षा करता है। दण्ड सभीके सो जानेपर भी जागता रहता है, अतएव बुद्धिमान् लोग दण्डको धर्म मानते हैं। कुछ पापी राजदण्डके भयसे, कुछ यमराजके दण्डके भयसे और कतिपय पारस्परिक भयसे भी पापकर्म नहीं करते। इस प्रकार इस प्राकृतिक जगत्‌में सभी कुछ दण्डपर ही प्रतिष्ठित हैं। यदि दण्ड न दिया जाय तो प्रजा घोर अंधकारमें ढूब जाय। चूँकि दण्ड दमन करता है और दुर्मदोंको दण्ड भी देता है, इसलिये दमन करने तथा दण्ड देनेके कारण बुद्धिमान् लोग उसे दण्ड मानते हैं। दण्डके भयसे डरे हुए समस्त देवताओंने यज्ञमें शिवजीका भाग निश्चित किया है और भयके कारण ही स्वामी कार्तिकेयको शैशवावस्थामें ही सारी देवसेनाका सेनापतित्व और वरदान प्रदान किया गया है ॥

## दो सौ छब्बीसवाँ अध्याय

### सामान्य राजनीतिका निरूपण

मत्स्य उवाच

दण्डप्रणयनार्थाय राजा सृष्टः स्वयम्भुवा।  
देवभागानुपादाय सर्वभूतादिगुप्तये ॥ १  
तेजसा यदमुं कश्चिन्नैव शक्नोति वीक्षितुम्।  
ततो भवति लोकेषु राजा भास्करवत्प्रभुः ॥ २

मत्स्यभगवान् कहा—राजन्! ब्रह्माने समस्त प्राणियोंकी रक्षाके निमित्त दण्डका प्रयोग करनेके लिये देवताओंके अंशोंको लेकर राजाकी सृष्टि की है। चूँकि तेजसे देदीप्यमान होनेके कारण कोई भी उसकी ओर देख नहीं सकता, इसीलिये राजा लोकमें सूर्यके समान

यदास्य दर्शने लोकः प्रसादमुपगच्छति ।  
नयनानन्दकारित्वात् तदा भवति चन्द्रमाः ॥ ३  
यथा यमः प्रियद्वेष्ये प्राप्ते काले प्रयच्छति ।  
तथा राजा विधातव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥ ४  
वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एव प्रदृश्यते ।  
तथा पापान् निगृहीयाद् व्रतमेतद्धि वारुणम् ॥ ५  
परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्ट्वा मानवः ।  
तथा प्रकृतयो यस्मिन् स चन्द्रप्रतिमो नृपः ॥ ६  
प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात् पापकर्मसु ।  
दुष्टसामन्तहिंसेषु राजाग्रेयव्रते स्थितः ॥ ७  
यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते स्वयम् ।  
तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ॥ ८  
इन्द्रस्याकस्य वातस्य यमस्य वरुणस्य च ।  
चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोव्रतं नृपश्चरेत् ॥ ९  
वार्षिकांश्चतुरो मासान् यथेन्द्रोऽप्यभिवर्षति ।  
तथाभिवर्षेत् स्वं राज्यं काममिन्द्रव्रतं स्मृतम् ॥ १०  
अष्टौ मासान् यथाऽऽदित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः ।  
तथा हरेत् करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत् ॥ ११  
प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः ।  
तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥ १२

प्रभावशाली होता है। जिस समय इसे देखनेसे लोग हर्षको प्राप्त होते हैं, उस समय वह नेत्रोंके लिये आनन्दकारी होनेके कारण चन्द्रमाके समान हो जाता है। जिस प्रकार यमराज समय आनेपर शत्रु-मिति—सबको दण्ड देते हैं, उसी तरह राजाको प्रजाके साथ व्यवहार करना चाहिये, यह यम-व्रत है। जिस तरह वरुणद्वारा पाशसे बँधे हुए लोग दिखायी पड़ते हैं; उसी प्रकार पापाचरण करनेवालोंको पाशबद्ध करना चाहिये, यह वरुण-व्रत है। जैसे मनुष्य पूर्ण चन्द्रको देखकर प्रसन्न होता है, उसी प्रकार जिसे देखकर प्रजा प्रसन्न होती है वह राजा चन्द्रमाके समान है ॥ १—६ ॥

अग्नि-व्रतमें स्थित राजाको पापियों, दुष्ट सामन्तों तथा हिंसकोंके प्रति नित्य प्रतापशाली एवं तेजस्वी होना चाहिये। जिस प्रकार स्वयं पृथ्वी समस्त जीवोंको धारण करती है, उसी प्रकार राजा भी सम्पूर्ण प्राणियोंका पालन-पोषण करता है। यह पार्थिव-व्रत है। राजाको इन्द्र, सूर्य, वायु, यम, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि तथा पृथ्वीके तेजोव्रतका आचरण करना चाहिये। जिस प्रकार इन्द्र वर्षके चार महीनोंमें वृष्टि करते हैं, उसी प्रकार राजाको भी अपने राष्ट्रमें स्वेच्छापूर्वक दानवृष्टि करनी चाहिये, यह इन्द्र-व्रत है। जिस प्रकार सूर्य आठ महीनेतक अपनी किरणोंसे जलका अपहरण करते हैं, उसी प्रकार राजाको भी नित्य राज्यसे कर ग्रहण करना चाहिये। यह सूर्य-व्रत है। जिस प्रकार मारुत सभी प्राणियोंमें प्रवेश करके विचरण करता है, उसी प्रकार राजाको भी गुप्तचरोंद्वारा सभी प्राणियोंमें प्रविष्ट होनेका विधान है। यह मारुत-व्रत है ॥ ७—१२ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे राज्ञो लोकपालसाम्यनिर्देशो नाम घड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२६ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके राजधर्म-प्रकरणमें प्रजापालन नामक दो सौ छब्बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२६ ॥

## दो सौ सत्तार्ईसवाँ अध्याय

### दण्डनीतिका निरूपण

मत्स्य उवाच

निक्षेपस्य समं मूल्यं दण्ड्यो निक्षेपभुक् तथा ।  
वस्त्रादिकसमस्तस्य तदा धर्मो न हीयते ॥ १  
  
यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते ।  
तावुभौ चोरवच्छास्यौ दाष्ट्यो वा द्विगुणं धनम् ॥ २  
  
उपधाभिश्च यः कश्चित् परद्रव्यं हरेन्नरः ।  
ससहायः स हन्तव्यः प्रकामं विविधैर्वधैः ॥ ३  
  
यो याचितं समादाय न तद् दद्याद् यथाक्रमम् ।  
स निगृह्य बलाद् दाष्ट्यो दण्ड्यो वा पूर्वसाहसम् ॥ ४  
  
अज्ञानाद् यदि वा कुर्यात् परद्रव्यस्य विक्रयम् ।  
निर्दोषो ज्ञानपूर्वं तु चोरवद् वधमर्हति ॥ ५  
  
मूल्यमादाय यो विद्यां शिल्पं वा न प्रयच्छति ।  
दण्ड्यः स मूल्यं सकलं धर्मज्ञेन महीक्षिता ॥ ६  
  
द्विजभोज्ये तु सम्प्राप्ते प्रतिवेशमपभोजयन् ।  
हिरण्यमाषकं दण्ड्यः पापे नास्ति व्यतिक्रमः ॥ ७  
  
आमन्त्रितो द्विजो यस्तु वर्तमानश्च स्व गृहे ।  
निष्कारणं न गच्छेद् यः स दाष्ट्योऽष्टशतं दमम् ।  
प्रतिश्रुत्याप्रदातारं सुवर्णं दण्डयेन्नपः ॥ ८  
  
भृत्यशाज्ञां न कुर्याद् यो दर्पात् कर्म यथोदितम् ।  
स दण्ड्यः कृष्णलान्यष्टौ न देयं चास्य वेतनम् ॥ ९  
  
संगृहीतं न दद्याद् यः काले वेतनमेव च ।  
अकाले तु त्यजेद् भृत्यं दण्ड्यः स्याच्छतमेव च ॥ १०

मत्स्यभगवान् कहा—राजन्! (रत्न-धन-) वस्त्रादि धरोहरको हड्डप जानेवाले व्यक्तिको उसके मूल्यके अनुरूप दण्ड देनेपर राजाका धर्म नष्ट नहीं होता । जो व्यक्ति रखी हुई धरोहरको वापस नहीं करता और जो बिना धरोहर रखे ही माँगता है, वे दोनों ही चोरके समान दण्डनीय हैं । उनसे मूल्यसे दुगुना धन दिलाना चाहिये । जो कोई उपधाँ—डाँका डालकर या छल-कपटसे दूसरेके धनको चुरा लेता है, उसे अनेकों वधोपायोंद्वारा सहायकोंसहित प्राण-दण्ड देना चाहिये । जो व्यक्ति दूसरेसे माँगकर ली गयी वस्तुको समयपर वापस नहीं करता तो उसे बलपूर्वक पकड़कर वह वस्तु दिला देने अथवा पूर्वसाहसेका दण्ड देनेका विधान है । जो कोई अनजानमें किसी दूसरेकी वस्तुको बेंच देता है, वह तो निर्दोष है, किंतु जो जानते हुए दूसरेकी वस्तुको बेचता है वह चोरके समान दण्डनीय है । जो मूल्य लेकर विद्या या शिल्पज्ञानको नहीं देता, उसे धर्मज्ञ राजाको रकमवापसीका दण्ड देना चाहिये । जो ब्रह्मभोजका अवसर प्राप्त होनेपर अपने पड़ोसियोंको भोजन नहीं कराता उसे एक माशा सुवर्णका दण्ड देना चाहिये । अपराधियोंको दण्ड देनेमें व्यतिक्रमका विधान नहीं है । जो निमन्त्रित ब्राह्मण अपने घरपर रहते हुए भी बिना किसी कारणके भोजन करने नहीं जाता उसे एक सौ आठ माशा सुवर्णका दण्ड देना चाहिये । जो किसी वस्तुको देनेकी प्रतिज्ञा कर उसे नहीं देता; उसे राजा एक सुवर्ण-मुद्राका दण्ड दे । जो नौकर अभिमानवश आज्ञापालन तथा कहा हुआ कर्म नहीं करता, उसे राजा आठ कृष्णलकौं दण्ड दे और उसका वेतन भी रोक दे । जो स्वामी अपने नौकरको उसके संचित धन तथा वेतनको समयपर नहीं देता और कुसमयमें उसे छोड़ देता है, उसे सौ मुद्राका दण्ड देना चाहिये ॥ १—१० ॥

१. कामन्दक आदिने उपधाको छल, साहस (डाँका) आदि भेदसे चार प्रकारका बतलाया है ।

२. दण्डनीति एवं मन्वादि धर्मशास्त्रोंके अनुसार वध (फाँसी), वनवास, अग्निचिह्नपूर्वक देशनिष्कासन अथवा सहस्रपणका दण्ड पूर्व या उत्तमसाहस दण्ड कहलाता है । ३. १३ दाने जौकी स्वर्णमुद्रा (कौटलीय अर्थशास्त्र, लीलावती आदि) ।

यो ग्रामदेशसस्यानां कृत्वा सत्येन संविदम्।  
 विसंवदेन्नरो लोभात् तं राष्ट्राद् विप्रवासयेत्॥ ११  
 क्रीत्वा विक्रीय वा किंचिद् यस्येहानुशयी भवेत्।  
 सोऽन्तर्दशाहात् तत्साम्यं दद्याच्चैवाददीत वा॥ १२  
 परेण तु दशाहस्य न दद्यान्नैव दापयेत्।  
 आदद्विददच्चैव राज्ञा दण्डः शतानि षट्॥ १३  
 यस्तु दोषवर्तीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति।  
 तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान्॥ १४  
 अकन्यैवेति यः कन्यां ब्रूयाद् दोषेण मानवः।  
 स शतं प्राप्नुयाद् दण्डं तस्या दोषमदर्शयन्॥ १५  
 यस्त्वन्यां दर्शयित्वान्यां वोदुः कन्यां प्रयच्छति।  
 उत्तमं तस्य कुर्वीत राजा दण्डं तु साहसम्॥ १६  
 वरो दोषाननाख्याय यः कन्यां वरयेदिह।  
 दत्ताप्यदत्ता सा तस्य राज्ञा दण्डः शतद्वयम्॥ १७  
 प्रदाय कन्यां योऽन्यस्मै पुनस्तां सम्प्रयच्छति।  
 दण्डः कार्यो नरेन्द्रेण तस्याप्युत्तमसाहसः॥ १८  
 सत्यंकारेण वा वाचा युक्तं पण्यमसंशयम्।  
 लुब्धो ह्यन्यत्र विक्रेता षटशतं दण्डमर्हति॥ १९  
 दुहितुः शुल्कविक्रेता सत्यंकारात् तु संत्यजेत्।  
 द्विगुणं दण्डयेदेनमिति धर्मो व्यवस्थितः॥ २०  
 मूल्यैकदेशं दत्त्वा तु यदि क्रेता धनं त्यजेत्।  
 स दण्ड्यो मध्यमं दण्डं तस्य पण्यस्य मोक्षणम्॥ २१  
 दुह्याद् धेनुं च यः पालो गृहीत्वा भुक्तवेतनम्।  
 स तु दण्डः शतं राज्ञा सुवर्णं चाप्यरक्षिता॥ २२  
 दण्डं दत्त्वा तु विरमेत् स्वामितः कृतलक्षणः।  
 बद्धः कार्णायिसैः पाशैस्तस्य कर्मकरो भवेत्॥ २३

जो मनुष्य सत्यतापूर्वक किये गये देश, ग्राम और अन्नके बँटवारेको लोभके कारण पुनः असत्य बतलाता है, उसे देशसे निकाल देना चाहिये। किसी वस्तुको खरीदने या बेंचनेके बाद यदि कुछ मूल्य शेष रह जाता है तो उसे दस दिनके भीतर दे देना या ले लेना चाहिये। यदि दस दिन बीत जानेके बाद कोई शेष मूल्यको न देता है न दिलाता है तो राजा उन न देने और दिलानेवाले दोनोंको छः सौ मुद्राओंका दण्ड दे। जो व्यक्ति अपनी दोषसे युक्त कन्याको बिना दोष सूचित किये किसीको दान कर देता है तो स्वयं राजा उसे छियानबे पणोंका दण्ड दे। जो मनुष्य बिना दोषके ही किसी दूसरेकी कन्याको दोषयुक्त बतलाता है और उस कन्याके दोषको दिखानेमें असमर्थ हो जाता है तो राजा उसे सौ मुद्राका दण्ड दे। जो व्यक्ति अन्य कन्याको दिखलाकर वरको दूसरी कन्याका दान करता है तो राजाको उसे उत्तम साहसिक दण्ड देना चाहिये। जो वर अपने दोषको न बतलाकर किसी कन्याका पाणिग्रहण करता है तो वह कन्या देनेके बाद भी न दी हुईके समान है। राजाको उसपर दो सौ मुद्राओंका दण्ड लगाना चाहिये। जो एक ही कन्याको किसीको दान कर देनेके बाद फिर किसी दूसरेको दान करता है, उसे भी राजाको उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये। जो अपने मुखसे 'निश्चय ही मैं इतने मूल्यपर अमुक वस्तु आपको दे दूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा कर फिर लोभके कारण उसे दूसरेके हाथ बेंच देता है, वह छः सौ मुद्राओंके दण्डका भागी होता है। जो व्यक्ति कन्याका मूल्य लेकर विक्रय नहीं करता या प्रतिज्ञासे हटता है तो उसे लिये हुए मूल्यसे दुगुने द्रव्यका दण्ड देना चाहिये, यह धर्मकी व्यवस्था है। मूल्यका कुछ भाग देनेके पश्चात् यदि लेनेवाला व्यक्ति उसे लेना नहीं चाहता तो उसे मध्यम साहसका दण्ड देना चाहिये और उसे दिये हुए द्रव्यको लौटा देना चाहिये। जो गोपाल वेतन लेकर गायको दुहता है और उसकी ठीकसे रक्षा नहीं करता उसे राजाको सौ सुवर्ण मुद्राओंका दण्ड देना चाहिये। राजा दण्ड देनेके बाद विराम ले ले। तदनन्तर राजाद्वारा चिह्नित अपराधीको काले लोहेकी जंजीरसे आबद्ध कर दिया जाय और पुनः किसी अपने ही कार्यपर नियुक्त कर लिया जाय॥ ११—२३॥

धनुःशतपरीणाहो ग्रामस्य तु समंततः ।  
द्विगुणं त्रिगुणं वापि नगरस्य तु कल्पयेत् ॥ २४  
वृत्तिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्टो नावलोकयेत् ।  
छिद्रं वा वारयेत् सर्वं श्वशूकरमुखानुगम् ॥ २५  
यत्रापरिवृतं धान्यं विहिंस्युः पशवो यदि ।  
न तत्र कारयेद् दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणे ॥ २६  
अनिर्दशाहां गां सूतां वृषं देवपशुं तथा ।  
छिद्रं वा वारयेत् सर्वं न दण्डयो मनुरब्रवीत् ॥ २७  
अथोऽन्यथा विनष्टस्य दशांशं दण्डमर्हति ।  
पाल्यस्य पालकस्वामी विनाशे क्षत्रियस्य तु ॥ २८  
भक्षयित्वोपविष्टस्तु द्विगुणं दण्डमर्हति ।  
विशं दण्डयाद् दशगुणं विनाशे क्षत्रियस्य तु ॥ २९  
गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वापि समाहरन् ।  
शतानि पञ्च दण्डः स्यादज्ञानाद् द्विशतो दमः ॥ ३०  
सीमाबन्धनकाले तु सीमान्तं यो हि कारयेत् ।  
तेषां संज्ञां ददानस्तु जिह्वाच्छेदनमाख्यात् ॥ ३१  
अथैनामपि यो दद्यात् संविदं वाधिगच्छति ।  
उत्तमं साहसं दण्ड्य इति स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥ ३२  
वर्णानामानुपूर्व्येण त्रयाणामविशेषतः ।  
अकार्यकारिणः सर्वान् प्रायश्चित्तानि कारयेत् ॥ ३३  
अमत्या च प्रमाण्य स्त्रीं शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ।  
दानेन च धनेनैकं सर्पादीनामशक्नुवन् ॥ ३४  
एकैकं स चरेत् कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये ।  
फलदानां च वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्षशतम् ॥ ३५  
गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम् ।  
अस्थिमतां च सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमापणे ।  
पूर्णे वानस्यवस्थातुं शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥ ३६

ग्रामके बाहर चारों ओरसे सौ धनुषके विस्तारकी और नगरके लिये उससे दुगुने या तिगुने विस्तारकी ऐसी प्राचीर बनाये जिसके भीतरकी वस्तुको ऊँट भी न देख सके । उसमें कुत्ते तथा सूअरके मुख घुसने योग्य सभी छिद्रोंको बंद करा देना चाहिये । यदि पशु बिना धेरेके खेतके अन्नको हानि पहुँचाते हैं तो राजाको पशुके चरवाहेको दण्ड नहीं देना चाहिये । दस दिनके भीतरकी व्यायी गायद्वारा तथा देवताके उद्देश्यसे छोड़े गये वृषद्वारा धेरा रहनेपर भी यदि खेतके अन्नकी हानि होती है तो उसके लिये पशुपालक दण्डनीय नहीं है—ऐसा मनुने कहा है । इन उपर्युक्त कारणोंके अतिरिक्त अन्य प्रकारसे नष्ट हुए द्रव्यके दशांशका दण्ड लगाना चाहिये । कोई पशु फसलको खाकर यदि वहीं बैठा हुआ मिलता है तो उसके स्वामीके ऊपर उक्त दण्डसे दुगुना दण्ड लगाना चाहिये । यदि खेतका स्वामी क्षत्रिय है और वैश्यका पशु हानि पहुँचाता है तो उसे हानिका दस गुना दण्ड देना चाहिये । यदि किसीके घर, तालाब, बगीचे या खेतको कोई दूसरा छीन लेता है तो उसे पाँच सौ मुद्राका तथा बिना जाने यदि इनको हानि पहुँचाता है तो दो सौ मुद्राका दण्ड देना चाहिये । किसी खेत आदिकी सीमा बाँधनेके समय यदि कोई सीमाका उल्लङ्घन करता है या सम्मति देता है तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिये । जो सीमाका उल्लङ्घन करनेवाले व्यक्तिकी बातोंका शपथपूर्वक समर्थन करता है, उसे उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये—ऐसा स्वायम्भुव मनुने कहा है ॥ २४—३२ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—इन तीनों वर्णोंके लोग समाजमें अपनी स्थितिके बिना किसी विशेषताके क्रमसे यदि निषिद्ध कार्य करते हैं तो उन सबसे प्रायश्चित्त करवाना चाहिये । यदि कोई अनजानमें स्त्रीका वध कर देता है तो उसे शूद्र-हत्या-व्रतका पालन करना चाहिये । सर्पादिकी हत्या कर धन-दान करनेमें असमर्थ द्विजको पाप-शान्तिके लिये एक-एक कृच्छ्रव्रतका आचरण करना चाहिये । फल देनेवाले वृक्षों, फूली हुई लताओं, गुल्मों, वल्लियों तथा फूले हुए वृक्षोंको काटनेपर सौ ऋचाओंका जप करना चाहिये । एक सहस्र अथवा एक गाड़ीमें भर जानेके योग्य हड्डीवाले जीवोंकी हत्या करनेवालेको शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करना चाहिये ।

किंचिद् देयं च विप्राय दद्यादस्थितां वधे ।  
 अनस्थां चैव हिंसायां प्राणायामैर्विशुद्ध्यति ॥ ३७  
 अन्नादिजानां सत्त्वानां रसजानां च सर्वशः ।  
 फलपुष्पोदगतानां च धृतप्राशो विशोधनम् ॥ ३८  
 कृष्टानामोषधीनां च जातानां च स्वयं बने ।  
 वृथाच्छेदेन गच्छेत् दिनमेकं पयोव्रती ॥ ३९  
 एतैर्वृत्तैरपोहं स्यादेनो हिंसासमुद्धवम् ।  
 स्तेयदोषापहर्तृणां श्रूयतां व्रतमुत्तमम् ॥ ४०  
 धान्यान्धनचौर्याणि कृत्वा कामाद् द्विजोत्तमः ।  
 सजातीयगृहादेव कृच्छ्रार्थेन विशुद्ध्यति ॥ ४१  
 मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य तु ।  
 कूपवापीजलानां तु शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ ४२  
 द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वान्यवेशमतः ।  
 चरेत् सान्तपनं कृच्छ्रं तनिर्यात्यविशुद्धये ॥ ४३  
 भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशव्यासनस्य तु ।  
 पुष्पमूलफलानां तु पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥ ४४  
 तृणकाष्ठद्रुमाणां तु शुष्कानस्य गुडस्य च ।  
 चैलचर्मामिषाणां तु त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥ ४५  
 मणिमुक्ताप्रवालानां ताप्रस्य रजतस्य च ।  
 अयस्कांस्योपलानां च द्वादशाहं कणान्भुक् ॥ ४६  
 कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च ।  
 पक्षिगन्धौषधीनां च रज्ज्वाशैव त्र्यहं पयः ॥ ४७  
 एतैर्वृत्तैर्व्यपोहेत् पापं स्तेयकृतं द्विजः ।  
 अगम्यागमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥ ४८  
 गुरुतल्पव्रतं कुर्याद् रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषु ।  
 सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ॥ ४९  
 पैतृष्वस्त्रीयभगिनीं स्वस्त्रीयां मातुरेव च ।  
 भ्रातुर्द्विहितरं चैव गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ५०

हइडीवाले जानवरोंको हत्या करनेपर ब्राह्मणको कुछ दान देना चाहिये और जो बिना हइडीके हैं उनकी हिंसा करनेपर प्राणायामसे शुद्ध हो जाती है। अन्नादिसे एवं रससे उत्पन्न होनेवाले तथा फलों और पुष्पोंमें पैदा होनेवाले जन्तुओंकी हिंसा करनेपर धृत-पान ही प्रायश्चित्त है। जुताईसे उत्पन्न हुई तथा बनमें स्वतः उगी हुई ओषधियोंको बिना आवश्यकताके काटनेपर एक दिनका दुग्धव्रत करना चाहिये। हिंसासे उत्पन्न हुआ पातक इन ब्रतोंसे दूर किया जा सकता है। अब चोर-कर्मसे उत्पन्न हुए पापको दूर करनेके लिये उत्तम व्रत सुनिये ॥ ३३—४० ॥

यदि ब्राह्मण अपनी जातिवालोंके घरसे इच्छापूर्वक धान्य, अन्न और धनकी चोरी करता है तो वह अर्धकृच्छ्रव्रतसे शुद्ध होता है। मनुष्य, स्त्री, खेत, घर, कूप और बावलीके जलका हरण करनेपर शुद्धिके लिये चान्द्रायणव्रतका विधान है। दूसरेके घरसे थोड़ी मूल्यवाली वस्तुओंकी चोरी करनेपर उससे शुद्ध होनेके लिये कृच्छ्रसांतपन-व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। भक्ष्य, भोज्य, बाहन, शश्या, आसन, पुष्प, मूल और फलकी चोरी करनेपर उसका प्रायश्चित्त पञ्चगव्य-पान है। तृण, काष्ठ, वृक्ष, सूखा अन्न, गुड, वस्त्र, चमड़ा तथा मांसकी चोरी करनेपर तीन राततक उपवास करना चाहिये। मणि, मोती, प्रवाल, ताँबा, चाँदी, लोहा, काँसा तथा पत्थरकी चोरी करनेपर बारह दिनोंतक अन्नके कणोंका भोजन करना चाहिये। सूती, रेशमी, ऊनी वस्त्र, दो तथा एक खुरवाले पशु, पक्षी, सुगन्धित द्रव्य, ओषधि तथा रससीकी चोरी करनेपर तीन दिनतक केवल जल पीकर रहना चाहिये। ब्राह्मणको इन ब्रतोंद्वारा चोरीसे उत्पन्न हुए पापका निवारण करना चाहिये। अगम्या स्त्रीके साथ समागम करनेसे उत्पन्न हुए पापको इन ब्रतोंद्वारा नष्ट करना चाहिये। अपनी जातिकी परायी स्त्रीके साथ समागम करके गुरुतल्प-व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये अर्थात् गुरुकी स्त्रीके साथ समागम करनेपर जो प्रायश्चित्त कहा गया है, उसका अनुष्ठान करना चाहिये। मित्र तथा पुत्रकी स्त्री, कुमारी कन्या, नीच जातिकी स्त्री (चाण्डाली), फुफेरी तथा मौसेरी बहन और भाईकी कन्याके साथ समागम करनेपर चान्द्रायण-व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ४१—५० ॥

एताः स्त्रियस्तु भार्यांर्थं नोपगच्छेत् बुद्धिमान् ।  
 ज्ञातीनां च स्त्रियो यास्तु पतितानुगताश्च याः ॥ ५१  
 अमानुषीषु पुरुषो उदक्यायामयोनिषु ।  
 रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ ५२  
 मैथुनं च समालोक्य पुंसि योषिति वा द्विजः ।  
 गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ ५३  
 चाण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ।  
 पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात् साम्यं तु गच्छति ॥ ५४  
 विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुच्यादेकवेशमनि ।  
 यत् पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद् व्रतम् ॥ ५५  
 सा चेत् पुनः प्रदुष्येत् सदृशेनोपमन्त्रिता ।  
 कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तत् तस्याः पावनं स्मृतम् ॥ ५६  
 यः करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः ।  
 तद्दक्ष्यभुग् जपेनित्यं त्रिभिर्वर्षेव्यपोहति ॥ ५७  
 एषा पापकृतामुक्ता चतुर्णामपि निष्कृतिः ।  
 पतितैः सम्प्रयुक्तानामिमां शृणुत निष्कृतिम् ॥ ५८  
 संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ।  
 याजनाध्यापनाद् यौनादनुयानाशनासनात् ॥ ५९  
 यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः ।  
 स तस्यैव व्रतं कुर्यात् तत्संसर्गविशुद्धये ॥ ६०  
 पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैः सह ।  
 निन्दितेऽहनि सायाह्वे ज्ञातिभिर्गुरुसंनिधौ ॥ ६१  
 दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत् प्रेतवत् सदा ।  
 अहोरात्रमुपासीरन् नाशौचं बान्धवैः सह ॥ ६२  
 निवर्तयेरंस्तस्मात् सम्भाषणसहासनम् ।  
 दायादस्य प्रमाणं च यात्रामेव च लौकिकीम् ॥ ६३  
 ज्येष्ठाभावान्विवर्तेत् ज्येष्ठावाप्तं च यत्पुनः ।  
 ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान् गुणतोऽधिकः ॥ ६४

बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि जो स्त्रियाँ अपनी जातिकी हों तथा जो पतितोंकी अनुगामिनी हों, उनके साथ भार्याके समान समागम न करे। मनुष्यसे भिन्न योनि, ऋतुमती स्त्री तथा योनिद्वारसे अन्यत्र अथवा जलमें वीर्यपात करके पुरुषको कृच्छ्र-सान्तपन नामक व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। बैलगाढ़ीपर, जलमें तथा दिनमें स्त्री-पुरुषके मैथुनको देखकर ब्राह्मणको वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये। ब्राह्मण यदि अज्ञानसे चाण्डाल और अन्त्यज स्त्रियोंके साथ सम्भोग, उनके यहाँ भोजन और उनका दिया हुआ दान ग्रहण करता है तो वह पतित हो जाता है और जान-बूझकर करता है तो वह उन्हींके समान हो जाता है। ब्राह्मणद्वारा दूषित स्त्रीको उसका पति एक घरमें बंद कर दे। इसी प्रकार दूसरेकी स्त्रियोंसे समागम करनेवाले पुरुषको भी यही व्रत करना चाहिये। यदि वह स्त्री पुनः किसी परकीय पुरुषसे दूषित होती है तो उसे शुद्ध करनेके लिये कृच्छ्रचान्द्रायण-व्रतका अनुष्ठान बताया गया है। जो द्विज एक रात भी शूद्र स्त्रीके साथ समागम करता है तथा उसका दिया हुआ अन्न भोजन करता है, वह तीन वर्षोंतक निरन्तर गायत्रीजप करनेसे शुद्ध होता है। चारों वर्णोंके पापियोंके लिये यह प्रायश्चित्त कहा गया है। अब पतितोंके संसर्गमें होनेवाले पापके लिये यह प्रायश्चित्त सुनिये ॥ ५१—५८ ॥

पतितके साथ यज्ञानुष्ठान, अध्यापन, यौन-सम्बन्ध, भोजन, एक वाहनपर गमन तथा आसनपर उपवेशन करनेसे भला मनुष्य (भी) एक वर्षमें पतित हो जाता है। जो मनुष्य इन कर्मोंमें जिस पतितका संसर्ग प्राप्त करता है, उसे उस संसर्गदोषकी शुद्धिके लिये उसी पतितके व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। उसके सपिण्ड भाई-बन्धुओंको जातिवालोंके साथ किसी निन्दित दिनको सायंकालके समय गुरुके समीप उस पतितके लिये उदक-क्रिया करनी चाहिये। दासी उक्त व्यक्तिके लिये प्रेतकी तरह जलपूर्ण घट रखे, परिवारवालोंके साथ एक दिन-रातका उपवास करे और अशौचके समान व्यवहार करे। परिवारवालोंके लिये उसके साथ वार्तालाप करना और एक आसनपर बैठना निषिद्ध है। इस पाप-कर्मकी जातिको भी उन्हें नहीं प्रकट करना चाहिये—यह लोककी मर्यादा है। जिस प्रकार ज्येष्ठ भाईके न रहनेपर उसके हिस्सेकी प्राप्ति छोटे भाईको होती है, उसी प्रकार अधिक गुणवान् होनेपर भी छोटे भाईको उसका फल भोगना पड़ता है।

स्थापितं चापि मर्यादां ये भिन्नृः पापकर्मिणः ।  
 सर्वे पृथग्दण्डनीया राजा प्रथमसाहसम् ॥ ६५  
 शतं ब्राह्मणमाकुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति ।  
 वैश्यस्तु द्विशतं राजज्ञशूद्रस्तु वधमर्हति ॥ ६६  
 पञ्चाशद् ब्राह्मणा दण्डयः क्षत्रियस्याभिशंसने ।  
 वैश्यस्याप्यर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः ॥ ६७  
 क्षत्रियस्याप्नुयादवैश्यः साहसं पुनरेव च ।  
 शूद्रः क्षत्रियमाकुश्य जिह्वाच्छेदनमाप्नुयात् ॥ ६८  
 पञ्चाशत्क्षत्रियो दण्डयस्तथा वैश्याभिशंसने ।  
 शूद्रे चैवार्धपञ्चाशत्तथा धर्मो न हीयते ॥ ६९  
 वैश्यस्याक्रोशने दण्डयः शूद्रश्वेत्तमसाहसम् ।  
 शूद्राक्रोशे तथा वैश्यः शतार्धं दण्डमर्हति ॥ ७०  
 सवर्णाक्रोशने दण्डयस्तथा द्वादशकं स्मृतम् ।  
 वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत् ॥ ७१  
 एकजातिर्द्विजातिं तु वाचा दारुणया क्षिपन् ।  
 जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यः प्रथमो हि सः ॥ ७२  
 नामजातिगृहं तेषामभिब्रोहेण कुर्वतः ।  
 निक्षेप्योऽयोमयः शङ्खञ्चलन्नास्ये दशाङ्गुलः ॥ ७३  
 धर्मोपदेशं शूद्रस्तु द्विजानामभिकुर्वतः ।  
 तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ॥ ७४  
 श्रुतिं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च ।  
 वितर्थं च ब्रुवन् दण्डयो राजा द्विगुणसाहसम् ॥ ७५  
 यस्तु पातकसंयुक्तः क्षिपेद् वर्णान्तरं नरः ।  
 उत्तमं साहसं दण्डः पात्यस्तस्मिन् यथाक्रमम् ॥ ७६  
 राजो निवेशनियमं वितर्थं यान्ति वै मिथः ।  
 सर्वे द्विगुणदण्डयास्ते विप्रलभ्यान्तृपस्य तु ॥ ७७  
 प्रीत्या मयास्याभिहितं प्रमादेनाथवा वदेत् ।  
 भूयो न चैवं वक्ष्यामि स तु दण्डार्थभागभवेत् ॥ ७८

जो पापाचारी प्राणी निश्चित की गयी मर्यादाको तोड़ देते हैं, उन्हें राजा पृथक्-पृथक् जाति-क्रमके अनुसार उत्तम साहसका दण्ड दे । राजन् ! यदि क्षत्रिय होकर ब्राह्मणको कटु वचन कहता है तो उसे सौ मुद्राका दण्ड देना चाहिये । यदि वैश्य है तो उसे दो सौ मुद्राका और यदि शूद्र है तो उसे प्राण-दण्ड देना चाहिये । यदि ब्राह्मण क्षत्रियको कटु बातें कहे तो उसे पचास पण, वैश्यको कहे तो पचीस पण तथा शूद्रको कहे तो बारह पणका दण्ड देना चाहिये । यदि वैश्य क्षत्रियको कटु वचन कहता है तो उसे उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये और शूद्र क्षत्रियको कटूकि सुनाता है तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिये ॥ ५९—६८ ॥

क्षत्रिय यदि वैश्यको बुरा-भला कहता है तो उसे पचास और शूद्रको कहता है तो पचीस दमका दण्ड देना चाहिये । ऐसा करनेसे उसका धर्म क्षीण नहीं होता । शूद्र यदि वैश्यको कटु वचन कहे तो उसे उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये और वैश्य होकर शूद्रको बुरा-भला कह रहा है तो वह पचास दमके दण्डका भागी होता है । यदि कोई अपने वर्णवालेको कटूकि सुनाता है तो उसे बारह दमका दण्ड देना चाहिये तथा अकथनीय बातें कहनेपर वह दण्ड दुगुना हो जाता है । यदि द्विजातिसे भिन्न जातिवाला किसी द्विजातिको कठोर वाणीसे बुरा-भला कहता है तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिये और उसे परम नीच समझना चाहिये । अधिक द्रोहवश नाम, जाति तथा घरकी निन्दा करनेवालेके मुखमें लोहेकी बारह अंगुल लम्बी जलती हुई शलाका डाल देनी चाहिये । राजाको द्विजातिको धर्मोपदेश करनेवाले शूद्रके मुख और कानमें खौलता हुआ तेल डाल देना चाहिये । वेद, देश, जाति और शारीरिक कर्मको निष्फल बतलानेवाला राजाद्वारा दुगुने साहसके दण्डका भागी होता है । जो मनुष्य स्वयं पापाचारी होकर दूसरे वर्णकी निन्दा करता है, उसे राजा जातिके अनुरूप उत्तम साहसका दण्ड दे । जो राजाके बनाये हुए नियमकी अवहेलना करते हैं अथवा राजाकी निन्दा करते हैं, उन सबको दुगुने साहसका दण्ड देना चाहिये । जो व्यक्ति 'मैंने प्रेमवश अथवा प्रमादसे ऐसा कहा है, अब पुनः ऐसा नहीं कहूँगा' ऐसा कहकर अपराध स्वीकार कर लेता है, वह आधे दण्डका पात्र है ॥ ६९—७८ ॥

काणं वाप्यथवा खञ्चमन्थं चापि तथाविधम्।  
तथ्येनापि ब्रुवन् दाप्यो दण्डं कार्षपणं धनम्॥ ७९  
मातरं पितरं ज्येष्ठं भ्रातरं श्वशुरं गुरुम्।  
आक्रोशयव्शतं दण्डयः पन्थानं चार्दयन् गुरोः॥ ८०  
गुरुवर्ज्य तु मानार्हं यो हि मार्गं न यच्छति।  
स दाप्यः कृष्णलं राज्ञस्तस्य पापस्य शान्तये॥ ८१  
एकजातिर्द्विजातिं तु येनाङ्गेनापराध्नयात्।  
तदेव छेदयेत्स्य क्षिप्रमेवाविचारयन्॥ ८२  
अवनिष्ठीवतो दर्पाद् द्वावोष्टी छेदयेनृपः।  
अवमूत्रयतो मेढमपशब्दयतो गुदम्॥ ८३  
सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः ।  
कट्यां कृताङ्गे निर्वास्यः स्फिचं वाप्यस्य कर्तयेत्॥ ८४  
केशेषु गृह्णतो हस्तं छेदयेदविचारयन्।  
पादयोर्नासिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च॥ ८५  
त्वर्भेदकः शतं दण्डयो लोहितस्य च दर्शकः।  
मांसभेत्ता च षणिष्कान् निर्वास्यस्त्वस्थिभेदकः॥ ८६  
अङ्गभङ्गकरस्याङ्गं तदेवापहरेनृपः।  
दण्डपारुष्यकृद् दण्डयः समुत्थानव्ययं तथा॥ ८७  
अर्थपादकरः कार्यो गोगजाश्वोष्टधातकः।  
पशुक्षुद्रमृगाणां च हिंसायां द्विगुणो दमः॥ ८८  
पञ्चाशच्च भवेद् दण्डयस्तथैव मृगपक्षिषु।  
कृमिकीटेषु दण्डयः स्याद् रजतस्य च माषकम्॥ ८९  
तस्यानुरूपं मूल्यं च प्रदद्यात् स्वामिने तथा।  
स्वस्वामिकानां सकलं शेषाणां दण्डमेव तु॥ ९०

कोई काना हो, लँगड़ा हो अथवा अन्धा हो, उसे सत्यतापूर्वक उसी प्रकारका कहनेपर भी उसे एक कार्षपणका \* दण्ड देना चाहिये। माता, पिता, ज्येष्ठ भाई, श्वशुर तथा गुरु—इनकी निन्दा करनेवाले तथा गुरुजनोंके मार्गको नष्ट करनेवालेको सौ कार्षपणका दण्ड देना चाहिये। जो माननीय श्रेष्ठ लोगोंको मार्ग नहीं देता, उसे उस पापकी शान्तिके लिये राजा एक कृष्णलका दण्ड दे। द्विजातिसे भिन्न जातिवाला व्यक्ति किसी द्विजातिका जिस अङ्गसे अपकार करता है, उसके उसी अङ्गको शीघ्र ही बिना कुछ विचार किये कटवा देना चाहिये। राजा सामने गर्वपूर्वक थूकनेवाले, पेशाब करनेवाले तथा अपानवायु छोड़नेवाले व्यक्तिका क्रमशः दोनों हौंठ, लिङ्ग और गुदाद्वार कटवा दे। यदि कोई नीच जातिवाला व्यक्ति उत्कृष्ट व्यक्तिके साथ आसनपर बैठना चाहता है तो राजा उसकी कमरमें एक चिह्न बनाकर अपने राज्यसे निर्वासित कर दे या उसके गुदाभागको कटवा दे। इसी प्रकार यदि कोई निम्न जातिवाला किसी उच्च जातीय व्यक्तिके केशोंको पकड़ता है तो उसके हाथको बिना विचार किये ही कटवा देना चाहिये। इसी प्रकारका दण्ड दोनों पैरों, नासिका, गला तथा अण्डकोशके पकड़नेपर भी देना चाहिये। यदि कोई किसीके चमड़ेको काट देता है और उससे रक्त निकलने लगता है तो उसे शतमुद्राका दण्ड देना चाहिये। मांस काट लेनेवालेको छः निष्कोंका दण्ड तथा हड्डी तोड़नेवालेको देशनिकालाका दण्ड देना चाहिये। यदि कोई व्यक्ति किसीके अङ्गको तोड़-फोड़ देता है तो राजाको चाहिये कि उसके उसी अङ्गको कटवा दे तथा उसे उतने द्रव्यका भी दण्ड दे, जितना उस आहत व्यक्तिके उठने-बैठनेके व्ययके लिये अपेक्षित हो। गाय, हाथी, अश्व और ऊँटकी हत्या करनेवालेका आधा हाथ और आधा पैर काट लेना चाहिये। राजाको पशु तथा छोटे जानवरोंकी हत्या करनेपर अपराधीको उनके मूल्यके दुगुने पणका दण्ड देना चाहिये। मृग तथा पक्षियोंकी हत्या करनेपर पचास पणका दण्ड करनेका विधान है। कृमि तथा कीटोंके मारनेपर एक मासा चाँदीका दण्ड लगाना उचित है तथा उसके अनुकूल मूल्य भी उसके स्वामीको दिलाना चाहिये॥ ७९—८९ १ २ ३

अब स्वतन्त्र पदार्थोंको नष्ट करनेपर लगनेवाले

\* १६ माशेकी स्वर्णमुद्रा या १६ पणकी रजतमुद्रा। (दै० मनु० ८। १३६, ३३६ आदि)

वृक्षं तु सफलं छिन्ना सुवर्णं दण्डमर्हति ।  
 द्विगुणं दण्डयेच्चैनं पथि सीम्नि जलाशये ॥ ११  
 छेदनादफलस्यापि मध्यमं साहसं स्मृतम् ।  
 गुल्मवल्लीलतानां च सुवर्णस्य च माषकम् ॥ १२  
 वृथाच्छेदी तृणस्यापि दण्डयः कार्षपणं भवेत् ।  
 त्रिभागं कृष्णला दण्डयाः प्राणिनस्ताङ्गे तथा ॥ १३  
 देशकालानुरूपेण मूल्यं राजा द्रुमादिषु ।  
 तत्स्वामिनस्तथा दण्डया दण्डमुक्तस्तु पार्थिव ॥ १४  
 यत्रातिवर्तते युग्मं वैगुण्यात् प्राजकस्य तु ।  
 तत्र स्वामी भवेद् दण्डयो नापश्चेत् प्राजको भवेत् ॥ १५  
 प्राजकश्च भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति ।  
 नास्ति दण्डश्च तस्यापि तथा वै हेतुकल्पकः ॥ १६  
 द्रव्याणि यो हरेद् यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।  
 स तस्योत्पादयेत् तुष्टिं राज्ञो दद्यात् ततो दमम् ॥ १७  
 यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्वरेद् भिन्न्याच्च तां प्रपाम् ।  
 स दण्डं प्राप्नुयान्माषं तच्च सम्प्रतिपादयेत् ॥ १८  
 धान्यं दशभ्यः कुप्पेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः ।  
 शेषेऽप्येकादशगुणं तस्य दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ १९  
 तथा भक्ष्यान्पानानां न तथाप्यधिके वधः ।  
 सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां न वाससाम् ॥ १००  
 पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः ।  
 महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य च ॥ १०१  
 मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति ।  
 दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीयस्य रसस्य च ॥ १०२  
 वेणुवैदलभाण्डानां लवणानां तथैव च ।  
 मृग्मयानां च सर्वेषां मृदो भस्मन एव च ॥ १०३

दण्डको बतला रहा हूँ। फलयुक्त वृक्षको काटनेपर अपराधीको सुवर्णका दण्ड देना उचित है। यदि वह वृक्ष किसी सीमा, मार्ग अथवा जलाशयके समीप है तो उसे दुगुना दण्ड देना चाहिये। फलरहित वृक्षको भी काटनेपर मध्यमसाहसका दण्ड देनेका विधान है। गुल्मों, लताओं तथा बल्लियोंको काटनेपर एक मासा सुवर्णका दण्ड देना चाहिये। बिना किसी आवश्यकताके तृणको भी नष्ट करनेवाला व्यक्ति एक कार्षपणके दण्डका भागी होता है। किसी प्राणीको कष्ट पहुँचानेवालेको कृष्णलके तिहाई भागका दण्ड देना चाहिये। राजन्! वृक्षादिके काटे जानेपर राजा देश तथा कालके अनुसार उचित मूल्यका दण्ड दे और उस दण्डको वृक्षादिके स्वामीको दिला दे। यदि चालककी असावधानीसे रथ मार्गसे विचलित हो जाता है तो ऐसे अवसरपर यदि वह चालक निपुण नहीं है तो उसके स्वामीको दण्ड देना चाहिये और यदि चालक निपुण है तो उसीके ऊपर दण्ड लगाना चाहिये, किंतु यदि वह घटना किसी विशेष परिस्थितिवश घटित हुई हो तो चालकको भी दण्ड नहीं देना चाहिये। जो किसीके द्रव्यको जानकर या अनजानमें अपहरण कर लेता है, उसे राजाके सम्मुख दण्ड स्वीकार कर उसके स्वामीको संतुष्ट करना चाहिये। अन्यथा उसपर एक पण दण्ड लगानेका विधान है। जो व्यक्ति किसी कुएँपरसे रस्सी अथवा घड़ा चुरा लेता है या उस कुएँको तोड़ता-फोड़ता है, उसके ऊपर एक मासा सुवर्णका दण्ड लगाना उचित है और उसीसे कुएँकी क्षति-पूर्ति करानी चाहिये। दस घड़ेसे अधिक अन्न चुरानेवालेको प्राण-दण्ड देना चाहिये। यदि दस घड़ेसे कम अन्न चुराता है तो उसने जितना अन्न चुराया है, उससे ग्यारहगुना अधिक मूल्यका दण्ड उसपर लगाना चाहिये। उसी प्रकार दस घड़ेसे अधिक खाद्य-सामग्री, अन्न एवं पानादिकी चोरी करनेपर उसी प्रकारके दण्डका विधान है। उसे प्राणदण्ड नहीं देना चाहिये। सुवर्ण, चाँदी आदि धातुओं, उत्तम वस्त्रों, कुलीन पुरुषों, विशेषतया कुलीन स्त्रियों, बड़े-बड़े पशुओं, हथियारों, ओषधियों तथा मुख्य-मुख्य रत्नोंकी चोरी करनेपर चोर प्राण-दण्डका पात्र होता है ॥ १०—१०१ १ ॥

दही, दूध, तक्र (छाँच-मट्ठा), जल, रस, बाँस एवं वैदल आदिके पात्र, लवण, सभी प्रकारके मिट्टीके पात्र, मिट्टी और भस्मकी चोरी करनेवालेके लिये राजा

कालमासाद्य कार्यं च राजा दण्डं प्रकल्पयेत्।  
 गोषु ब्राह्मणसंस्थासु महिषीषु तथैव च ॥ १०४  
 अश्वापहारकश्चैव सद्यः कार्योऽर्थपादकः।  
 सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च ॥ १०५  
 मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च।  
 मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यद्वस्तुसम्भवम् ॥ १०६  
 अन्येषां लवणादीनां मद्यानामोदनस्य च।  
 पक्वान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्याद् द्विगुणो दमः ॥ १०७  
 पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीलतासु च।  
 अन्नेषु परिपूर्णेषु दण्डः स्यात् पञ्चमाषकम्।  
 परिपूर्णेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च ॥ १०८  
 निरन्वये शतं दण्डः सान्वये द्विशतं दमः।  
 येन येन यथाङ्गेन स्तेनोऽन्येषु विचेष्टते ॥ १०९  
 तत्तदेव हरेत् तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः।  
 द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके ॥ ११०  
 त्रपुसोर्वासुकौ द्वौ च तावन्मात्रं फलेषु च।  
 तथा च सर्वधान्यानां मुष्टिग्राहेण पार्थिव ॥ १११  
 शाके शाकप्रमाणेन गृह्यमाणे न दुष्यति।  
 वानस्पत्यं फलं मूलं दार्वगन्यर्थं तथैव च ॥ ११२  
 तृणं गोऽभ्यवहारार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत्।  
 अदेववाटिं पुष्पं देवतार्थं तथैव च ॥ ११३  
 आददानः परक्षेत्रान्न दण्डं दातुमर्हति।  
 शृङ्गिणं नखिनं राजन् दंष्ट्रिणं च वधोद्यतम् ॥ ११४  
 यो हन्यान्न स पापेन लिप्यते मनुजेश्वर।  
 गुरुं वा बालवृद्धं वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ॥ ११५  
 आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्।  
 नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥ ११६  
 प्रकाशं वाप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति।  
 गृहक्षेत्राभिर्हर्तारस्तथागम्याभिगामितः ॥ ११७  
 अग्निदो गरदश्चैव तथा चाभ्युद्यतायुधः।  
 अभिचारं तु कुर्वणो राजगामि च पैशुनम् ॥ ११८

देश एवं कालके अनुसार दण्डकी व्यवस्था करे। ब्राह्मणके घरसे गाय, भैंस और घोड़ेकी चोरी करनेवालेको तुरंत ही आधे पैरवाला कर देना चाहिये। सूत, कपास, आसव, गोबर, गुड, मछली, पक्षी, तेल, धी, मांस, मधु, नमक, मदिरा, भात एवं इनसे बनी हुई अन्यान्य वस्तुओं तथा सभी प्रकारके पकवानोंकी चोरी करनेवालेको उस वस्तुके मूल्यसे दुगुना दण्ड देना चाहिये। पुष्प, कच्चा अन्न, गुल्म, लता, बल्ली तथा अधिक अन्नकी चोरी करनेवालेको पाँच मासा सुवर्णका दण्ड देना उचित है। प्रचुरमात्रामें अन्न, शाक, मूल और फलकी चोरी करनेवाले संतानहीनको सौ मुद्राका तथा संतानवालेको दो सौ पणका दण्ड देना चाहिये। चोर जिस-जिस अङ्गोंकी सहायतासे चोरी करनेकी चेष्टा करता है, राजा उसके उस अङ्गको कटवा दे। यदि कोई अकिञ्चन ब्राह्मण मार्गमें चलते हुए दो ईख, दो कन्द (मूली), दो खीरे, दो तरबूजे, दो अन्य फल, दो मुट्ठी सभी प्रकारके अन्न अथवा साग ले लेता है तो वह चोरीके दोषसे दूषित नहीं होता। भोजनके लिये वृक्षसे उत्पन्न हुए फल, मूल और जलौनी लकड़ीको काट लेना अथवा गौको खिलानेके लिये धास उखाड़ लेना चोरी नहीं है—ऐसा मनुजीने कहा है। देवताकी वाटिकासे भिन्न दूसरेके खेतमें उत्पन्न हुए पुष्पको देवताकी पूजाके लिये तोड़नेवाला दण्डका पात्र नहीं होता, उसे दण्ड नहीं देना चाहिये ॥ १०२—११३ २ ॥

राजन्! जो अपनेको मारनेके लिये उद्यत सींगवाले, नखवाले तथा दाढ़वाले पशुको मारता है, वह पापसे लिप्त नहीं होता। गुरु, बालक, वृद्ध अथवा शास्त्रज्ञ ब्राह्मण ही क्यों न हो, यदि वह अपनेको मारनेके लिये आ रहा हो तो उसे बिना विचार किये ही मार डालना चाहिये;\* क्योंकि आततायीका वध करनेपर वधकर्ताको कोई पाप नहीं लगता। प्रकटरूपमें अथवा गुप्तरूपमें भी पाप करनेवाला पापका भागी होता है। दूसरोंके घर तथा खेतका अपहरण करनेवाले, अगम्या स्त्रीके साथ समागम करनेवाले, आग लगानेवाले, विष देनेवाले, हथियार लेकर मारनेके लिये उद्यत, अभिचारपरायण, राजाके विरोधमें विद्रोह करनेवाले—

\* मिताक्षरादिके मतसे यह अर्थवाद है।

एते हि कथिता लोके धर्मज्ञैराततायिनः ।  
भिक्षुकोऽव्यथवा नारी योऽपि वा स्यात् कुशीलवः ॥ १९

प्रविशेत् प्रतिषिद्धस्तु प्राज्ञयाद् द्विगुणं दमः ।  
परस्त्रीणां तु सम्भाषे तीर्थेऽरण्ये गृहेऽपि वा ॥ २०

नदीनां चैव सम्भेदे स संग्रहणमाज्ञयात् ।  
न सम्भाषेत् परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत् ॥ २१

प्रतिषिद्धे समाभाष्य सुवर्णं दण्डमहंति ।  
नैव चारणदारेषु विधिरात्मोपजीविषु ॥ २२

सञ्जयन्ति मनुष्यैस्ता निगूढं वा चरन्त्युत ।  
किंचिदेव तु दाप्यः स्यात् सम्भाषेणापचारयन् ॥ २३

प्रेष्यासु चैव सर्वासु गृहप्रब्रजितासु च ।  
योऽकामां दूषयेत् कन्यां स सद्यो वधमहंति ॥ २४

सकामां दूषयाणस्तु प्राज्ञयाद् द्विशतं दमम् ।  
यश्च संरक्षकस्तत्र पुरुषः स तथा भवेत् ॥ २५

पारदारिकवद् दण्ड्यो योऽपि स्यादवकाशदः ।  
बलात् संदूषयेद् यस्तु परभार्या नरः व्वचित् ॥ २६

वधो दण्डो भवेत्तस्य नापराधो भवेत् स्त्रियाः ।  
रजस्तृतीयं या कन्या स्वगृहे प्रतिपद्यते ॥ २७

अदण्ड्या सा भवेद् राजा वरयन्ती पतिं स्वयम् ।  
स्वदेशे कन्यकां दत्त्वा तामादाय तथा व्रजेत् ॥ २८

परदेशे भवेद् वध्यः स्त्रीचौरः स यतो भवेत् ।  
अद्रव्यां मृतपल्लीं तु संगृह्णनापराध्यति ॥ २९

सद्रव्यां तां संग्रहीता दण्डं तु क्षिप्रमहंति ।  
उत्कृष्टं या भजेत् कन्या देया तस्यैव सा भवेत् ॥ ३०

यच्चान्यं सेवमानां च संयतां वासयेद् गृहे ।

उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमहंति ।  
जघन्यमुत्तमा नारी सेवमाना तथैव च ॥ ३१

इनको धर्मज्ञोंने लोकमें आततायी बतलाया है। यदि भिक्षुक, परायी स्त्री तथा चारण आदि निषेध करनेपर भी घरमें घुस जाते हैं तो उन्हें दुगुना दण्ड देना चाहिये। तीर्थ, जंगल या घरमें परायी स्त्रियोंके साथ वार्तालाप करनेवाले तथा नदीकी धाराका भेदन करनेवालेको पकड़कर बंद कर देना चाहिये। ‘परायी स्त्रीके साथ सम्भाषण नहीं करना चाहिये’—ऐसी निषेधाज्ञा घोषित कर दे। निषेध होनेपर भी यदि कोई सम्भाषण करता है तो वह एक सुवर्ण-मुद्राके दण्डका भागी होता है। किंतु यह दण्ड चारणों, स्त्रियों तथा अन्तःपुरमें प्रवेश कर नृत्य-गीतादिद्वारा अपनी जीविका चलानेवालेको नहीं देना चाहिये। ऐसे लोग यदि अन्तःपुरके लोगोंके साथ सम्भाषण करते हैं या वहाँ घूमते-फिरते हैं तो उन्हें तथा घरसे निकालकर बाहर घूमती हुई सभी दासियोंको नाममात्रका दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति किसी कुमारी कन्याके साथ बलात्कार करता है, वह तुरंत ही मार डालने योग्य है। यदि कोई किसी कामुकी कुमारी कन्याके साथ व्यभिचार करता है तो उसे दो सौ पणका दण्ड देना चाहिये और वहाँ जो संरक्षणकर्ता पुरुष है, उसे भी यही दण्ड देना चाहिये ॥ ११४—१२५ ॥

जो ऐसे व्यभिचारोंको सम्भव बनानेमें अवकाश देता है, उसे परायी स्त्रीके साथ व्यभिचार करनेवालेके समान ही दण्ड देना चाहिये। जो मनुष्य दूसरेकी स्त्रीके साथ बलात्कार करता है, उसे प्राणदण्ड देना चाहिये और इसमें उस स्त्रीका कोई भी अपराध नहीं मानना चाहिये। जो कन्या पिताके घरपर तीसरी बार रजस्वला होकर स्वयं पतिका वरण कर लेती है, वह राजाद्वारा दण्डनीय नहीं होती। जो अपने देशमें कन्यादान देकर पुनः उसे लेकर परदेशमें भाग जाता है, उसे प्राणदण्ड देना चाहिये; क्योंकि वह स्त्री-चोर है। द्रव्यहीना, विधवा स्त्रीको ग्रहण करनेवाला अपराधी नहीं माना जाता, किंतु सम्पत्तिसहित विधवाको स्वीकार करनेवाला शीघ्र ही दण्डका भागी होता है। जो कन्या अपनी जाति अथवा योग्यतासे उत्कृष्ट व्यक्तिसे प्रेम करती है तो उसी व्यक्तिको दे देना चाहिये, किंतु जो कन्या किसी कम योग्यतावालेसे प्रेम करती है, उसे विशेष संयमके साथ घरमें ही रखे। यदि नीच जातिवाला जघन्य पुरुष उत्तम जातिकी कन्याके साथ प्रेम करता है तो उसे प्राण-दण्ड देना चाहिये। इसी प्रकार यदि उत्तम जातिकी स्त्री किसी नीच जातिके पुरुषके साथ प्रेम करती है तो वह भी प्राण-दण्डके योग्य है।

भर्तारं लङ्घयेद् या स्त्री ज्ञातिभिर्बलदर्पिता ।  
तां च निष्कासयेद् राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ॥ १३२

हताधिकारां मलिनां पिण्डमात्रोपजीविनीम् ।  
वासयेत् स्वैरिणीं नित्यं सवर्णेनाभिदूषिताम् ॥ १३३

ज्यायसा दूषिता नारी मुण्डनं समवाप्नुयात् ।  
वासश्च मलिनं नित्यं शिखां सम्प्राप्नुयाद् दश ॥ १३४

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः क्षत्रविद्शूद्रयोषितः ।  
व्रजन् दाव्यो भवेद् राजा दण्डमुत्तमसाहसम् ॥ १३५

वैश्यागमे च विग्रस्य क्षत्रियस्यान्त्यजागमे ।  
मध्यमं प्रथमं वैश्यो दण्डयः शूद्रागमाद् भवेत् ॥ १३६

शूद्रः सवर्णागमने शतं दण्डयो महीक्षिता ।  
वैश्यस्तु द्विगुणं राजन् क्षत्रस्तु त्रिगुणं तथा ॥ १३७

ब्राह्मणश्च भवेद् दण्डस्तथा राजंश्चतुर्गुणम् ।  
अगुप्तासु भवेद् दण्डः सुगुप्तास्वधिको भवेत् ॥ १३८

माता पितृव्यसा श्वश्रूमातुलानी पितृव्यजा ।  
पितृव्यसखिशिष्यस्त्री भगिनी तत्सखी तथा ।  
भ्रातृभार्यागमे पूर्वाद् दण्डस्तु द्विगुणो भवेत् ॥ १३९

भागिनेयी तथा चैव राजपत्नी तथैव च ।  
तथा प्रव्रजिता नारी वर्णोत्कृष्टा तथैव च ॥ १४०

इत्यगम्याश्च निर्दिष्टास्तासां तु गमने नरः ।  
शिश्नस्योत्कर्तनं कृत्वा ततस्तु वधमर्हति ॥ १४१

चण्डालीं च श्वपाकीं च गच्छन् वधमवाप्नुयात् ॥ १४२

तिर्यग्योनिं च गोवर्ज्यं मैथुनं यो निषेवते ।  
वपनं ग्राप्नुयाद् दण्डं तस्याश्च यवसोदकम् ॥ १४३

जो स्त्री अपने जाति-भाइयोंके बलसे गर्वीली होकर अपने पतिको छोड़ देती है, उसे घरसे निकालकर अनेक व्यक्तियोंसे युक्त संस्थानमें रख दे । राजा सवर्ण पुरुषद्वारा दूषित कुलटा स्त्रीको सभी अधिकारोंसे वञ्चित कर मलिन बना दे और भोजनमात्रका प्रबन्ध कर घरमें पड़ा रहने दे । उत्तम कुल एवं जातिमें उत्पन्न हुई स्त्री यदि दूषित हुई हो तो उसकी दस चोटियाँ रखकर शेष बाल कटवा दे और नित्य मैला वस्त्र पहननेको दे । यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य क्रमसः क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रकी स्त्रीके साथ दुराचार करते हैं तो वे राजाद्वारा उत्तमसाहस नामक दण्डके भागी होते हैं । यदि ब्राह्मण वैश्य-स्त्रीके साथ और क्षत्रिय अन्त्यज-स्त्रीके साथ पापाचरण करते हैं तो उन्हें मध्यमसाहसका दण्ड देना चाहिये और यदि वैश्य शूद्र स्त्रीके साथ व्यभिचार करता है तो उसे भी पूर्वोक्त रीतिके अनुसार उत्तमसाहसका दण्ड मिलना चाहिये । राजन् ! यदि शूद्र अपनी जातिकी स्त्रीके साथ समागम करता है तो उसे राजाद्वारा सौ मुद्राओंका दण्ड मिलना चाहिये । इसी प्रकार सवर्ण स्त्रीके साथ पापाचरण करनेसे वैश्यको दो सौ, क्षत्रियको तीन सौ तथा ब्राह्मणको चार सौ मुद्राओंका दण्ड देनेका विधान है । ये दण्ड अरक्षित स्त्रीके साथ पापाचरण करनेपर बताये गये हैं, किंतु सुरक्षित स्त्रियोंके साथ दुराचार करनेपर इससे अधिक दण्ड देना चाहिये ॥ १२६—१३८ ॥

माता, फूफी, सास, मामी, चचेरी बहन, चाचीकी सखी, शिष्यकी स्त्री, बहिन, उसकी सखी तथा भाईकी स्त्री—इन सबके साथ समागम करनेपर पूर्वकथित दण्डसे दुगुना दण्ड देना चाहिये । भानजेकी स्त्री, राजाकी पत्नी, संन्यासिनी तथा उच्चवर्णकी स्त्री—ये सभी अगम्या मानी गयी हैं । इन सबके साथ समागम करनेवाले व्यक्तिके लिंगको कटवाकर तत्पक्षात् उसे प्राण-दण्ड देना चाहिये । इसी प्रकार चाण्डालकी स्त्री तथा कुत्तेको खानेवालोंकी स्त्रीके साथ व्यभिचार करनेवालेको प्राण-दण्ड देना चाहिये । गौको छोड़कर अन्य तिर्यग् योनियोंमें सम्भोग करनेवाले व्यक्तिको मुण्डनका दण्ड देकर उस पशुके लिये घास तथा जल देनेका दण्ड देना चाहिये ।

सुवर्णं च भवेद् दण्डो गां ब्रजन् मनुजोत्तम ।  
वेश्यागामी द्विजो दण्डो वेश्याशुल्कसमं पणम् ॥ १४४

गृहीत्वा वेतनं वेश्या लोभादन्यत्र गच्छति ।  
वेतनं द्विगुणं दद्याद् दण्डं च द्विगुणं तथा ॥ १४५

अन्यमुद्दिश्य यो वेश्यां नयेदन्यस्य कारणात् ।  
तस्य दण्डो भवेद् राजन् सुवर्णस्य च माषकम् ॥ १४६

नीत्वा भोगान् यो दद्याद् दाव्यो द्विगुणवेतनम् ।  
राजश्च द्विगुणं दण्डं तथा धर्मो न हीयते ॥ १४७

बहूनां ब्रजतामेकां सर्वे ते द्विगुणं दमम् ।  
दद्युः पृथक् पृथक् सर्वे दण्डं च द्विगुणं परम् ॥ १४८

न माता न पिता न स्त्री न ऋत्विग् याज्यमानवाः ।  
अन्योन्यं पतितास्त्याज्या योगे दण्डाः शतानि षट् ॥ १४९

पतिता गुरवस्त्याज्या न तु माता कथञ्चन ।  
गर्भधारणपोषाभ्यां तेन माता गरीयसी ॥ १५०

अधीयानोऽव्यनध्याये दण्डः कार्षपणत्रयम् ।  
अध्यापकश्च द्विगुणं तथाऽचारस्य लङ्घने ॥ १५१

अनुक्तस्य भवेद् दण्डः सुवर्णस्य च कृष्णलम् ।  
भार्या पुत्रश्च दासश्च शिष्यो भ्राता च सोदरः ॥ १५२

कृतापराधास्ताङ्गाः स्यू रज्ज्वा वेणुदलेन वा ।  
पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गं कथञ्चन ॥ १५३

अतोऽन्यथा प्रहरतः प्राप्तं स्याच्चोरकिल्बिषम् ।  
दूरीं समाहयंश्चैव यो निषिद्धं समाचरेत् ॥ १५४

प्रचञ्चनं वा प्रकाशं वा स दण्डः पार्थिवेच्छ्या ।  
वासांसि फलकैः इलक्षणैर्निर्णिज्याद् रजकः शनैः ॥ १५५

अतोऽन्यथा हि कुर्वस्तु दण्डः स्याद् रुक्मभाषकम् ।  
रक्षास्वधिकृतैश्चैव प्रदेयं यैर्विलुप्यते ॥ १५६

मानवश्रेष्ठ ! गौके साथ भोग करनेवाले व्यक्तिको सुवर्णका दण्ड लगाना चाहिये । वेश्याके साथ समागम करनेवाले ब्राह्मणको वेश्याको दिये गये शुल्कके बराबर अर्थ-दण्ड देना चाहिये । वेश्या यदि वेतन स्वीकार करनेके उपरान्त लोभवश अन्यत्र चली जाती है तो उसे दुगुना दण्ड देनेके उपरान्त लिये हुए शुल्कका दूना अर्थ-दण्ड भी देना चाहिये । राजन् ! यदि कोई वेश्याको दूसरेके बहानेसे किसी दूसरेके पास लिवा जाता है तो उसे एक मासा सुवर्णका दण्ड देना चाहिये । जो वेश्याको लानेके बाद उसके साथ सम्भोगादि नहीं करता, उसे दूना दण्ड देकर उस वेश्याको दूना शुल्क दिलाना चाहिये । ऐसा करनेसे राजाका धर्म क्षीण नहीं होता । यदि अनेक व्यक्ति एक वेश्याके साथ समागम करनेको उपस्थित हों तो राजा उनको दूना दण्ड दे और वे सब पृथक्-पृथक् उस वेश्याको दूना द्रव्य दण्डरूपमें अधिक दें । माता, पिता, स्त्री, पुरोहित और यजमान—ये पतित होनेपर भी नहीं छोड़े जाते, पर यदि कोई मनुष्य इनमेंसे किसीको छोड़ता है तो वह छः सौ सुवर्ण-मुद्राओंका दण्डभागी होता है । पतित होनेपर गुरुजन भी त्याज्य हो सकते हैं, किंतु माता नहीं छोड़ी जा सकती । गर्भकालमें धारण-पोषण करनेके कारण माताका गौरव गुरुजनोंसे भी अधिक है ॥ १३९—१५० ॥

अनध्यायके दिन भी अध्ययन करनेवाले ब्राह्मणको तीन कार्षपणका दण्ड देना चाहिये और अध्यापकको दुगुना दण्ड देनेका विधान है । इसी प्रकार उन्हें अपने-अपने आचारोंका उल्लङ्घन करनेपर भी दण्ड देना चाहिये । जिन-जिन अपराधोंमें केवल दण्डकी चर्चा की गयी है और कोई परिमाण नहीं निश्चित किया गया है, वहाँ सुवर्णका एक कृष्णल दण्डरूपमें समझना चाहिये । स्त्री, पुत्र, सेवक, शिष्य तथा सगा भाई—ये यदि अपराध करते हैं तो इन्हें रस्सीसे बाँधकर बाँसकी छड़ीसे शरीरके पिछले भागपर दण्ड देना चाहिये; किंतु सिरपर किसी प्रकार भी चोट न लगाने दे । इन कहेगये स्थानोंके अतिरिक्त अन्य स्थानोंपर प्रहर करनेवालेको चोरी करनेके समान पाप लगता है । जो दूरीको बुलाकर प्रकटरूपमें या गुप्तरूपमें निषिद्धाचरण करता है, उसके लिये राजा स्वेच्छानुसार दण्डकी व्यवस्था करे । धोबीको चाहिये कि वह कोमल काठके पीठकोंपर वस्त्रको धीरे-धीरे साफ करे । यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उसे एक मासे सुवर्णका दण्ड देना चाहिये । राजाकी ओरसे रक्षा आदि स्थानोंपर नियुक्त किये गये लोग यदि देय भागको हड्डप

कर्षकेभ्योऽर्थमादाय यः कुर्यात् करमन्यथा ।  
तस्य सर्वस्वमादाय तं राजा विप्रवासयेत् ॥ १५७

ये नियुक्ताः स्वकार्येषु हन्युः कार्याणि कार्यिणाम् ।  
निर्घट्णाः क्रूरमनसः सर्वे कर्मपराधिनः ॥ १५८

धनोष्मणा पच्यमानास्तान् निःस्वान् कारयेनृपः ।  
कूटशासनकर्तुश्च प्रकृतीनां च दूषकान् ॥ १५९

स्त्रीबालब्राह्मणांश्च वध्यात् तत्सेविनस्तथा ।  
अमात्यः प्राइविवाको वा यः कुर्यात् कार्यमन्यथा ॥ १६०

तस्य सर्वस्वमादाय तं राजा विप्रवासयेत् ।  
ब्रह्मणश्च सुरापश्च तस्करो गुरुतल्पगः ॥ १६१

एतान् सर्वान् पृथग्गिस्यान्महापातकिनो नरान् ।  
महापातकिनो वध्या ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥ १६२

कृतचिह्नं स्वदेशाच्च शृणु चिह्नाकृतिं ततः ।  
गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः ॥ १६३

स्तेने तु श्वपदं तद्वद् ब्रह्महन्यशिराः पुमान् ।  
असम्भाष्या ह्यसम्भोज्या असंवाह्या विशेषतः ॥ १६४

त्यक्तव्याश्च तथा राजञ्जातिसम्बन्धिबाच्छ्वैः ।  
महापातकिनो वित्तमादाय नृपतिः स्वयम् ॥ १६५

अप्सु प्रवेशयेद् दण्डं वरुणायोपपादयेत् ।  
सहोढं न विना चोरं घातयेद् धार्मिको नृपः ॥ १६६

सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन् ।  
ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चोराणां भक्ष्यदायकाः ॥ १६७

भाण्डावकाशदाश्वैव सर्वास्तानपि घातयेत् ।  
राष्ट्रेषु राजाधिकृताः सामन्ताश्वैव दूषकाः ॥ १६८

अभ्याघातेषु मध्यस्थाः क्षिप्रं शास्यास्तु चोरवत् ।  
ग्रामघाते मठाभङ्गे पथि मोषाभिमर्दने ॥ १६९

शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः ।  
राजः कोशापहर्तुश्च प्रतिकूलेषु संस्थितान् ॥ १७०

लेते हैं या किसानोंसे कर लेकर उसे दूसरे कार्योंमें लगा देते हैं तो राजा उनका सर्वस्व छीनकर उन्हें निर्वासनका दण्ड दे । जो लोग अपने पदपर नियुक्त होकर अन्य कर्मचारियोंके कार्योंको हानि पहुँचाते हैं, वे सभी निर्दय, क्रूरात्मा, कर्मके अपराधी और धनकी गर्मीसे उन्मत्त हो जाते हैं, राजाको चाहिये कि उन्हें निर्धन बना दे । यदि राजाके सेवकगण कूटनीतिसे शासन करनेवाले, प्रजावर्गको राजाके विरुद्ध भड़कानेवाले, स्त्री, बालक और ब्राह्मणकी हत्या करनेवाले हों तो राजा उन्हें प्राण-दण्ड दे । चाहे अमात्य हो या प्रधान न्यायकर्ता, यदि वह अपने कर्तव्यका पालन नहीं करता तो राजा उसका सर्वस्व छीनकर उसे अपने देशसे बाहर निकाल दे । ब्रह्महत्यारा, मद्यपायी, चोर तथा गुरु-स्त्रीगामी—इन महापातकी पुरुषोंको राजा पृथक्-पृथक् प्राण-दण्डकी व्यवस्था करे । ऐसे महापापियोंको राजा प्राण-दण्ड दे, किंतु ब्राह्मणको चिह्नित करके अपने देशसे निकाल दे । उक्त चिह्नका आकार बताता हूँ, सुनिये । यदि ब्राह्मण गुरुपत्नीके साथ समागम करता है तो उसके शरीरमें भगका आकार, मदिरापायी हो तो सुराध्वजका चिह्न, चोरीके अपराधमें कुत्तेके पैरोंका चिह्न तथा ब्रह्मधातीके शरीरमें बिना सिरके पुरुषका चिह्न बनाना चाहिये । राजन् ! ऐसे घोर पापियोंके साथ उनकी जातिवाले, सम्बन्धी तथा भाई-बन्धुओंको विशेषतया सम्भाषण, सहभोज तथा विवाहादि-सम्बन्ध त्याग देना चाहिये ॥ १५१—१६४ १/२ ॥

राजा महापापी पुरुषोंकी सम्पत्तिको अपने अधीन कर ले और उसमेंसे दण्डभागको वरुणके उद्देश्यसे जलमें छोड़ दे । धार्मिक राजाको सपलीक चोरको प्राण-दण्ड नहीं देना चाहिये, किंतु चुरायी हुई वस्तुके साथ ही यदि सपलीक चोर पकड़ा जाता है तो उसे भी राजा बिना किसी विचारके प्राण-दण्ड दे । ग्रामोंमें भी जो कोई चोरोंको भोजन, पात्र तथा रहनेका आश्रय देनेवाले हों तो इन सभीको प्राण-दण्ड देना चाहिये । राष्ट्रमें राजाके अधिकारी तथा अधीनस्थ सामन्तगण यदि दुष्ट हो गये हों या बुरे अवसरपर तटस्थ रहते हों तो वे भी चोरोंके समान दण्डके भागी होते हैं । ग्राममें किसी विनाशके उपस्थित होनेपर, किसी घर आदिके गिरनेके अवसरपर या मार्गमें किसी रमणीपर अत्याचार किये जानेपर राजाके जो अधिकारी या सामन्त अपनी शक्तिके अनुसार उसकी रक्षाके लिये नहीं दौड़ते, वे परिवार तथा साधनसहित निर्वासित कर देने योग्य हैं । राजाके कोशको अपहृत करनेवालों,

अरीणामुपकर्तृश्च घातयेद् विविधैर्वर्धैः ।  
 संधिं कृत्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः ॥ १७१  
 तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णशूले निवेशयेत् ।  
 तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन तु ॥ १७२  
 यस्तु पूर्वं निविष्टं स्यात् तडागस्योदकं हरेत् ।  
 आगमं चाप्यपां भिन्द्यात् स दायः पूर्वसाहसम् ॥ १७३  
 कोष्ठागारायुधागारदेवागारविभेदकान् ।  
 पापान् पापसमाचारान् पातयेच्छीघ्रमेव च ॥ १७४  
 समुत्सृजेद् राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि ।  
 स हि कार्षपणं दण्ड्यस्तत्त्वमेध्यं च शोधयेत् ॥ १७५  
 आपद्वतोऽथवा वृद्धो गर्भिणी बाल एव च ।  
 परिभाषणमर्हन्ति न च शोध्यमिति स्थितिः ॥ १७६  
 प्रथमं साहसं दण्डयो यश्च मिथ्या चिकित्सते ।  
 परुषे मध्यमं दण्डमुत्तमं च तथोत्तमे ॥ १७७  
 छत्रस्य ध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकाः ।  
 प्रतिकुर्युस्ततः सर्वे पञ्च दण्डयाः शतानि च ॥ १७८  
 अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा ।  
 मणीनामपि भेदेन दण्डयः प्रथमसाहसम् ॥ १७९  
 समं च विषमं चैव कुरुते मूल्यतोऽपि वा ।  
 समाप्नुयात् स वै पूर्वं दमं मध्यममेव च ॥ १८०  
 बन्धनानि च सर्वाणि राजमार्गे निवेशयेत् ।  
 कर्षन्तो यत्र दृश्यन्ते विकृताः पापकारिणः ॥ १८१  
 प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च भेदकम् ।  
 द्वाराणां चैव भेत्तारं क्षिप्रं निर्वासयेत् पुरात् ॥ १८२  
 मूलकर्माभिचारेषु कर्तव्यो द्विशतो दमः ।  
 अबीजविक्रयी यश्च बीजोत्कर्षक एव च ॥ १८३  
 मर्यादाभेदकश्चापि विकृतं वधमाप्नुयात् ।  
 सर्वसंकरपापिष्ठं हेमकारं नराधिप ॥ १८४

शत्रु-पक्षसे मिले रहनेवालों तथा शत्रुओंका उपकार करनेवालोंको विविध वधोपायोंद्वारा मरवा डालना चाहिये । जो चोर रातमें सेंध लगाकर चोरी करते हैं, राजाको उनके हाथोंको काटकर तीखे शूलपर बैठा देना चाहिये । तड़ागका भेदन करनेवालेको राजा जलमें डुबोकर मृत्युदण्ड दे । जो व्यक्ति तालाबमें भरे हुए जलकी चोरी करता है या उसमें जलके आनेके मार्गोंको रोक देता है, उसे पूर्ववत् साहस-दण्ड देना चाहिये । कोष्ठागार, आयुधागार तथा देवागारोंको तोड़नेवाले पापाचारियों एवं पापयुक्त किंवदन्तीसे लिप्त पुरुषोंको राजा शीघ्र ही प्राण-दण्ड दे ॥१८५—१८४ ॥

जो किसी आपत्तिके न होनेपर भी सड़कपर मल आदि अपवित्र वस्तुओंको फेंकता है, उसे एक कार्षपणका दण्ड देना चाहिये और उसीसे उस गंदी वस्तुको हटवाना चाहिये । यदि आपत्तिग्रस्त, वृद्ध, गर्भिणी स्त्री अथवा बालक ऐसा अपराध करते हैं तो उन्हें कहकर मना कर दे, उनसे सफाई न कराये, ऐसी मर्यादा है । जो वैद्य झूठी दवा करता है या वैद्य न होकर भी दवा देता है, उसे प्रथम साहसका दण्ड देना चाहिये । जिसकी दवा निकृष्ट है, उसे मध्यम साहसका दण्ड तथा जिसकी दवा अत्यन्त अवगुणकारी है, उसे उत्तमसाहसका दण्ड देना चाहिये । छत्र, ध्वजाके दण्डों तथा प्रतिमाओंको तोड़नेवालेको पाँच सौ मुद्राका दण्ड देना चाहिये और उन्हींसे इन सबका प्रतिशोध भी कराना चाहिये । अदूषित वस्तुओंको दूषित करने या तोड़नेवालेको तथा मणि आदि मूल्यवान् वस्तुओंको नष्ट करनेवालेको प्रथमसाहसका दण्ड देना चाहिये । किसी वस्तुके मूल्यमें जो कमी या वृद्धि करता है, उसे क्रमशः पूर्व और मध्यम साहसका दण्ड देना चाहिये । राजाको अपराधियोंके सभी प्रकारके दण्डोंकी व्यवस्था मुख्य सड़कपर करनी चाहिये जिससे उस दण्डको भुगतनेवाले पापात्माको सभी लोग देख सकें । दुर्गकी चहारदीवारी, खाइयों तथा दरवाजोंको तोड़नेवालेको राजा तुरंत अपने पुरसे बाहर निकाल दे । वशीकरण, अभिचार आदि करनेवालेको राजा दो सौ पणका दण्ड दे । घटिया बीज बेचनेवाले, बोये हुए खेतको जोतनेवाले तथा खेतोंकी मेड़को तोड़नेवालेको विकृत मृत्युका दण्ड देना चाहिये । नराधिप ! अच्छी धातुमें नकली धातु

अन्याये वर्तमानं च छेदयेल्लवशः क्षुरैः ।  
द्रव्यमादाय वणिजामनर्घेणावरुन्धताम् ॥ १८५

द्रव्याणां दूषको यस्तु प्रतिच्छन्स्य विक्रयी ।  
मध्यमं प्राप्नुयाद् दण्डं कूटकर्ता तथोत्तमम् ॥ १८६

राजा पृथक् पृथक् कुर्याद् दण्डं चोत्तमसाहसम् ।  
शास्त्राणां यज्ञतपसां देशानां क्षेपको नरः ॥ १८७

देवतानां सतीनां च उत्तमं दण्डमर्हति ।  
एकस्य दण्डपारुष्ये बहूनां द्विगुणो दमः ॥ १८८

कलहो यदगतो दाष्ठो दण्डश्च द्विगुणस्ततः ।  
मध्यमं ब्राह्मणं राजा विषयाद् विप्रवासयेत् ॥ १८९

लशुनं च पलाण्डुं न शूकरं ग्रामकुकुटम् ।  
तथा पञ्चनखं सर्वं भक्ष्यादन्यतु भक्षयेत् ॥ १९०

विवासयेत् क्षिप्रमेव ब्राह्मणं विषयात् स्वकात् ।  
अभक्ष्यभक्षणे दण्डयः शूद्रो भवति कृष्णलम् ॥ १९१

ब्राह्मणक्षत्रियविशां चतुस्त्रिद्विगुणं स्मृतम् ।  
यः साहसं कारयति स दण्डयो द्विगुणं दमम् ॥ १९२

यस्त्वेवमुक्त्वाहं दाता कारयेत् य चतुर्गुणम् ।  
संदिष्टस्याप्रदाता च समुद्रगृहभेदकः ॥ १९३

पञ्चाशत्पणिको दण्डस्तत्र कार्यो महीक्षिता ।  
अस्पृश्यं च स्पृशनार्थो हायोग्यो योग्यकर्मकृत् ॥ १९४

पुंस्त्वहर्ता पशूनां च दासीगर्भविनाशकृत् ।  
शूद्रप्रव्रजितानां च दैवे पित्र्ये च भोजकः ॥ १९५

अव्रजन् बाढमुक्त्वा तु तथैव च निमन्त्रणे ।  
एते कार्षपणशतं सर्वे दण्डया महीक्षिता ॥ १९६

दुःखोत्पादि गृहे द्रव्यं क्षिपन् दण्डयस्तु कृष्णलम् ।  
पितापुत्रविरोधे च साक्षिणां द्विशतो दमः ।  
स्यान्नरश्च तथार्थः स्यात् तस्याप्याष्टशतो दमः ॥ १९७

मिलानेवाले पापात्मा एवं अन्यायी सोनारको छुरेसे खण्ड-खण्ड काट डालना चाहिये । जो बनियेसे वस्तु लेकर उसका दाम नहीं चुकाता, अच्छी वस्तुको बुरी बतलाता है और वस्तुको बाजारमें छिपाकर बेंचता है, उसे मध्यम साहसका दण्ड देना चाहिये । इसी प्रकार कूटनीतिका प्रयोग करनेवालेको उत्तम साहसका दण्ड देनेका विधान है । इन सभी अपराधियोंको राजा अलग-अलगसे उत्तम साहसका दण्ड दे । शास्त्र, यज्ञ, तपस्या, देश, देवता तथा सतीकी निन्दा करनेवाला पुरुष उत्तम साहसके दण्डका पात्र है । अनेक व्यक्ति किसी एक व्यक्तिके प्रति कठोर दण्डनीय अपराध करते हैं तो उन सबको दुगुना दण्ड देना चाहिये ॥ १८५—१८८ ॥

जिस व्यक्तिपर कलहका आरोप हो, उसे दूना दण्ड देना चाहिये । जो ब्राह्मण अपने आचार-विचारसे अधम हो गया हो, उसे राजा अपने देशसे निकाल दे । भक्ष्य पदार्थोंको छोड़कर जो लहसुन, प्याज, सूअर, ग्रामीण मुरगे, पाँच नखवाले जीवों तथा अन्य अभक्ष्य पदार्थोंको खाता है, उस ब्राह्मणको शीघ्र ही अपने राष्ट्रसे निकाल देना चाहिये । अभक्ष्य पदार्थोंको खानेसे शूद्रको एक कृष्णलका दण्ड देना चाहिये तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको क्रमशः चौंगुना, तिगुना तथा दुगुना दण्ड देनेका विधान है । जो अभक्ष्य-भक्षणके लिये उत्साहित करता है, उसे दूना दण्ड देना चाहिये । जो मनुष्य ‘मैं देता हूँ’ ऐसा कहकर अभक्ष्य वस्तुओंके भक्षणमें दूसरेको प्रवृत्त करता है, उसे भी चौंगुना दण्ड मिलना चाहिये । संदेशको न देनेवाला तथा समुद्रमें बने हुए अइडेको नष्ट करनेवाले व्यक्तियोंको राजा पचास मुद्राका दण्ड दे । जो श्रेष्ठ होकर अस्पृश्यका स्पर्श करता है, अयोग्य होकर योग्य कार्यमें हाथ लगाता है, पशुओंके पुंस्त्वका अपहरण करता है, दासीके गर्भको नष्ट करता है, शूद्र और संन्यासियोंके घर देव-कार्य और पितृकार्यमें भोजन करता है तथा निमन्त्रण स्वीकार करनेपर भोजन करने नहीं जाता—ये सभी राजाद्वारा सौ पण कार्षपण-दण्डके भागी हैं । अपने घरमें पीडोत्पादक वस्तु रखनेवालेको एक कृष्णलका दण्ड देना चाहिये । पिता और पुत्रके पारस्परिक विरोधमें साक्षी देनेवालोंको दो सौ पणका दण्ड लगाना चाहिये । यदि कोई माननीय व्यक्ति यह अपराध करता है तो उसपर एक सौ आठ पणका दण्ड लगाना चाहिये ॥ १९९—१९७ ॥

तुलाशासनमानानां कृटकृन्मानकस्य च।  
एभिश्व व्यवहर्ता च स दण्डयो दममुत्तमम्॥ १९८

विषाग्निदां पतिगुरुनिजापत्यप्रमापणीम्।  
विकर्णनासिकां व्योष्ठीं कृत्वा गोभिः प्रमापयेत्॥ १९९

ग्रामस्य दाहका ये च ये च क्षेत्रस्य वेश्मनः।  
राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्ते कटाग्निना॥ २००

ऊनं वाप्यधिकं चापि लिखेद् यो राजशासनम्।  
पारदारिकचौरं वा मुञ्चतो दण्ड उत्तमः॥ २०१

अभक्ष्येण द्विजं दूष्य दण्डय उत्तमसाहसम्।  
क्षत्रियं मध्यमं वैश्यं प्रथमं शूद्रमर्थकम्॥ २०२

मृताङ्गलग्नविक्रेतुर्गुरुं ताडयतस्तथा।  
राजयानासनारोदुर्दण्ड उत्तमसाहसः॥ २०३

यो मन्येताजितोऽस्मीति न्यायेनापि पराजितः।  
तमायान्तं पुनर्जित्वा दण्डयेद् द्विगुणं दमम्॥ २०४

आहानकारी मध्यः स्यादनाहाने तथाह्यन्।  
दण्डकस्य च यो हस्तादभियुक्तः पलायते॥ २०५

हीनः पुरुषकारेण तं दण्ड्याद् दाण्डको धनम्।  
प्रेष्यापराधात् प्रेष्यस्तु स दण्डयश्चार्थमेव च॥ २०६

दण्डार्थं नियमार्थं च नीयमानेषु बन्धनम्।  
यदि कश्चित् पलायेत दण्डश्चाष्टगुणो भवेत्॥ २०७

अनिन्दिते विवादे तु नखरोमावतारणम्।  
कारयेद् यः स पुरुषो मध्यमं दण्डमर्हति॥ २०८

बन्धनं चाप्यवध्यस्य बलान्मोचयते तु यः।  
वध्यं विमोचयेद् यस्तु दण्डयो द्विगुणभाग् भवेत्॥ २०९

दुर्दृष्टव्यवहाराणां सभ्यानां द्विगुणो दमः।  
राजा त्रिंशदगुणो दण्डः प्रक्षेप्य उदके भवेत्॥ २१०

तराजू, शासन, मानदण्ड और धर्मकाँटके प्रति कूटनीतिका प्रयोग करनेवाले तथा ऐसे व्यक्तिके साथ व्यवहार करनेवालेको उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये। विष देनेवाली, आग लगानेवाली, पति, गुरुजन एवं अपने बच्चोंकी हत्या करनेवाली स्त्रीको कान, ओठ और नाकसे रहित करके पशुओंद्वारा मरवा डालना चाहिये। जो गाँव, खेत और घरमें आग लगानेवाले तथा राजपत्नीके साथ व्यभिचार करनेवाले हैं, उन्हें घास-फूसकी अग्निमें जला देना चाहिये। जो (राजाका अधिकारी) राजाज्ञाको घटा-बढ़ाकर लिखता है तथा दूसरेकी स्त्रीके साथ अपराध करनेवाले एवं चोरको छोड़ देता है, उसे उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति अभक्ष्य वस्तु खिलाकर ब्राह्मणको दूषित करता है, उसे उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये। इसी प्रकार क्षत्रियको विधर्मी करनेवालेको मध्यम, वैश्यको प्रथम तथा शूद्रको अर्धसाहसका दण्ड देना चाहिये। मृतकके शरीरपर लगे हुए आभूषण तथा वस्त्रादिको बेंचेनेवाले, गुरुको पीटनेवाले, राजाके वाहन और आसनपर बैठनेवालेको उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति न्यायद्वारा या युद्धमें पराजित होनेपर भी अपनेको 'मैं पराजित नहीं हूँ'—ऐसा मानता है, उसे आता हुआ देखकर राजाको चाहिये कि उसे पुनः जीतकर दुगुने पणका दण्ड दे। जो व्यक्ति अपराध होनेपर सूचनाद्वारा बुलानेसे नहीं आता है और जो बिना बुलाये ही आकर सम्मुख उपस्थित होता है तथा जो अपराधी दण्ड देनेवालेके हाथसे छुड़ाकर भाग जाता है—ऐसे हीन लोगोंको पौरुषपूर्वक दण्ड देनेवाला न्यायकर्ता आर्थिक दण्ड दे। जो व्यक्ति दूत होनेपर अपने कर्तव्यका पालन नहीं करता, उसे उपर्युक्त दण्डका आधा दण्ड देना चाहिये। दण्ड या नियमनके लिये बाँधकर ले जाते समय यदि कोई अपराधी भाग जाता है तो उसे आठगुना दण्ड देना चाहिये। जो पुरुष सामान्य वाद-विवादमें किसीके नख या बालको काट लेता है, वह मध्यम दण्डका भागी होता है॥ १९८—२०८॥

जो व्यक्ति बलपूर्वक अवध्य अपराधीके बन्धनोंको खोल देता है तथा जो मृत्यु-दण्डके अपराधीको छोड़ देता है, वह दुगुने दण्डका भागी होता है। राजाके जो सभासद उपस्थित विषयोंमें कुशलतासे मनोयोग नहीं देते, उन्हें दूना दण्ड देना चाहिये। राजा ऐसे अपराधियोंको तीसगुना अधिक दण्ड दे और जलमें फेंकवा दे।

अल्पदण्डेऽधिकं कुर्याद् विपुले चाल्पमेव च ।  
ऊनाधिकं तु तं दण्डं सभ्यो दद्यात् स्वकाद् गृहात् ॥ २११  
यावानवध्यस्य वधे तावान् वध्यस्य रक्षणे ।  
अधर्मो नृपतेर्दृष्ट एतयोरुभयोरपि ॥ २१२  
ब्राह्मणं नैव हन्यात् सर्वपापेष्ववस्थितम् ।  
प्रवासयेत् स्वकाद् राष्ट्रात् समग्रधनसंयुतम् ॥ २१३  
न जातु ब्राह्मणं वध्यात् पातकं त्वधिकं भवेत् ।  
यस्मात् तस्मात् प्रयत्नेन ब्रह्महत्यां विवर्जयेत् ॥ २१४  
अदण्डयान् दण्डयन् राजा दण्डयांश्चैवाप्यदण्डयन् ।  
अयशो महदाप्नोति नरकं चाधिगच्छति ॥ २१५  
ज्ञात्वापराधं पुरुषस्य राजा  
कालं तथा चानुमतं द्विजानाम् ।  
दण्डयेषु दण्डं परिकल्पयेत्  
यो यस्य युक्तः स समीक्ष्य कुर्यात् ॥ २१६

थोड़ेसे अपराधमें अधिक दण्ड देनेवाले तथा भीषण अपराधमें अल्प दण्ड देनेवाले न्यायकर्ताको जितना कम या अधिक दण्ड हो, उसे अपने घरसे पूर्ण करना या अपराधीको लौटाना चाहिये। अवध्य अपराधीका वध करनेमें जितना पाप लगता है उतना ही पाप वध्यको छोड़ देनेमें लगता है। राजाको इन दोनों दशाओंमें समानरूपसे पापभागी होना पड़ता है। सभी प्रकारके पापोंमें अपराधी पाये गये ब्राह्मणको मृत्युदण्ड नहीं देना चाहिये, उसे सम्पूर्ण सम्पत्तिके साथ अपने राष्ट्रसे निर्वासित कर देना चाहिये। कभी भूलकर भी ब्राह्मणका वध नहीं करना चाहिये; क्योंकि इससे अधिक पाप होता है। इसलिये राजाको ब्रह्महत्यासे बचना चाहिये। अदण्डनीय पुरुषोंको दण्ड देने तथा दण्डनीयको दण्ड न देनेसे राजा महान् अयशका भागी बनता है और मरनेपर नरकगामी होता है। इसलिये राजा मनुष्यके अपराधको भलीभाँति जानकर तथा यथासमय ब्राह्मणोंकी अनुमति लेकर दण्डनीयोंके प्रति दण्डकी कल्पना करे और जो जिस प्रकारके दण्डका पात्र हो, उसकी भलीभाँति समीक्षा कर उसे उसी प्रकारका समुचित दण्ड दे ॥ २०९—२१६ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे दण्डप्रणयनं नाम सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके राजधर्म-कीर्तन-प्रसङ्गमें दण्डनीति नामक दो सौ सत्ताईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२७ ॥

## दो सौ अद्वाईसवाँ अध्याय

### अद्वृत शान्तिका \* वर्णन

मनुरुवाच  
दिव्यान्तरिक्षभौमेषु या शान्तिरभिधीयते ।  
तामहं श्रोतुमिच्छामि महोत्पातेषु केशव ॥ १

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्रिविधामद्वृतादिषु ।  
विशेषेण तु भौमेषु शान्तिः कार्या तथा भवेत् ॥ २  
अभया चान्तरिक्षेषु सौम्या दिव्येषु पार्थिव ।  
विजिगीषुः परं राजन् भूतिकामस्तु यो भवेत् ॥ ३

मनुने पूछा—केशव! दिव्य, अन्तरिक्ष और पृथ्वीसम्बन्धी बड़े-बड़े अद्वृत उपद्रवोंके होनेपर जिस शान्तिका विधान किया जाता है, उसे मैं श्रवण करना चाहता हूँ ॥ १ ॥

मत्स्यभगवान् कहा—राजन्! अब मैं उत्पातोंके समय की जानेवाली तीनों प्रकारकी शान्तियाँ बतला रहा हूँ। उनमें विशेषरूपसे पृथ्वी-सम्बन्धी महोत्पातोंके अवसरपर शान्ति करनी चाहिये। राजन्! अन्तरिक्ष-सम्बन्धी उत्पातोंके लिये अभया तथा दिव्य उत्पातोंके लिये सौम्या शान्ति करनी चाहिये। राजन्! जो विजयाभिलाषी तथा ऐश्वर्यकामी

\* इन अद्वृतोंका वर्णन तथा इनकी शान्तियोंका विस्तृत विधान पञ्चम आर्थर्वण शान्तिकल्प एवं अर्थर्वपरिशिष्टादिमें है।

विजिगीषुः परानेवमभियुक्तस्तथा पैरः ।  
 तथाभिचारशङ्कायां शत्रूणामभिनाशने ॥ ४  
 भये महति सम्प्राप्ते अभया शान्तिरिष्यते ।  
 राजयक्षमाभिभूतस्य क्षतक्षीणस्य चाप्यथ ॥ ५  
 सौम्या प्रशस्यते शान्तिर्यज्ञकामस्य चाप्यथ ।  
 भूकम्पे च समुत्पन्ने प्राप्ते चान्कश्ये तथा ॥ ६  
 अतिवृष्ट्यामनावृष्ट्यां शलभानं भयेषु च ।  
 प्रमत्तेषु च चौरेषु वैष्णवी शान्तिरिष्यते ॥ ७  
 पश्नूनां मारणे प्राप्ते नराणामपि दारुणे ।  
 भूतेषु दृश्यमानेषु रौद्री शान्तिस्तथेष्यते ॥ ८  
 वेदनाशे समुत्पन्ने जने जाते च नास्तिके ।  
 अपूर्ज्यपूजने जाते ब्राह्मी शान्तिस्तथेष्यते ॥ ९  
 भविष्यत्यभिषेके च परचक्रभयेऽपि च ।  
 स्वराष्ट्रभेदेऽरिवधे रौद्री शान्तिः प्रशस्यते ॥ १०  
 त्र्यहातिरिक्ते पवने भक्ष्ये सर्वविगर्हिते ।  
 वैकृते वातजे व्याथौ वायवी शान्तिरिष्यते ॥ ११  
 अनावृष्टिभये जाते प्राप्ते विकृतिवर्षणे ।  
 जलाशयविकारेषु वारुणी शान्तिरिष्यते ॥ १२  
 अभिशापभये प्राप्ते भार्गवी च तथैव च ।  
 जाते प्रसववैकृत्ये प्राजापत्या महाभुज ॥ १३  
 उपस्कराणां वैकृत्ये त्वाष्ट्री पार्थिवनन्दन ।  
 बालानां शान्तिकामस्य कौमारी च तथा नृप ॥ १४  
 कुर्याच्छान्तिमथाग्नेयों सम्प्राप्ते वह्निवैकृते ।  
 आज्ञाभङ्गे तु संजाते तथा भृत्यादिसंक्षये ॥ १५  
 अश्वानां शान्तिकामस्य तद्विकारे समुत्थिते ।  
 अश्वानां कामयानस्य गान्धर्वी शान्तिरिष्यते ॥ १६  
 गजानां शान्तिकामस्य तद्विकारे समुत्थिते ।  
 गजानां कामयानस्य शान्तिराङ्गिरसी भवेत् ॥ १७  
 पिशाचादिभये जाते शान्तिर्वै नैऋती स्मृता ।  
 अपमृत्युभये जाते दुःखप्ने च तथा स्थिते ॥ १८

हो, उस शत्रुओंपर विजय पानेके इच्छुक, शत्रुओंद्वारा आक्रान्त, आभिचारिक कर्मोंकी शङ्कासे युक्त, शत्रुओंको विनष्ट करनेके लिये उद्यत राजाके लिये महान् भय उपस्थित होनेपर अभया शान्ति कही गयी है। राजयक्षमा रोगसे ग्रस्त, घावसे दुर्बल तथा यज्ञकी कामनावालेके लिये सौम्या शान्तिकी प्रशंसा की गयी है। भूकम्प आनेपर, अकाल पड़नेपर, अतिवृष्टि, अनावृष्टि एवं टिड़ियोंसे भय होनेपर, पागल और चोरसे भय उपस्थित होनेपर राजाको वैष्णवी शान्ति करानी चाहिये। पशुओं और मनुष्योंका भीषण संहार उपस्थित होनेपर तथा भूत-पिशाचादिके दिखायी देनेपर रौद्री शान्ति करानी चाहिये। वेदोंका विनाश उपस्थित होनेपर, लोगोंके नास्तिक हो जानेपर तथा अपूर्ज्य लोगोंकी पूजा होनेपर, ब्राह्मी शान्ति करानी चाहिये। भावी अभिषेक, शत्रुसेनासे उत्पन्न भय, अपने राष्ट्रमें भेद तथा शत्रु-वधका अवसर प्राप्त होनेपर रौद्री शान्तिकी प्रशंसा की गयी है ॥ २—१० ॥

तीन दिनोंसे अधिक प्रबल वायुके चलनेपर, सभी भक्ष्य पदार्थोंके विकृत हो जानेपर तथा वातज व्याधिके बिगड़ जानेपर वायवी शान्ति करानी चाहिये। सूखा पड़ जानेका भय हो, वृष्टिसे अधिक हानि हो तथा जलाशयोंमें कोई विकार उत्पन्न हो गया हो तो ऐसे अवसरपर वारुणी शान्ति करानी चाहिये। महाबाहो! अभिशापका भय उपस्थित होनेपर, भार्गवी तथा स्त्रीके प्रसवमें विकार उत्पन्न होनेपर प्राजापत्या नामकी शान्ति करानी चाहिये। पार्थिवनन्दन! गृह-सामग्रियोंमें विकार उत्पन्न होनेपर त्वाष्ट्री (विश्वकर्मासम्बन्धी) शान्ति करानी चाहिये। राजन्! बालकोंकी बाधा दूर करनेके लिये कौमारी शान्ति होनी चाहिये। अग्नि-विकार उपस्थित होनेपर, आज्ञा-भङ्ग होनेपर तथा सेवकादिके विनाश होनेपर आग्नेयी शान्ति करानी चाहिये। अश्वोंकी शान्ति-कामनासे उनमें रोग उत्पन्न होनेपर तथा अधिक संख्याकी अभिलाषासे गान्धर्वी शान्ति करानी चाहिये। हाथियोंकी शान्ति-कामनासे, उनमें रोग उपस्थित होनेपर तथा उनकी रक्षाकी भावनासे आङ्गिरसी शान्ति करानी चाहिये। पिशाचादिका तथा अकालमृत्युका भय उपस्थित होनेपर और दुःखप्ने देखनेपर नैऋती शान्ति कही गयी है।

याम्यां तु कारयेच्छान्ति प्राप्ते तु नरके तथा ।  
धननाशे समुत्पन्ने कौबेरी शान्तिरिष्वते ॥ १९  
वृक्षाणां च तथार्थानां वैकृते समुपस्थिते ।  
भूतिकामस्तथा शान्तिं पार्थिवीं प्रतियोजयेत् ॥ २०  
प्रथमे दिनयामे च रात्रौ वा मनुजोत्तम ।  
हस्ते स्वातौ च चित्रायामादित्ये चाश्विने तथा ॥ २१  
अर्यमिण सौम्यजातेषु वायव्यां त्वद्धुतेषु च ।  
द्वितीये दिनयामे तु रात्रौ च रविनन्दन ॥ २२  
पुष्ट्याग्नेयविशाखासु पित्र्यासु भरणीषु च ।  
उत्पातेषु तथा भाग आग्नेयीं तेषु कारयेत् ॥ २३  
तृतीये दिनयामे च रात्रौ च रविनन्दन ।  
रोहिण्यां वैष्णवे ब्राह्मे वासवे वैश्वदेवते ॥ २४  
ज्येष्ठायां च तथा मैत्रे ये भवन्त्यद्धुताः क्वचित् ।  
ऐन्द्री तेषु प्रयोक्तव्या शान्ती रविकुलोद्ध्रह ॥ २५  
चतुर्थे दिनयामे च रात्रौ वा रविनन्दन ।  
सार्पे पौष्णे तथाद्रायामहिर्बुध्ये च दारुणे ॥ २६  
मूले वरुणदैवत्ये ये भवन्त्यद्धुतास्तथा ।  
वारुणी तेषु कर्तव्या महाशान्तिर्महीक्षिता ॥ २७  
मित्रमण्डलवेलासु ये भवन्त्यद्धुताः क्वचित् ।  
तत्र शान्तिद्वयं कार्यं निमित्तेषु च नान्यथा ।  
निर्निमित्तकृता शान्तिर्निमित्तेनोपयुज्यते ॥ २८  
बाणप्रहारा न भवन्ति यद्वद्  
राजन् नृणां सन्नहनैर्युतानाम् ।  
दैवोपघाता न भवन्ति तद्वद्  
धर्मात्मनां शान्तिपरायणानाम् ॥ २९

मृत्युका भय होनेपर याम्या शान्ति कराये तथा धनका नाश उत्पन्न होनेपर कौबेरी शान्ति करानी चाहिये । ऐश्वर्यकामी मनुष्यको वृक्षों तथा सम्पत्तियोंका विनाश उपस्थित होनेपर पार्थिवी शान्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥ ११—२० ॥

मानवश्रेष्ठ ! दिनके या रात्रिके पहले पहरमें सूर्यके हस्त, स्वाती, चित्रा, पुनर्वसु या अश्विनी नक्षत्रमें जानेपर वायव्यकोणमें यदि अद्भुत उपद्रव दिखायी पड़े तो आग्नेयी शान्ति करानी चाहिये । रविनन्दन ! दिनके अथवा रात्रिके दूसरे पहरमें सूर्यके पुष्य, भरणी, कृत्तिका, मधा और विशाखा नक्षत्रमें जानेपर आग्नेयकोण या दक्षिण दिशामें यदि कोई उत्पात दिखायी दे तो आग्नेयी शान्ति करानी चाहिये । रविनन्दन ! दिनके या रात्रिके तीसरे पहरमें रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराषाढ़, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्रमें सूर्यके जानेपर यदि ईशान, पूर्व या अर्णिकोणमें कोई उत्पात दिखायी दे तो ऐन्द्री शान्ति करानी चाहिये । रविनन्दन ! दिन या रात्रिके चौथे पहरमें आश्लेषा, रेवती, आर्द्रा, उत्तराभाद्र, शतभिषा या मूल नक्षत्रमें सूर्यके जानेपर पश्चिम दिशामें उत्पात दिखायी देनेपर राजाको वारुणी शान्ति करानी चाहिये । यदि मध्याह्नके समय कर्हीपर अद्भुत उत्पात होते हैं तो उस समय दोनों प्रकारकी शान्ति करानी चाहिये । इन उपर्युक्त कारणोंके उपस्थित होनेपर ही शान्ति करानी चाहिये, अन्यथा नहीं । बिना किसी कारणके की गयी शान्ति निष्कल हो जाती है । राजन् ! जिस प्रकार कवचसे सुरक्षित शरीरवाले मनुष्योंको बाणोंका प्रहार किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचाता, उसी प्रकार धर्मात्मा एवं शान्तिपरायण मनुष्योंको दैव-प्रहार किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचा सकते ॥ २१—२९ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्धुतशान्तिनामाष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणमें अद्धुतशान्ति नामक दो सौ अट्टाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२८ ॥

## दो सौ उन्तीसवाँ अध्याय

**उत्पातोंके भेद तथा कतिपय ऋतुस्वभावजन्य शुभदायक अद्भुतोंका वर्णन**

मनुरुवाच

अद्भुतानां फलं देव शमनं च तथा वद ।  
त्वं हि वेत्सि विशालाक्ष ज्ञेयं सर्वमशेषतः ॥ १

मत्स्य उवाच

अत्र ते वर्णयिष्यामि यदुवाच महातपाः ।  
अत्रये वृद्धगर्गस्तु सर्वधर्मभृतां वरः ॥ २  
सरस्वत्याः सुखासीनं गर्ग स्नोतसि पार्थिव ।  
पप्रच्छासौ महातेजा अत्रिमुनिजनप्रियम् ॥ ३

अत्रिरुवाच

नश्यतां पूर्वस्त्वपाणि जनानां कथयस्व मे ।  
नगराणां तथा राज्ञां त्वं हि सर्वं वदस्व माम् ॥ ४

गर्ग उवाच

पुरुषापचारान्नियतमपरज्यन्ति देवताः ।  
ततोऽपरागाद् देवानामुपसर्गः प्रवर्तते ॥ ५  
दिव्यान्तरिक्षभौमं च त्रिविधं सम्प्रकीर्तितम् ।  
ग्रहकर्त्त्वैकृतं दिव्यमान्तरिक्षं निबोध मे ॥ ६  
उल्कापातो दिशां दाहः परिवेषस्तथैव च ।  
गन्धर्वनगरं चैव वृष्टिश्च विकृता तु या ॥ ७  
एवमादीनि लोकेऽस्मिन्नान्तरिक्षं विनिर्दिशेत् ।  
चरस्थिरभवो भौमो भूकम्पश्चापि भूमिजः ॥ ८  
जलाशयानां वैकृत्यं भौमं तदपि कीर्तितम् ।  
भौमे त्वल्पफलं ज्ञेयं चिरेण च विपच्यते ॥ ९  
अभ्रजं मध्यफलदं मध्यकालफलप्रदम् ।  
अद्भुते तु समुत्पन्ने यदि वृष्टिः शिवा भवेत् ॥ १०

सप्ताहाभ्यन्तरे ज्ञेयमद्भुतं निष्फलं भवेत् ।  
अद्भुतस्य विपाकश्च विना शान्त्या न दृश्यते ॥ ११

मनुजे पूछा—विशाल नेत्रोंवाले देव ! अब मुझे इन अद्भुतोंका फल तथा उनकी शान्तिका उपाय बतलाइये ; क्योंकि आप सभी ज्ञेय विषयोंके पूर्ण ज्ञाता हैं ॥ १ ॥

**मत्स्यभगवान्**ने कहा—राजन् ! इस विषयमें सभी धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महातपस्वी वृद्ध गर्गने अत्रिसे जो कुछ कहा था, वह सब मैं तुम्हें बतला रहा हूँ । एक समय मुनिजनोंके प्रिय महर्षि गर्गाचार्य सरस्वती नदीके तटपर सुखपूर्वक बैठे हुए थे, उसी समय महातेजस्वी अत्रिने उनसे प्रश्न किया ॥ २-३ ॥

अत्रि ऋषिने पूछा—महर्षे ! आप मुझे विनाशोन्मुख मनुष्यों, राजाओं तथा नगरोंके सभी पूर्वलक्षण बतलाइये ॥ ४ ॥

गर्गजी बोले—अत्रिजी ! मनुष्योंके अत्याचारसे निश्चय ही देवता प्रतिकूल हो जाते हैं । तत्पश्चात् उन देवताओंके अप्रसन्न होनेसे उत्पात प्रारम्भ होता है । वह उत्पात दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम—तीन प्रकारका कहा गया है । ग्रहों और नक्षत्रोंके विकारको दिव्य उत्पात जानना चाहिये । अब मुझसे आन्तरिक्ष उत्पातका वर्णन सुनिये । उल्कापात, दिशाओंका दाह, मण्डलोंका उदय, आकाशमें गन्धर्व-नगरका दिखायी देना, खण्डवृष्टि, अनावृष्टि या अतिवृष्टि—इस प्रकारके उत्पातोंको इस लोकमें आन्तरिक्ष उत्पात कहना चाहिये । स्थावर-जंगमसे उत्पन्न हुआ उत्पात तथा भूमिजन्य भूकम्प भौम उत्पात हैं । जलाशयोंका विकार भी भौम उत्पात कहलाता है । भौम उत्पात होनेपर उसका थोड़ा फल जानना चाहिये, किंतु वह बहुत देरमें शान्त होता है । आन्तरिक्ष उत्पात मध्यम फल देनेवाला होता है और मध्यमकालमें परिणामदायी होता है । इस महोत्पातके उदय होनेपर यदि कल्याणकारिणी वृष्टि होती है तो यह समझ लेना चाहिये कि एक सप्ताहके भीतर यह उत्पात निष्फल हो जायगा, किंतु इस महान् उत्पातका अवसान शान्तिके बिना नहीं होता ।

त्रिभिर्वर्षैस्तथा ज्ञेयं सुमहद्वयकारकम्।  
राज्ञः शरीरे लोके च पुरद्वारे पुरोहिते॥ १२  
पाकमायाति पुत्रेषु तथा वै कोशवाहने।  
ऋतुस्वभावाद् राजेन्द्र भवन्त्यद्वृतसंज्ञिताः॥ १३  
शुभावहास्ते विज्ञेयास्तांश्च मे गदतः शृणु।  
वज्राशनिमहीकम्पसंध्यानिर्घातिनिःस्वनाः॥ १४  
परिवेषरजोधूमरक्ताकास्तमयोदयाः ।  
द्वुमोद्देदकरस्नेहो बहुशः सफलद्वुमः॥ १५  
गोपक्षिमधुवृद्धिश्च शुभानि मधुमाधवे।  
ऋक्षोल्कापातकलुषं कपिलार्केन्दुमण्डलम्॥ १६  
कृष्णाश्वेतं तथा पीतं धूसरध्वान्तलोहितम्।  
रक्तपुष्पारुणं सांध्यं नभः क्षुब्धार्णवोपमम्॥ १७  
सरितां चाम्बुसंशोषं दृष्ट्वा ग्रीष्मे शुभं वदेत्।  
शक्रायुधपरीवेषं विद्युदुल्काधिरोहणम्॥ १८  
कम्पोद्वृत्तनवैकृत्यं हसनं दारणं क्षितेः।  
नद्युदपानसरसां विधूनतरणप्लवाः॥ १९  
शृङ्गिणां च वराहाणां वर्षासु शुभमिष्यते।  
शीतानिलतुषारत्वं नर्दनं मृगपक्षिणाम्॥ २०  
रक्षोभूतपिशाचानां दर्शनं वागमानुषी।  
दिशो धूमान्धकाराश्च सनभोवनपर्वताः॥ २१  
उच्चैः सूर्योदयास्तौ च हेमन्ते शोभनाः स्मृताः।  
दिव्यस्त्रीरूपगन्धर्वविमानादभुतदर्शनम्॥ २२  
ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं वागमानुषी।  
गीतवादित्रनिर्दोषो वनपर्वतसानुषु॥ २३  
सस्यवृद्धी रसोत्पत्तिः शरत्काले शुभाः स्मृताः।  
हिमपातानिलोत्पातविरूपादभुतदर्शनम्॥ २४  
कृष्णाञ्जनाभमाकाशं तारोल्कापातपिञ्चरम्।  
चित्रगर्भोद्दवः स्त्रीषु गोडजाश्चमृगपक्षिषु।  
पत्राङ्कुरलतानां च विकाराः शिशिरे शुभाः॥ २५

इसे तीन वर्षोंतक महान् भयदायक मानना चाहिये। इसका परिणाम राजाके शरीर, राज्य, पुरद्वार, पुरोहित, पुत्र, कोश और वाहनोंपर प्रकट होता है। राजेन्द्र! जो अद्वृतसंज्ञक उत्पात ऋतुओंके स्वभावके अनुकूल होते हैं, उन्हें शुभदायक मानना चाहिये। मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये ॥ ५—१३५ ॥

वज्र एवं विजलीका गिरना, पृथ्वीका कम्पन, संध्याके समय वज्रका शब्द, सूर्य तथा चन्द्रमामें मण्डलोंका होना, धूलि और धूएँका उद्धव, उदय एवं अस्तके समय सूर्यकी अतिलालिमा, वृक्षोंके टूट जानेपर उनसे रसका गिरना, फलवाले वृक्षोंकी अधिकता, गौ, पक्षी और मधुकी वृद्धि—ये चैत्र और वैशाखमासमें शुभप्रद हैं। ग्रीष्म ऋतुमें कलुषित नक्षत्रों और ग्रहोंका पतन, सूर्य और चन्द्रके मण्डलोंका कपिल वर्ण होना, सायंकालीन नभके काले और सफेद मिश्रित, पीले, धूसरित, श्यामल, लाल, लाल पुष्पके समान अरुण और क्षुब्ध सागरकी तरह संक्षुब्ध होना तथा नदियोंका जल सूख जाना—इन उत्पातोंको देखकर इन्हें शुभ कहना चाहिये। इन्द्रधनुषका मण्डलाकार उदय, विद्युत् और उल्काका पतन, पृथ्वीका अकस्मात् कम्पन, उलट-पलट विकृति, हास और फटना, नदियों एवं तालाबोंमें जलकी न्यूनता, नाव, जहाज और पुलका काँपना, सींगवाले जानवरों तथा शूकरोंकी वृद्धि—ये उत्पात वर्षा ऋतुमें मङ्गलकारी हैं। शीतल वायु, तुषार, पशु एवं पक्षियोंका चीत्कार, राक्षस, भूत और पिशाचोंका दर्शन, दैवी वाणी, सूर्यके उदय-अस्तके समय आकाश, वन और पर्वतोंसहित दिशाओंका गाढ़रूपमें धुएँसे अन्धकारित हो जाना—ये उत्पात हेमन्त-ऋतुमें उत्तम माने जाते हैं। दिव्य स्त्रीका रूप, गर्भर्व-विमान, ग्रह, नक्षत्र और ताराओंका दर्शन, दैवी वाणी, वनोंमें और पर्वतोंकी चोटियोंपर गाने-बजानेका शब्द सुनायी पड़ना, अन्नोंकी वृद्धि, रसकी विशेष उत्पत्ति—ये उत्पात शरत्कालमें माङ्गलिक कहे गये हैं। हिमपात, वातका बहना, विरूप एवं अद्वृत उत्पातोंका दर्शन, आकाशका काले कज्जलके समान दिखायी पड़ना तथा ताराओं एवं उल्काओंके गिरनेसे पीले रंगका दीख पड़ना, स्त्री, गाय, बकरी, घोड़ी, मृगी और पक्षियोंसे विचित्र प्रकारके बच्चोंका पैदा होना, पत्तों, अद्कुरों और लताओंमें अनेकों प्रकारके

ऋतुस्वभावेन विनाद्भुतस्य  
जातस्य दृष्टस्य तु शीघ्रमेव।  
यथागमं शान्तिरनन्तरं तु  
कार्या यथोक्ता वसुधाधिपेन ॥ २६

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तिकोत्पत्तिर्नामैकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२९ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अद्भुत उत्पातोंकी शान्ति नामक दो सौ उन्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२९ ॥

विकारोंका हो जाना—ये उत्पात शिशिर-ऋतुमें शुभदायी माने गये हैं। इन ऋतु-स्वभावके अतिरिक्त अन्य उत्पन्न हुए अद्भुत उत्पातके देखे जानेके बाद राजाको शीघ्र ही शास्त्रानुकूल कही गयी शान्तिका विधान करना चाहिये ॥ १४—२६ ॥

## दो सौ तीसवाँ अध्याय

अद्भुत उत्पातके लक्षण तथा उनकी शान्तिके उपाय

गाँ उवाच

देवतार्चाः प्रनृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्ति च।  
वमन्त्यग्निं तथा धूमं स्नेहं रक्तं तथा वसाम् ॥ १  
आरटन्ति रुदन्त्येताः प्रस्विद्यन्ति हसन्ति च।  
उत्तिष्ठन्ति निषीदन्ति प्रधावन्ति धमन्ति च ॥ २  
भुञ्जते विक्षिपन्ते वा कोशप्रहरणध्वजान्।  
अवाङ्मुखा वा तिष्ठन्ति स्थानात् स्थानं भ्रमन्ति च ॥ ३  
एवमाद्या हि दृश्यन्ते विकाराः सहसोत्थिताः।  
लिङ्गायतनविप्रेषु तत्र वासं न रोचयेत् ॥ ४  
राज्ञो वा व्यसनं तत्र स च देशो विनश्यति।  
देवयात्रासु चोत्पातान् दृष्ट्वा देशभयं बदेत् ॥ ५  
पितामहस्य हर्म्येषु तत्र वासं न रोचयेत्।  
पशूनां रुद्रजं ज्ञेयं नृपाणां लोकपालजम् ॥ ६  
ज्ञेयं सेनापतीनां तु यत् स्यात् स्कन्दविशाखजम्।  
लोकानां विष्णुवस्त्रिवृत्तिविश्वकर्मसमुद्भवम् ॥ ७  
विनायकोद्भवं ज्ञेयं गणानां ये तु नायकाः।  
देवप्रेष्यान् नृप्रेष्या देवस्त्रीभिर्नृपस्त्रियः ॥ ८  
वासुदेवोद्भवं ज्ञेयं ग्रहाणामेव नान्यथा।  
देवतानां विकारेषु श्रुतिवेत्ता पुरोहितः ॥ ९

गर्जी बोले—जब देव-मूर्तियाँ नाचने लगती हैं, काँपती हैं, जल उठती हैं, अग्नि, धूआँ, तेल, रक्त और चर्बी उगलने लगती हैं, जोर-जोरसे चिल्लाती हैं, रोती हैं, पसीना बहाने लगती हैं, हँसती हैं, उठती हैं, बैठती हैं, दौड़ने लगती हैं, मुँह बजाने लगती हैं, खाती हैं, कोश, अस्त्र और ध्वजाओंको फेंकने लगती हैं, नीचे मुख किये बैठी रहती हैं अथवा एक स्थानसे दूसरे स्थानपर भ्रमण करने लगती हैं—इस प्रकारके सहसा उत्पन्न हुए उत्पात यदि शिव-लिङ्ग, देवमन्दिर तथा ब्राह्मणोंके पुरमें दिखायी पड़ें तो उस स्थानपर निवास नहीं करना चाहिये। ऐसे उत्पातोंके होनेपर या तो राजापर कोई बड़ी आपत्ति आती है अथवा उस देशका विनाश होता है। देवताके दर्शनके लिये जाते समय यदि उपर्युक्त उत्पात दिखायी पड़ें तो उस देशको भय बतलाना चाहिये ॥ १—५ ॥

गृहसम्बन्धी उत्पातोंको ब्रह्मासे सम्बद्ध जानना चाहिये, अतः वहाँ निवास न करे। पशुओंके उत्पातोंको रुद्रसे उत्पन्न और राजाओंके उत्पातोंको लोकपालसे उत्पन्न जानना चाहिये। सेनापतियोंके उत्पातोंको स्कन्द तथा विशाखसे उत्पन्न तथा लोकोंके उत्पातोंको विष्णु, वसु, इन्द्र और विश्वकर्मसे उद्भूत समझना चाहिये। जो गणोंके नायक हैं, उनपर घटित होनेवाला उत्पात विनायकसे उद्भूत जानना चाहिये। देवदूतोंकी अप्रसन्नतासे राजदूतोंपर तथा देवाङ्गनाओंके द्वारा राजपत्नियोंपर उत्पात घटित होते हैं। ग्रहोंके उपद्रवको भगवान् वासुदेवसे उत्पन्न हुआ समझना चाहिये। महाभाग! देवताओंमें

देवतार्चा तु गत्वा वै स्नानमाच्छाद्य भूषयेत् ।  
 पूजयेच्च महाभाग गन्धमाल्यान्सम्पदा ॥ १०  
 मधुपर्केण विधिवदुपतिष्ठेदनन्तरम् ।  
 तल्लिङ्गेन च मन्त्रेण स्थालीपाकं यथाविधि ।  
 पुरोधा जुहुयाद् वह्नौ सप्तरात्रमतन्त्रितः ॥ ११  
 विप्राश्च पूज्या मधुरान्पानैः  
 सदक्षिणं सप्तदिनं नरेन्द्र ।  
 प्राप्तेऽष्टमेऽहि क्षितिगोप्रदानैः  
 सकाञ्चनैः शान्तिमुपैति पापम् ॥ १२

इति श्रीमात्ये महापुराणेऽद्वृतशान्तावर्चाधिकारो नाम त्रिशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३० ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके अद्वृत-शान्तिके प्रसङ्गमें पूजाधिकार नामक दो सौ तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३० ॥

उपर्युक्त विकारोंके उत्पन्न होनेपर वेदज्ञ पुरोहित देवमूर्तिके पास जाकर उसे स्नान कराये, वस्त्रादिसे अलंकृत करे तथा चन्दन, पुष्पमाला और भक्ष्यपदार्थसे उसकी पूजा करे। तदनन्तर विधिपूर्वक मधुपर्क निवेदित करे। फिर वह पुरोहित ब्राह्मण सावधानीपूर्वक उक्त प्रतिमाके मन्त्रसे स्थालीपाकद्वारा सात दिनोंतक विधिपूर्वक अग्निमें आहुति डाले। नरेन्द्र! उक्त सातों दिनोंतक मधुर अन्न-पानादि सामग्रियोंद्वारा तथा उत्तम दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। आठवें दिन पृथ्वी, सुवर्ण तथा गौका दान करनेसे पाप शान्त हो जाता है ॥ ६—१२ ॥

## दो सौ एकतीसवाँ अध्याय

अग्निसम्बन्धी उत्पातके लक्षण तथा उनकी शान्तिके उपाय

गर्ग उकाच

अनग्निर्दीप्यते यत्र राष्ट्रे यस्य निरिन्धनः ।  
 न दीप्यते चेन्धनवांस्तदराष्ट्रं पीड्यते नृपैः ॥ १

प्रज्वलेदप्सु मांसं वा तदर्थं वापि किञ्चन ।  
 प्राकारं तोरणं द्वारं नृपवेशम् सुरालयम् ॥ २

एतानि यत्र दीप्यन्ते तत्र राज्ञो भयं भवेत् ।  
 विद्युता वा प्रदह्यन्ते तदापि नृपतेर्भयम् ॥ ३

अनैशानि तमांसि स्युर्विना पांसुरजांसि च ।  
 धूमश्चानग्निजो यत्र तत्र विन्द्यान्महाभयम् ॥ ४

तडित् त्वनभ्ये गगने भयं स्याद्वक्षवर्जिते ।  
 दिवा सतारे गगने तथैव भयमादिशेत् ॥ ५

गर्गजीने कहा—जिस देशमें ईंधनके बिना ही अग्नि जल उठती है और ईंधन लगानेपर भी अग्नि प्रज्वलित नहीं होती, वह देश राजाओंसे पीड़ित होता है। जहाँ जलमें मांस जलने लगता है या उसका कोई भाग जल जाता है, किलेकी चहारदीवारी, प्रवेशद्वार, तोरण, राजभवन और देवालय—ये अकस्मात् जल उठते हैं वहाँ राजाको भय प्राप्त होता है। यदि ये उपर्युक्त वस्तुएँ बिजली गिरनेसे जल जाती हैं तब भी राजाको भय प्राप्त होता है। जहाँ रात्रि तथा धूलि एवं रजःकणोंके बिना ही अन्धकार छा जाय और अग्निके बिना धुआँ दिखायी पड़े, वहाँ महाभयकी प्राप्ति जाननी चाहिये। बादल और नक्षत्रोंसे रहित आकाशमें बिजली कौंधने लगे तो भय प्राप्त होता है। इसी प्रकार दिनमें गगनमण्डल तारायुक्त हो जाय तो भी उसी प्रकारका भय कहना चाहिये ॥ १—५ ॥

ग्रहनक्षत्रवैकृत्ये ताराविषमदर्शने।  
 पुरवाहनयानेषु चतुष्पान्मृगपक्षिषु ॥ ६  
 आयुधेषु च दीप्तेषु धूमायत्सु तथैव च।  
 निगमत्सु च कोशाच्च संग्रामस्तुमुलो भवेत् ॥ ७  
 विनाग्निं विष्फुलिङ्गाश्च दृश्यन्ते यत्र कुत्रिचित्।  
 स्वभावाच्चापि पूर्यन्ते धनूषि विकृतानि च ॥ ८  
 विकारश्चायुधानां स्यात् तत्र संग्राममादिशेत्।  
 त्रिरात्रोपेषितश्चात्र पुरोधाः सुसमाहितः ॥ ९  
 समिद्धिः क्षीरवृक्षाणां सर्षपैश्च घृतेन च।  
 होमं कुर्यादग्निमन्त्रैब्राह्मणांश्चैव भोजयेत् ॥ १०  
 दद्यात् सुवर्णं च तथा द्विजेभ्यो  
       गाश्चैव वस्त्राणि तथा भुवं च।  
 एवं कृते पापमुपैति नाशं  
       यदग्निवैकृत्यभवं द्विजेन्द्र ॥ ११

इति श्रीमात्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तावग्निवैकृत्यं नामैकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३१ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अद्भुत-शान्तिके प्रसंगमें अग्निविकार नामक दो सौ एकतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३१ ॥

ग्रहों और नक्षत्रोंमें विकारका हो जाना, ताराओंमें विषमताका दिखायी पड़ना, ग्राम, वाहन, रथ, चौपाये, मृग, पक्षी तथा शस्त्रास्त्रोंका अपने-आप प्रज्वलित हो उठना अथवा धूमिल हो जाना और कोशसे अस्त्रादिका निकलना तुमुल संग्रामका सूचक है। जहाँ-कहीं भी अग्निके बिना चिनगारियाँ दिखायी पड़ने लगें, स्वाभाविक ढंगसे ही धनुषकी डोरियाँ चढ़ जायें या विकृत हो जायें तथा शस्त्रास्त्रोंमें विकार उत्पन्न हो जाय तो वहाँ संग्राम बतलाना चाहिये। ऐसी दशामें वहाँका पुरोहित तीन रात्रिक उपवासकर अत्यन्त समाहित-चित्तसे दूधवाले वृक्षोंकी लकड़ियों, सरसों तथा घीसे अग्नि-मन्त्रोंद्वारा हवन करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा उन्हें सुवर्ण, गौएँ, वस्त्र और पृथ्वीका दान दे। द्विजेन्द्र! ऐसा करनेसे अग्नि-विकार-सम्बन्धी पाप नष्ट हो जाता है ॥ ६—११ ॥

## दो सौ बत्तीसवाँ अध्याय

वृक्षजन्य उत्पातके लक्षण और उनकी शान्तिके उपाय

गर्ग उवाच

पुरेषु येषु दृश्यन्ते पादपा देवचोदिताः।  
 रुदन्तो वा हसन्तो वा स्ववन्तो वा रसान् बहून् ॥ १  
 अरोगा वा विना वातं शाखां मुञ्चन्त्यथ द्रुमाः।  
 फलं पुष्टं तथाकाले दर्शयन्ति त्रिहायनाः ॥ २  
 पूर्ववत् स्वं दर्शयन्ति फलं पुष्टं तथान्तरे।  
 क्षीरं स्नेहं तथा रक्तं मधुं तोयं स्ववन्ति च ॥ ३  
 शुष्यन्त्यरोगाः सहसा शुष्का रोहन्ति वा पुनः।  
 उत्तिष्ठन्तीह पतिताः पतन्ति च तथोत्थिताः ॥ ४  
 तत्र वक्ष्यामि ते ब्रह्मन् विपाकं फलमेव च।

गर्गजीने कहा—ब्रह्मन्! जिन ग्रामोंमें दैव-प्रेरित वृक्ष अपने-आप रोते, हँसते, प्रचुर परिमाणमें रस बहाते हुए किसी रोग अथवा वायुके बिना डालियाँ गिराते हैं, तीन ही वर्षके वृक्ष असमयमें फलने-फूलने लगते हैं, अन्यत्र कोई-कोई वृक्ष ऋतुकालकी भाँति अपनेको फलों और पुष्टोंसे लदे हुए दिखलाते हैं तथा दुग्ध, तैल, रक्त, मधु और जल बहाते हैं, किसी रोगके बिना ही सहसा सूख जाते हैं अथवा सूखे हुए पुनः अद्भुरित हो जाते हैं, गिरे हुए उठकर खड़े हो जाते हैं तथा खड़े हुए गिर पड़ते हैं, वहाँ होनेवाला परिणाम और फल में आपको बतला रहा हूँ सुनिये ॥ १—४३ ॥



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

Made with  
  
By  
**Avinash/Shashi**

Icreator of  
hinduism  
server!



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

Made with  
  
By  
**Avinash/Shashi**

Icreator of  
hinduism  
server!

रोदने व्याधिमध्येति हसने देशविभ्रमम् ॥ ५  
 शाखाप्रपतनं कुर्यात् संग्रामे योधपातनम् ।  
 बालानां मरणं कुर्युरकाले पुष्टिता ह्रुमाः ॥ ६  
 स्वराष्ट्रभेदं कुरुते फलपुष्टमथान्तरे ।  
 क्षयः सर्वत्र गोक्षीरे स्नेहे दुर्भिक्षलक्षणम् ॥ ७  
 वाहनापचयं मद्ये रक्ते संग्राममादिशेत् ।  
 मधुस्नावे भवेद् व्याधिर्जलस्नावे न वर्षति ॥ ८  
 अरोगशोषणं ज्ञेयं ब्रह्मन् दुर्भिक्षलक्षणम् ।  
 शुष्केषु सम्प्रोहस्तु वीर्यमनं च हीयते ॥ ९  
 उत्थाने पतितानां च भयं भेदकरं भवेत् ।  
 स्थानात् स्थानं तु गमने देशभङ्गस्तथा भवेत् ॥ १०  
 ज्वलत्स्वपि च वृक्षेषु रुदत्स्वपि धनक्षयम् ।  
 एतत्पूजितवृक्षेषु सर्वं राज्ञो विपद्यते ॥ ११  
 पुष्टे फले वा विकृते राज्ञो मृत्युं तथाऽऽदिशेत् ।  
 अन्येषु चैव वृक्षेषु वृक्षोत्पातेष्वतन्द्रितः ॥ १२  
 आच्छादयित्वा तं वृक्षं गन्धमाल्यैर्विभूषयेत् ।  
 वृक्षोपरि तथा च्छत्रं कुर्यात् पापप्रशान्तये ॥ १३  
 शिवमध्यर्चयेद् देवं पशुं चास्मै निवेदयेत् ।  
 रुद्रेभ्य इति वृक्षेषु हुत्वा रुद्रं जपेत् ततः ॥ १४  
 मध्वाज्ययुक्तेन तु पायसेन  
     सम्पूज्य विप्रांश्च भुवं च दद्यात् ।  
 गीतेन नृत्येन तथार्चयेत्  
     देवं हरं पापविनाशहेतोः ॥ १५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽहुतशान्तौ वृक्षोत्पातप्रशामनं नाम द्वात्रिंशदधिकद्विशततपोऽध्यायः ॥ २३२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अहुत-शान्ति-प्रकरणमें वृक्षोत्पात-प्रशामन नामक  
 दो सौ बत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३२ ॥

ब्रह्मन्! वृक्षोंके रुदन करनेपर व्याधियाँ फैलती हैं, हँसनेपर देशमें संकटकी वृद्धि होती है, शाखाओंके गिरनेसे संग्राममें योद्धाओंका विनाश होता है, असमयमें फूले हुए वृक्ष बालकोंकी मृत्यु सूचित करते हैं, वृक्षसमूहोंमेंसे किसी-किसीके फलने-फूलनेपर अपने राष्ट्रमें भेद उत्पन्न होता है, गायके दूध गिरनेसे चारों ओर विनाश उपस्थित होता है, तेलका गिरना दुर्भिक्षका लक्षण है, मदिराके गिरनेसे वाहनोंका विनाश होता है, रक्त गिरनेपर संग्राम बतलाना चाहिये, मधु चूनेसे व्याधियाँ फैलती हैं, जल गिरनेसे वृष्टि नहीं होती। किसी रोगके बिना वृक्षोंका सूख जाना दुर्भिक्षका लक्षण जानना चाहिये। सूखे हुए वृक्षसे अंकुर फूटनेपर वीर्य (पराक्रम) और अनकी हानि होती है। गिरे हुए वृक्षोंके उठनेपर भेदकारी भय होता है तथा एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जानेसे देश-भङ्ग होता है, वृक्षोंके अकस्मात् जलने तथा रुदन करनेपर सम्पत्तिका विनाश होता है। ये उपद्रव यदि पूजित वृक्षोंमें होते हैं तो अवश्य ही राजापर विपत्तियाँ आती हैं। वृक्षोंके फलों तथा फूलोंमें विकार होनेपर राजाकी मृत्यु कहनी चाहिये। इसी प्रकार अन्यान्य वृक्षोंमें भी उपद्रवके लक्षणोंके दिखायी पड़नेपर उत्साही ब्राह्मण उस वृक्षको ऊपरसे ढककर चन्दन और पुष्टमालासे भूषित करे और पापकी शान्तिके लिये वृक्षके ऊपर छत्र लगाये। तदनन्तर शिवकी पूजा करे और पशुको 'रुद्रेभ्यः०' इस संकल्पसे निवेदित कर वृक्षोंके नीचे हवन करनेके पश्चात् शिवका जप करे। फिर मधु तथा घृतयुक्त खीरसे ब्राह्मणोंको संतुष्ट कर उन्हें पृथ्वीका दान दे और उस पापकी शान्तिके लिये गीत तथा नृत्यका आयोजन कराकर भगवान् शंकरकी अर्चना करे ॥ ५—१५ ॥